

महाभारत

में

धर्म

राजस्थान विश्व विद्यालय द्वारा
जनवरी सन् १९६५ मे
पी एच० डी० की उपाधि के लिए
स्वीकृत शोध-प्रबंध

महाभारत में धर्म

(महाभारत के आधार पर धर्म के लक्षण एवं आचार का
प्रामाणिक विवेचन)

लेखिका—

डा० शकुन्तला रानी तिवारी

एम०ए०, पी०एच० डी०

प्रचारक—

भारती पुस्तक मन्दिर

चौबुर्जा, भरतपुर (राजस्थान)

* प्रकाशक—

पाटल प्रकाशन

४/२११ बानूगज, आगरा ।

* प्रचारक—

भारती पुस्तक मन्दिर

(चौबुजा) भरतपुर (राजस्थान)

* सर्वाधिकार लेखिका के आधीन है ।

* प्रथम प्रकाशन, १९७०

* मूल्य ३५) पैंतीस रुपया ।

* श्री नैमीचन्द जैन द्वारा

मथुरा प्रिंटिंग प्रेस,

मथुरा में मुद्रित ।

* समर्पण *

पूज्य माँ

और

आदरणीय पिताजी

को

श्रद्धा पूर्वक समर्पित



पूर्व वचन

अपनी सहधर्मिणी के इस शोध प्रबंध के सम्बन्ध में कुछ भी कहना मेरे लिए कठिन ही नहीं, कदाचित् अधिक उचित भी नहीं है। उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के सम्बन्ध में अपनी धारणा को पत्रपात से बचाना कठिन है। इसमें उनकी प्रशंसा के साथ-साथ आत्म प्रशंसा की भी आशंका हो सकती है।

उनके अनुरोध से लिखे हुए ये दो शब्द हमारे दाम्पत्य सम्बन्ध के प्रकाशक बनें, मेरे मत में इस पूर्व वचन का इससे अधिक उद्देश्य नहीं है। मैं अपनी सहधर्मिणी की बाल्यकाल से सजीयी हुई उच्च शिक्षा की आकांक्षा को पूर्ण करने में सहायक हो सका, इसकी मुझे प्रसन्नता है। अपने कार्य में अधिक व्यस्त रहने के कारण मैं उनके अध्ययन में अधिक सहयोग न दे सका, इसका मुझे खेद है। अपनी उच्च शिक्षा की भांति उन्होंने इस अनुसंधान कार्य को भी बहुत कुछ अपने परिश्रम और अध्यवसाय से ही पूरा किया है। धर्म और अध्यवसाय उनके विशेष गुण हैं। इन्हीं के द्वारा उन्होंने गृहस्थ धर्म के साथ समन्वय रखते हुए अपनी शिक्षा को पूरा किया है।

भारतीय पुरातत्व के विख्यात विद्वान् आदरणीय डा० फतहसिंह जी का आत्मीय सम्बन्ध हमारे परिवार की एक मूल्यवान् उपलब्धि है। उनकी उदार अनुकम्पा से ही इस अनुसंधान कार्य में उनका अमूल्य पथ प्रदर्शन मिल सका। आदरणीय डा० फतहसिंहजी की प्रेरणा उनके प्रोत्साहन तथा उनके निरन्तर निर्देशन से ही यह कार्य सम्पन्न हो सका है।

आत्मीय सम्बन्ध के नाते मैं अपनी सहधर्मिणी की उनके धर्म और अध्यवसाय की सफलता के लिए बधाई दूँ तथा आदरणीय डा० फतहसिंहजी के प्रति उनके अपार अनुग्रह के लिए आभार प्रदर्शन करूँ, यही धर्म के इस अनुष्ठान और अनुसंधान के प्रसंग में मेरा धर्म है।

महारानी श्रीजया कालिज

भरतपुर (राजस्थान)

२० जनवरी १९७०

रामानन्द तिमारी

‘ भारतीय-दन ’

भूमिका

१—विषय निर्देश—

प्रस्तुत शोध प्रबंध में महाभारत के धर्म-सम्बन्धी तत्वों का अनुसंधान अध्ययन और विवेचन प्रस्तुत किया गया है। महाभारत भारतीय साहित्य का एक अनुपम रत्न है। आकार की विशालता की दृष्टि से वह विश्व के साहित्य में अनुलनीय है। विषय की दृष्टि से भी उसका महत्व अपार है। स्वयं महाभारत में ही कहा गया है कि जो अज्ञ है वह इस महाभारत में भी है और जो इसमें नहीं है वह अज्ञ भी नहीं भिगा। इसी आधार पर यज्ञ भारत तत्र भारत की उत्ति प्रचलित हुई। महाभारत के वर्तमान रूप में धर्म सम्बन्धी तत्व, डा० सुब्रह्मण्यर के मतानुसार, क्या भाग में कई गुना अधिक है। पश्चिमी विद्वान् इसे प्रक्षिप्त मानते हैं और वे महाभारत के मूल क्या-काव्य की खोज करते रहते हैं। किंतु २००० वर्ष से महाभारत का वर्तमान रूप ही माय है, जिसमें धर्मत्व की प्रधानता है। डा० सुब्रह्मण्यर इस धर्म तत्व को महाभारत का अभिन्न और आन्तरिक अङ्ग मानते हैं। भारतीय परम्परा में महाभारत धर्मशास्त्र और स्मृतियों के समान एक धर्म ग्रन्थ के रूप में प्रसिद्ध है। धर्मराज के नायकत्व और भगवान् श्रीकृष्ण के निर्देशन में महाभारत की क्या को भी धार्मिक तात्पर्य से युक्त बना दिया है। महाभारत में धर्म तत्व की प्रधानता मानकर ही प्रस्तुत शोध प्रबंध में 'महाभारत में धर्म' को अध्ययन और विवेचन का विषय बनाया गया है।

महाभारत की महिमा तथा महाभारत में धर्म के महत्त्व में प्रस्तुत विषय का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। महाभारत का भारतीय साहित्य में इतना मान है कि उस 'पंचम वेद' कहा जाता है। 'धर्म' भारतीय सभ्यता और जीवन का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग है, जसा कि आगे प्रस्तावना में तथा शोध

प्रबन्ध के आरम्भिक अध्यायो में स्पष्ट किया गया है। 'धर्म' शब्द अंगरेजी में रिज्ञान का अर्थ है। धर्म शास्त्र और महाभारत में धर्म का अर्थ प्रायः मुख्य रूप से उदात्त और मानवीय आचार से है। महाभारत में धर्म का यही अर्थ प्राप्त है। धर्म के इसी रूप को मुख्य मानकर प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में महाभारत के धर्म-तत्त्व का विवरण और विवेचन प्रस्तुत किया गया है। प्रबन्ध के आरम्भिक अध्यायो में महाभारत के रूढ़ि में धर्म के स्वरूप का विवेचन किया गया है। उसके बाद बारह अध्यायो में धर्म के विविध पक्षों का विवरण और विवेचन महाभारत के आधार पर किया गया है। यह धर्म का प्रधानतः सामाजिक-नैतिक और मानवीय रूप है। अतः 'धर्म' के अन्तर्गत ईश्वर-अवतार-देवता आदि सम्बन्धी धर्म का विवरण 'द्वितीय धर्म' के अन्तर्गत किया गया है। धर्म का सामाजिक, नैतिक और मानवीय धारणा का मुख्य मानकर उसके साथ द्वितीय धर्म की संगति दिखाई गई है। उपमहाराज अनुसंधान के निष्कर्षों का आकलन है। महाभारत की महिमा और उच्च धर्म की महत्ता ही प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के शीर्षक-विषय और अध्ययन के महत्व का आधार है।

२—महाभारत सम्बन्धी शोध का इतिहास—

भारतीय परम्परा में प्राचीन साहित्य के मूल ग्रन्थों के अध्ययन और अनुशासन की प्रथा प्रचलित थी। मूल ग्रन्थों के अध्ययन में सहायता देने के लिए व्याख्याओं और टीकायें तैयार की जाती थीं किन्तु ऐतिहासिक और वनान्तिक आलोचना के नाम पर आलोचना को मूल ग्रन्थ से अधिक महत्वपूर्ण बनाने की प्रथा प्राचीन भारत में प्रचलित नहीं थी। इसी कारण प्राचीन भारत में इतने विशाल साहित्य का रचना हो सकी। आधुनिक युग में रचना से अधिक आलोचना हो रहा है और आलोचना ही साहित्य का स्थान ले रही है। यह पश्चिम के आधुनिक वनान्तिक और आलोचनात्मक दृष्टिकोण का ही फल है। महाभारत का ऐतिहासिक और वनान्तिक आलोचना का प्रवृत्त भी पश्चिम विज्ञान ने ही किया है। भारतीय परम्परा में तो मुख्यतः महाभारत का टाकायें मिलना है जिनमें नीचवर्णीय टीका सबसे अधिक प्रसिद्ध और प्रामाणिक है। नीचवर्णीय टीका के अतिरिक्त महाभारत की अन्य धार्मिक और

आध्यात्मिक व्याख्या भी मिलती हैं। इनमें आनन्दनीय महापात्र का महाभारत तात्पर्य निरूपण और अण्णय दीक्षित का महाभारत 'तात्पर्य सप्रह विशेष उल्लेखनीय है। इनमें भक्ति और अच्यारम के दृष्टिकोण से महाभारत की सर्वांत व्याख्या की गई है।

महाभारत की ऐतिहासिक और वनानिक आलोचना का प्रवर्तन आधुनिक काल में पश्चिमी विद्वानों ने किया है। प्रस्तुत गोप प्रबंध के दूसरे अण्णय में महाभारत की इस पश्चिमी आलोचना का संक्षिप्त विवरण दिया गया है और उसके दृष्टिकोण को भी स्पष्ट किया गया है। महाभारत के पश्चिमी आलोचकों में वाय, लामन सोरनसन, होपकिंस ओडनबग बेचर लुडविग, मकडोनल, विन्तर्नितम, वाय, होममान आदि विद्वानों का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें अधिकांश विद्वान् महाभारत के वर्तमान रूप का अनेक लेखकों की कृति मानकर उनके धार्मिक पक्षों को प्रक्षिप्त मानते रहे तथा महाभारत के मूलकथाकाव्य की खोज करते रहे। आधुनिक भारतीय विद्वान् भी पश्चिमी विद्वानों के इस दृष्टिकोण से प्रभावित हैं। रामेणचंद्र दत्त जय भारतीय मनीषी भी इस दृष्टिकोण से प्रभावित होकर महाभारत के मूल कथाकाव्य की खोज करते रहे और महाभारत के धार्मिक अंशों को प्रक्षिप्त मानते रहे। भारतीय विद्वानों में जिन्होंने पश्चिमी मता का प्रतिवाद करने का साहस किया उनमें प्रिंसीपल थडानी, चित्तामणि विनायक बच्च और डॉ० सुवचनकर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रिंसीपल थडानी ने लगभग दो हजार पंक्तियों में महाभारत की व्याख्या उसे एक आध्यात्मिक रूपक मानकर की है। महाभारत के प्रत्येक पात्र और प्रत्येक घटना का रूपक मानकर प्रिंसीपल थडानी ने सम्पूर्ण महाभारत के तात्पर्य को जिस सूक्ष्मता के साथ घटित किया है वह अत्यंत चमत्कारपूर्ण है। मूढम जीर विन्तुत हाने के कारण प्रिंसीपल थडानी की व्याख्या अत्यंत जटिल बन गई है। उसका विन्लेपण एक सम्पूर्ण शोध ग्रंथ में ही हो सकता है। प्रस्तुत शोध प्रबंध में प्रसंग प्रिंसीपल थडानी के अभिमत का इंगितमात्र किया गया है। श्री बच्च द्वारा रचित 'महाभारत मीमांसा' में महाभारत के इतिहास विषय आदि अनेक पक्षों का अत्यंत संक्षिप्त और समीचीन विवचन है। श्रीभाग्य से उनका मूल मंगठी ग्रंथ का हिंदी अनुवाद हिंदी के प्रसिद्ध मराठी

सेवक पंडित माधवराव सप्रे की वृषा से उपलब्ध है। श्री बघ ने अनक पश्चिमी विद्वानो क मत का खण्टन करके भारतीय दृष्टिकोण से महाभारत का अध्ययन और विवचन प्रस्तुत किया है।

आलोचना और दृष्टिकोण के विचार स डा० सुकथनकर के महाभारत सम्बन्धी भाषण सबसे अधिन महत्वपूर्ण है। डा० सुकथनकर के भाषणा का सग्रह भीनिंग आव महाभारत के नाम स बम्बई का एशियाटिक सोसायटी की ओर से प्रकाशित हुआ है। चार भाषणा म से पहले म डा० सुकथनकर ने महाभारत के पश्चिमी आलोचकों के मतों का विवरण दते हुय उनका खण्टन किया है तथा महाभारत के सम्बन्ध म भारतीय दृष्टिकोण अपना का अनुरोध किया है। दूसरे भाषण म महाभारत की कथा और उसकी शिक्षा का विवरण है। तीसरे मे महाभारत की नतिक और धार्मिक याख्या है। चौथे भाषण म महाभारत म आध्यात्मिक तात्पय का उद्घाटन है। चार अध्यायो का यह तथु ग्रन्थ महाभारत के प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् डा० सुकथनकर का कीर्तिस्तम्भ है। उन्होने भाण्डारकर शोध संस्थान की ओर से महाभारत क प्रामाणिक संस्करण का सम्पादन किया है। पाठ गावन की दृष्टि से उनका यह सम्पादन जत्यत महत्वपूर्ण है। किंतु महाभारत क तात्पय की व्याख्या की दृष्टि से उनके उक्त भाषण विशेष महत्व क अधिकारी हैं। इन भाषणा के दानो ही पक्ष अद्वितीय हैं। डा० सुकथनकर ही एक एस विद्वान् हैं जा महाभारत क सम्बन्ध म पश्चिमा विद्वाना की स्थापनाजा का प्रयत्न खण्टन करने का साहस कर सक हैं। दूसरा आर महाभारत क तात्पय की जो याख्या उहान की है वह भी महाभारत के विद्यार्थियों के लिए एक प्रवाणस्तम्भ का काम करगी।

डा० सुकथनकर क अभिमत का विशेष महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि महाभारत का जो वर्तमान रूप दो हजार वर्ष से माय है उसम धार्मिक अर्थ की हा प्रधानता है और यह धार्मिक अर्थ महाभारत क अभिन्न और आंतरिक अर्थ बन गय है। इनका प्रक्षिप्त मानकर इनकी उपेक्षा करना अनुचित है। पश्चिमी विद्वाना न एक विपरान दृष्टिकोण ग्रहण करके महाभारत और भारतीय आम्पा क माय अयाय किया है। डा० सुकथनकर न यह निष्कर्ष किया है कि भारतीय विद्वानों का कर्तव्य है कि वे महाभारत के वर्तमान रूप

को स्वीकार कर स्वतंत्र भारतीय दृष्टिकोण से उसका अध्ययन कर। प्रस्तुत ग्रंथ प्रबंध में 'महाभारत में धर्म का अध्ययन भारतीय दृष्टिकोण से ही किया गया है। इस अध्ययन का आधार मुख्यतः महाभारत का ग्रंथ तथा धर्म की भारतीय आस्था है। मराठी उच्चारण के अनुसार कदाचित् उक्त विद्वान् का नाम 'सुकथनकर' होना चाहिये किन्तु महाभारत के सम्बंध में उनके अभिमतता को सुन्दर कथन' मानकर मैंने उन्हें 'सुकथनकर' कहना ही उचित समझा है। ध्वनि साम्य के कारण उनका यह अभिधान माय्य हो सकता है।

३—अध्ययन के आधार

डा० सुकथनकर के उक्त मत के आधार पर स्वयं महाभारत के ग्रंथ को ही प्रस्तुत अध्ययन का अवलम्ब बनाया गया है। प्रस्तुत प्रबंध के वास्तविक अध्यायों में पिछले पन्द्रह अध्याय महाभारत के धर्म सम्बन्धी श्लोकों के आधार पर ही लिखे गये हैं। आरम्भ के पाँच अध्यायों में भी महाभारत का आधार बहुत है किन्तु आरम्भिक आलोचना आदि के लिए महाभारत के सम्बंध में मिलने वाले विदेशी और भारतीय ग्रंथों का अवलम्ब भी लिया गया है। महाभारत की रचना सामग्री, निधि आदि के सम्बंध में पश्चिमी विद्वानों के मत मकडौनल, क्विंटरनिस्म आदि के प्रसिद्ध इतिहासों तथा डा० सुकथनकर के ग्रंथों के आधार पर दिये गये हैं। पश्चिमी मतों का आलोचना कुछ डा० सुकथनकर के मत के आधार पर और कुछ स्वतंत्र मत के आधार पर की गई है। प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य आधार महाभारत का मूल ग्रंथ ही है। अतः नीलकण्ठी आदि टीकाओं का उपयोग प्रस्तुत अध्ययन में नहीं किया गया है। महाभारत का ग्रंथ अपने आप में ही बहुत विनाल और एक जीवन व्यापी अध्ययन के लिए पर्याप्त है। प्रस्तुत अध्ययन में धर्मशास्त्रों की धारणा के अनुकूल धर्म का मुख्यतः सामाजिक, नैतिक और मानवीय रूप ही प्रस्तुत किया गया है। रिलीजन अथवा अध्यात्म के अर्थ में धर्म से हमारा अधिक प्रयोजन नहीं रहा है। अतः आनन्दतीर्थ महावाचय अप्पय दीक्षित आदि की आध्यात्मिक व्याख्याओं का भी प्रस्तुत अध्ययन में उपयोग नहीं किया गया है। प्रिंसाभल घडानी का आध्यात्मिक रूपक भी प्रस्तुत अध्ययन में उपयोगी

नहीं रहा है। रूपक अथवा वृत्त के रूप में महाभारत की कथा से प्रस्तुत अध्ययन का अधिक सम्बन्ध नहीं है। इसमें विशेष रूप में कथा के प्रसंग में आने वाले धर्म सम्बन्धी तत्वों का ही विवचन किया गया है। श्री चित्तामणि विनायक बघ की 'महाभारत मीमांसा तथा डा० सुकयनकर के ग्रन्थ का जहाँ अध्वनम्बल लिया गया है उनके संकेत पादटिप्पणियों में यथास्थान में दिये गये हैं।

महाभारत की मूल संहिता के कई संस्करण मिलते हैं। उसके उत्तरी और दक्षिणी पाठों में भेद है। महाभारत के ये संस्करण दुर्लभ और महत्त्वपूर्ण हैं। भाण्डारकर शोध संस्थान पूना में महाभारत का एक शोधपूर्ण संस्करण प्रकाशित हुआ है। यह दुर्लभ तो नहीं, किंतु महत्त्व अवश्य है। कुछ वर्ष पूर्व गारखपुर के प्रसिद्ध धार्मिक संस्थान गीताप्रेस ने महाभारत का एक सुन्दर और सुलभ संस्करण प्रकाशित किया है। यह संस्करण उत्तरी और दक्षिणी पाठों का संयोग से निर्मित हुआ है। जहाँ अध्ययन और सन्तुष्टि की दृष्टि से अधिकपूर्ण और उपयोगी है। अल्पमूल्य के कारण यह सुलभ भी है। उत्तर भारत में अब इसका प्रचार भी है। प्रस्तुत शोध प्रबंध के पाठक गीता प्रेम के इस संस्करण से पादटिप्पणियों के सन्तुष्टि की तुलना अधिक सरलता से कर सकेंगे। इसी कारण यह टिप्पणियाँ गीता प्रेम से प्रकाशित महाभारत के अनुसार दी गई हैं। शब्दों की संख्या में बड़ा मतभेद भी हो सकता है। इत्यादि अधिकांश टिप्पणियों में श्लोकों की पंक्तियाँ ही दी गई हैं। प्रस्तुत शोध प्रबंध के परीक्षकों को इस प्रबंध की विचार सामग्री का मूलगत प्रमाण उमा १२ पर पादटिप्पणियों में दिये गये शब्दों में मिल सकता है। यहाँ यह निवेदन करना भी उचित होगा कि महाभारत के विशाल ग्रन्थ का सम्पूर्ण सामग्री का उपयोग इस अध्ययन में नहीं हो सकता है। प्रबंध का सामग्री के अंतर्गत यह सम्भव भी नहीं था। अतः सम्पूर्ण महाभारत में विभिन्न रूपों में धर्म-सम्बन्धी मुख्य-मुख्य कथनों को ही इसमें दिया जा सकता है। ये कथन बर्णाथम धर्म का व्यवस्था के अनुसार धर्म के मुख्य तत्वों का संक्षिप्त वर्णन है, यथा इनका महत्त्व है। महाभारत के धर्म सम्बन्धी विचारों के प्रसंग में आवश्यकता के अनुसार अन्य धर्मशास्त्रों के मत भी यथा स्थान दिये गये हैं।

४— धर्म का स्वरूप—

प्रस्तुत शाध प्रवचन म नित्त धारणा क अनुसार महाभारत म धम का विवेचन किया गया है उसका स्पष्टीकरण भी आवश्यक है । धमशास्त्रा और महाभारत मे जिम अय म धम को ग्रहण किया गया है वह धम सामाज्य मानवीय और नैतिक धम ह । यह धम अँगरजी रिलीजन का पर्याय नही है । रिलीजन एक ओर अनौकिक और दूसरी ओर सीमित हाना है । ईश्वर पगम्बर आदि से रिलीजन का सम्बन्ध उम अनौकिक बना दना है । ईश्वर के विगेप रूप, विगप पगम्बर विगप विधि जादि स बँधकर यह रिलीजन एक सीमित सम्प्रदाय बन जाता है । पत्रिम क ईश्वरवादी सम्प्रदाय इमा प्रकार अग्नी आम्थाआ म सीमित हुए हैं । उनम भी मानवीय धम तत्व का सम्पुट है किन्तु वह उनकी विगप रूडियो में बँध गया है । छन वल स विग्व म इन धमों का प्रचार किया गया है किन्तु इन धमों की धारणायें मानवना की स्वतन्त्र विभूति नही बन सक्ता ।

ईश्वर-सम्बन्धी आस्था क रूप म धार्मिक सम्प्रदाय भारतवर्ष म भी पाय जात हैं, यद्यपि ये पत्रिमी सम्प्रदायो की भाँति मकुचित अशहिष्णु और प्रचारवादी नही है । इमक विपरीत ये उदार और सहिष्णु हैं । किन्तु प्रस्तुत अध्ययन मे धम का अभिप्राय इन सम्प्रदायो से नही है । धम शास्त्रों और महाभारत में धम को मुख्य रूप से मानवीय, सामाजिक और नैतिक माना गया है । महाभारत के अनुसार मनुष्य स श्रेष्ठतर कोर्द नही है । (न हि मानुषान् श्रेष्ठतर हि किञ्चित्) । मनु ने भी अपने धम शास्त्र म कहा है कि मनुष्य अत्यन्त मानवीय है उसका अवमान कभी नही करना चाहिए (पुरष नावमयत्) । इन प्रकार धम शास्त्र और महाभारत का धम सम्बन्धी दृष्टिकान अत्यन्त मानवीय है । धम का इसी परिभाषा का यहाँ अपनाया गया है और इसी के अनुसार महाभारत के धम सम्बन्धी तत्वा का विवचन किया गया है । इस धारणा क अनुसार धम मनुष्य का श्रेष्ठ उदार और मानवीय कृत म बन जाना है । यह कृत्य मानवीय सम्प्रदाय और परिस्थितिया क विविध रूपा म चरिताय होता है । धमशास्त्र की परम्परा में इन परिस्थितिया का वर्णों और आश्रमा का नाम दिया है तथा इहा क अनुसार धार्मिक

कृतव्या का विधान किया गया है। यह धर्म ईश्वर के प्रति मनुष्य की आस्था नहीं बरन् मनुष्य के प्रति मनुष्य का उदार और मानवीय कर्तव्य है। यह सावभौम और सब माय मानव धर्म है जिसमें किसी रूढ़ि, विधि आदि का बंधन नहीं है। अहिंसा, सत्य समता, न्याय आदि के मानवीय गुण इस धर्म के उपलक्षण हैं। चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों के विविध कर्तव्यों में यह धर्म चरिताय होता है। धर्म की यह सामाजिक और मानवीय धारणा महाभारत में भी प्राप्त है। प्रस्तुत शोध प्रबंध में इसी धारणा के अनुसार महाभारत के धर्म सम्बन्धी तत्वों का विवरण और विवेचन किया गया है।

५—मौलिकता का संकेत—

विश्व विद्यालय के नियमों के अनुसार शोध प्रबंध में विषय सामग्री व्याख्या सिद्धांत आदि की दृष्टि से मौलिकता की जांच की जाती है। सिद्धांतों की मौलिकता तो बहुत दुर्लभ है किंतु विषय, सामग्री और व्याख्या का नवीनता आवश्यक है। विषय की नवीनता ही उसकी मौलिकता बन जाती है। जिस विषय पर कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं हुआ है उसे नवीन कहा जा सकता है। महाभारत और धर्म दोनों ही अत्यंत प्राचीन विषय हैं फिर भी आश्चर्य की बात है कि महाभारत में धर्म के विषय पर कोई महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ है। महाभारत को मुख्यतः धार्मिक ग्रन्थ ही माना जाता है। उसके वर्तमान रूप में धार्मिक अथवा कथा भाग की तुलना में कई गुना अधिक है। फिर भी महाभारत में धर्म का व्यवस्थित अध्ययन अब तक उपलब्ध नहीं रहा। इस दृष्टि से प्रस्तुत शोध प्रबंध का विषय नवीन है और नवीनता की दृष्टि से वह मौलिकता का अधिकारी है।

महाभारत की कुछ धार्मिक उत्तिया प्रसिद्ध हैं। किंतु महाभारत की धर्म सम्बन्धी प्रचुर सामग्री के विविध विन्यासों का सम्भवतः प्रथम प्रयास प्रस्तुत शोध प्रबंध में किया गया है। महाभारत की धर्म-सम्बन्धी सामग्री के संकलन और विन्यास की दृष्टि से भी प्रस्तुत प्रयास कुछ मौलिकता का अधिकारी है।

धर्म का जिस धारणा को इस शोध प्रबंध में प्रस्तुत किया गया है

वह धर्म शास्त्रा से सम्मत है और महाभारत में भी मान्य है। इस दृष्टि से यह धर्म सम्बन्धी धारणा मौलिक नहीं कही जा सकती। ऐसी मौलिक धारणा के लिए यहाँ अवकाश भी नहीं है। क्रि. पु. जंगरेजी के रिलीजन की साम्प्रदायिक सकीलता की तुलना में धर्म सम्बन्धी उक्त धारणा को अधिक विगदना और प्रखरता के साथ इस शोध प्रबंध में प्रस्तुत किया गया है। यही इसका मौलिकता का मकसद है। धर्म की इस धारणा की मानवीयता, उदारता, मानवभौमता आदि की गम्भीर और विस्तृत ध्यास्या करने की चेष्टा इस प्रबंध में की गई है। इसी व्याख्या के प्रसंग में एकद्वरवाद के आग्रह आरोपण प्रचार, धर्म परिवर्तन आदि के सम्बन्ध में कुछ नवीन विचार प्रस्तुत किये गये हैं, जो सिद्धान्तों की दृष्टि से भी कुछ मौलिकता के अधिकारी हो सकते हैं। धर्म के स्वरूप और सिद्धान्तों का यह विवेचन प्रबंध के चौथे और पाँचवें अध्याय में किया गया है जो किसी सीमा तक मौलिक कहा जा सकता है। प्रबंध के शेष भाग में महाभारत के धर्म सम्बन्धी तत्त्वों का विवेचन उन मौलिक स्थापनाओं के अनुसार किया गया है जो उक्त दा अध्यायों में निधारित की गई हैं। आरम्भिक अध्यायों में पश्चिमी विद्वानों के महाभारत संबंधी अभिमतों के खण्डन के लिए भी कुछ मौलिक तक प्रस्तुत किये गये हैं।

६—अध्यायों का विषय संकेत—

प्रस्तुत शोध प्रबंध में बीस अध्याय हैं, इनमें आरम्भ के छह अध्यायों में महाभारत और महाभारत में धर्म के स्वरूप एवं स्थान के सम्बन्ध में सामान्य विवेचन किया गया है। जगले बारह अध्यायों में वरुण आश्रम व्यवस्था के अनुसार धर्म का निरूपण है। अंत में एक अध्याय में दिये धर्म का विवरण और एक अध्याय में उपसंहार है।

पहले अध्याय में महाभारत की महिमा का वर्णन किया गया है। महाभारत में धर्म का अध्ययन करने से पहले उसकी महिमा का परिचय देना अत्यंत समीचीन है। महाभारत संसार का सबसे बड़ा काव्य है। अग्नी महिमा के कारण महाभारत पंचम वेद कहलाता है और भारतीय जनता में हजारों वर्षों से मान्य रहा है। प्राचीन काल में भी मंदिरों में इसकी कथा होती थी इसके प्रमाण मिलते हैं। वह वेद के समान ही एक पवित्र धर्म-ग्रन्थ

माना जाता है। स्वयं महाभारत म भी अनेक प्रकार म महाभारत का महिमा का वर्णन किया गया है। परम्परा और महाभारत दोनों म प्रमाण म आधार पर महाभारत की महिमा का प्रतिपादन दृग अध्याय म किया गया है। महाभारत के गायत्र सौति म शक्य म महाभारत तीनों भाग म महान् गान म रूप म प्रतिष्ठित है। यह गूय म समान अज्ञान म अधकार का दूर करन वाला है। महाभारत सम्पूर्ण धुनिया का समूह है। एक स्थान पर उम मगुण शास्त्रो और चारो वेदो म भी अधिक बताया गया है। उमम धर्म, अय और मोक्ष का परिपूरण वर्णन है। प्राचीन कथा म रूप म उत्तम एतिहासिक महत्त्व है। महाभारत साहित्य म अनेक प्रायः का उपजीव्य बना है तथा उमका काव्य सुन्दर है। धर्म और सस्त्रुति का तो यह विषयवाप ही है।

दूसरे अध्याय म महाभारत की आधुनिक आलोचना का परिचय किया गया है। प्रस्तुत गोप्य प्रबन्ध म महाभारत म धर्म सम्बन्धी तत्त्वा का विवेचन मुख्यतः मूल महाभारत म ही आधार पर किया गया है। किन्तु आधुनिक अध्ययन म एतिहासिक आलोचना का परिचय देना भी अपेक्षित है। इसी दृष्टिकोण से धर्म के विविध पक्षा म विवेचन के पूव इस एक अध्याय म महाभारत की आधुनिक आलोचना का परिचय दिया गया है। यह परिचय वित्तरन्तिस आदि के सस्त्रुत साहित्य म इतिहासो तथा डा० सुक्थनकर के प्रथम भाषण के आधार पर दिया गया है। महाभारत की एतिहासिक राज का आरम्भ पश्चिमी विद्वानो ने किया। इन विद्वानो म वीप लासन मोरनसन, होप्किंस ओल्डनवग, होल्त्समान वित्तरन्तिस आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। महाभारत म भारतीय आलोचका म प्रिन्सीपल घडानी, पंडित चित्तमणि विनायक वर्य डा० सुक्थनकर आदि के नाम स्मरणीय हैं। पश्चिमी विद्वानो के महाभारत सम्बन्धी मतो क साथ साथ उक्त भारतीय विद्वानो का परिचय भी इस अध्याय में दिया गया है। महाभारत की इस आधुनिक आलोचना का सम्बन्ध मुख्यतः उसकी रचना काल उसके लेखको, उसके सस्करणो आदि से है।

तीसर अध्याय में महाभारत म धर्म के स्थान और महत्त्व का विस्तृत विवेचन किया गया है। महाभारत के वर्तमान रूप म धर्म सम्बन्धी तत्त्व कथा भाग से कई गुना अधिक है। विषय तत्व की दृष्टि से भी यह धार्मिक

पक्ष बहुत महत्वपूर्ण है। इसमें धर्म के विविध रूपा तथा इसके अतिरिक्त अर्थ और काम का भी उपदेश किया गया है। वरुण, आश्रम आदि के विभाजन के अनुसार धर्म का यह निवचन महाभारत का मुख्य विषय है। महाभारत में धर्म तत्त्व की विपुलता और धर्म का महत्व ही प्रस्तुत शोध प्रबंध के विषय और विवेचन को सायक बनाता है। महाभारत में धर्म के स्थान के विवेचन के प्रसंग में परम्परा का प्रमाण दिया गया है तथा इसके साथ साथ इस प्रसंग में महाभारत का अतिसाध्य भी दिया गया है। स्वयं महाभारत में अनेक स्थानों पर महाभारत को एक महान् धर्मशास्त्र कहा गया है और धर्म को उसका मुख्य विषय बताया गया है। डा० मुक्यनकर भी महाभारत में धर्म का महत्वपूर्ण स्थान मानते हैं तथा धार्मिक तत्वों को महाभारत का अभिन्न अंग मानते हैं। उनका मत एक प्रकारण में दिया गया है। अतः में दो प्रकारणों में धर्म के साथ अर्थ और मोक्ष के सम्बन्ध का विवेचन महाभारत के अनुसार किया गया है।

चौथे अध्याय में धर्म के विविध रूपों का विवरण और विवेचन किया गया है। मस्वृता भाषा का धर्म शब्द अर्थ में बहुत व्यापक है। धर्म का मूल अर्थ धारण करने वाला है। महाभारत में भी धर्म को प्रजापति का धारण करने वाला बताया गया है। यह धर्म का सामान्य लक्षण है। किन्तु इसके अनेक रूप हैं। इनमें प्राकृतिक और मानवीय धर्मों का भेद विशेष रूप से विचारणीय है। प्राकृतिक धर्म प्राकृतिक तत्वों के अनिर्वाय लक्षण है। मानवीय धर्म स्वतंत्र सत्त्व पर निर्भर होता है। स्वतंत्रता मानवीय धर्म का मुख्य तत्व है। यही धर्म और सम्प्रदाय को भिन्न बना लेता है। पगम्बरों द्वारा प्रचलित धर्म प्रचार आरोपण आदि के द्वारा स्वतंत्रता का खण्डन करने हैं, अतः उनकी सम्प्रदाय कहना अधिक उचित है। धर्मशास्त्रों और महाभारत का धर्म मुख्यतः स्वतंत्र, उदार मानवीय और नैतिक गुणों का स्रोत है। उसका ईश्वर पगम्बर आदि में कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है।

पाँचवें अध्याय में महाभारत के मिलन वाले धर्म के स्वरूप का विवरण किया गया है। धर्मशास्त्रों और महाभारत का 'धर्म' मानवीय नीति तथा

इस अध्याय में महाभारत में धर्म का नाम के तत्वों का वर्णन किया गया है। जिस मातृवीय धर्म का विस्तार धर्मशास्त्रों और महाभारत में किया गया है वह मातृवीय जीवन का ही समान विचार है। यह धर्म का अर्थ गत मनुष्य का जीवन उत्थार और मातृवीय गुण सम्मिलित है। महाभारत में धर्म के अनेक गुणों का वर्णन किया गया है। इन्हीं गुणों को धर्म के तत्वों की संज्ञा दी गई है। प्रस्तुत अध्याय में धर्म का नाम ग इन्हीं गुणों का विवरण किया गया है। धर्म के ये तत्व धर्म का उग सामान्य और मातृवीय स्वरूप को साकार बनाते हैं, जिसका विवरण विद्वत् अध्याय में किया गया है। धर्म का ये तत्व धर्म का इग सामान्य और मातृवीय स्वरूप को साकार बनाते हैं जिसका विवरण विद्वत् अध्याय में किया गया है। धर्म का ये तत्व धर्म का इग सामान्य और मातृवीय स्वरूप को मानवीय शील और व्यवहार में परिणत करते हैं। धर्म के इन तत्वों में अहिंसा, दम, क्षमा, तप, आदि अधिक महत्वपूर्ण हैं।

सातवें अध्याय में महाभारत का अनुसार वर्ण धर्म का सामान्य विवेचन किया गया है। अगले अध्यायों में चारों वर्णों का धर्म का पृथक् पृथक् विस्तृत विवरण किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में वर्ण विभाजन के सामान्य सिद्धांत तथा महत्त्व का विवेचन है। वर्ण व्यवस्था भारतीय समाज की एक अनुपम विशेषता है। इस रूप में समाज का विभाजन अथ विसी दश में नहीं

मिलता । वण व्यवस्था का मूल सिद्धान्त समाज में कम का विभाजन है । विद्या, रक्षा, व्यवसाय और सेवा के चार मुख्य कर्मों के आधार पर चार वण बने हैं । ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में वण विभाजन का संकेत मिलता है । एक ही पुरुष के अंगों की भाँति चारों वण समाज के विराट पुरुष के अंग हैं । अंगों की भाँति वे समान रूप से महत्वपूर्ण हैं, यद्यपि उनके धर्म भिन्न भिन्न हैं । महाभारत में कहा गया है कि पहले सभी ब्राह्मण थे । बाद में कम भेद से अब वण बन गये । ब्राह्मणों की श्रेष्ठता का कारण भारतीय समाज में विद्या और तप का मान है ।

आठवें अध्याय में महाभारत के अनुसार ब्राह्मण धर्म का विस्तृत विवेचन किया गया है । पुरुष सूक्त के अनुसार ब्राह्मण समाज पुरुष के मुख हैं । वे मुख के समान ही प्रमुख हैं । किन्तु ब्राह्मणों की यह प्रमुखता किसी पक्षपात के कारण नहीं थी । ब्राह्मणों ने अपने पास कोई शक्ति नहीं रखी थी जिसके द्वारा वे समाज पर शासन करते । उनका प्रभाव विद्या, तप त्याग साधना आदि के कारण था । उनकी श्रेष्ठता और उनके सम्मान का कारण भी विद्या, तप आदि का भारतीय समाज में मान था । अधिकारा तथा सुविधाओं की अपेक्षा धर्म शास्त्रों में ब्राह्मणों के कर्तव्य का विधान अधिक है । ये कर्तव्य त्यागमय अधिक हैं और लाभप्रद कम हैं । धर्मशास्त्रों के इसी दृष्टिकोण से धर्म और सभ्यता की रक्षा हुई है । ब्राह्मणों के जो छ कर्तव्य मनु स्मृति में बताये गये हैं वे ही छ कर्तव्य महाभारत में भी बताये गये हैं । अध्यापन और अध्ययन लेकर दान और प्रतिग्रह तक इनका क्रम विचारणीय है ।

नवें अध्याय में महाभारत के अनुसार क्षत्रिय धर्म का विवेचन किया गया है । चार वर्णों में द्विज श्रेष्ठ हैं द्विजों में ब्राह्मणों और क्षत्रियों का श्रेष्ठ माना गया है । भारतीय समाज में विद्या तप आदि का आदर होने के कारण ब्राह्मण समाज के पूज्य बन । रक्षा का महत्व होने के कारण क्षत्रियों को राजपद का मान मिला । पुरुष सूक्त में क्षत्रियों को 'राज्य' कहा गया है । वे विराट पुरुष के बाहु हैं । 'बाहु बल के स्रोत और रक्षा के साधन हैं । रक्षा के बिना समाज में सांस्कृतिक मूल्यों का आधार नहीं रहता । अतः रक्षा का महत्व है । इसी कारण धर्मशास्त्रों में क्षत्रियों को प्रधानता दी गई है । भारतवर्ष

के इतिहास मे क्षत्रिया ने प्रजा तथा दुबलो की रक्षा म बडा पराक्रम दिखाया है । रक्षा के अतिरिक्त यज्ञ, दान, अभ्ययन आदि भी क्षत्रिया के कर्तव्य हैं । रक्षा के कारण युद्ध उनका प्रमुख धर्म है । सत्य आदि गुण भी उनके भूषण हैं ।

दसव अध्याय मे राज धर्म का विवेचन है । राज धर्म का क्षत्रिय धर्म से अन्विक सम्बन्ध है यद्यपि ब्राह्मण आदि भी राजा होने रहे हैं । पुरय सूक्त मे क्षत्रियो के लिए राजय शब्द का प्रयोग किया गया है फिर भी ब्राह्मण आदि भी राजा होते थे । अतः राज धर्म का पृथक् मानना ही उचित है । धर्म शास्त्रो म राज धर्म का विस्तार से विधान किया गया है । महाभारत तो एक प्रकार से राज धर्म का वेद है । उसम राज धर्म का विस्तृत विवरण है । भीष्म ने शरशय्या पर युधिष्ठिर को राध धर्म का विशद उपदेश दिया है । राज धर्म सब धर्मो मे श्रेष्ठ है । राजा के द्वारा अपना धर्म पालन करने पर ही अन्य जन अपना धर्म पालन कर सकते है । राज धर्म सब धर्मो का आश्रय और रक्षक है । प्रजा का रक्षण जीर पालन तथा दण्डनीति राजा के मुख्य धर्म हैं । इसके अतिरिक्त यज्ञ, स्वाध्याय, दान आदि भी राजा के कर्तव्य हैं । सदाचारी कुशल नीतिन और धर्मात्मा राजा की प्रजा सुखी रहती है । अहंकार से रहित निमल बुद्धि उद्यमशीलता ईष्या का त्याग मधुर भाषिता दानशीलता आदि राजा के महत्त्वपूर्ण गुण हैं । राजा चारा वर्णो का रक्षक है । इनकी रक्षा के लिए उसे आर्या नीतिप्रिय और युद्ध कुशल होना चाहिए ।

ग्यारहवें अध्याय म महाभारत के अनुसार वश्य धर्म का वर्णन किया किया गया है । धर्म शास्त्रो की वर्ण व्यवस्था म वश्या को भी द्विजो के अन्तर्गत माना जाता है । ब्राह्मण क्षत्रिय और वश्य ये तीन द्विज हैं । इनके उपनयन आदि सस्कार होते हैं । वश्यो को धर्म शास्त्रो म विष्णु मान तो नहीं लिया गया है फिर भी श्रेष्ठ मानकर ही उनकी गणना द्विजो म की गई है । वश्य का सम्बन्ध मुख्यतः आर्थिक जीवन से है । अय माघना के लिए कुछ उद्योग अपभित हैं, किन्तु दूसरी ओर उसम कुछ प्रलोभन भी होता है । अय माघन के लिए ब्राह्मणा के समान त्याग तथा क्षत्रिया के समान बलिदान का

तो विधान नहीं किया जा सकता, फिर भी वश्य धर्म के विधान में उद्यम को प्रधानता दी गई है। उद्यम और लाभ के विपरीत अनुपात में कृषि, गो रक्षा और वाणिज्य का बर्णो का कर्तव्य बतलाया गया है। यह क्रम उद्योग की महिमा के अनुकूल है। किन्तु अथ शक्ति के प्रताप से कालांतर में यह क्रम विपरीत हो गया और वाणिज्य वश्य का प्रमुख धर्म बन गया। महाभारत में वाणिज्य के अतिरिक्त स्वाध्याय, यज्ञ, सदाचार, दान आदि को वश्य का कर्तव्य बतलाया गया है।

बारहवें अध्याय में महाभारत के अनुसार शूद्र धर्म का विवेचन किया गया है। शूद्रों को धर्म शास्त्र में निम्न स्थान दिया गया है। इस प्रकार उनके साथ निःसंदेह कुछ अन्वय हुआ है। सभी शूद्र अछूत नहीं हैं किन्तु उनमें कुछ अछूत भी हो गये हैं। शूद्रों में अछूतों की स्थिति अत्यधिक शोचनीय और दयनीय है। धर्म शास्त्रों में उच्च वर्णों की सेवा का ही शूद्रों का मुख्य कर्तव्य बतलाया है। शूद्रों के उपनयन आदि संस्कार नहीं होते और उनको वेदाध्ययन का अधिकार नहीं है। शूद्रों के साथ इस अन्वय के कारण वण-व्यवस्था की प्रायः आलोचना की जाती है। भारतीय संस्कृति में स्वच्छता का अत्यधिक महत्त्व सम्भवन शूद्रों के तिरस्कार का एक कारण बना होगा। धर्मशास्त्रों की भाँति महाभारत में भी सेवा को ही शूद्रों का मुख्य धर्म माना गया है। किन्तु दूसरी ओर शूद्रों का पालन करना स्वामी का कर्तव्य है। महाभारत में शूद्रों के लिए किसी सीमा तक यज्ञ, अध्ययन तथा अन्वय धर्म कर्मों का विधान भी किया गया है। महाभारत में शूद्रों को गौरव देने वाले वचन भी मिलते हैं। एक स्थान पर कहा है कि कर्मों की पवित्रता से शूद्र भी ब्राह्मण के समान वन्दनीय बन जाता है। जो शूद्र शुभ कर्म करता है वह द्विजा निया से भी श्रेष्ठ है। शुभ वृत्ति वाला शूद्र ब्राह्मणत्व को प्राप्त करता है।

तरहवें अध्याय में महाभारत के अनुसार आश्रम धर्म का विवेचन किया गया है। अगल अध्यायों में चारों आश्रमों के कर्तव्यों का पृथक्-पृथक् और विस्तार से बखाना किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में आश्रम-व्यवस्था के सामान्य स्वरूप और सिद्धांत तथा महत्त्व का विवेचन है। आश्रम-व्यवस्था जीवन की एक अपूर्व यात्रा है जो सत्संग के किसी दान में भी इस रूप में

नहीं मिलती। यह योजना काल के समय के अनुसार जीवित में परिणाम और गो-दय का संचार करती है। इस ध्येयका म तप त्याग संयम, क्रम, भाग्य चराग्य, मुक्ति आदि का एक सन्तुलित सामग्र्य है जो मनुष्य जीवन का सफल और आनन्दयय बनाता है। जीवन की यह गुण-यात्रा भारतीय कल्पना की एक अद्भुत दा है। यह-यग-व्ययस्या की अग्रा अग्रिम मा भीम है। प्रस्तुत अध्याय में आश्रम-व्ययस्या के सामान्य महार के धारित चारो आश्रमों के धर्मों का सतिष्ठ परिणय भी महाभारत के अनुसार दिया गया है।

चौदहव अध्याय में महाभारत के अनुसार ब्रह्मचर्य धर्म का विवेचन किया गया है। ब्रह्मचर्य-आश्रम पहला ही आश्रम है। यह जीवन का निर्माण काल है। स्वास्थ्य और चरित्र का गठन तथा विद्या का उद्भाजन इसके मुख्य धर्म हैं। इहा पर उत्तरी सफलता और जावन का आनन्द निभर है। ब्रह्मचर्य की सामान्य अवधि पचीस वय तक मानी जाती है। यद्यपि कोई भीष्म, हनुमान आदि के समान आजीवन ब्रह्मचारी भी रह सकना है। ब्रह्मचर्य का वास्तविक अय आत्म-साधना है किन्तु इसमें इन्द्रिय सयम की अधिक अपेक्षा होने के कारण ब्रह्मचर्य का सीमित अय इन्द्रिय सयम ही हो गया है। प्रस्तुत अध्याय में महाभारत के अनुसार ब्रह्मचारी के लक्षण और वतव्यो का विवरण किया गया है। जटा, मेखला, दण्ड आदि प्राचीन काल में विद्याधिया के चिह्न थे। किन्तु यह उनका बाह्य रूप था। जीवन की सरलता और सात्विकता इसके मुख्य लक्ष्य थे जो सावभीम मत्य हैं। इन्द्रिय सयम से स्वास्थ्य और चरित्र सुदृढ़ होता है। अध्ययन और साधना का भी यही समय है। गुरु सेवा इन दोनों में उपकारक है।

पंद्रहवें अध्याय में महाभारत के अनुसार गृहस्थ धर्म का विवेचन किया गया है। गृहस्थ आश्रम चारो आश्रमों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वह भिक्षादान आदि के द्वारा अन्य तीनों आश्रमों का पोषण करता है। इसीलिए मनु ने उसे ज्येष्ठ आश्रम कहा है। ब्रह्मचर्य की साधना के बाद गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करके मनुष्य अपने व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन को सफल बनाता है। 'ब्रह्मचर्य त्याग और तप का जीवन है। गृहस्थाश्रम

न जीवन के उपभोग के लिए भी अवकाश मिलता है, किंतु धर्म और आचार की मर्यादा इस उपभोग को सीमित करके कल्याणकारी बनाती है। इस प्रकार गृहस्थाश्रम भोग और त्याग का समन्वय है। धर्म शास्त्रा और महाभारत में गृहस्थ के कर्तव्य और धर्म का ही अधिक बखाना किया गया है। आतिथ्य गृहस्थ का सबसे बड़ा धर्म है। इसके अतिरिक्त पंचमहायन आदि गृहस्थ के अर्थ कर्तव्य हैं। यज्ञ, अर्घ्ययन, दान दया आदि को गृहस्था के लिए महत्वपूर्ण बताया गया है। पुत्र की उत्पत्ति और परिवार का पालन तथा अर्थ सामाजिक बन्धुओं के द्वारा गृहस्थ का जीवनपूर्ण होता है तथा वह वानप्रस्थ और सन्यास के योग्य बनता है।

सोलहवें अध्याय में महाभारत के अनुसार स्त्री धर्म का विवेचन किया गया है। गृहस्थाश्रम में स्त्री का महत्वपूर्ण स्थान है। स्त्री के सहयोग से ही गृहस्थाश्रम के धर्म पूरे होत हैं। भारतीय संस्कृति और परम्परा में माता, पत्नी, पुत्री आदि के रूप में स्त्री को पर्याप्त आदर मिला है। महाभारत में कथानक की दृष्टि से भी स्त्री का महत्वपूर्ण स्थान है। शांतिपथ में भार्या को अनुपम बंधु बताया गया है। महाभारत में स्त्री की महिमा और स्त्री के धर्म का बखाना विस्तार के साथ किया गया है। पातिव्रत और पति सेवा स्त्री का सबसे बड़ा धर्म है। परिवार का पालन और अतिथिया का सत्कार उसके मुख्य कर्तव्य हैं। पुरुषों का भी इस सम्बन्ध में बहुत दायित्व है। महाभारत और धर्म शास्त्रा में पुरुष को भी एकपत्नीव्रत रहने का आदेश किया गया है। धर्म शास्त्रा ने स्त्री को स्वतन्त्रता के योग्य नहीं माना है। मनु के प्रतिष्ठ वाक्य के समान वचन महाभारत में विराट पर्व में मिलता है। धर्म शास्त्रों के इस दृष्टिकोण का कारण स्त्री की रक्षणीयता है। धर्मशास्त्रा का उद्देश्य स्त्री को स्वतन्त्रता से वंचित करना नहीं बल्कि उसके शील और समाज की मर्यादा की रक्षा करना है।

सत्रहवें अध्याय में महाभारत के अनुसार वानप्रस्थ धर्म का विवेचन किया गया है। वानप्रस्थ का अर्थ वन को प्रस्थान करना है। भारतीय धर्म शास्त्र गृहस्थ जीवन के प्रपञ्चों में ही सम्पूर्ण जीवन को बिताना उचित नहीं समझता। वानप्रस्थ में मनुष्य घर को छोड़कर वन में सरल और सात्विक

जीवन यतीत करता है। वह सामाजिक जीवन से वृत्तकृत्य होकर नेप धार्मिक और सांस्कृतिक कृत्यों को पूरा करता है। उत्तरोत्तर विकासशील जीवन की यह भारतीय योजना अनुपम है। स्त्रियाँ के लिए वानप्रस्थ का विवल्प है, वे चाहें तो घर में पुत्रों के साथ भी रह सकती हैं। वानप्रस्थी का जीवन त्याग समय और ब्रह्मचर्य का जीवन होता है। गृहस्थों के पाँच यज्ञ वानप्रस्थी के लिए भी बताये हैं। वानप्रस्थ भिक्षा के द्वारा निर्वाह करता है। भिक्षा के सम्बन्ध में भी कुछ नियम हैं। वय अन्न, वदमूल फल यदि उपलब्ध न हों पर ही उन्हें सायकाल में भिक्षा करनी चाहिए। उन्हें भी भोजन का सग्रह नहीं करना चाहिए। तप त्याग साधना, अध्ययन अध्यापन आदि उनके मुख्य कृत्य हैं। अहिंसा दया, शम, मोन आदि उनके गुण हैं।

अठारहवें अध्याय में महाभारत के अनुसार सत्यास धर्म का विवेचन किया गया है। सत्यास जीवन का अंतिम आश्रम है। उसमें आश्रम व्यवस्था पूरा होती है। वानप्रस्थ आश्रम में वन में निवास करके तथा जीवन की दोष साधना पूरा करके मनुष्य को सत्यास ग्रहण करना चाहिए। सत्यास वृत्तकृत्यता की अवस्था है। सत्यासी का जीवन पूणत मुक्त और स्वच्छन्द हाता है। वह वानप्रस्थ की भाँति एक स्थान पर नहीं रहता वरन् सतार में स्वच्छन्द विचरण करता है इसीलिए सत्यासी कोप रिवाजक कहते हैं। वह भिमा क द्वारा अपना निर्वाह करता है। उसके कोई कृत्य दोष नहीं रहत है। सत्यास में वानप्रस्थ के समान स्त्री साथ नहीं रह सकती। जटा कमण्डल, दण्ड आदि सत्यासी के वाह्य लक्षण हैं, किन्तु इनका अधिक महत्त्व नहीं है। एकांत आराम-साधना ही सत्यासी का एकमात्र कृत्य है। त्याग, सतोष, दम आदि सत्यासी के धर्म हैं। ये उनका मुक्ति के माध्यम हैं। वस्तुतः सहन आत्मनिष्ठता सत्यास की पूणता है। पूणता बटिन होने के कारण सत्यासिया के लिए भी नियम बताये हैं तथा उनका भा भद्र किया गया है।

उन्नीसवें अध्याय में महाभारत के अनुसार दिव्य धर्म का विवेचन किया गया है। दिव्य अर्थात् अध्याय में महाभारत के अनुसार धर्म के सामाजिक और मानव रूप का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है। किन्तु महाभारत में धर्म के दिव्य अथवा ईश्वररूप का महत्त्व भी बहुत है।

सामाजिक और मानवीय धर्म से भेद करने के लिए हमने धर्म व उस रूप को दिया कहा है, जिसका सम्बन्ध ईश्वर से होता है, धर्म शास्त्रों और महाभारत में सामाजिक और मानवीय धर्मों का ही विवरण अधिक है। धर्म शास्त्रों में ईश्वर की चर्चा भी कम है, किन्तु महाभारत में श्रीकृष्ण को ईश्वर के रूप में ही माना गया है। ईश्वर के अवतारों और देवताओं की चर्चा महाभारत में मिलती है। देवताओं से सम्बन्ध रखने वाला तीर्थ, व्रत आदि का वर्णन भी महाभारत में मिलता है। यही धर्म का दिव्य रूप है, जिसका विवेचन इस अंतिम अध्याय में किया गया है। धर्म का यह दिया रूप सामाजिक और मानवीय धर्म को एक अलौकिक आधार प्रदान करता है। सिद्धांत की दृष्टि से यह दिया धर्म भी सामाजिक और मानवीय धर्म की उदार भावना से युक्त है।

बीमबें अध्याय में प्रस्तुत अध्ययन और विवेचन का उपसंहार किया गया है। विद्यार्थी उन्नीस अध्यायों में जिन तथ्यों, विषयों और सिद्धांतों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया गया है, उनके मुख्य निष्कर्षों का सिंहावलोकन इस उपसंहार में निम्नलिखित प्रकरणां व अंतर्गत किया गया है—

- १—अध्ययन व निष्कर्ष।
- २—महाभारत एक अनुपम ग्रंथ है।
- ३—महाभारत की ऐतिहासिक आलोचना निष्प्रयोजन है।
- ४—महाभारत का वर्तमान रूप ही माया है।
- ५—धर्म ही महाभारत का मर्म है।
- ६—धर्म का मर्म मानवीयता है।
- ७—मानवीयता के मुख्य तत्त्व समानता और स्वतंत्रता है।
- ८—धर्म का आधार आध्यात्मिक है।
- ९—धर्म और रिलाजन में अन्तर है।
- १०—धर्म और सम्प्रदाय में विरोध आवश्यक नहीं है।
- ११—धर्मशास्त्रों और महाभारत का धर्म मुख्यतः मानवीय और सामाजिक है।

- १२—महाभारत के अनुसार अविरोध इस धर्म की बसींगी है ।
- १३—धर्म की आध्यात्मिकता और मानवीयता उत्तर मन्त्रि गुणा में व्यक्त होती है ।
- १४—वर्ण और आश्रम धर्म के विधान के भारतीय अवलम्ब हैं ।
- १५—वर्णों की व्यवस्था में कुछ सामाजिक विषमता अवश्य उत्पन्न हुई, किन्तु उसका मूल उद्देश्य विषमता नहीं बरन् समाज का सामंजस्य तथा कर्तव्य विभाजन है ।
- १६—द्विजों की श्रेष्ठता और शूद्रों की हीनता सामाजिक परिस्थिति के परिणाम हैं ।
- १७—ब्राह्मणों की श्रेष्ठता का कारण प्राचीन समाज में विद्या, यज्ञ आदि के महत्त्व तथा तप, त्याग, पवित्रता सरलता आदि का आदर था ।
- १८—क्षत्रियों की श्रेष्ठता का कारण रक्षा का महत्त्व ।
- १९—प्रजापालन और प्रजा की रक्षा राजा के मुख्य धर्म हैं ।
- २०—वश्यों के आर्थिक व्यवसाय में भी दान आदि के द्वारा श्रेय का सामंजस्य किया गया है ।
- २१—शूद्रों के साथ वर्ण व्यवस्था में मिश्रित रूप से अत्याय हुआ है और उसका संशोधन आवश्यक है ।
- २२—आश्रम व्यवस्था जीवन की एक अत्यन्त सुन्दर योजना है ।
- २३—ब्रह्मचर्य सफल और पूरा जीवन की सुदृढ नींव है ।
- २४—गृहस्थाश्रम सब धर्मों का पोषक है तथा जीवन की प्राकृतिक सामाजिक और सांस्कृतिक सफलता के द्वारा मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है ।
- २५—स्त्री की रक्षा और स्त्री का आदर समाज का गौरव है सेवा और पवित्रत गृहस्थ जीवन को सुखी और गतिपूर्ण बनाते हैं ।
- २६—वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम-व्यवस्था का तथा जीवन को पूरा बनाते हैं ।

२७—मानवीय और सामाजिक धर्म से दिव्य धर्म का आवश्यक विरोध नहीं है ।

२८—देवताओं और ब्रतों की त्रिवर्णीय धर्म के रूप को पूरा बनाती है ।

२९—महाभारत भारतीयों के लिए सदा पठनीय है ।

३०—महाभारत का साहित्यिक स्रोत काव्य के अनेक भगीरथों का आमंत्रण करता है ।

३१—महाभारत हमारी धार्मिक एवं सांस्कृतिक आस्था का सुदृढ़ अवलम्ब बन सकता है ।

८—आभार—

प्रस्तुत शोध प्रबंध की रचना राजस्थान के प्रसिद्ध विद्वान् डा० फतह सिंह के निर्देशन में हुई है । उनकी प्रेरणा और उनके अनुग्रह में ही यह कठिन कार्य पूरा हो सका है । विषय के अध्ययन, सामग्री संकलन आदि के सम्बन्ध में वे अपने अमूल्य परामर्श देते रहे हैं । ग्रन्थ के संपादन में उन्होंने जो कष्ट उठाया है, वह उनकी उदारता का सूचक है । जिन विद्वानों के ग्रन्थों का इस शोध प्रबंध में उपयोग किया गया है उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना भी मेरा धार्मिक कर्तव्य है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध का प्रणयन तथा इसके आधार पर शिक्षा की एक उच्चतर उपाधि की प्राप्ति मेरी चिरकालीन कामना की पूर्ति है । एक मध्यवर्गीय पुराणपथी परिवार में जन्म लेने के कारण मैं शिक्षा के आरम्भिक स्तरों से आगे नहीं बढ़ सकी । फिर भी उच्च शिक्षा की एक निभृत आकांक्षा मेरे मन में पलती रही और मैं विवाह-सूत्र के अवलम्ब से इस आकांक्षा की पूर्ति के सपने संजोती रही । परम्परा के बंधन के कारण मेरे माता पिता मेरी शिक्षा का उपक्रम तो नहीं कर सके, किन्तु मेरी शिक्षा सम्बन्धी आकांक्षाओं के प्रति उनकी सदा सहानुभूति रही । यह उनकी सहानुभूति का ही फल है कि मुझे एक ऐसा दाम्पत्य सम्बन्ध प्राप्त हो सका, जिसमें मुझे गृहस्थ के धर्मों के पुण्य लाभ के साथ साथ शिक्षा की दिशा में भी अवसर होने का अवसर मिला । माता पिता की प्रेरणा और पति के सहयोग में मैं विवाह के बाद गृहस्थ जीवन की कठिनाइयों में भी घर में ही रह कर अपनी उच्च शिक्षा

सम्पन्न कर सकी, यह मरे सौभाग्य का एक उज्ज्वल पक्ष है।' साहित्यकार का गृहस्थ जीवन प्रायः विडम्बना बन जाता है। मरे पति साहित्यकार और दार्शनिक दोनों ही हैं। अतः मेरे लिए इस विडम्बना की आसरा डूनी हो सकती थी। किन्तु मेरे पति इस विडम्बना का विरोधी तथा जीवन के प्रमुख पक्षों के समन्वय के समर्थक हैं। इस नाते वे साहित्यकार और दार्शनिकों में एक अर्थात् मान जा सकते हैं। अपनी साहित्यिक और दार्शनिक साधना में लीन रहते हुए भी, परिवार की ही नहीं बल्कि अन्य अनेक परिचितों की उत्थिति में उनकी गहरी रुचि रही है। सामाजिक उत्थिति एक प्रकार से उनका धर्म बन गई है। चाईस वय के अपाणन काल में उनके दार्श्यों को उनके इस धर्म का प्रसाद मिला है। परिवार का जना को भी इस प्रसाद का अंश मिलना स्वाभाविक था। इसी प्रसाद का पुण्य मैं विवाह के बाद गृहस्थ जीवन की कठिनाइयों में भी घर से रह कर ही अपना उच्च शिक्षा को सम्पन्न कर सकी। अपने इस सौभाग्य से मुझे प्रसन्नता मिली है और इस पर मुझे शक भी है। मरे माय माय बच्चों को भी अपने पिता की उत्थिति धर्म का प्रसाद मिला है। उनकी प्रेरणा से ही वे अपनी आरम्भिक शिक्षा घर में ही पूरी करके तथा आरम्भिक विद्यालय के विविध लाभों से वंचित रह कर भी विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में उत्तम पत्र प्राप्त कर रहे हैं। उनकी विद्या और प्रतिभा पिता की प्रेरणा का ही प्रसाद है।

डा० फतर्ही ह के अनुसार मेरा यह उच्चशिक्षा स्वातन्त्र्य मुखाय ही कही जा सकती है। जीवन के सांजस्य के सम्बन्ध में मरे पति की धारणा में आर्थिक बन्धन का अधिक महत्त्व नहीं है। वृद्धावस्था के व्यावहारिक रूप के आराधक होने के नाते वे अय से लबर आत्मा तक जीवन की सभी भूमिका के समुचित सामंजस्य के पक्षपाती हैं। उनके इसी अनुरोध के कारण मैं अपनी उच्च शिक्षा को अथर्वी बन्धन का साहम न कर सकी। अध्यापिका बनने पर गृहस्थ जीवन का सन्तुलन भंग हो सकता है ऐसी सम्भावना मुझे स्वयं भी सन्तुष्ट करनी पड़ी। व्यायक्त के सत्कारा के प्रभाव में गृहस्थ जीवन का धर्मों में मेरी गहरी श्रद्धा है। अतः अपनी उच्च शिक्षा को स्वतन्त्र मुखाय मानकर भी मैं सन्तुष्ट हूँ। गृहस्थ का धर्म को अग्रगण्य रखकर ही मैं अपनी शिक्षा पूर्ण की है। मैं उच्चशिक्षा की अपनी मौलिक

आशा को पूरा देखकर अर्गन सोभाग्य पर प्रमत्त हू किन्तु जिस ग्राह्य म मेरी गहन श्रद्धा रही है उसके सौदय और सन्तुलन म विश्वोभ की सम्भावना का खतरा मोल लेने का मैं माहस नहीं ले सकती। इसीलिए मैं शिक्षा स नान लाभ करके ही सन्तुष्ट हू तथा अपने पति और अपने बच्चों की विद्या साधना म यथाशक्ति सहयोग देकर प्रसन्न हू। अथ का अधिक लाभ न पाकर भी धर्म के अधिक लाभ का ही मैं अपने जीवन की कृताथता मानती हूँ। अपने पति के व्यावहारिक वदान्त¹ की प्रेरणा से धर्म म अध्यात्म का सम वय भी हम अपने पारिवारिक जीवन म ही प्राप्त हुआ है। नारी के जीवन की इससे अधिक उपलब्धि और क्या हो सकती है।

वार्य के सस्वार अपनी आस्था और पति की प्रेरणा स धर्म म ही मरी अधिक निष्ठा रही है। अत अपनी निष्ठा के अनुकूल विषय को मैं अनुसधान के लिए चुना। इस अनुसधान क प्रसंग म धर्मशास्त्रा और महाभारत क अध्ययन से धर्म के प्रति मेरी निष्ठा और दृढ हुई है। महाभारत क अध्ययन क कारण कोई महाभारत ता घर म नहीं हुआ फिर भी इस काय मे जिन दिनों म अधिक यस्त रही उन दिनों मैं अवश्य ही परिवार की सेवा को उतना समय और ध्यान न दे सकी जितना कि मैं चाहती रही। अल्प वयस्क बालका का उन दिना मरा इतना वात्मल्य नहीं मिल सका, जितना कि अपक्षित था। यह मरा अपराध नहीं था, किन्तु यह मेरी विवशता थी। अनुसधान काय का पूरा करन के बाद मैं इस त्रुटि का सशोधन करने का निरन्तर प्रयत्न करती रही हू। मुझे सन्तोष है कि मैंने पिछले पाँच वर्षों म परिवार की सेवा तथा पति की साहित्य साधना और बालका की शिक्षा म अधिकतम सहयोग देकर जीवन के सामजस्य का वह खाया हुआ मून पुन पा लिया है जो मरे पति की सद्भावितक निष्ठा रहा है और जा अब मरी भी सहज श्रद्धा का आस्पद बन गया है।

भरतपुर

२० जनवरी १९७०

शकुन्तला रानी तिवारी

अध्याय-सूची

अध्याय	विषय	पृष्ठ
१	महाभारत की महिमा	३३
२	—महाभारत की आधुनिक आलोचना	५८
३	—महाभारत में धर्म	८६
४	—धर्म के रूप	११३
५	—महाभारत में धर्म का स्वरूप	१३३
६	—महाभारत में धर्म के तत्त्व	१६३
७	—महाभारत में वणु धर्म	२०१
८	—महाभारत में ब्राह्मण धर्म	२२८
९	—महाभारत में क्षत्रिय धर्म	२५१
१०	—महाभारत में राज धर्म	२७१
११	—महाभारत में वदय धर्म	३०३
१२	—महाभारत में शूद्र धर्म	३१५
१३	—महाभारत में आश्रम धर्म	३२६
१४	—महाभारत में ब्रह्मचर्य धर्म	३४७
१५	—महाभारत में गृहस्थ धर्म	३७०
१६	—महाभारत में स्त्री धर्म	३८२
१७	—महाभारत में वानप्रस्थ धर्म	४०७
१८	—महाभारत में स-यास धर्म	४२१
१९	—महाभारत में दिव्य धर्म	४४१
२०	—उपसंहार अध्यायन के निष्कर्ष	४७४
२१	—परिनिष्ठ—क	५०१
२२	—परिनिष्ठ—ख	५०२

विषय-सूची

प्रस्तावना

प्रकरण	पृष्ठ
१—विषय निर्देश	१
२—महाभारत सम्बन्धी गीत का इतिहास	२
३—अध्ययन के आधार	५
४—धर्म का स्वरूप	७
५—मौलिकता का संकट	८
६—अध्यायो का विषय संकेत	१०
७—आभार	२१

अध्याय— १

महाभारत की महिमा

१—संसार का सबसे बड़ा काव्य भारतीय जनता का वेद	३३
२— महाभारत की श्रेष्ठता और उसका माहात्म्य	३८
६—महाभारत का ऐतिहासिक महत्त्व	४४
४—महाभारत का साहित्यिक महत्त्व	४८
५—महाभारत का धार्मिक महत्त्व	५२
६—महाभारत का सांस्कृतिक महत्त्व	५६

अध्याय— २

महाभारत को आधुनिक आलोचना

१—आधुनिक आलोचना का दृष्टिकोण	५८
------------------------------	----

प्रकरण	पृ०
२—पश्चिमी जालाचक्र के मत	६५
३—महाभारत की रचना	७१
४—महाभारत का बाल	७६
५—महाभारत का सनातन महत्त्व	८०

अध्याय— ३

महाभारत में धर्म

१—महाभारत में धर्म का स्थान	-६
२—महाभारत का अंत साक्ष्य	८०
३—डा० सुबोधनकर का मत	८५
४—महाभारत में धर्म और त्रिवर्ग	९८
५—अध्यात्म और मोक्ष	१०५

अध्याय— ४

धर्म के रूप

१—धर्म शब्द का अर्थ	११३
२—प्राकृतिक धर्म और मानवीय धर्म	११७
३—धर्म और सम्प्रदाय	११९
४—वैदिक धर्म और वैशेषिक धर्म	१२३
५—धर्मशास्त्रों का धर्म	१२५

अध्याय— ५

महाभारत में धर्म का स्वरूप

१—धर्म का स्वरूप	१३
२—धर्म का प्रमाण	१८

विवरण

पृष्ठ

३--धम के लक्षण	१४०
४--धम के अंग	४४८
१--धम और नील	१५३
६--परम धम	१५६
७--सनातन धम	१५८

अध्याय-६

महाभारत मे धम के तत्व

१--धम और धम के तत्व	१६३
२--धम ही मवस बडा धम है	१६८
३--क्षमा की महिमा	१७५
४--सत्य से बटकर तप नही है	१७६
५--तपस्या का फल	१८३
६--सत्वगुण की महिमा	१८८
७--दान का महत्व	१९०
८--गुरुजनो की सेवा तथा पूजा करना धम है	१९७

अध्याय-७

महाभारत मे वर्ण-धर्म

१--वर्णों की व्यवस्था	२०१
२--द्विजा का प्रभुत्व और गूद्रों का हीन स्थान	२०६
३--ब्राह्मणों का प्रभुत्व	२१०
४--शूद्रों का हीन स्थान	२१३
५--विद्या के साधक ब्राह्मण	२१५
६--समाज के रक्षक क्षत्रिय	२१८
७--समाज के पोषक वश्य	२२०
८--समाज के सेवक गूद्र	२२४

अध्याय-८

महाभारत मे ब्राह्मण धर्म

प्रकरण	पृष्ठ
१—ब्राह्मण धर्म	२२८
२—ब्राह्मण आदरणीय एव अवध्य है	२३१
३—वारह व्रत	२३३
४—स्वाध्याय ब्राह्मण का देवत्व है	२३४
५—ब्राह्मण के लक्षण तथा कर्त्तव्य	२३५
६—पण्डित के लक्षण	२३८
७—क्षत्रिय बल स ब्रह्मनेत्र श्रेष्ठ है	२४१
८—यज्ञ कराना ब्राह्मण का धर्म	२४३
९—दान लेना ब्राह्मणधर्म	२४४
१०—सर्वका उद्धारक ब्राह्मण	२४५
११—ब्राह्मण धर्म का सेतु है	२४६
१२—धर्मपालन और सात्त्विक जीवन	२४८
१३—वचन म निर्भविता	२४९

अध्याय-९

महाभारत मे क्षत्रिय-धर्म

१--क्षत्रिय धर्म की श्रेष्ठता	५१
"—क्षत्रिय की परिभाषा	२५३
३—क्षत्रिय धर्म क कर्त्तव्य	२५४
४—अप्य वर्णों की रक्षा तथा सहायता करना क्षत्रिय धर्म है	२५७
५—युद्ध क्षत्रियों का मुख्यधर्म है	२६२
६—मृत्यु म विचरित न होना क्षत्रिय धर्म	२६६
७—यज्ञ करना तथा याचना न करना क्षत्रिय धर्म है	२६८

अध्याय-१०

महाभारत मे राजधर्म

प्रकरण	पृष्ठ
१—राजधर्म की श्रेष्ठता	२७१
२—राजा के कर्तव्य	२७७
३—राजा के आचरण में धर्म की प्रधानता	२७६
४—राजा के गुण	२८६
५—प्रजा-पालन राजा का मुख्य धर्म	२६०
६—चारों वर्णों की रक्षा करना राजा का धर्म है	२६२
७—राजनीति और दण्ड	२६५
८—गुप्तचर	२६८
९—शत्रु और युद्ध	२६६

अध्याय-११

महाभारत मे वैश्य-धर्म

१—वैश्या का स्थान	३०३
२—वैश्य धर्म	३०७
३—वैश्य के कर्तव्य	३०६
४—वैश्य वर्ण का महत्त्व	३१३

अध्याय-१२

महाभारत मे शूद्र-धर्म

१—शूद्रों का स्थान	३१५
२—शूद्र के धर्म	३१८
३—शूद्र के कर्तव्य	३२०

प्रवरण	१७३
४—स्वामी द्वारा शूद्रों का भरण पोषण	३२२
५—राजा की आज्ञा से धामिब वाय शूद्रों का अधिकार	३२४

अध्याय—१३

महाभारत में आश्रम धर्म

१—आश्रम व्यवस्था का महत्त्व	३२६
२—ब्रह्मचर्य-आश्रम का धर्म	३३२
३—गृहस्थ धर्म	३३६
४—वानप्रस्थ धर्म	३४०
५—संन्यास धर्म	३४३

अध्याय—१४

महाभारत में ब्रह्मचर्य-आश्रम-धर्म

१—ब्रह्मचारी की परिभाषा	३४७
२—ब्रह्मचारी के लक्षण	३४८
३—ब्रह्मचर्य के वर्तमान	३५२
४—ब्रह्मचारी के चार चरण	३५८
५—जीवन निर्वाह के छह कर्मों से दूर रहे	३६१
६—ब्रह्मचर्य से ईश्वर प्राप्ति तथा सद्गति	३६२
७—माता पिता और गुरुकी आज्ञापालन धर्म	३६४
८—माता पिता से अधिक पूजनीय गुरु	३६६
९—ब्रह्मचर्य का प्रतान	३६८

अध्याय—१५

महाभारत में गृहस्थ-धर्म

१—गृहस्थाश्रम सब धर्मों का मूल	३७०
२—गृहस्थाश्रम की मन्त्रिणा	३७२

प्रकरण	पृष्ठ
३—गृहस्थ से धर्म प्राप्ति	३७३
४—गृहस्थाश्रम में पुत्रप्राप्ति का महान् पुण्य	३७५
५—अतिथि पूजन गृहस्थ का सर्वोच्च धर्म	३७६
६—गृहस्थ के धर्म	३८०
७—गृहस्थ के वृत्त-य	३८४
८—शुभकर्मों से गृहस्थ का सद्गति मिलती है	३८७

अध्याय-१६

महाभारत में स्त्री-धर्म

१—स्त्री का महत्त्व	३८२
२—पातिव्रतधर्म	३८६
३—पुरुषों का दायित्व	४०५

अध्याय-१७

महाभारत में वानप्रस्थ-धर्म

१—वानप्रस्थ का समय	४०७
२—वानप्रस्थी के धर्म	४१०
३—वानप्रस्थ के कर्त्तव्य	४१२
४—वानप्रस्थ की चार वृत्तियाँ	४१६
५—वानप्रस्थ से स्वर्ग प्राप्ति	४१७

अध्याय-१८

महाभारत में सन्यास-धर्म

१—सन्यास का समय	४२१
२—सन्यासी के लक्षण	४२२
३—सन्यासी के नियम	४३०

धर्म आदि के रूप में धर्म की विधा भी महाभारत में विशाल रूप में मिली है। अतः गौरवमय इतिहास ही के साथ-साथ महाभारत एक महत्त्वपूर्ण धर्मग्रन्थ भी बन गया है। इसमें विनाश आकार में धर्म के सगभग सभी धर्म समाहित हो गए हैं। इतिहास काव्य और धर्मशास्त्र के विविध रूप में उगना महत्त्व और मान तिगुना हो गया है।

महाभारत का सबसे पहला विनाश उगना विनाश आकार है। वर्तमान रूप में महाभारत सगभग एक सात श्लोकों का विनाश रूप है। ईसा की पाँचवीं शताब्दी के दानवत्रय में एक सात श्लोकों का महाभारत का गौरवपूर्ण उल्लस मिलता है।^१ इसमें विनिग हाता है कि सगभग दो हजार वर्ष में एक सात श्लोकों का महाभारत भारतवर्ष में प्रसिद्ध है। मकडोनल का मत है कि इस रूप में महाभारत धीरे-धीरे इतिहास और 'आइम' दाना काव्यों को मिलाकर आकार में उनका आठ गुण के बराबर है और इस प्रकार वह ससार का सबसे बड़ा काव्य है।^२ सगभग के माहिर्य के इतिहास में कोई भी ऐसा काव्य नहीं है जो आकार का विनाशता में इसमें निश्चय भी पहुँच सक। इसमें विनाश आकार का तुलना में लटिन कवि वजिल का एनीड नामक महाकाव्य जो सगभग १०,००० पंक्तियों का है एक छोटी कविता के समान जान पड़ता है।^३ महाभारत का इसी विनाशता के कारण ध्यामत्रा के लिए उसमें लेखन की समस्या उपस्थित हुई थी जिसका उत्तम महाभारत के आरम्भ में ही मिलता है।^४ गणेश जम लेखक के होने हुए भी ध्याम जी ने तीन वर्षों में महाभारत की रचना पूर्ण की थी।^५ विद्वानों इतिहासकार सम्पूर्ण महाभारत को एक लेखक की कृति नहीं मानते।^६ उनका मत है कि जब भारत और महाभारत के तीन संस्करणों में इसका क्रम से विकास हुआ

१—मकडोनल ए हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर पृष्ठ २८६।

२—वही " " पृष्ठ २८४।

३—चनिग आरनोल्ड महाभारत —प्रिक्स-पृष्ठ ८।

४—महाभारत—आदि पत्र-अध्याय १ श्लोक ७०।

५—" " —स्वर्गरोहण पत्र-अध्याय ५ श्लोक ४८

६—वि तरनिरस ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर—भाग १, पृष्ठ ३२६, ४६२

है।* किन्तु ईसा के पाँचमौ वष पूव आश्वलायन गृह्यसूत्र म महाभारत के नाम का उल्लेख मिलता है। स्वय महाभारत के अनुमार आकार की विशालता के कारण इसे महाभारत कहा जाता है।^८ यदि सम्पूर्ण महाभारत एक व्यक्ति की रचना न हो, तो भी इतना विशाल ग्रन्थ भारतीय प्रतिभा का एक अद्भुत चमत्कार है। महाभारत के अतिरिक्त वेद पुराण आदि अनेक विशाल ग्रन्थ भारतीय प्रतिभा से उत्पन्न हुए हैं। महाभारत भारतीय प्रतिभा क नदन वन का कल्पवृक्ष है।

कल्पवृक्ष के समान ही महाभारत मे मनुष्य के सभी वाञ्छित विषय मिलते हैं। पश्चिमी विद्वानो ने महाभारत के विकास के सम्बन्ध म उसके विषय की व्यापकता का निर्देश किया है। मैकडोनल और विन्तरनिस्स का मत है कि भरतवर्गी वीरो की मूलकथा की विस्तृत परिधि म अनेक आख्यान तथा धर्म-कर्म के उपदेश समाहित हो गय हैं।^९ स्वय महाभारत के आदि पव म वेदव्यास ने ब्रह्माजी से महाभारत के विषय क विस्तार का वरण किया है। उनके अनुसार वेद और उपनिषदा का रहस्य, इतिहास पुराणा के वरण, चातुर्वर्ण और आश्रमो क धर्मों का विवरण याय शिक्षा चिकित्सा आदि अनेक विषय का वरण महाभारत म है।^{१०} पश्चिमी विद्वानो के अनुसार ये अनेक विषय अनेक लेखका द्वारा महाभारत म सन्निविष्ट किय गये हैं। उनके अनुसार ब्राह्मण धर्म सम्बन्धी उपदेश और उपाख्यान पुरोहिता और ब्राह्मणो के द्वारा मूल कथा म जोडे गय हैं।^{११} वस्तुतः महाभारत की मूल कथा ही इतनी विगाल है कि उसकी विविध घटनाआ के प्रसंग मे जीवन के अनेक पक्ष अनायाम खुल जाते हैं। इन प्रसंग के बीच म मिलन वाले उपाख्यान विषय क विस्तार को और बढा दत है। इस प्रकार महाभारत भारतीय सभ्कृति का एक विगाल विश्वकोप बन जाता है। महाभारत की

७—विन्तरनिस्स ए हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर—भाग १, पृ० ४६५।

८—महाभारत—आदि पव—अध्याय—१, श्लोक ३००।

९—मैकडोनल ए हिस्ट्री आव सभ्कृत लिटरेचर—पृष्ठ २८५।

विन्तरनिस्स ए हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर—भाग १, पृष्ठ ३२१

१०—महाभारत—आदि पव अध्याय १, श्लो० ६१ से ७० तक।

११—विन्तरनिस्स ए हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर—भाग १ पृष्ठ ३१६।

विशालता के सम्बन्ध म यह प्रमिद्ध है कि जो महाभारत म नहीं है वह अयत्र वही नहा है ।^{१२} स्वय महाभारत म ही उमका व्यापकता का निर्देश किया गया है कि जो यहाँ है वही अयत्र मिलगा जो यहाँ नहा है वह अयत्र वही नहीं मिलगा ।^{१३}

महाभारत के विषयो की यह व्यापकता उसके आकार की विशालता को सार्थक बनाती है । भारतीय जनता के लिए जो भी ज्ञान, शिक्षा आदि अपेक्षित है वह सब महाभारत म मिल जाती है । महाभारत की विशाल कथा की घटनायें और जय उपाख्यान भी अनेक शिक्षाओं के स्रोत हैं । विद्वाना के लिए जो वेद का स्थान है वही साधारण जनो के लिए महाभारत का महत्त्व है ।^{१४} वेद विद्वाना के लिए ज्ञान का भाण्डार है, उसी प्रकार महाभारत साधारण जनता के लिए ज्ञान का भाण्डार है । महाभारत के इस महासागर मे कथा शिक्षा धम आदि की नदियाँ मिल गई हैं । इसी एक प्रथम म साधारण जनो को सब कुछ मिल जाता है इसीलिए महाभारत जनता मे बहुत लोकप्रिय रहा है । वीर काव्य होने के कारण यह जनता को प्रेरणा देता है । अवाचीन युग म जा स्थान आल्ह खण्ड का है वही स्थान प्राचीन परम्परा म महाभारत का है । आल्ह खण्ड एक प्रकार से हिंदी का अवाचीन महाभारत है । महाभारत की घटनाओं की नाटकीयता तथा गम्भीर यथार्थता और संवाद की शली उसे अधिक रुचिकर बना देती है । धम, शिक्षा आदि की दृष्टि से विषयो की उपयोगिता इस रुचि का पापण करता है । इसी लोकप्रियता के कारण प्राचीन काल म ही महाभारत की कथा जन समूहो म गाई जाता रही है ।^{१५} स्वय महाभारत की रचना ही इसी गायन के रूप मे हुई है । गीतक के द्वायशतर्षाय सन म महाभारत के गायन मे इस परम्परा का प्रमाण मिलता है । महाभारत के विषयो की व्यापकता और जनता मे उमके आन्तर एक उपयोग के कारण उस पंचम वेद मानना नितांत उचित है ।^{१६}

१२—यज्ञभारते तद्गभारते ।

१३—महाभारत—आदि पद्य अध्याय ६२—श्लोक २६ ।

१४—कृष्ण चतुर्थ ए गृहिस्ती आव सस्कृत लिटरेचर—पृ० ३२१ ।

१५—मकडौनल ए हिस्ती आव सस्कृत लिटरेचर—पृष्ठ २६० ।

१६—वरदाचारी ए हिस्ती आव सस्कृत लिटरेचर—पृष्ठ ४६ ।

स्वयं व्यास ने महाभारत के विषया में वेद रहस्य का प्रथम उल्लेख किया है।^{१७} धर्मापदग, विषया की व्यापकता, जीवन के ज्ञान आदि की दृष्टि से महाभारत वेद के समान है। प्राचीनता, पवित्रता और लोकप्रियता उम्र जनता का बंद बना देती है।

महाभारत अपने आकार की विंगलता के कारण ही मसार का महान ग्रंथ नहीं है और न वह केवल अपन विषयो की व्यापकता के कारण भारतीय जनता का बंद बन गया है वरन् वह मनुष्य-जीवन के गम्भीर तत्वा से परिपूर्ण होन के कारण भारतीय साहित्य की एक गौरवपूर्ण निधि बन गया है। आकार में महाभारत इलियड आदि यूरोपीय महाकाव्या से बहुत अधिक बड़ा है। सर वाल्टर इलियट न उम्र इलियड की तुलना में तत्व की दृष्टि से भी महान माना है।^{१८} प्रसिद्ध भारताय विद्वान् श्री रमेशचन्द्रदत्त न, जिहाने महाभारत का अंग्रेजी में सश्लिष पद्यानुवाद प्रस्तुत किया है महाभारत को गणिया की प्रतिभा का सबसे महान् ग्रंथ माना है।^{१९} महाभारत के महान विद्वान् डा० सुब्रह्मचर के अनुसार महाभारत भारतीय साहित्य का एक अत्यन्त मूल्यवान् ग्रंथ है जिन भारतीय परम्परा ने अपार धर्म क द्वारा लगभग २००० वर्षों ने सुरक्षित रक्खा है।^{२०} पश्चिमी विद्वाना न महाभारत के प्रबन्ध और इतिहास के सम्बन्ध में कुछ आलोचनात्मक खोज की है जिसमें उन्होंने महाभारत के सम्बन्ध में अनेक अनगल उद्घाटने प्रस्तुत की हैं। डा० सुब्रह्मचर ने अपन गम्भीर ग्रंथ^{२१} में पश्चिमी विद्वाना की ऐतिहासिक खोज की कड़ी आलोचना की है तथा उनक विचारा को कापनिक बनाया है।^{२२} ऐतिहासिक अध्ययन का महत्त्व मानन हुए भी डा० सुब्रह्मचर महाभारत के

१७—महाभारत आदि पंच-अध्याय १, श्लोक ६२

१८—डा० सुब्रह्मचर मोनिग आव महाभारत—पृष्ठ ५६।

१९—वही " " पृष्ठ ५।

२०—वही " , पृष्ठ ६८।

२१—मोनिग आव दो महाभारत।

२२—डा० सुब्रह्मचर मोनिग आव महाभारत—पृष्ठ ६७

महाभारत को गायत्रीय और गार्वजाति मानते हैं।^{१३३} उनके अनुसार महाभारत एक अर्वाच्य और अमर काव्य है। यह गार्वजाति की एक विद्वत् श्रमणों से प्रसूत एक महाभारत काव्य है। त्रिमयं चोर्ध्वं भी मानवीय प्रमाण उगरे गायत्रीय नहीं कर सकता।^{१३४} डा० मुखपात्रर के मत में ऐतिहासिक मात्र महाभारत के आन्वित्य एक एक महत्व का भूत कर उगरे बाहरी यथा म भवती रही है।^{१३५} डा० मुखपात्रर के अनुसार महाभारत भारतीय परम्परा के सर्वोत्तम आन्वित्य का रसाक्षर है।^{१३६} उनके मत में ऐतिहासिक मात्रा का सर्वाधिकार का लोहकर स्वयं महाभारत के युगा में गुरातिन और युगा में प्रसिद्ध रूप के आधार पर महाभारत के तत्त्व और महत्व का अनुसंधान करना अधिक उचित है। प्रस्तुत गोप्य प्रकाश में डा० मुखपात्रर के श्री मीनिंग के अनुसार महाभारत के मूल पाठ के आधार पर महाभारत में प्राप्त पञ्च-मन्वन्था तत्त्वा का विवरण प्रस्तुत किया है।

२-महाभारत की श्रेष्ठता और उमका माहात्म्य—

महाभारत की विनालता व्यापकता और ज्ञानपूणता के कारण उमकी महिमा भारतीय समाज में विरवात में प्रतिष्ठित है। विद्वाना और साधारण जना में महाभारत अविना ज्ञान का भाण्डार माना जाता है। महाभारत का गायन और श्रवण महान् पुण्य का कारण समझा जाता है। इसी लिए प्राचीनमान से महाभारत की कथा की परम्परा चली आती है।

महाभारत की इस महिमा के अनेक प्रमाण स्वयं महाभारत में ही मिलने हैं। महाभारत के आरम्भ में ऋषिया न महाभारत को आम्पाना में मवर्धेष्ठ तथा वेदार्थ से भूषित और पवित्र बताया है।^{१३७} गीतक मुनि के यज्ञ में महाभारत का गायन करने वाले सौति न महाभारत को सब प्रकार

२३—डा० मुखपात्रर मीनिंग आव महाभारत पृष्ठ ६०

२४—वही , " पृष्ठ ३२

२५—वही " " पृष्ठ १८, १२४

२६—वही " " पृष्ठ ३०

२७—महाभारत आदिव्य अध्याय १—श्लो० १८

क उत्तम ज्ञान में पूर्ण श्रेष्ठ इतिहास बताया है।^{२८} महाभारत के आरम्भ में सौमि ने कहा है कि यह महाभारत तीना त्रैलोक्य में एक महान् ज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित है।^{२९} उही के शब्दों में महाभारत सूर्य चन्द्रमा और दासक के समान प्रकाशमान है। ज्ञान के तिमिर से अंधे लोगों के लिए यह ज्ञानाजन का शलाका के समान अखि खोलने वाला है।^{३०} यह महाभारत सूर्य के समान अधिकार का नष्ट करने वाला है।^{३१} यह महाभारत पूर्ण चन्द्रमा के समान है जिसमें श्रुतियों की चाँदनी छिटकती है और मनुष्या की बुद्धि रूपी कुमुदनी विकसित हो जाती है।^{३२} यह महाभारत एक जलन हुए दीपक के समान है यह मोह का अधिकार मिटाकर लोगों के अंतःकरण का भली भाँति ज्ञानालोक में प्रकाशित करता है।^{३३}

महाभारत का इस महिमा का रहस्य उसका शली और उसके विषय में निहित है। शली की दृष्टि से महाभारत एक सुन्दर काव्य है। महाभारत के आरम्भ में सौमि ने इस काव्य की सजा दी है।^{३४} आनन्दवधन ने अपने ध्वजालोक में काया में इसकी गणना का है।^{३५} पश्चिमी इतिहासकारों ने भी यह स्वीकार किया है कि महाभारत के महामागर में अनेक सुन्दर काव्य रत्न मिलते हैं।^{३६} महाभारत में इस काव्य को सुन्दर और मंगलमय गीता से अलङ्कृत तथा विविध प्रकार के छंदा से युक्त बताया है। इसकी उपमा एक वृक्ष से दी गई है। वृक्ष के रूपक का निर्वाह बड़े सुन्दर ढंग से किया गया है और महाभारत की विभिन्न घटनाओं का इसका बीज मूल स्वयं

२८—महाभारत—आदिपर्व—अध्याय २ श्लो० ३६,४०

२९—वही आदिपर्व अध्याय १—श्लो० २७

३०—महाभारत " अध्याय १—८४

३१— " " अध्याय १—८५

३२— " " " १—८६

३३— " " " १—८७

३४— " " " १—७२

३५—आनन्दवधन—ध्वजालोक

३६—विन्तरनित्त ए हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर भाग १—पृ० ३२६

गाथा आदि बताया गया है।^{३७} वरदाचारो ने महाभारत की भाषा का सरल गम्भीर और प्रभावशाली बताया है।^{३८} सवाद शली और उपाख्याना ने महाभारत के वाक्य को सजीव, यथाय और प्रभावपूर्ण बना लिया है। कुछ बूट श्लोका ने जिनकी संख्या आठ हजार आठ बताई जाती है। इन सरल और गम्भीर वाक्य का चमत्कारपूर्ण बना दिया है। इन बूट श्लोका के प्रसंग का बरण महाभारत के आरम्भ में मिलता है।^{३९} इनके सम्बन्ध में व्यासजी ने स्वयं यह कहा है कि इनका अर्थ या ता में समझना है या गुणदेव समझना है।^{४०} मौलि के अनुसार इन बूट श्लोका का रहस्य भेदन करना कठिन है। स्वयं गणेशजी भी महाभारत को लिखते समय इन बूट श्लोका का अर्थ समझने के लिए क्षण भर ठहर जाते थे।^{४१}

विषय की दृष्टि से महाभारत बहुत व्यापक है। महाभारत की विज्ञान क्या और उसके उपाख्याना के प्रसंग में वेदों और शास्त्रों की बहुत कुछ शिक्षा महाभारत में आ गई है। इसीलिए महाभारत का वेदों के ज्ञान से परिपूर्ण^{४२} तथा वेदों के समान पवित्र कहा गया है।^{४३} नमिपारण्य के ऋषियों ने महाभारत की संहिता को चारों वेदों से समुत्त और पवित्र बताया है।^{४४} ब्रह्मपायन के शास्त्रों में यह सम्पूर्ण श्रुतियों का समूह है।^{४५} ब्रह्मपायन में इस काण्व वेद अर्थात् कृष्ण द्रुपायन द्वारा रचिन वेद कहा है^{४६} और इसे वेदों के समान पवित्र तथा श्रवणयोग्य ग्रन्थों में सबश्रेष्ठ बताया

३७—महाभारत-आदिपर्व-अध्याय १-श्लोक ८८ से ९३ तक

३८—वरदाचारी—ए हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर—पृ० ४६

३९—महाभारत आदिपर्व—अध्याय १-८०

४०— " " " १-८१

४१— " " " १-८२, ८३

४२— " " " १-६२

४३— ' आदिपर्व—अध्याय ६२-४६

४४— " ' " १-२१

४५— " आदिपर्व—अध्याय ६२-३५

४६— " ' " ६२-१८

है।^{१०} इगम सम्पूर्ण धम और अध का उपदेग है।^{१०} यह एक पवित्र धम गान्त्र, एक उत्तम अधगान्त्र और एक श्रेष्ठ मोक्ष गान्त्र है।^{११} धम, अधा और मोक्ष का परितुण विवरण होन क कारण महाभारत सम्पूर्ण बद् और गान्त्रा के धरावर है। स्वयं व्यासजी के गब्दा म एक और अठागृपुराण सम्पूर्ण धमगान्त्र और चारा बद् हैं तथा दूसरी ओर अवेना महाभारत है, यह अवेना ही उन सत्रके धरावर है।^{१२} धम के माय महाभारत म अध्यात्म का भी बरण है।^{१३} ऐसे उत्तम विषया सं युक्त महाभारत पवित्र और गीतबधन है।^{१४} सौति के गब्दा म जिम प्रकार दही म नननीन भनुप्या म ब्राह्मण वेदा म उपनिषद् औपधिया म अमृत सरावरा म समुद्र और चतुष्पदा म गाय सबसे श्रेष्ठ है उमी प्रकार इतिहासा म महाभारत सबसे श्रेष्ठ है।^{१५} महाभारत की इसी महिमा के कारण यह कहा गया है कि धम, अर्था काम और माग के सम्बन्ध म जो महाभारत म नहो है वह अन्यत्र कही नहीं है।^{१६} अर्थात् महाभारत सम्पूर्ण ज्ञान का तिधान है उमको पचमबद् का पद उचिन ही दिया गया है।

महाभारत वेग के समान महन्वपूर्ण और पवित्र ग्रन्थ है। उमके श्रवण और गायन से अनक प्रकार क पाप नष्ट होने है तथा उत्तम फला की प्राप्ति हाती है। महाभारत में उमके श्रवण और गायन क फल की महिमा अनक स्थाना पर बतार्ई गई है। महाभारत क आरम्भ म सौति न कहा है कि महा भारत का अध्ययन पुण्यकारक है। श्रद्धापूवक इसका अध्ययन करन बाना क सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जात है।^{१७} महाभारत म कुरुआ का प्रथित चरित्र और

४७—महाभारत—आदिपर्व—अध्याय	६२—१६
४८— ' ' "	६२—१७
४९— ' ' "	६२—२३
५०—महाभारत—स्वर्गीरोहरणपर्व—अध्याय	१—४०
५१—महाभारत—आदिपर्व—अध्याय	१—२५९
५२— ' आदिपर्व—अध्याय	६२—४९
५३— ' आदिपर्व—अध्याय	१—२६५, २६६
५४— ' आदिपर्व—अध्याय	१—२७
५५—महाभारत—आदिपर्व—अध्याय	६२—५३

श्री कृष्ण का पवित्र चरित्र वर्णित है ।^{१३०} धर्ममुद्धि वाला को इगला श्रवण करना चाहिए ।^{१३०} जो धर्मपरायण पुत्र्य श्रद्धा व सहित प्रतिनिधि इसका प्रथम अध्याय का भी पाठ करता है वह पाप से मुक्त हो जाता है ।^{१३१} जो इस प्रथम अध्याय का श्रवण करता है वह सबकुशल म भी दुःख म अभिभूत नहीं होता ।^१ पाप नाश व अनिरिक्त महाभारत के अध्ययन और श्रवण से अय फला की प्राप्ति होता है । महाभारत पाठना की विजय का वाक्य है इमीति ए उसका नाम जय वाक्य है । विजय की कामना करने वाला राजाओं को इसका श्रवण करना चाहिए ।^{१३१} महाभारत का श्रवण करने वाला श्रद्धागील मनुष्य राजसूय और अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है ।^{१३२} धर्म की इच्छा रखने वाले मनुष्य को सम्पूर्ण महाभारत का श्रवण करना चाहिये एसा करने से उसे मिद्धि की प्राप्ति होती है ।^{१३३} महाभारत का श्रवण करने वाला राजा पृथिवी पर विजय प्राप्त करता है और गनुआ को पराजित करता है ।^{१३४} युवराज और युवराजनी का यह बार बार सुनना चाहिए इससे वार-पुत्र अथवा राज्यभागिनी वधा का जन्म होता है ।^{१३५} इसका पाठ और श्रवण करने वालो को सेवा परायण पुत्र और प्रियकारक सेवक प्राप्त होते हैं ।^{१३६} महाभारत का श्रवण करने वाले धन यग आयु पुण्य और स्वर्ग को प्राप्त करते हैं ।^{१३७} उनको विपुत्र वग की प्राप्ति होती है

५७—महाभारत आदिपर्व— अध्याय ६२।श्लो० ३० ३३

५८— ६२।श्लो० २५

५९— अध्याय १ श्लो० २६१

६०— श्लो० २६२

६१— उद्योगपर्व— अध्या० १३६।श्लो० १८

६२— आदिपर्व— अध्याय ६२ श्लो० ४७

६३— ' ६२ श्लो० ४५

६४— श्लो० २१

६५— ' " श्लो० २२

६६— ' श्लो० २४

६७— ' श्लो० २५

और वे लोक में मान को प्राप्त करते हैं।^{६८} जो श्रद्धापूर्वक महाभारत का श्रवण करता है, वह दीर्घ आयु कीर्ति और स्वर्ग का प्राप्त करता है।^{६९} घमगात्र होन के साथ-साथ महाभारत अर्घसास्त्र और मोक्षसास्त्र भी है।^{७०} मोक्षकामी के द्वारा यह श्रवण करने योग्य है।^{७१} भक्तिपूर्वक जय नामक महाभारत का श्रवण करने वाले को श्री, कीर्ति और विद्या प्राप्त होती है।^{७२}

महाभारत का श्रवण करना और श्रवण कराना दोनों ही पुण्यकारक हैं। जो विद्वान् पर्वों के अवसर पर महाभारत का श्रवण कराना है वह समस्त पापों में मुक्त हो जाता है और स्वर्ग का प्राप्त कर लेता है तथा ब्रह्म भाव की प्राप्ति के योग्य बन जाता है।^{७३} जो विद्वान् पाण्डवों के इस प्रथित इतिहास को सुनाता है, उसमें गार्हपत्य घम की प्राप्ति होती है।^{७४} जो मत्स्यवादी दानगील, उदार और आत्मिक लोगों को महाभारत का श्रवण कराना है उसे अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति हाती है।^{७५} श्राद्ध के समय जो महाभारत सुनाता है उसका श्राद्ध अन्न होकर पितरों को प्राप्त होता है।^{७६} श्राद्ध में भोजन करने वाले ब्राह्मणों को महाभारत सुनाने से पितरों को अन्न-जल की प्राप्ति होती है।^{७७} महाभारत का श्रवण कराने वाले पुण्यात्मा मनुष्य को राजसूय तथा अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है।^{७८} जो ब्राह्मण इसका श्रवण कराते हैं तथा जो मनुष्य इसका श्रवण करते हैं उनके कर्मात्म

- ६८—महाभारत-आदिपर्व अध्या० ६२ श्लो० ३१
 ६९—महाभारत आदिपर्व १—अध्याय १।श्लो० २७१
 ७०— ' ' ' ' ६२-२३
 ७१— स्वर्गारोहणपर्व १८—अध्याय ५-५१
 ७२— ' ' ' ' १८—अध्याय ५-४६
 ७३— ' ' ' ' १८—अध्या० ५-४०
 ७४— " आदिपर्व १—अध्याय ६२-३०
 ७५— ' ' ' ' १—अध्याय ६२-१८
 ७६— ' ' ' ' १—अ० ६२-३७
 ७७— ' ' ' ' १—अ० १-२६७
 ७८— " ' ' ' १—अ० ६२-४७

अगाध्य हा जात है।^{१००} महाभारत के गुनने और मुनान से ता पुष्य हाता ही है, जा वाचन क लिए महाभारत के ग्रंथ का दान करता है, उम सम्पूरा पृथिवी के दान का फल मिलता है।^{१००}

३—महाभारत का ऐतिहासिक महत्त्व—

भारतीय परम्परा म महाभारत को एक इतिहास माना जाता है। सली की दृष्टि म वह वाच्य है किन्तु विषय-वस्तु और घटनाआ की दृष्टि म वह एक इतिहास है। प्राचीन भारत की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना का बहुत कुछ यथार्थ वस्तुन इसम मिलता है। पश्चिमी विद्वान् प्राचीन भारत वामिया के ऐतिहासिक बोध पर आशेष करते हैं। पार्जोटर का मन है कि प्राचीन भारतीयो न कोई ऐतिहासिक ग्रंथ नहीं लिखे।^{१०१} मकडोनल न कहा है कि इतिहास भारतीय साहित्य की एक कमजोरी है। ऐतिहासिक बोध का जभाव एक एसी विनोपता है जिसके कारण ससृजत साहित्य के इतिहास मे ठीक कालक्रम नहीं मिलता।^{१०२} पश्चिमी विद्वानो की मुख्य आपत्ति इतिहास के कालक्रम को लेकर है। कालक्रम और घटनाय य इतिहास के दो मुख्य तत्त्व हैं। प्राचीन भारत के इतिहास म कालक्रम के सम्बन्ध मे कुछ कठिनार्द अवश्य है इसका एक कारण तो भारतीय इतिहास और साहित्य की प्राचीनता है। विक्रम सम्बत् से पूव का कोई सबत् भी सप्तर म नहीं मिलता। दूसरे कालक्रम की अपेक्षा प्राचीन भारताया का ध्यान घटनाआ तथा उनस लक्षित हाने वाले जीवन के सत्या की ओर अधिक रहा। घटनाओ म कुछ कल्पना की अतिरजना तथा कुछ अलौकिकता का पुट अवश्य है फिर भी प्राचीन इतिहास म विनोपत महाभारत म प्राचीन घटनाओ का बहुत कुछ यथार्थ रूप मिलता है। घटनाआ क इस रूप को इतिहास ही कहा जायगा। इसी आधार पर महाभारत को इतिहास मानना उचित है।

७८—महाभारत आदिपर्ष १—अ० ६२-४४

८०— " १—अध्या० ६२-५०

८१—एंगियट इण्डियन हिस्टोरिकल टेडीगन-पृष्ठ—२

८२—मकडोनल ए हिस्ट्री जाव ससृजत लिटरेचर-पृष्ठ—१०

इस रूप में इतिहास का उल्लेख बंदिव काव्य से ही मिलता है।^{१३} ऐसे इतिहासों में महाभारत अत्यन्त विगल और प्रमुख है। स्वयं महाभारत में अनेक स्थानों पर महाभारत को इतिहास कहा गया है।^{१४} महाभारत के युद्ध का घटना और महाभारत के ग्रन्थ की रचना के तिथि काल का निर्णय चाहें कितना ही कठिन जयवा अनिश्चयपूर्ण हो किन्तु प्राचीन तथ्या और घटनाओं की दृष्टि से महाभारत की ऐतिहासिकता अमदिग्ध है। प्राचीन भारतीय इतिहास का सबसे महत्वपूर्ण घटना इसका आधार है। यह घटना अपने आप में महान् और विशाल है। एक प्राचीन और महान् राजवंश का उत्पत्ति से लेकर उसके सघर्ष और विनाश तक की महान् और विशाल कथा महाभारत में वर्णित है। इस कथा की घटनाय बड़ी गम्भीर कठोर तथा दाम्प्य एवं भयंकर है यह भी इन घटनाओं की ऐतिहासिकता का प्रमाण है। महाभारत में इन प्राचीन घटनाओं का वर्णन बड़ी यथाश्रुता के साथ किया गया है। बरदाचारी ने महाभारत की इस यथार्थता की सराहना की है।^{१५} नियोग के द्वारा धृतराष्ट्र पाण्डु आदि की उत्पत्ति, द्यूत-काण्ड, अज्ञातवाम युद्ध की कूटनीति आदि अनेक प्रसंगों में महाभारत की कठोर यथार्थता का दर्शन होता है। एक महान् कृति एक महान् घटना घटनाओं की यथार्थता लोक परम्परा में मान्यता आदि कई अर्थों में महाभारत का ऐतिहासिक महत्त्व है। काल निर्णय सम्बन्धी कठिनाई से महाभारत का यह ऐतिहासिक महत्त्व कम नहीं होता।

८३—नलिनबिलोचन शर्मा साहित्य का इतिहास द्वा—पृष्ठ-२

८४—जयो नामेतिहासोऽयं धीतयो विजिगीषुणा ॥

महाभारत-आदिपर्व १—अध्याय ६२, श्लोक ० २०

इतिहासमिमं धक्ते पुंभ्यः सत्यवती मुत

आदिपर्व १—अध्याय १, श्लोक ५४

इतिहासप्रदीपेन

मोहावरणघातिना ।

आदिपर्व १—अध्याय १ श्लोक ८६

८५—बरदाचारी हिस्ट्री आव् सस्कृत लिटरेचर—पृ० ५३

महाभारत की घटना और महाभारत का ग्रन्थ दोनों ही महान् हैं। इसीलिए महाभारत शब्द का प्रयोग दोनों के अर्थ में होता है। महान् होने के कारण ही इनको महान् का विशेषण मिला है। महत्ता के अर्थ में महाभारत महान् युद्ध और महान् ग्रन्थ के सामान्य अर्थ का वाचक बन गया है। विद्युत् युरोपीय युद्ध को युरोपीय महाभारत कहा जाता है। व्यस्य प्रयोग में आपस की लड़ाई को भी हम महाभारत कह देते हैं। किसी विशाल और महान् कृति को भी व्यस्य से महाभारत कहा जाता है। इस प्रकार महाभारत शब्द युद्ध और रचना दोनों के सामान्य भाव का व्यञ्जक बन गया है। वस्तुतः महाभारत का युद्ध प्राचीन भारत की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण घटना है। इस महायुद्ध में प्राचीन भारत के एक महान् राजवंश का गवनाग हो गया। इस युद्ध के उपसंहार में श्रीकृष्ण का यादव कुल भी गृन्थुद्ध में नष्ट हो गया। इसमें अनिर्दिष्ट गन्धर्वों के लिए होने वाले सपथ के प्रसंग में द्रुपद-श्रीकृष्ण का गृह अनातवाग आदि का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटनायें महाभारत में वर्णित हैं। द्रौपदी-स्वयंवर के महाभारत आदि की घटनायें मुख्य घटनाओं के महत्त्व को बढ़ाती हैं। इस प्रकार प्राचीन भारत की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना के अर्थ में महाभारत का एक विशेष अर्थ में एतिहासिक कहा जा सकता है। जिन अर्थ में कि अतीत की अधिक महत्त्वपूर्ण घटनाओं का एतिहासिक कहा जाता है। यह एतिहासिक घटनायें ऐसा होती हैं जो भविष्य के इतिहास का मोड़ देती हैं। महाभारत की घटना भी एक ऐसा ही घटना है। इस घटना में भारतवर्ष के इतिहास का अगाधारण रूप में प्रभावित किया है। महाभारत का हम महान् घटना के पात्र भी अपने महान् व्यक्तित्व और कृतित्व आदि के कारण भारतीय इतिहास में अमर हो गये हैं। आर्यावर्तुद्ध भारतीय जनता उनके गौरव गानती है। महाभारत का यह इतिहास विरजाल में भारत में विख्यात है।

महाभारत की घटना के समान महाभारत का ग्रन्थ भी महान् है। यह महाभारत के कथा प्रसंग के समान ही विज्ञान और महत्त्वपूर्ण है। विज्ञान और महत्त्वपूर्णता दोनों के ही अर्थ में महान् है।^१ यदि एतिहासिक

सिक् का अर्थ महत्त्वपूर्ण मानें, ता प्राचीन भारत का एक महान् और महत्त्वपूर्ण घटना का विगान और महत्त्वपूर्ण वृत्त होन के नाने महाभारत का ग्रन्थ भी ऐतिहासिक है। इस महान् घटना क यथार्थ विवरण के अथा म भी यह एतिहासिक ह। कुछ कल्पना का पुट हात हुए भी महाभारत मे घटनाआ का बरण मुख्यत यथाथा रूप मे ही मिलता है। इस दृष्टि स काव्य हात हुए भी महाभारत एक इतिहास है और उसका ऐतिहासिक महत्त्व है। हम उमम तत्कालीन भारतवप क इतिहास और वृत्त क सम्बन्ध म अनेक बातें विदित हाती हैं। इतिहास का यही महत्त्व है और महाभारत म यह महत्त्व अपन आकार क अनुपात म वतमान् है। भरतवगी वीरा की मून कथा के प्रसंग म भारतवप क अनेक देगा के राजाओ का बरण महाभारत म किया गया है इन राजाआ न महाभारत के युद्ध म भाग लिया था। इन अनेक देगा और राजाआ के बरण स महाभारत एक प्रकार से प्राचीन भारत का इतिहास बन गया है तथा उसकी ऐतिहासिकता और उसका ऐतिहासिक महत्त्व अधिक बढ गया है। मूल कथा के अतिरिक्त मिलने वाली अय अनेक कथायें इसकी ऐतिहासिकता और इसके ऐतिहासिक महत्त्व का बढाती हैं। मूल कथा के समान इनमे भी भारत की तत्कालीन स्थिति के सम्बन्ध मे अनेक बात विधि हाती हैं। प्राचीन भारत क वृत्ता और उसकी स्थितियो का परिचय महा भारत की महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक देन है।

वर्णानिक अथा मे इतिहास का केवल प्राचीन घटनाओ का यथानय्य बरण माना जाता है। किन्तु इतिहास की घटनाआ से मनुष्य का शिक्षा भी मिलती है। यह शिक्षा इतिहास क महत्त्व को बढाती है। इस शिक्षा की दृष्टि से महाभारत का महत्त्व अय इतिहासो स भी अधिक है। महाभारत का गृहयुद्ध भावी भारत के लिए एक महान् सदेश है वह राष्ट्रीय एवता का सबसे बडा प्रेरक बन सकता है। इसके अनिरिक्त धूत-श्रीडा अमानवाम जादि अनेक घटनाआ से बडी शिक्षा मिलती है। महाभारत के पात्रा की नीतिया और उनके वचन भी जीवन के गम्भीर रहस्या पर प्रकाश डालते हैं। महाभारत की घटनाआ के समान महाभारत की शिक्षायें भी गम्भीर है। ये शिक्षायें महाभारत के ऐतिहासिक महत्त्व को बढाती हैं। घटनाआ की गम्भीरता और उनके महत्त्व के कारण ही महाभारत भारतीय लोक-परम्परा का एक अभिन्न अंग बन गया है। वर्णानिक दृष्टि से महाभारत के इतिहास म काल आदि सम्बन्धी कठिनाइयाँ भल हा हा किन्तु घटनाआ की गम्भीरता

तथा शिक्षा के महत्त्व और परम्परा का अग वन जाने की दृष्टि से यह अथ वचनिक इतिहासों से अधिक महत्त्वपूर्ण है। स्वयं महाभारत में इसे इतिहासात्तम माना गया है।^{८७} महाभारत की अपने सम्बन्ध में यह धारणा उचित और जादरणीय है। उक्त जनक श्रुतियों से महाभारत का ऐतिहासिक महत्त्व गौरवपूर्ण है।

४—महाभारत का साहित्यिक महत्त्व—

इतिहास के साथ साथ महाभारत को एक काव्य भी माना जाता है। काव्य होने के नाते महाभारत का साहित्यिक महत्त्व भी विचारणीय है। ग्रन्थ के आरम्भ में वदव्यास ने इसे काव्य ही बताया है।^{८८} आनन्दवधन ने अपने ध्वयालोक में भी महाभारत का काव्य के अतगत माना है।^{८९} श्री चित्ता मणि विनायक वद्य ने कहा है कि— 'महाभारत न केवल इतिहास और धर्म का ही ग्रन्थ है किन्तु वह एक उत्तम महाकाव्य भी है।' महाभारत का अविकारी विद्वान् डा० मुक्कयनकर ने उसका साहित्यिक सौन्दर्य की बहुत सराहना की है और अपने महाभारत सम्बन्धी ग्रन्थ में उसके काव्यमौल्य चरित्र चित्रण आदि का ममस्पर्शी उदाहरण दिया है।^{९०} गली की दृष्टि से यह स्पष्ट रूप से एक काव्य है। जिस अनुष्टुप के सुन्दर छन्द में वाल्मीकि रामायण की रचना हुई है उसी अनुष्टुप छन्द में महाभारत का विनायक काव्य भी

८७—इतिहासोत्तमे यस्मिन्नपिता बुद्धिरुत्तमा।

आदिपर्वा अध्याय २-श्लो० ३८

इतिहासोत्तमादस्माज्जायते क्विवुद्धय ।

आदिपर्वा-अध्या० २-श्लो० २८४

८८—वृत्त मयेद भगवन् काव्य परमपूजितम् ।

आदिपर्वा-अध्या० १-श्लो० ६१

८९—आनन्दवधन ध्वयालोक प्रथम उद्योतकारिका १

९०—सो०षी० वीर महाभारत भीमांसा—पृष्ठ २६

९१—डा० मुक्कयनकर भीमिण आव ही महाभारत—पृष्ठ ३४ ३७

रचा गया है। यद्यपि महाभारत में काव्य का मौल्य वाल्मीकि रामायण व समान नहीं है, फिर भी अनक स्थला में पचास काव्य सौदय मिलता है। वनपर्व में हिमालय पवन पर गन्धमादन पवत क सुन्दर वरगन मिलते हैं। युद्ध शोक आदि के वरगन बडे मजीव और प्रभावशाली हैं। द्रौपदी-स्वयवर अज्ञानवाम, स्वर्गारोहण आदि के स्थल बन्धु मार्मिक हैं। एम विनाल काव्य में गब्दा और अलवारो का सौदय भी यथेष्ट मात्रा में मिलता है। ग्रन्थ क उपक्रम म महाभारत का सौति न सुन्दर गब्दा और विविध छन्दो से अलङ्कृत काव्य बताया है।^{१२} वरदाचारी न महाभारत की भाषा का सरल गम्भीर और प्रभावशाली बताया है।^{१३} डा० सुक्यनकर न महाभारत म प्रयुक्त सस्कृत भाषा और अनुष्टुप छन्द को महाकाव्य के लिए अत्यन्त उपयुक्त बताया है। गब्दा की विविधता और छन्द की सरल गति उनकी दृष्टि में एम विनाल महाकाव्य के सौदय के अनुष्टुप हैं।^{१४} वितरनित्य न भी अनुष्टुप छन्द का सर्वोत्तम छन्द माना है।^{१५} सरन, गम्भीर और सजीव शानी म लिखित विशाल महाभारत विद्व क एक अद्भुत महाकाव्य है। एक महान् प्रवच के आधार ने इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली बना लिया है। मन्वाद का शली क याग स यह अधिक सजीव और रोचक बन गया है। भरतवशी वीरा के सघष और युद्ध की कथा विनाल हान क साथ-साथ अत्यन्त रोमहृषक है। महाभारत के पात्रा क अद्भुत चरित्र और महाभारत की मार्मिक घटनायें प्रभावशाली काव्य का उपकरण बन गई हैं। इन विनाल प्रवच काय म कथा की विनालता क कारण एक दीघ प्रवाह है जो एक महान् प्रवचकाव्य के अनुष्टुप है। बीच में आन वाल उपान्धानो म तवा प्रामाणिक घर्षोपदगा म कथा और काव्य के सौदय में कुद्द गिधिलता अन्त्य आ जाती है किन्तु यह विन्नेष भी महाभारत के विनाल प्रवाह म भ्रमरा के समान हैं। डा० सुक्यनकर न महाभारत के प्रवच और लय की कनात्मक एकता का समगन किया है।^{१६} सामान्य रूप स महाभारत का

६२—महाभारत—आदिपर्व अध्याय १ श्लो० २८

६३—वरदाचारी ए हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर—पृष्ठ ४८

६४—डा० सुक्यनकर मार्मिक आव महाभारत—पृष्ठ ४२

६५—वितरनित्य : ए हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर—भाग-१ पृ० ४६१

६६—डा० सुक्यनकर मौनिक आव महाभारत—पृ०—२०

विशाल प्रबन्ध काव्य छन्द, अलंकार, भाषा, वर्णन चरित्र चित्रण, मार्मिक भाव आदि अनेक काव्य गुणा से परिपूर्ण है। आलंकारिक काव्या की तुलना में सरल और गम्भीर शली के इस महान् काव्य को एक निसर्ग काव्य कहा जा सकता है। यदि आलंकारिक काव्या का उपमा हम एक सुरचित उद्यान में है तो महाभारत को निसर्ग काव्य का एक विशाल वन कहना होगा। विन्तरनित्य न प्रबन्ध की अस्तव्यस्तता का दृष्टि में इस काव्य का वन कहा है।^{१००} किन्तु उनके इस व्यंग्यपूर्ण आक्षेप को हम एक दूरदर्श अर्थ में महाभारत के निसर्ग काव्य का निर्देश मान सकते हैं। महाभारत के इस विशाल काव्य वन में कुछ गहन वीथियाँ भी हैं जो उसे कात्तर के निकट ल आता है। ये गहन वीथियाँ महाभारत के ब आठ हजार जाठ मी (८८००) कूट नाक हैं जिनके सम्बन्ध में व्यास जी ने यह कहा है कि इनका अर्थ कवन में समझता हूँ और सुकदव समझत ह तथा जिनको समझने के लिए बुद्धिनिदान गणेश को भी क्षण भर उहरना पड़ता था।^{१०१} यदि सरलता और सौन्दर्य में महाभारत वारमाकि रामायण के समान है तो उसके यह बूट अग गम्भारता में नपथ और शिशुपालवध के निकट हैं। कथा की विशालता और चरित्रों की अद्भुतता की दृष्टि से महाभारत का काव्य अतुलनीय है। ग्रहाजी का यह वर्णन सत्य ही है कि इससे बन्दक काव्य कोई भी कवि न लिख सकेगा।^{१०२}

पश्चिमी विद्वानों ने यह स्वीकार करत हुए भी कि महाभारत में अनेक सुन्दर काव्य-मय मितन हैं प्रबन्ध का अस्तव्यस्तता का आक्षेप करत हुए महाभारत की एकमूर्तता और उसके प्रबन्ध सौन्दर्य का अस्वाकृत किया है।^{१०३} विन्तरनित्य न इस काव्य वन का उपमा दा है और हम एक अननक काव्य कहा है। उहान हम एक साहित्यिक दानव भी कहा है।^{१०४}

८७—विन्तरनित्य ए हिस्ट्री आव सन्कृत लिटरेचर—भाग १—पृष्ठ—३२६

८८—महाभारत—आदि पव—१—अध्याय—१, श्लो० ८१ ८३

, " , १, श्लो० ७३

८९—वही " , अध्याय २, श्लो० १८०

१००—विन्तरनित्य ए हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर भाग—१, पृष्ठ ३२६

१०१—वही , " १० ३२६

पश्चिमी विद्वानों के ये आनेप महाभारत की कथा और सामग्री की विशालता और विविधता तथा विचार तत्वों की बहुरूपता पर आश्रित हैं। वे इसमें प्राचीन कीर्ति काव्य, ब्राह्मण धर्म तथा परम्परागत उपाग्याना का असंगत मिश्रण देखते हैं।^{१०२} ये आनेप बौद्धिकता के आग्रह हैं। विंगालना के कारण ये विद्वान् महाभारत को एक व्यक्ति की रचना नहीं मानते। किन्तु जती विविधता और असंगति ये महाभारत में देखते हैं, वही एक कवि की कृति में भी मिल सकती है। सभी काव्य कृतियाँ आलोचना की बुद्धि के अनुरूप संगत नहीं हो सकती। कवि-कल्पना को बुद्धि के अनुसार परखना उचित नहीं है। विषयो और कथाओं की विविधता महाभारत के विशाल काव्य के वय सौंदर्य के अनुरूप है। कथा प्रबंध की कुट्ट अमंगलिया इतने विंगाल काव्य में वही म्यान रखता है जो चंद्रमा में उसके लक्षण का है। व्यापक दृष्टि से महाभारत का साहित्यिक मौल्य असंदिग्ध है।

कथा प्रबंध चरित्र चित्रण, भावगरिमा, छंद-अलंकार आदि अनेक काव्य गुणों से परिपूर्ण इस अद्भुत महाकाव्य का मौलिक साहित्यिक महत्त्व अतुलनीय है। एक महाकाव्य का दृष्टि से यह अपने आप में अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। किन्तु इसके साथ-साथ अपन विषय और प्रबंध की विशालता के द्वारा महाभारत अनेक उत्तरकालीन काव्या का आधार और स्रोत बन गया है। यह महाभाग्न का साहित्यिक महत्त्व का दूसरा पक्ष है। इस दृष्टि से महाभारत हिमालय के समान है। साहित्य का इस हिमालय से अनेक काव्यधाराएँ प्रवाहित हुई हैं। स्वयं महाभारत में ही यह भविष्यवाणी की गई है कि महाभारत काव्य सभी मुख्य कवियों का उपजीव्य होगा।^{१०३} सौति ने महाभारत को काव्या का स्वामी बताया है जिस प्रकार उन्नति के अभिलाषी सबका अभिजात स्वामी की सेवा करते हैं उसी प्रकार संसार के श्रेष्ठ कवि महाभारत की सेवा करके काव्य की रचना करते हैं।^{१०४} जिस प्रकार सबका वंश स्वामी का अनुदान है उसी प्रकार इन कवियों का काव्य वंश भी महाभारत का

१०२-मकडौनल ए हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर-पृ० २८५

वितरनितस ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर-

भाग १, पृ० ३१६ ८५६

१०३-महाभारत आदि पर्व-१-अध्याय १, श्लो० ६२

१०४- ,, आदि पर्व-१-अध्याय २, श्लो० ३८, ३८६

अनुदान है। इस उत्तम काव्य से कविया की वृद्धि इसी प्रकार प्रेरित होनी है, जिन प्रकार पाँच भूता से सृष्टि प्रवृत्त होता है।^{१०५} ससृजत साहित्य व अन्य कवियों ने महाभारत से प्रेरित होकर तथा महाभारत व आग्याना का जाश्रय ग्रहण करके काव्यों और नाटका की रचना की है। ससृजत-साहित्य व विद्वान् इतिहासकार वरदाचारी ने अपन ससृजत साहित्य के परिनिष्ट म एग लगभग चालीस प्रथो की सूची दी है जिनक प्रवच का स्रोत महाभारत म है।^{१०६}

५-महाभारत का धार्मिक महत्त्व

एक प्राचीन इतिहास और एक विनाल महाकाव्य हान के साथ-साथ महाभारत एक धमगात्र भी है। भारतीय परम्परा म धम का अथ पत्रिमी परम्परा के समान किमी विनोप साम्प्रदायिक आग्रह के अथ म रूप नहीं है। धम की भारतीय परिभाषा क लिए ईश्वर के किमी विनोप रूप यह भारताय रूप अत्यन्त उदार और मानवीय है। इसम एक उदार और मानवीय रूप म ईश्वर तथा देवता की उपासना भी सम्मिलित है। किन्तु उदार मानवीय आचार इस धम का मुख्य तत्व है। इसलिये यही आचार अथवा कर्त्तव्य धमगात्रा का मुख्य विषय बन गया है। धमगात्रो म धम के इसी रूप का विवरण अधिक मिलता है। इसी अथ मे महाभारत को भी धमगात्र माना जाता है। भारतीय धारणा के अनुसार जो वाते धम के अन्त गत मानी जाती हैं उनका महाभारत म अनेक स्थानो पर विस्तृत बरण मिलता है। इसी कारण महाभारत को इतिहास रूप काय हाने व साथ साथ धमगात्र भी माना गया है। यह कहना अनुचित न होगा कि महाभारत म इतिहास की अपेक्षा काव्य अधिक है और काय की अपेक्षा धम का तत्त्व अधिक है। इसलिये आगे चलकर इसकी प्रतिष्ठा धमगात्र व हा रूप म अधिक हुई है।

१०५-महाभारत आदि पद्य अध्याय २, श्लो० ३६५

१०६-वरदाचारी ए हिस्ट्री आव ससृजत लिटरेचर-पृ० २६५

देविए-परिनिष्ट-क

स्वयं महाभारत में ही महाभारत को इतिहास काव्य कहने के साथ साथ अनेक स्थानों पर धर्मशास्त्र ही अधिक कहा गया है। आदिपर्व में महाभारत को एक महान् धर्मशास्त्र कहा गया है।^{१००} पश्चिमी विद्वानों का मत है कि अपने मूल रूप में महाभारत एक कीर्ति-काव्य था। बालातर में ब्राह्मणों ने धार्मिक तत्वा का समावेश करके इसे धर्मशास्त्र बना दिया।^{१०१} किंतु वह यह स्वीकार करते हैं कि ईसवी सन् के आरम्भ में महाभारत का यह धार्मिक रूप स्थिर हो चुका था। डायोक्रिस्टोस नामक ग्रीक यात्री का प्रमाण इस प्रसंग में महत्त्वपूर्ण है। उसके समय में एक लाख श्लोकों का महाभारत धुर दक्षिण तक प्रचलित था। प्राचीनकाल से ही भारतीय जनता इस धर्मशास्त्र के रूप में मानती रही है।^{१०२} ईसा की पाँचवीं शताब्दी के दानपत्रों में धर्मशास्त्र के रूप में महाभारत का उल्लेख बड़े आदर के साथ मिलता है।^{१०३} सातवीं शताब्दी में कुमारिल भट्ट और गणराज्याय ने धर्मशास्त्र अथवा स्मृति के रूप में महाभारत का प्रमाण माना है।^{१०४} दण्डवर्णन मंदिरों में हानि वाली महाभारत की कथा का उल्लेख किया है। मंदिरों में पाठ के लिए महाभारत की प्रतिष्ठा दान की जाती थी।^{१०५} इन सब प्रमाणों में सिद्ध होता है कि इतिहास और काव्य हाते हुए भी अतत धर्मशास्त्र के रूप में महाभारत की अधिक प्रतिष्ठा हुई। महाभारत के प्रसिद्ध विद्वान् श्री चित्तामणि विनायक बघ का मत है कि 'महाभारत का धर्म ग्रन्थ का पूरा स्वरूप प्राप्त हो गया है और उसके बाद बने हुए सब ग्रन्थ उसका बचनो को स्मृति के समान प्रमाण मानते हैं।'^{१०६} बरदाचारी के मत में भी महाभारत इतिहास और काव्यहोने के साथ साथ एक धर्मशास्त्र भी है।^{१०७} डा० सुक्यनकर महाभारत के धार्मिक तत्वा का प्राचीन तथा इस महान् ग्रन्थ का अंतरंग तत्व मानते

१०७—महाभारत—आदिपर्व—१ अध्याय—२, श्लो० ३८३

१०८—वितरनित्त ए हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर—भाग—१ पृ० ३१६

१०९—वही " " " " पृ० ३२१

११०—मकडौनल ए हिस्ट्री आव सस्कृत लिटरेचर पृ० २८८

१११—वही " " " " पृ० २८१

११२—मकडौनल ए हिस्ट्री आव सस्कृत लिटरेचर—पृ० २६०

११३—सो० वी० बघ महाभारत मीमांसा—पृष्ठ १८

११४—बरदाचारी ए हिस्ट्री आव सस्कृत लिटरेचर—पृष्ठ ५४ ५५

है। ११५ उनका विश्वास है कि इन तत्वों के निकाल देने पर महाभारत प्राणद अगो से रहित शरीर के समान रह जायेगा। ११६ उनके मन म महाभारत के धार्मिक तत्वों को प्रक्षिप्त मानन वाले पश्चिमी विद्वानों की महाभारत व मूल काय की खोज मृगमरीचिका होने के साथ-साथ अनुचित भी है। ११७ उन्होंने महाभारत का मुख्यत एव धम प्रत्य मानकर उसके धार्मिक नतिक और आध्यात्मिक तत्वों की गम्भीर व्याख्या की है। उनके अनुसार धम ही महाभारत की मून घुरी है। ११८

भारतीय धारणा के अनुसार धम के जो विषय हैं उनका महाभारत म अनेक स्थानों पर विस्तार से बखान विद्या गया है। धम के इन विषयों का विपुल परिमाण म समावेश करने व कारण ही महाभारत धमशास्त्र बना है। बर्णों और आश्रमों के कर्त्तव्य इस धम के मुख्य तत्व हैं। चातुर्वर्ण्य और वर्णाश्रम के धर्मों का उल्लेख महाभारत के आरम्भ म उसके विषयों के अलग-अलग विधानों म किया गया है। ११९ इन धमाचरणा का विधान महाभारत म अलग-अलग स्थानों पर मिलता है। गातिपत्र म और अनुशासन पत्र म धम का उपलक्षण विधेय रूप म तथा विस्तार के साथ किया गया है। इन पत्रों की इन विधानों का उत्तम आदिपत्र व दूसरे अध्याय म महाभारत व विषय विवरण व प्रमग म किया गया है। १२० वर्णाश्रम-धम राजपत्र म धम आदिना वखान महाभारत म प्रामाणिक रूप म किया गया है। इसम महाभारत का धार्मिक महत्व अमदिग्य रूप से मिद्ध हो जाता है।

बर्णों और आश्रमों व धम विधान व अनिर्दिष्ट ईश्वर तथा दवताओं की उपासना व अप म भी महाभारत एक धम प्रत्य है। महाभारत म धम का दिव्य चरित्र विधेय रूप म बखान है। आदिपत्र म कहा गया है कि

-
- ११५—आ० सुकपतकर मोनिग आव महाभारत—पृ० ८६
 ११६—वही " " " " पृ० ५
 ११७—वही " " " " पृ० ५
 ११८—आ० सुकपतकर मोनिग आव महाभारत—पृष्ठ ६०
 ११९—महाभारत—प्रादि पत्र—अध्याय १ श्लोक ६५
 १२०— " " " अध्याय २, श्लोक ३२६ से ३३७ तक।

“भगवान् वासुदेव का चरित्र महाभारत का मुख्य विषय है उही का इमम सङ्गीतन किया गया है। व ही सत्य, ऋत पवित्र एव पुण्य है।”^{१२१} कितर-निस्स का मत है कि महाभारत के धार्मिक स्थला म कृष्ण के चरित्र की इतनी प्रधानता है कि एसा प्रतीत होता है कि महाभारत एक कृष्णव धम का ग्रथ है।^{१२२} किन्तु विष्णु और कृष्ण के अतिरिक्त अन्य देवताओ का वरुण भा मनाभारत मे मिलता है। कितरनिस्स का मत है कि शिव का महिमा क अग बाद मे जोडे गय हैं, जब महाभारत का प्रचार भारत के उन भागो म हुआ जिनम शिव की पूजा प्रचलित थी।^{२३} श्री वद्य का मत है कि कृष्णव और शव धर्मों का समन्वय महाभारत म मौति ने किया है। इम समन्वय के लिए उन्होंने श्री कृष्ण को शिव का उपासक और शिव को श्री विष्णु का उपासक बनाया है। भीष्म पव म दवी की स्तुति भी है तथा दत्तात्रेय स्वद आदि दवनाआ का भी वरण है। इस प्रकार महाभारत उदार भारतीय धम के विविध रूपा का सगम बन गया है।^{१२४} इसके अतिरिक्त स्वग नरक पाप पुण्य प्रायश्चित, सस्कार आदि भारतीय धम-तत्वा का विवरण भी महा भारत म किया गया है।^{१२५} भारतीय धार्मिक धारणा क उक्त तत्वा का विस्तृत और महत्त्वपूर्ण वरण करने के कारण महाभारत मुख्यत एक धम ग्रथ बन गया है। एक पवित्र धमशास्त्र क रूप मे ही वह हजारों वर्षों से प्रतिष्ठित है। धम ग्रथ हान के कारण ही वह वेद के समान पवित्र माना जाता है। वेद अखिल धम का स्रोत है। धम की दृष्टि से ही महाभारत वेद क समान पवित्र और महत्त्वपूर्ण माना जाता ह। स्वय महाभारत म इम काष्ण वेद कहा गया है^{१२६} और इसे वेद के समान माना गया है।^{१२७}

१२१—महाभारत—आदिपर्व—अध्याय २, श्लो० २५६

१२२—कितरनिस्स ए हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर—भाग—१, पृ० ३२०

१२३—वही ” ” पृ० ३२०

१२४—सौ० वी० वद्य महाभारत मीमासा पृ० १७१८

१२५—सौ० वी० वद्य महाभारत मीमासा—पृष्ठ ४६६ ४७२

१२६—काष्ण वेदमिम विद्वाञ्छ्वावयित्वायमश्नुते।

आदिपव अध्याय ६२ श्लो० १८

१२७—इव हि वेद समित पवित्रमपि चोत्तमम्

महाभारत आवि पव—१, अध्याय ६२, श्लो० ४८३

एक स्थान पर तो इस बात से भी अधिक माना गया है^{१२८} गांधारण जनता के लिए वेद दुःख है उनसे लिए महाभारत सचमुच घद स भी अधिक मूल्यान है। इन सब प्रमाणा स महाभारत का धार्मिक महत्त्व गिद ढाना है।

६—महाभारत का सांस्कृतिक महत्त्व—

प्राचीन इतिहास महानाट्य और धर्मशास्त्र होने के नाम महाभारत हमारा संस्कृति का अभिन्न अंग बन गया है। महाभारत के इतिहासिक साहित्यिक और धार्मिक महत्त्व के साथ साथ उसका सांस्कृतिक महत्त्व भी अविचारणीय है। संस्कृति मनुष्य की रचना है। प्रकृति के आधार पर अपने उद्योग से मनुष्य ने जो कुछ बनाया है उसी को संस्कृति कहते हैं। व्यक्तिगत की अपेक्षा संस्कृति सामाजिक अधिक है। मनुष्य की जिन रचनाओं का संस्कृति में अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है वे प्रायः एक व्यक्ति की रचना न होकर अनेक मनुष्यों के उद्योग से बनी हैं। जजता का गुणाय ताजमहल आदि ऐसी ही कृतियाँ हैं। जो रचनाएँ एक व्यक्ति का कृति जान पड़ती हैं उनमें भी वह व्यक्ति समाज की चेतना का माध्यम अथवा निमित्त बन गया है। सामाजिक भाव की प्रेरणा से ही यह व्यक्ति ऐसी महान् सांस्कृतिक रचनाएँ दे सके हैं। कालिदास मूरत्तम तुलसीदास आदि के काव्य उनकी 'व्यक्तिगत रचनाएँ' अवश्य हैं किन्तु जो सुन्दर और कल्याणमय हूँ इन रचनाओं का मित्त है वह सामाजिक भावना की प्रेरणा से ही सम्भव हो सका है। व्यक्तिगत भाव से ऊपर उठकर कालिदास की कला भारतवर्ष की प्रकृति और उसके जीवन के साथ एकरस हो गई है। मूर और तुलसी की कला में उनका व्यक्तिगत भाव उनके भक्तिभाव में निमग्न हो गया है। रचना का यह सामाजिक भाव वेद पुराण और महाभारत में भी मिलता है। वाइविन और कुरान का भावित्व किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं है। वेदों के बनाने वाले ऋषियों की संख्या बहुत है। पुराणों और महाभारत को वेदव्यास का रचना माना जाता है। किन्तु कदाचित् वे एक व्यक्ति की रचना नहीं है। संस्कृत साहित्य के इतिहासकार भी उन्हें अनेक व्यक्तियों का रचना मानते हैं। अपने दृष्टिकोण से वे इसे दोष मानते हैं किन्तु सांस्कृतिक

दृष्टिकोण से यह दोष नहीं है। अनेक यक्षिया के सहयोग में ये रचनाएँ अधिक सांस्कृतिक बन गई हैं। प्राचीन भारतीय साहित्य का यह साहित्यिक गुण एक ऐसी विशेषता है जिसका उदाहरण व्यक्तिवादी पश्चिम के साहित्य में मिलना कठिन है।

इतिहास काव्य और घटनाओं की सब कृतियाँ रचनात्मक होने के नाम से सस्कृति का अंग मानी जाती हैं। किन्तु महाभारत जमी कृतियाँ जो अनेक कर्त्ताओं के सहयोग से बनती हैं अधिक सांस्कृतिक बनी जायगी। व्यक्तिगत कृतियाँ में भी सामाजिक भाव और उद्देश्य जिन कृतियाँ में जितना अधिक होता है उह सस्कृति के इतिहास में उतना ही अधिक महत्त्व दिया जाता है। महाभारत रचना, भाव और उद्देश्य तीनों ही दृष्टियाँ से अधिक सामाजिक है अतएव अधिक सांस्कृतिक है। प्राचीन भारत में जो लोक-काव्य की परम्परा प्रचलित थी उसी का पूरा परिणाम महाभारत में प्रगट है। सस्कृत साहित्य के इतिहासकार भी यह मानते हैं कि मृत चारण आदि जो कौन कथाएँ गाया करते थे उही की विनाश परम्परा का समाहार महाभारत में हुआ है। सामाजिक भावों और उद्देश्यों से भी महाभारत परिपूर्ण है। इस प्रकार सस्कृति के सामान्य दृष्टिकोण से महाभारत एक महत्त्वपूर्ण सांस्कृतिक रचना है।

भारतीय सस्कृति के विशेष भाव भी महाभारत में सुन्दर और प्रभावशाली रूप में साकार हुए हैं। भरतवर्गी वीरों का चरित्र भारतीय इतिहास की एक ओजस्वी परम्परा है। रचना होने के साथ साथ सस्कृति एक परम्परा भी है। इतिहास की घटनाएँ, इतिहास के पात्र, इतिहास के आदर्श आदि जब समाज की प्रतिष्ठित परम्परा बन जाते हैं तो उनका सांस्कृतिक महत्त्व बढ़ जाता है। जिन का या में ऐसा परम्पराएँ अंकित होती है तथा जो काव्य एसा परम्पराओं के वाहक बन जाते हैं वे लोक की निधि बन जाते हैं। ये परम्पराएँ जन साधारण की सम्पत्ति बनजाता है। प्रत्येक मनुष्य इनमें परिचित होता है और इनको अपना मानता है तथा इनसे प्रेरणा लेता है। महाभारत के वीरों का कथाय तथा उनके अर्थ उपाख्यान ऐसी ही परम्पराएँ हैं। भीष्म का ब्रह्मचर्य और राज्यत्याग युधिष्ठिर का सत्य भाव का बल, अर्जुन का पराक्रम द्रुपद का पानिब्रत, कुन्ती का धर्म काय का लान, श्री कृष्ण की उदारता आदि भारतीय समाज के आदर्श बन गये हैं। जन जन इन जादुओं का मान देता है और

इनम प्ररणा सता है । प्रागगिक उपास्यानों म भी सावित्री और दममता क पानिद्रत क एम आनन मिलत है, जा भारतवष क घर घर म प्ररणा भरत है । दूगरी आर दुयोंधन, गबुनि, दुगामन आनि बी मनीनि आदन न इन दृण भी एव परिचित परम्परा बन गई है । घर घर म इन परम्पराओं का चर्चा होती है और बाल-बाल म महाभारत क अछ बुने पापों क उगाहरण निध जात है । इस प्रकार महाभारत का इतिहासिक काय हमारी सांस्कृतिक परम्परा का एक विगात सागर है । इसी सांस्कृतिक महत्त्व क कारण प्राचीन कान से ही मंदिरा तथा मावजनिक स्थाना पर महाभारत का गायन जीर पारायण जाता रहा है । महाभारत क गायन की यह प्रथा यह सक्त करनी है कि महाभारत भारतीय सस्कृति का आनय नो नहीं है बरन् वह भारतीय क सांस्कृतिक जीवन का एक आजस्वी आधय भी है ।

धमशास्त्र भी सस्कृति का अग है । वर्णों और आथमा क कर्त्तिया क जिम रूप म महाभारत म धम का निवरण किया गया है, धम का वह रूप भारतीय जीवन का जग रह है । य आचार और कत्तव्य हमारे सामाजिक जीवन के पथप्रदग्व रह है । इतिहासिक पाथा क जादन और धार्मिक आचार दोनों ही रूपो म महाभारत भारतीय सस्कृति का भाण्डार ह । तीर्थों के वरण तथा व्रता के उपनेग सस्कृति के इस भाण्डार का और सम्पन्न बनात है । इस प्रकार भारतीय परम्परा के विभिन्न अङ्गा का यह सुन्दर वाध्य भारतीय सस्कृति का एक विगात कोप बन गया ह । आचार और महत्ता दोनों ही दृष्टि से यह भारतीय सस्कृति के गौरव क अनुरूप है । भारतीय जीवन की परम्परा से एकाकार हाकर महाभारत का इतिहासिक, साहित्यिक और धार्मिक महत्त्व सजीव और परिपूरण रूप म उसके सांस्कृतिक महत्त्व का सुरक्षित बनाता ह ।

महाभारत की आधुनिक आलोचना

१—आधुनिक आलोचना का दृष्टिकोण—

भारतीय परम्परा में महाभारत को एक सांस्कृतिक महाकाव्य और धर्मशास्त्र माना जाता है। उसे पंचम वेद की पदवी दी गई है। ऋग्वेद और धर्मशास्त्रों के समान ही उसे एक पवित्र ग्रन्थ माना जाता है। लगभग दो हजार वर्षों से महाभारत वर्तमान गतसाहस्री संहिता के रूप में प्रसिद्ध एवं प्रचलित है। पाँचवीं गतांती के दानपत्रों में महाभारत की इस प्रतिष्ठा के प्रमाण मिलते हैं।^१ ईसा की पहली गतांती के मध्य में दक्षिण आने वाले ट्रायडिस्मोस नामक यात्री ने लिखा है कि उसके समय में एक लाख लोकों का महाभारत (जिसे उसने भारत का इलियड कहा है) प्रसिद्ध एवं प्रचलित था।^२ इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं कि महाभारत की कथा मंदिरों में गाई जाती थी और जनममूह उसे श्रद्धा से सुनते थे।^३ भारतवर्ष में ही नहीं बल्कि पूव एशिया के उन देशों में भी महाभारत का प्रचार था जिनमें भारतीय संस्कृति का विस्तार हुआ था।^४ ईसा की पूव गताब्दियों में भी महाभाग्न क नाम का उल्लेख मिलता है।^५ किन्तु आधुनिक विद्वान् इस महाभारत की गतसाहस्री संहिता का प्रमाण नहीं मानते। उनका मित्रात विकामवाणी है। उनके मतानुसार महाभारत के वर्तमान रूप का विकास कई चरणों में हुआ है। कई संस्करणों और अनेक प्रयोगों के द्वारा महाभारत की गतसाहस्री

१—मकडोनल ए हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर—पृष्ठ २८६

२—सी० वी० वद्य महाभारत भाषाशास्त्र—पृष्ठ ४३

३—मकडोनल ए हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर—पृष्ठ २६०

४—वही पृष्ठ २६०

५—वही पृष्ठ—२८७

सहिता का रूप निर्धारित हुआ है।^१ पश्चिमी विद्वानों का ध्यान महाभारत का सामग्री और उसका रचना काल का ऐतिहासिक और वचनानुसृत विवेचन की ओर रहा है। वे भारतीयों की भाँति महाभारत का श्रद्धा का विषय नहीं मानते। उनका लिए वह ऐतिहासिक आलाचना का विषय है। उन ऐतिहासिक आलोचना के प्रसंग में वे उन बातों को कोई महत्त्व नहीं देते जो भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार महत्त्वपूर्ण हैं। महापि बद्ध्यास की वृत्ति तथा प्राचीन भारतीय वीरों की क्या होने का कारण भारतीय जनता की महाभारत के प्रति गहरी श्रद्धा रही है। जनभय और गौणत्व के यथा म उसका पारायण होना का कारण वह एक धार्मिक कथा बन गई है। धर्मशास्त्र का समान धर्म का विस्तृत विवरणों तथा भगवान् श्रीकृष्ण के नेतृत्व के कारण महाभारत का धार्मिक रूप ही प्रमुख बन गया है। इसी कारण भारतीय जनता युगों से श्रद्धा का साथ महाभारत का श्रवण और गायन करती रही है। रंगमंचों में क पूव महाभारत की शतसाहस्री सहिता का कोई प्रमाण अभी तक नहीं मिला है। किन्तु इमन यह भी सिद्ध नहीं होता है कि ईसावी सन् के पूव महाभारत की गतसाहस्री सहिता वतमान नहीं थी। महाभारत के आकार का विस्तार हुआ भी हा तो भी सम्भवत महाभारत के वे अक्ष उसम ईसा के पूव की गतादिया में भी रह हागे और उस समय भा महाभारत का स्वरूप एसा रहा हागा जिसका कारण का भारतीयों की श्रद्धा का विषय बना।

अस्तु भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार महाभारत मुख्यत एक धर्मशास्त्र है। इसी रूप में और इसी कारण वह युगों से भारतीयों की श्रद्धा का कारण रहा है। किन्तु पश्चिमी विद्वानों ने उसे श्रद्धा का विषय न मानकर ऐतिहासिक आलाचना का विषय माना है। धर्म से ईसाइ होने का नाम भारतीय धर्मशास्त्र उनके लिए श्रद्धा का विषय नहीं बन सकता। यदि धार्मिक दृष्टिकोण में नहीं तो एक आदरपूर्ण सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी वे भारतीय साहित्य के ग्रन्थों का नहीं देख सकते। डा० सुकथानकर ने महाभारत का प्रति पश्चिमी विद्वानों के अनुसार दृष्टिकोण की आलाचना की है।^७ उन्होंने पश्चिमी विद्वानों का दृष्टिकोण से प्रभावित भारतीय विद्वानों

६—विनरनिस्स ए हिस्ती आव इण्डियन लिटरेचर—भाग १ पृष्ठ—३१६

७—डा० सुकथानकर भारतीय साहित्य—पृष्ठ २५

तो भारतीय दृष्टिकोण से महाभारत का अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया है।^{१७} श्रद्धा और भावना से रहित हान के कारण महाभारत के प्रति पश्चिमी विद्वानों का दृष्टिकोण केवल ऐतिहासिक और वचनानुसंधान है। वे एक निष्पक्ष और तटस्थ दृष्टिकोण से महाभारत आदि भारतीय ग्रन्थों के अध्ययन का दावा करते हैं। उनकी आलोचनाओं में भारतीय साहित्य और सस्कृति के प्रति एक तिरस्कार का भाव दिखाई देता है जो अत्यन्त शांतिपूर्ण है। यह भाव उनकी वचनानुसंधान आलोचनाओं को भी विकृत बना देता है। इसी भाव से प्रेरित होकर उन्होंने महाभारत आदि के सम्बन्ध में अनेक जनगल कल्पनायें की हैं। डा० सुकथानकर ने अपने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ^{१८} में इन आलोचनाओं का उल्लेख और खण्डन किया है।

पश्चिमी विद्वानों के ऐतिहासिक और वचनानुसंधान दृष्टिकोण के अनुसार महाभारत किसी एक व्यक्ति और एक काल की रचना नहीं है।^{१९} उनके अनुसार अनेक शताब्दियों में कई व्यक्तियों के द्वारा तथा अनेक प्रकार की सामग्री के सम्मिश्रण से महाभारत के वर्तमान रूप का निर्माण हुआ है। उन्होंने महाभारत के वचनानुसंधान में इस सामग्री के विभिन्न तत्वों के विश्लेषण और उनके काल निरूपण का प्रयत्न किया है। कई कारणों से प्राचीन भारतीय अध्ययन में ऐतिहासिक तिथियों का निरूपण कठिन हो जाता है। एक मुख्य कारण तो भारतीय इतिहास की प्राचीनता है। किन्तु पश्चिमी विद्वानों के अनुसार उसका मुख्य कारण यह है कि प्राचीन भारतवासियों का इतिहास के वचनानुसंधान रूप में रचित नहीं था। कुछ विद्वान् तो भारतीयों पर ऐतिहासिक वृत्ति के अभाव का दोष लगाते हैं।^{२०} पश्चिमी विद्वानों के इस दोषारोपण का कारण यह है कि प्राचीन भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में तिथियों का निरूपण करना कठिन है। कालक्रम के निश्चय का कठिनाई के कारण ही

८—मोनिंग आव महाभारत पृष्ठ ३१

८—मोनिंग आव महाभारत

१०—विन्टरनिस्स ए हिस्ट्री आव सस्कृत लिटरेचर भाग १, पृष्ठ ३२६

सुकथानकर मोनिंग आव महाभारत—पृष्ठ ८

११—मकडोनल ए हिस्ट्री आव सस्कृत लिटरेचर—पृष्ठ—१०

पश्चिमी विद्वान् भारताय परम्परा म इतिहास का अभाव दगन हैं । द्विटनी न अपने ससृृत व्याकरण की भूमिका म लिखा है कि भारतीय साहित्य के इतिहास की तिथियाँ उन कीला के गमान हैं, जिनको एक बार लगान क बाद बार-बार उगाडना पडता है ।^{१२} बितरन्तिस का मत है कि प्राचीन भारतीय साहित्य क सम्बन्ध म कोई निश्चित तिथियाँ नहा दी जा सकती ।^{१३} पार्जोटर का मत है कि भारतीय ने कोई इतिहास-ग्रन्थ नहा लिखे हैं ।^{१४} यह ठाक है कि प्राचीन भारतीय इतिहास म तिथियाँ का निणय करना कठिन है । इसका एक कारण तो भारतीय इतिहास की प्राचीनता है । इतने प्राचीन काल के सम्बन्ध मे, जबकि कदाचित् कोई सम्बत् आदि भी प्रचलित नही थ तिथियाँ और कालक्रम का निणय कठिन होना कोई आश्चर्य की बात नही है ।

अवाचीन देगो के इतिहास की स्थिति से एक प्राचीन दग का तुलना करना उचित नही है । प्राचीनता क अतिरिक्त ग्रीस, असीरिया मिस्र आदि की तुलना म भारतवर्ष की विगासता और इतिहास की विपुनता भी उक्त कठिनाई को बलाती है । दूसरी बात यह है कि पश्चिमी देगो के लौकिक और वहिमुख दृष्टिकोण की तुलना म भारतीय का दृष्टिकोण आध्यात्मिक और आन्तरिक रहा है । आध्यात्मिक दृष्टिकोण मे ऐतिहासिक वृत्त गाशवा अथ के वाहक बन जाते है । रामायण और महाभारत के वृत्त यथाथ होत हुए भी गाशवतभावा के वाहक बन गये हैं । इतिहास के इस रूप म काल का महत्त्व बहुत कम हो जाता है । इसी कारण प्राचीन भारतीय इतिहास म कालक्रम का महत्त्व बहुत कम हो गया है । प्राचीन ग्रन्था के रचयिताआ ने भी अपने नाम स्थान समय आदि लौकिक तथ्या को ध्यान नही लिया है । उनका यह दृष्टिकोण भी आध्यात्मिक प्रभाव को प्रमाणित करता है ।

किन्तु प्राचीन वृत्तो की यथाथता के प्रति भारतीय का आन्तर रहा है । महाभारत म कौरव पाण्डवा के जन्म छून वनवास आदि अनेक मगो की

१२—द्विटनी ससृृत ग्रामर—भूमिका

डा० मुक्यनकर मीनिंग आव महाभारत—पृष्ठ-६

१३—बितरन्तिस हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर—प्रथम भाग—प० २५—२६

१४—पार्जोटर एन्ट इण्डियन हिस्टोरीकल टोडीगन पृष्ठ-२

कठोर यथार्थता महाभारत की ऐतिहासिकता का संकेत करता है। प्राचीन वृत्त के अर्थ में इतिहास की भारतीय परम्परा बहुत प्राचीन है। ब्राह्मण, आरण्यक उपनिषद् आदि प्राचीन ग्रन्थों में इतिहास शब्द का उल्लेख मिलता है।^{१५} वदिक युग के अवसर पर इतिहास की कथाएँ कही जाती थीं। महाभारत से ही विदित होता है कि जनमेजय के सपथन में बर्मापयन तथा गौतम व द्वादशवर्षीय मंत्र में उपश्रवा मूर्ति ने महाभारत सुनाया था। महाभारत में इतिहास का जो परिभाषा मिलती है उसमें भी कथावृत्त तथा उसने आध्यात्मिक प्रयोजन का ही महत्त्व माना गया है।^{१६} इतिहास के आध्यात्मिक प्रयोजन के कारण ही उसमें धर्मशास्त्र के तत्त्वा का समावेश हुआ गया है। इसी दृष्टिकोण के कारण हमारे प्राचीन इतिहास काव्यमय हैं। भारतीय आत्मा के आध्यात्मिक स्थात से ही धर्म दर्शन इतिहास आदि के क्षेत्र में काव्य की सहस्रधारियों प्रवाहित हुई हैं। रामायण और महाभारत के इतिहास भी काव्यमय हैं। भारतीय परम्परा में जहाँ एक ओर इनकी गणना इतिहास के अन्तर्गत की जाती है वहीं दूसरा ओर इन्हें काव्य भी माना जाता है। वाल्मीकि की रामायण तो आदिकाव्य कहा जाती है। महाभारत भी छन्द गली, सौन्दर्य अलंकार आदि अनेक दृष्टियाँ से काव्य के गुणों से परिपूर्ण है। रामायण और महाभारत दोनों का ही इतिहास के साथ-साथ महाकाव्य भी माना जाता है। वस्तुतः इसमें काव्य के अनेक गुण वर्तमान हैं किन्तु उनका ऐतिहासिक महत्त्व भी कम नहीं है।

सामान्यरूप से भारतीय साहित्य तथा विज्ञान महाभारत के प्रति पश्चिमी विद्वानों का दृष्टिकोण भारतीय चेतना के ऐतिहासिक बोध के प्रति सदृश में भरा है। उनकी आलोचना का दृष्टिकोण ऐतिहासिक है। किन्तु उनका निर्याय भारतीय साहित्य में ऐतिहासिकता की दृष्टि से दोष ही अधिक देखते हैं। महाभारत के युद्ध की घटना और महाभारत के ग्रन्थ की रचना के

१५—विन्तरनिस्त ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर—भाग १—पृ० ३१३

१६—धर्मयुक्तमोक्षानामुपदेशमन्वितम् ।

पूर्ववृत्त कथायुक्तमितिहास प्रचक्षते ॥

नलिन बिलोचन शर्मा साहित्य का इतिहास दर्शन—पृष्ठ—२

सम्बन्ध में विभिन्न पश्चिमी विद्वानों ने विभिन्न अनुमान लगाये हैं। विरोधी होने के साथ साथ ये अनुमान अनिश्चयपूर्ण भी हैं। यद्यपि इन अनिश्चय का दोषारोपण के भारतीय साहित्य में ऐतिहासिक प्रमाणा के अभाव पर करते हैं। ऐतिहासिक होने के साथ साथ महाभारत के सम्बन्ध में पश्चिमी विद्वानों का दृष्टिकोण विकासवादी है। वे बर्दिक आर्याना और प्राचीन वीरगाथाओं में महाभारत का बीज खोजते हैं। उनके अनुसार महाभारत का मूल रूप कौरव पाण्डवों के युद्ध का कोई छाटा सा महाकाव्य है। कई विद्वानों ने वर्तमान महाभारत के प्रक्षिप्त अंगों को अलग करके इस मूल महाभारत का रूप स्थिर करने का प्रयत्न भी किया है। डाका मत है कि कालान्तर में जय अनेक उपार्याय महाभारत में सम्मिलित हो गये तथा द्राह्मणा में द्राह्मण धर्म का सम्मिश्रण करके महाभारत को वर्तमान विंगाल रूप दिया। इन विद्वानों के अनुसार जय भारत और महाभारत के तीन रूपों में महाभारत के तीन संस्करण हुए हैं और इन तीन संस्करणों में उत्तरोत्तर महाभारत का स्वरूप सन्ध्या जाती गई है तथा अपने अन्तिम रूप में महाभारत एक लाख श्लोकों का ग्रन्थ बना है।

पश्चिमी विद्वानों के प्रभाव से अधिकांश भारतीय विद्वान् भी महाभारत के इस विकासवादी सिद्धांत का मानते हैं। संस्कृत साहित्य के भारतीय इतिहासों में पश्चिमी विद्वानों के इस मत का समर्थन मिलता है। पश्चिमी आलोचना के महाभारत सम्बन्धी इस विकासवादी मत का दृष्टिकोण काय का दृष्टि से महाभारत के प्रबंध तथा महाभारत के वर्तमान रूप में मिलने वाले विभिन्न धार्मिक तत्व के प्रति अय्यायपूर्ण है। पश्चिम के छोटे महानाट्यों के आधार पर वे विषय का एकमूर्तता तथा विचारों की एकता को महाकाव्य का आवश्यक तत्त्व मानते हैं। महाभारत के विंगाल प्रबंध में उक्त एकमूर्तता तथा मिलने वाले विचारों का दृष्टि में भी वे इसमें विराट् अन्तर्भाव करते हैं। महाभारत के धार्मिक तत्व उनके मन में द्राह्मणा के द्वारा पीढ़े में जाते गये हैं तथा वे महाभारत का सम्पूर्ण यात्रा का माय मन्त्र नहीं हैं। कई व्यक्तियों और कई वातावरणों की रचना ज्ञान के कारण महाभारत अनेक विषयों का एक विंगाल गठन बन गया है। महाभारत के इस वर्तमान विंगाल रूप में उमराव प्राधान्य रूप में का कितना पुनर्जात गया है। पश्चिमी विद्वानों के प्रभाव में प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् श्री रामानुज दत्त ने भी इस मूल महाकाव्य का ज्ञान पर एक अन्तर्भाव किया

है।^{१७} भारतीय विद्वानों में महाभारत के महान् अधिकारी डा० सुकथनकर ने पश्चिमी विद्वानों के इस दृष्टिकोण का प्रतिवाद किया है। डा० सुकथनकर के मत में महाभारत सम्बन्धी ऐतिहासिक खोज लक्ष्य से दूर चली जाती है, वह महाभारत के मुख्य तात्पर्य का भूल जाती है।^{१८} उनके मत में महाभारत का प्रबन्ध बहुत बुद्ध सुगठित है। उमम ऐसी विशृंखलता नहीं है जसी कि पश्चिमी विद्वान् देखते हैं।^{१९} पश्चिमी विद्वान् महाभारत के धार्मिक अंगों को एक अवातर तत्त्व मानते हैं, वे उन्हें प्रक्षेप कहते हैं। किन्तु डा० सुकथनकर ने यह धारणा प्रकट की है कि धार्मिक अंग महाभारत के मूल लक्ष्य के अनुबूल हैं और वे उसके अभिन्न अंग हैं।^{२०} उन्होंने यह निर्देश किया है कि ऐतिहासिक खोज को छोड़कर हम महाभारत के उस वर्तमान रूप को महत्त्व देना चाहिए जो भारतवर्ष में युगा से लोकप्रिय रहा है।^{२१} पश्चिमी विद्वानों में केवल एक दाल्हमान का मत डा० सुकथनकर के अनुबूल है। दाल्हमान भी महाभारत को एक सुगठित प्रबन्ध मानते हैं तथा उनके अनुसार महाभारत के धार्मिक अंग उसके अभिन्न अंग हैं। किन्तु अधिकांश पश्चिमी विद्वान् दाल्हमान के इस मत से सहमत नहीं हैं तथा वे उमी ऐतिहासिक और विकासवादी दृष्टिकोण के पापक हैं जिसका निर्देश ऊपर के विवरण में किया गया है।

२ पश्चिमी आलोचकों के मत—

डा० सुकथनकर ने अपने महाभारत सम्बन्धी भाषण माला के पहले भाषण में महाभारत के पश्चिमी आलोचकों के मतों का विवरण दिया है। उनके इस अमूल्य ग्रन्थ के आधार पर ही प्रस्तुत प्रकरण में इन पश्चिमी आलोचकों के मतों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। आनन्दतीर्थ श्री मन्वाचार्य ने अपने महाभारत-तात्पर्य-निर्णय में लिखा है कि महाभारत देवताओं के

१७—	डा० सुकथनकर	मीनिंग आव	महाभारत—	पृष्ठ ४
१८—	वही	"	"	पृष्ठ १८
१९—	वही	"	"	पृष्ठ १२४
२०—	वही	"	"	पृष्ठ ६६
२१—	वही	"	"	पृष्ठ ३१

द्वारा भी दुविधेय है।^{२२} आनन्दतीर्थ के इस वचन का अपन प्रथम भाषण के मंगलाचरण म उल्लेख कर डा० मुक्कयनकर न महाभारत व प्रसिद्ध विद्वान् ओल्डनवग के मत का सबसे पहले उल्लेख किया है। ओल्डनवग के मत म महाभारत का आरम्भ एक सरल वचावाच्य व रूप म हुआ था। किन्तु कालान्तर म वह असत्य असगतिया से पूरा एक विशृंखल सकलन बन गया।^{२३} ओल्डनवग का विद्वान्त था कि महाभारत के मूल रूप म छोटी कीर्ति-वचयों गद्य व सूत्रा से जुड़ी हुई थी। ओल्डनवग व मत मे महाभारत के धार्मिक अंश प्रक्षेप हैं। महाभारत के अध्ययन व आरम्भ स ही पश्चिमी विद्वाना के विचार और उनकी खाज वसी दिशा म अग्रसर रही है। पश्चिमी विद्वान् इस विनाल ग्रन्थ के स्वरूप को समझने म असमर्थ रह है जिसका धार्मिक अंग वचा भाग से चौगुना है।^{२४} उनकी खाज के प्रयत्न महाभारत के मूल और प्रक्षिप्त अंश को अलग करन म लग रह है।^{२५}

महाभारत की पश्चिमी आलोचना की यह दिशा आरम्भ से ही रही है। सन् १८२६ मे जमन विद्वान् वीप ने यह मत प्रकट किया था कि महाभारत क सभी अंग एक समय की रचना नहीं है। वीप के वाद लासन न वीप के मत का समर्थन किया और महाभारत के विभिन्न अंगो को अलग-अलग करन की चेष्टा की। लासन के अनुसार शौनक के सत्र म जिस महाभारत का पाठ हुआ था वह उसका दूसरा संस्करण है। आश्वलायन गृह्यसूत्र मे उल्लिखित महाभारत का यही रूप था। इसके काल का अनुमान लासन न ईसा से ४०० वष पूर्व लगाया है। लासन का मत है कि वृष्ण के प्रभुत्व के अनुरूप अंग

२२—डा० मुक्कयनकर मीनिंग आव महाभारत—पृष्ठ—१

दुविज्ञेय अत सर्वे
भारत तु सुररवि ।

आनन्दतीर्थ मध्वाचार्य महाभारत तात्पर्य निरणय—२/१४६

२३—डा० मुक्कयनकर मीनिंग आव महाभारत—पृष्ठ—१

२४—डा० मुक्कयनकर मीनिंग आव महाभारत—पृष्ठ—४

२५—डा० मुक्कयनकर मीनिंग आव महाभारत—पृष्ठ—४

महाभारत में इसका बाद जोड़े गये हैं।^{२६} डा० सुकथनकर का मत है कि लासन यह नहीं समझ सके कि कृष्ण के प्रभुत्व के अंश निकाल देने के बाद महाभारत एक निष्पाण ग्रंथ रह जायगा।^{२७}

लासन के बाद सौरनसन ने महाभारत के मूलग्रंथ का उद्धार करने का प्रयत्न किया, जो ऊर पाठ के नाम से प्रसिद्ध है। वाय ने महाभारत के मूल पाठ के निर्धारण को एक ऐसी समस्या बताया है कि जा अब सुलभने योग्य नहीं है।^{२८} सौरनसन के बाद किसी ने ऐसा प्रयत्न नहीं किया फिर भी पश्चिमी विद्वान् महाभारत के मूल रूप के सम्बन्ध में सिद्धांतों की कल्पना और उस मूल रूप के निर्धारण का कसौटिया का विवेचन करने लगे। लुटविग ने असक्तियाँ, प्रयासा आवृत्तियाँ आदि को इस कसौटी के महत्वपूर्ण तत्व बताया। डा० सुकथनकर का विश्वास है कि ये कसौटिया विश्वसनीय नहीं हैं तथा इनके अनुसार महाभारत की सामग्री का विश्लेषण एक प्रकार से व्यक्तिगत धारणा का आग्रह मात्र है।^{२९}

महाभारत की सामग्री के विश्लेषण का यह प्रयास अमरीकन विद्वान् हौपकिंस के अध्ययन में अपनी चरमसीमा को पहुँचता है। हौपकिंस ने भी महाभारत में एकसूत्रता का अभाव पाया है तथा उसके विभिन्न अंशों को विभिन्न कालों की रचना बताया है। उन्होंने इन विभिन्न अंशों के विश्लेषण और काल निर्धारण का प्रयत्न किया।^{३०} कित्तरनित्म जादि मस्कृत साहित्य के इतिहासकारों ने भी इसी मत का समर्थन और इसी प्रणाली का अवलम्बन किया है।

होल्ममन नामक एक जर्मन विद्वान् ने महाभारत के सम्बन्ध में एक अद्भुत सिद्धांत प्रतिपादित किया है, जिसे महाभारत की आलोचना के

२६—डा० सुकथनकर भीतिग आर महाभारत—पृष्ठ—५

२७—वही ' —पृष्ठ—५

२८—वही ' " —पृष्ठ—७

२९—वही " ' —पृष्ठ—७

३०—वही " " —पृष्ठ—६

इतिहास मे 'विषय का सिद्धांत' कहा जाता है। विदेशी विद्वानो को महा भारत के अतगत अनेक विराध दिखाई दते है। उनम एक प्रमुख विरोध यह है कि एक ओर पाण्डवो के पक्ष को धम का पक्ष बताया गया है किन्तु दूसरी ओर महाभारत मे यह स्पष्ट है कि पाण्डवो ने भीष्म, द्रोणाचार्य वण आदि महा रथिया के वध के लिए अनीति और अधम का माग अपनाया। इस विराध का समाधान होल्जमान ने इस प्रकार किया है कि मूल महाभारत कौरवो की प्रशसा का काव्य था किन्तु बाद म उसे पाण्डवो के अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया। इस प्रकार महाभारत की रचना म विकास नही विषय हुआ है।^{३५} डा० सुकथनकर ने होल्जमान के विचारो को अनगल बताया है। होल्जमान के अनुसार महाभारत का वतमान रूप १२०० ईसवी स पहल उपलब्ध नही था। बूलर आदि विद्वानो न एतिहासिक खोजो के आधार पर होल्जमान के इस मत का खण्डन किया है। पाँचवी गताब्दी के दानपत्र महाभारत की गत माहसी सहिता का प्रमाणित करते है।^{३२}

फिर भी श्रौयडर आदि विद्वाना न होल्जमान के विषय के सिद्धांत का समयन किया। श्रौयडर ने जो इस सिद्धांत को नवीन रूप दिया, उमक अनुसार मूल महाभारत की रचना कुरदेग के कवियो ने की और उसम कुर जाति की वीरता का वण था। कुरजाति को पाण्डवा न जो पाचाल देग के अधम से पराजित किया। मूल महाभारत म पाण्डवों का पक्ष अधम का पक्ष था। बाद म जब कृष्ण भगवान् बन गय तो विजयी पाचाला क समयन मे ब्राह्मण पुरोहिता न महाभारत को पाण्डवा क अनुकूल बनाने का प्रयत्न किया।^{३३} होल्जमान न अपन मत का समर्थन करने क लिए पाण्डवा का उन अनानिया की आर सकेत किया है जा उहनि भाष्म द्राण और वण वष क लिए अपनाइ। किन्तु आश्रय का वान है कि उहनि कौरवा की अनीति का आर ध्यान नहा लिया। डा० सुकथनकर ने बताया है कि कौरवा न पाण्डवा क वध क लिए घोरतर अधम का अवतम्बन किया था किन्तु उनक अधम क पीछे दान और कुण्डला की चतुर नाति था। उहनि पाण्डवा का

३१—डा० सुकथनकर मौनिय आध महाभारत—पृष्ठ—१४

३२—वही —पृष्ठ—१५

३३—डा० सुकथनकर मौनिय आध महाभारत—पृष्ठ—१६

जीवित जलाने का आयोजन किया था। पाण्डवा के दूत श्रीकृष्ण को भारत का प्रयत्न किया अजुन का हृदय दुबल बनाने के लिए उन्होंने छल से अभिमन्यु का वध किया। कौरवों के यह अधम पूर्वतर और घोरतर हैं। इनकी तुलना में पाण्डवा की नीति कहीं अधिक सरल और क्षम्य है।^{३४} डा० सुकथनकर का यह मत होल्डरमान के विषयय सिद्धांत का स्पष्ट खण्डन करता है। उनके मत में कौरव और पाण्डवा की नीति में जो अंतर दिखाई देता है वह मनुष्य के भीतरी और बाहरी रूप का अंतर है। कौरव-पाण्डवों का युद्ध मनुष्य के व्यक्तित्व के दो पक्षों का सघष है। यही सघष महाभारत को एक अमर ग्रंथ बनाता है।^{३५}

महाभारत के विभिन्न अंशों के विश्लेषण के प्रयास निष्फल होने पर कुछ पश्चिमी विद्वानों ने महाभारत को समग्र रूप से देखने का प्रयत्न किया। इनमें दाल्हमान का प्रयत्न सबसे अधिक अभिनंदनीय है। दाल्हमान को महाभारत के विशाल ग्रंथ में लक्ष्य और प्रयाजन की एकता दिखाई दी। उनके सिद्धांत को ह्रीपकिंस ने 'सश्लेषण का सिद्धान्त' कहा है जो अथ विद्वानों के विश्लेषण के सिद्धान्त से विपरीत है। दाल्हमान के अनुसार महाभारत अमंगल अंगों का सक्लन नहीं है। उसके प्रबंध और लक्ष्य में एकमूर्तता है। दाल्हमान महाभारत को एक महाकाव्य के साथ साथ धर्मशास्त्र भी मानते हैं। उसके धार्मिक अंग प्रक्षिप्त नहीं हैं वरन् उसका आरम्भ से ही धार्मिक रूप है। दाल्हमान का यह मत अथ पश्चिमी विद्वानों के विपरीत है किन्तु वस्तुतः वे महाभारत के स्वरूप को दूसरा ही अपेक्षा अधिक सही समझ सकते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि महाभारत के प्रबंध की एकमूर्तता तथा उसके धार्मिक अंगों की प्रधानता के सम्बन्ध में दाल्हमान का मत कुछ अनिरक्षित है फिर भी दाल्हमान का मत अथ पश्चिमी विद्वानों की अपेक्षा सत्य के अधिक निकट है। डा० सुकथनकर ने दाल्हमान के मत का आदर किया है, यद्यपि उनके कुछ विचारा से वे असहमत भी हैं। दाल्हमान महाभारत को इतिहास नहीं मानते वरन् भारतीय धर्मशास्त्र का एक प्रतीक मानते हैं। द्रौपदी का

३४—डा० सुकथनकर मीनिंग आव महाभारत—पृष्ठ—१७

३५—वही

"

"

—पृष्ठ—१६

पञ्च-पतित्व हिन्दू परिवार की एकता का प्रतीक है। महाभारत का युद्ध ऐतिहासिक नहीं बरन् धम और अधम के युद्ध का प्रतीक है। दाल्हमान से पहले लुडविग ने भी महाभारत को एक प्रतीक माना था। उनके अनुसार पाण्डव पाँच ऋतुआ के और द्रौपदी पृथिवी की प्रताक हैं। द्रौपदी का चौर हरण गिगिर की गन पृथिवी का प्रतीक है। लुडविग के पहन लासन न भी प्रतीक के रूप में महाभारत की व्याख्या करने का प्रयत्न किया है। भारतीय विद्वाना में प्रिंसीपल थडानी न महाभारत को विभिन्न भारतीय दर्शनो और मन्त्रदायो की प्रतीकात्मक व्याख्या माना है।

डा० मुखयनकर का मत है कि महाभारत एक ओर एक ऐतिहासिक काव्य भी है तथा दूसरी ओर एक धमशास्त्र भी है। ऐतिहासिक आधार के कारण ही यह भारतीय जनता में इतना लोकप्रिय रहा है। महाभारत के पात्र और उसकी घटनायें केवल प्रतीक नहीं हैं बरन् वे वास्तविक तथ्य भी हैं। किन्तु इनके साथ साथ वे जीवन के गम्भीर सिद्धांतों के प्रतीक भी बन गये हैं। इस प्रकार महाभारत एक ऐतिहासिक काव्य होने के साथ साथ मनुष्य समाज के सघर्षों का एक अमर प्रतीक भी बन गया है। महाभारत के धार्मिक अर्थ उसके अभिन्न अंग हैं तथा उसका वर्तमान रूप बहुत प्राचीन है। पश्चिमी विद्वानों के विश्लेषण अथवा विषय के सिद्धांत तथा अथ ऐतिहासिक खोजों से महाभारत के वर्तमान रूप की समग्रता का तिरस्कार करती हैं अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। पश्चिमी विद्वानों की अनेक मायतायें अनगण और जापति जनक भी हैं। भारतीय साहित्य व सम्बन्ध में ही ऐसी अनगल कल्पनायें पश्चिमी विद्वान् करते रहे हैं और भारतीय विद्वानों की ओर से इनके प्रतिवाद का बहुत कम प्रयत्न हुआ है। यह भारतवर्ष के लिए अत्यन्त गौचनीय बात है। डा० मुखयनकर के महाभारत सम्बन्धी भाषण इस सम्बन्ध में एक अपवाद के दृष्टिकोण से होना चाहिए तथा महाभारत के सम्बन्ध में उनका यह विचार कि हम ऐतिहासिक खोज का अनगल कल्पनाओं को छोड़कर महाभारत का अध्ययन स्वयं महाभारत व आधार पर करना चाहिए सामान्य रूप से भारतीय साहित्य तथा विज्ञान रूप से महाभारत व अध्ययन के लिए मांग-पत्र के समान है।

३—महाभारत की रचना—

परम्परागत विश्वास के अनुसार महाभारत का महर्षि व्यास की रचना माना जाता है। एक लाख श्लोकों के विंगल आकार के ग्रन्थ को एक ही व्यक्ति की रचना मानने में आधुनिक विद्वान् सकोच करते हैं। महाभारत की सामग्री की विविधता के आधार पर भी वे महाभारत में कई प्रकार का रचनात्मक परम्पराओं का सम्मिश्रण देखते हैं। दूमरी और भारतीय परम्परा महर्षि वेदव्यास को महाभारत का ही नहीं, वरन् अठारह पुराणों का भी कर्ता मानती हैं। परम्परा का आदर करते हुए भी महाभारत का सामग्री और महाभारत के रचयिता दोनों की दृष्टि से महाभारत की रचना का विचार करना आवश्यक है।

महाभारत की रचना का विचार संस्कृत-साहित्य के इतिहासकारों ने कुछ ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर तथा कुछ महाभारत के अन्त साक्ष्य के आधार पर किया है। विन्तरनिस्स आदि विद्वानों ने ऐतिहासिक प्रमाणों से यह सिद्ध किया है कि ईसा के चार-पाँच सौ वर्ष पूर्व महाभारत नाम का ग्रन्थ प्रसिद्ध और प्रचलित था। आश्वलायन गृह्यसूत्र में महाभारत के अस्तित्व का सर्वप्रथम प्रमाण मिलता है। आश्वलायन गृह्यसूत्र का समय ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व है।^{३६} किन्तु आश्वलायन गृह्यसूत्र, पाणिनि आदि के प्रमाणों से महाभारत के आकार और सामग्री के सम्बन्ध में कोई सक्त नहीं मिलता।^{३७} उक्त प्रमाणों के आधार पर विन्तरनिस्स का मत है कि ईसा की चौथी शताब्दी के पूर्व महाभारत नाम का ग्रन्थ प्रसिद्ध और वर्तमान था चाहे वह एक लाख श्लोकों का न रहा हो।^{३८} विन्तरनिस्स का अनुमान है कि ईसा पूर्व चौथी शताब्दी और ईसा की चौथी शताब्दी के बीच में महाभारत के वर्तमान रूप का विकास हुआ।^{३९}

३६—मकडोनल ए हिस्ट्री ऑफ़ संस्कृत लिटरेचर—पृष्ठ २८७

३७—विन्तरनिस्स ए हिस्ट्री ऑफ़ इण्डियन लिटरेचर—भाग-१—पृष्ठ ४७१
पादटिप्पणी—३

३८—विन्तरनिस्स ए हिस्ट्री ऑफ़ इण्डियन लिटरेचर—भाग-१—पृष्ठ ४७३

३९—वही " " —पृष्ठ ४७५

महाभारत और उगम रचयिता का उक्त रचना पूर्व की ही रचनाओं में मिलता है। किन्तु इतिहास का उल्लेख करने के ही मिलता है। विद्वानों का मत है कि मन्त्र यज्ञ के अन्तर्गत पर प्राचीन अरुणता का गायन और गाना होता था।^{४०} इन भाष्यकारों में प्राचीन धर्मों की रीति-रिवाजों का वर्णन भी है। इनके लक्षण १ गूढ धर्मों का वर्णन आदि १११५। वैदिककाल में ही धर्मों और महाभारतों की परत की रचनाओं में प्राचीन धर्मों का वर्णन भी है। यथा गायत्री ही उगम इतिहास के अन्तर्गत रचना का वर्णन मिलता है।^{४१} महाभारत का विनाश काश्मिर इतिहास इन्हीं प्राचीन गायत्री का परम्पराओं में है। महाभारत के अन्तर्गत अरुणता की रचना के पूर्व युद्ध की मूलरचना के अतिरिक्त अन्य अनेक उपाख्यान मिलता है। विद्वानों का मत है कि ये उपाख्यान वनमात महाभारत की रचना के अन्तर्गत पूव भारतवर्ष का विंगरी हुई गायत्री-परम्परा में प्रचलित थे। ये उपाख्यान और गायत्री की रचना की रचना नहीं थी। इन्हें प्राचीन लोक-काव्य कहा जा सकता है। ये एक प्रकार के गायत्री-साहित्य-उपाख्यान के रूप में थे।^{४२} महाभारत के युद्ध की घटनाओं में वनमात महाभारत साहित्य के सन्तान के रूप में इन गायत्री और गीतियों के रूप में वनमात रही होगी।^{४३} कितर नित्य के मत में यही प्राचीन धर्म-गायत्री वनमात महाभारत का आधार है। कितरनित्य तथा अन्य विद्वानों का मत है कि लोक-काव्य का परम्परा में महाभारत की मूलगायत्री का विस्तार होता गया तथा अन्य अनेक उपाख्यानों का भी उगम सम्मिश्रण होता गया।^{४४} इस प्रकार महाभारत का आकार बढ़ता गया। कितरनित्य का यह भी मत है कि ब्राह्मणों और पुरोहितों ने

४० - कितरनित्य ए हिन्दू आव इण्डियन लिटरेचर—भाग १—पृष्ठ—३११

४१—इतिहास पुराणायाम्नां वेद समुपपृ हवेत् ।

बिभेत्यल्पधुसाइ दो मामय प्रहरिष्यति ॥

नलिनबिलोचन गर्मा साहित्य का इतिहास वन पृष्ठ २

४२—कितरनित्य ए हिन्दू आव इण्डियन लिटरेचर—भाग १—पृष्ठ ३१४

४३—वही

—पृष्ठ ३१४

४४—कितरनित्य ए हिन्दू आव इण्डियन लिटरेचर भाग १—पृष्ठ ३१७ ३२१

वाद में ब्राह्मण धर्म के अनुकूल किया और नीतियों का भी इसमें सम्मिश्रण कर दिया।^{४५} इस प्रकार महाभारत एक वाक्यमय इतिहास के साथ-साथ धर्मशास्त्र भी बन गया।^{४६} इस सम्बन्ध में दाल्हमान और होल्त्समान के मन एक दूसरे के विपरीत हैं। दाल्हमान का मत है कि महाभारत आरम्भ से ही एक धर्मग्रन्थ था यह मत अधिकांश विद्वानों को मान्य नहीं है।^{४७} इसके विपरीत होल्त्समान का मत है कि ईसा की नवीं शताब्दी के बाद ब्राह्मणों ने इसे धर्मग्रन्थ बना दिया। किन्तु अनेक प्रमाणां से यह सिद्ध हो चुका है कि इसी की पाँचवीं शताब्दी से पहले महाभारत अपने वर्तमान रूप में स्थिर हो चुका था।^{४८}

इस प्रकार धीरे-धीरे महाभारत में वीर गायिका तथा धर्म और नीति के उपदेश का मिश्रण और विस्तार होता गया। पश्चिमी विद्वानों का मत में वर्तमान महाभारत एक दीर्घ परम्परा का पथवर्मान है।^{४९} संस्कृत साहित्य के इतिहासकारों का प्रायः यह अनुमान है कि महाभारत के वर्तमान रूप का विस्तार तीन चरणों में तथा तीन संस्करणों के रूप में हुआ है। इस मन का आधार में वर्तमान महाभारत के अंतर्गत मिलने वाले जय भारत, और महाभारत के तीन नामों तथा महाभारत के गायन के तीन आरम्भों में खाजते हैं। महाभारत के अंतर्गत साक्ष्य में विदित होता है कि प्राचीनकाल में महाभारत को जय काव्य भी कहा जाता था। वर्तमान महाभारत के आरम्भ में ही उक्त जय काव्य कहा गया है।^{५०} एक अन्य ध्यान पर भी विजिगीतुओं के लिए

४५—विन्तरनिस्त ए हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर—भाग १ पृष्ठ ३१६

४६—मकडोनल ए हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर पृष्ठ २८८

४७—यही : ' पृष्ठ २८८

४८—यही ' ' पृष्ठ २८६

४९—विन्तरनिस्त ए हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर भाग १—पृष्ठ ३१४ ३१८

५०—नारायण नमस्कृत्य नर चक्र नरोत्तमम्

देवीं सरस्वतीं च ततो जयमुदीरयेत् ।

—मगल श्लोक महाभारत

'जय नामेतिहासो'यम् ।

जय नामक इतिहास सुनन का आरम्भ किया गया है। कई स्थानों पर भारत और अथवा महाभारत नाम भी मिलते हैं। महाभारत के इन तीन नामों के साथ उनके तीन आरम्भ मिल जाते हैं। महाभारत के अतः माध्य से ही विदित होता है कि पहले व्यास ने जयन लिख्य बगम्पायन को महाभारत सुनाया। बगम्पायन ने जनमजय के नागयन के अवसर पर महाभारत सुनाया। बगम्पायन से महाभारत सुनकर उग्रथवा सीति ने उस भूमिपारण्य में गौनक ऋषि के द्वादश वर्षीय सत्र में सुनाया। इन तीन आरम्भों से पश्चिमी विद्वान् इन तीन रचयिताओं के द्वारा महाभारत के तीन संस्करणों की कल्पना करते हैं। महाभारत में मिलने वाले महाभारत की लोक सत्या के विभिन्न सकेता से वे इस मत की पुष्टि करते हैं। उग्रथवा सीति का कथन है कि वे आठहजार आठ सौ श्लोकों का महाभारत जानते थे। यास का कथन है कि उन्होंने चौबीस हजार श्लोकों का महाभारत बनाया। महाभारत में यह भा कहा गया है, कि व्यास ने साठ हजार श्लोकों का महाभारत बनाया।^{५१} इन प्रमाणा से पश्चिमी विद्वान् महाभारत के तीन संस्करणों में ग्रन्थ के विस्तार का अनुमान लगाते हैं। सामग्री की विविधता और इन अतः साध्या के आधार पर वे इस मत को प्रमाणित करते हैं।

पश्चिमी विद्वानों में दाल्हमान और लवी महाभारत को एक ही व्यक्ति की रचना मानते हैं।^{५२} किन्तु कित्तरनित्स उनके निष्पत्ति से सहमत नहीं है। उनका मत है कि महाभारत के आदिखंड में ही इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि महाभारत आरम्भ से ही अपने वर्तमान रूप में नहीं था तथा वह एक व्यक्ति और एक काल की रचना नहीं है। विभिन्न व्यक्तियों के द्वारा विभिन्न युगों में इसका परिवर्धन होता रहा है।^{५३} पश्चिमी परम्परा में दीक्षित अधिकांश भारतीय विद्वान् कित्तरनित्स के इस मत को ही मानते हैं। भारतीय परम्परा के विद्वानों में पण्डित इन्द्रनारायण द्विवेदी ने यह निश्चय करने का प्रयत्न किया है कि सम्पूर्ण महाभारत वेदव्यास की ही रचना है तथा उसके तीन संस्करण नहीं हुए। उन^{५४} अनुसार जय भारत और महाभारत महा

५१—कित्तरनित्स ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर व० ३२४ ३२५

५२—कित्तरनित्स ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर—भाग १ प० ४५८

५३—वही

प० ४६२

भारत के तीन सस्करणों के नाम नहीं बरन् उनके तीन पर्यायवाची नाम हैं । उनमें अनुभार चौबीस हजार की शोक सत्या उपाग्याना से रहित महाभारत भी है तथा छिपत्तर हजार श्लोकों में उपाग्यान है ।^{५४}

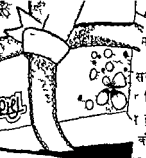
ऐतिहासिक और बर्णनिक दृष्टि से कितरनित्त आदि पश्चिमी विद्वानों के अभिमत के आधार बहुत कुछ सगत प्रतीत हात है । फिर भी यह विचार गाय है कि भारतीय परम्परा में अत्यन्त प्राचीनकाल से महाभारत सतसाहस्री सहिता के नाम से विख्यात है तथा महर्षि वेदव्यास की कृति मानी जाती है । महाभारत में ही वसम्पायन और सौनि का उमका कत्ता नहा, बरन् अनु गायक माना गया है । मुख्यरूप से महाभारत को वेदव्यास की कृति मानना ही उचित है । भारतीय मुनिया और विद्वाना न अकेले ही विशाल आकार के ग्रन्थ रचे हैं । एक लाख श्लोकों के महाभारत की रचना भी उनके लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं । प्राचीन वीर गीतियाँ महाभारत का पूर्ववर्ती हो सकती हैं किन्तु महाभारत उनका सकलन मात्र नहीं है । अपने मूल रूप में महाभारत सम्भवतः महर्षि वेदव्यास का ही रचना है । मौखिक गायन के रूप में शोक शब्दों में अनुगायकों के द्वारा कुछ परिवर्धन होना स्वाभाविक है । किन्तु इन परिवर्धनों को महाभारत के सस्करण मानना आवश्यक नहीं है । ब्राह्मणों और क्षत्रियों के विरोध की कल्पना पश्चिमी विद्वानों का आग्रह मात्र है । इतिहास में दस विरोध के कोई प्रमाण नहीं मिलत । वीर गाथा धर्म, नानि आदि के विविध विषयों का सम्मिश्रण भारतीय परम्परा में एक लम्बे के द्वारा भी सम्भव है । विषय और शैली की विविधता भी आवश्यक रूप में महाभारत में कई लखों के योग को प्रमाणित नहीं करती । तार्किक दृष्टि से महाभारत के आकर लेखकों की कल्पना उतनी ही सदिग्ध है जिनकी कि उसमें एक शब्द की कृति हात की कल्पना है । महाभारत की परम्परा और उमकी सम्पूर्ण योजना का दखत हुए उसके मौलिक रूप और उमके अविक्तम अंग का वेदव्यास की कृति मानना निरान्त अनुचित नहीं है । व्यक्तियों स्थानों ग्रन्थों आदि के पर्याय भारतवर्ष में बहुत प्रचलित हैं । समृद्ध पर्याय-व्युत्पन्न भाषा है । अतः जय भारत और महाभारत के नाम भी आवश्यक रूप से उमके तीन सस्करणों के सूचक नहीं हैं वे एक ही ग्रन्थ के पर्याय भी हो सकते हैं ।

४—महाभारत का काल—

गणितान्वित और यज्ञान्वित अक्षय का इतिहास महाभारत के काल का निगम भाग्यवित है। भाग्याय परम्परा में महाभारत के मुड़ का समय द्वापर युग का अन्त और कलियुग का आरम्भ माना जाता है। भाग्याय ज्योतिष का गणना के अनुसार कलियुग के आरम्भ का समय ईसा से पूर्व ३१०० गी दो वर्ष पूर्व माना जाता है। प० इन्द्रावतारायण विष्णु ३ बट विष्णु के साथ महाभारत के मुड़ और कलियुग के आरम्भ के काल का निगम यह विष्णु विद्वान् के साथ किया है।^{११} पश्चिमा विद्वान् भारतवाय ज्योतिष का इस गणना को आन्द नहीं देते। युगा के भारतीय बान्ना तथा महाभारत का युगा के साथ सम्बन्ध उक्त कारणान्वित और अभाव प्रतीत होता है।^{१२} भारत की ससृति और उसका इतिहास बहुत प्राचीन है अतः भारतीय का र्वि अपने प्रथा का समय अधिन प्राचीन मानने की ओर रहती है। यूरोप की ससृति और उसका इतिहास अपक्षात्त अर्वाचीन है। अतः भारतीय ससृति और इतिहास को प्राचीनता के प्रति उनका उचित आन्द नहीं है। वे भारतीय प्रथा का समय यथा सम्भव ईसा की सन् के आरम्भ के निकट रखने का प्रयत्न करते हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास में कालगणना का कोई निश्चित आधार न हान के कारण भारतीय प्रथा और व्यक्तियों का प्राचीनता प्रमाणित करने का पर्याप्त साधन नहीं मिलता। इस मदह की स्थिति में उनके भारतीय प्रथा और व्यक्तियों का समय ईसा के अधिन से अधिक निकट रखने का अवसर मिलता है। अनिश्चय की अवस्था में प्राचीन प्रथा और व्यक्तियों के सम्भाव्य काल की अर्वाचीन सीमा के निरधारण की दृष्टि से उनका यह दृष्टिकोण ठाक है। किन्तु दूसरी ओर यह दृष्टिकोण भारत के प्राचीन तथ्यों के सम्बन्ध में एक अनुचित धारणा का पोषण करता है। भारत के जिन प्राचीन तथ्यों के सम्बन्ध में काल निर्धारण के लिए पयाप्त जाधार उपलब्ध नहीं है उनकी प्राचीनता की आस्था को आधुनिक और यज्ञान्वित मानदण्डों के अनुगोच के द्वारा खण्डित करना वहाँ तक उचित है यत्र विचारणीय है।

५५—गीता प्रेस का महाभारत वष-३, सख्या ११ प० १३५।

५६—वितरनिरस ए हिस्टी आव इण्डियन लिटरेचर—भाग १, पृ० ४७४।



संस्कृति और साहित्य बहुत विनाश है तथा उसके अनन्तर
 विनाश साहित्य का निमाण और विकास इतन प्राचीन
 हुआ होगा। आधुनिक मानदण्डों से इस विकास की
 जा सकती। वैज्ञानिक दृष्टि से बबल बुद्ध का समय
 व कम से कम शताब्दियों का अंतर मानकर महाभारत
 नपद, ब्राह्मण, वेद आदि के समय का अनुमान लगाया
 की अवाचीन सीमा का निर्णय तो ठीक माना जा सकता
 है किन्तु इससे प्राचीन ग्रन्थों के वास्तविक काल पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता
 वग्नू इसके विपरीत उनकी प्राचीनता आच्छादित हो जाती है। इन अवाचीन
 अवधि के अतिरिक्त प्राचीन इतिहास व आधुनिक काल निर्णय उतन ही
 सदिग्ध है जितना सदिग्ध कि विद्वत्वासी जना की तत्सम्बन्धी आस्था का माना
 जाता है। प्राचीन भारत ग्रन्थों और व्यक्तियों की अवाचान अवधि के वना
 निक निर्धारण ने काल निर्णय के सम्बन्ध में स्वयं अनिश्चित होन हुए भी
 भारतीय इतिहास के तथ्यों की प्राचीनता को बहुत आघात पहुँचाया है यह
 प्राचीन भारतीय इतिहास और उसके अध्ययन का एक आधुनिक
 विडम्बना है।

वेद उपनिषद् आदि के काल निर्णय की भाँति महाभारत का काल निर्णय
 भी पश्चिमी विद्वानों ने उक्त वैज्ञानिक प्रणाली के अनुसार किया है। यह वैज्ञानिक
 प्रणाली प्राचीन ग्रन्थों और तथ्यों की अवाचीन अवधि निर्धारण करके बबल
 यह सिद्ध करती है कि कोई अमुक ग्रन्थ अथवा व्यक्ति इस अवधि के बाद का
 नहीं हो सकता। यह अवधि ठीक होत हुए भी इसके निर्धारण से इन ग्रन्थों और
 तथ्यों का वास्तविक समय निश्चित नहीं होता वरन् इसके विपरीत इनकी
 प्राचीनता की आस्था विचलित होती है। महाभारत के काल निर्णय का
 आधुनिक वैज्ञानिक विधि के अनुसार काल की सीमा ईसवी सन् के आरम्भ से
 आरम्भ होती है। ईसा की पहली शताब्दी में डायोनक्राइसास्टोम नाम का
 एक ग्रीक लेखक भारतवर्ष में आया था। उमने लिखा है कि भारतवर्ष में
 एक राजा श्लोक का इलियड है। यह ग्रीक लेखक दक्षिण भारत में आया
 था उमने सिद्ध हाता है कि ईसा की पहली शताब्दी में दक्षिण भारत में
 महाभारत का प्रचार था। १० उक्त ग्रीक लेखक का संस्कृत निश्चित रूप से

महाभारत की ओर है, क्योंकि भारतवर्ष में एक लाख श्लोकों का एक यही ग्रन्थ प्रसिद्ध रहा है। डायोनत्राइसोन्टोम के प्रमाण से यह सिद्ध होता है कि महाभारत के अस्तित्व की अर्वाचीन अवधि ईसा की पहली गताब्दी अथवा द्वितीय सन् ५० है। होल्ममन आदि विद्वानों का यह अभिमत कि महाभारत का वर्तमान रूप ईसा की नवी—दसवीं गताब्दी के निकट बना होगा पूर्णतः असत्य है। ५८ ईसा की सातवीं गताब्दी में कुमारिल भट्ट ने तथा कवि सुबोधु जीर बाण ने महाभारत का उल्लेख किया है। ईसा की पाँचवीं गताब्दी के कर्द दानपत्रों में एक लाख श्लोकों के महाभारत और उसके रचयिता महर्षि व्यास का बड़े आदर के साथ उल्लेख किया गया है। ५९ इससे पूर्व भी महाभारत के उल्लेख मिलते हैं। किन्तु उनमें भारत अथवा महाभारत के नाम का ही निर्देश मिलता है महाभारत के विषय और आकार का प्रमाण नहीं मिलता। उक्त दानपत्रों से यह प्रमाणित हो जाता है कि ईसा की पाँचवीं गताब्दी के पूर्व एक लाख श्लोकों का महाभारत स्थिर रूप ग्रहण कर चुका था तथा भारत के सभी भागों में उसकी कथा का प्रचार था। ६० यदि महाभारत को इस प्रतिष्ठा और उसके प्रचार के लिए सौ दो सौ वर्ष का समय भी दिया जाय तो यही निष्कर्ष होगा कि ईसा की तीसरी चौथी गताब्दी तक एक लाख श्लोकों का महाभारत स्थिर रूप ग्रहण कर चुका था और प्रसिद्ध हो चुका था।

किन्तु इसके पूर्व महाभारत साहित्य के जो उल्लेख मिलते हैं, उनसे महाभारत के विषय और आकार के सम्बन्ध में कुछ निश्चित नहीं होता। उक्त दानपत्रों के पूर्व महाभारत के नाम का उल्लेख तो इससे पूर्व पाँचवीं गताब्दी से मिलता है। आश्वयातन गृह्यसूत्र में सबसे पहले महाभारत के नाम का उल्लेख मिलता है। साहित्य के इतिहासकार आबलापन गृह्यसूत्र का समय ईसा पूर्व पाँचवीं गताब्दी मानते हैं। ६१ इसके पूर्व महाभारत के

५८—विन्तरनित्त ए हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर भाग १, पृ० ४६३।

मकडोनल ए हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर—पृ० २८६।

५९—वही , " पृ० २८८।

६०—विन्तरनित्त ए हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर भाग १, पृ० ४६३।

६१—मकडोनल ए हिस्ट्री आव संस्कृत लिटरेचर—पृ० २८७।

विन्तरनित्त ए हिस्ट्री आव इण्डियन लिटरेचर भाग १, पृ० ४७१।

ग्राम का उल्लेख उपलब्ध साहित्य में नहीं मिलता इन्हीं से पश्चिमी विद्वान् ई० पू० पाँचवीं शताब्दी को महाभारत की रचना की प्राचीनतम अवधि मानते हैं। वितरनिस्स का मत है कि ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में लेकर ईसा का चौथा शताब्दी तक महाभारत के वर्तमान रूप का विकास हुआ है।^{१२} पाँचवीं शताब्दी के दानपत्रों से पहले एक लाख श्लोकों का महाभारत का कोई प्रमाण नहीं मिलता, इससे विदेशी विद्वान् यही अनुमान लगाते हैं कि इससे पहले एक लाख श्लोकों का महाभारत विद्यमान नहीं था। वे तीन संस्करणों में महाभारत का विकास मानते हैं। ईशवी पूर्व पाँचवीं शताब्दी में जिस महाभारत का उल्लेख मिलता है वह व्यास का चौबीस हजार श्लोकों वाला महाभारत रहा होगा और उसके बाद ईसा की पाँचवीं शताब्दी तक एक लाख श्लोकों का उसका विस्तार हुआ होगा।

किन्तु आखिलान्न गृह्यसूत्र में भारत और महाभारत दोनों नाम मिलते हैं। आकार की विचालता के कारण ही इसको 'महाभारत' का नाम मिला है। यदि एक लाख श्लोक संख्या के कारण इसे महाभारत का नाम मिला हो तो तब तो ईसा से पाँच शताब्दी पूर्व इसका अस्तित्व माना जाएगा। महाभारत में चाद्रगुप्त का कहीं उल्लेख नहीं है इससे सम्पूर्ण महाभारत का ईसा की तीसरी शताब्दी से पहले होना संकेत मिलता है। अनेक प्राचीन ग्रन्थों के परिवर्धित रूपों में अर्वाचीन प्रसंग मिलते हैं इससे यह प्रमाणित होता है कि मूल रूप में प्राचीन होत हुए भी आगे चलकर इन ग्रन्थों का परिवर्धन उन कालों में हुआ है जिनका संकेत अर्वाचीन संदर्भों से मिलता है। महाभारत के सम्बन्ध में बाह्य प्रमाणों का अनुसंधान बहुत हुआ है। महाभारत के तीन नामों और विभिन्न श्लोक संख्याओं के अंतर्गत वे आधार पर उसके परिवर्धन का पता की गई है, किन्तु महाभारत में मिलने वाले तथ्यों का जल माध्य के आधार पर यह अनुसंधान करने का कदाचित् कोई प्रयत्न नहीं किया गया है कि इसमें किस शताब्दी के बाद के तथ्यों का उल्लेख नहीं मिलता। ऐसे अनुसंधान से हम शताब्दी के पूर्व महाभारत के वर्तमान रूप का अस्तित्व सिद्ध हो सकता है। यदि द्विबदी जा के मतानुसार चौबीस हजार श्लोक

की सख्या को महाभारत व किसी मस्करण की शोध सख्या न मान कर उगस्थान रहित शब्दों का सख्या माना जाय, और आठ हजार आठ सौ कूट श्लोकों की सख्या मान ली जाये तो सम्पूर्ण महाभारत व्यासकृत और मौलिक सिद्ध होता है। वाम्पायन ने जनमेजय के नागयन म महाभारत सुनाया था और वे व्यास के शिष्य थे। अतः व्यास और वाम्पायन के महाभारत म आकार और काल का अधिक अंतर न रहा होगा। अनुशासन म कुछ परिषदों को हाने की सम्भावना अवश्य हो सकता है। व्यास कौरव पाण्डव व समकालीन थे। अतः इसमें भी महाभारत की प्राचीनता का सक्त भिन्नता है। यदि वर्तमान महाभारत को एक लाख श्लोक सख्या का प्रमाण उक्त दानवशा से नहीं मिलता तो उसे अमिद्ध करने का भी कोई प्रमाण इससे पहले की गताब्दियों म नहीं मिलता। महाभारत व तीन नामों और तीन वक्ताओं तथा विषयों की विभिन्नता व आधार पर महाभारत के परिवर्धन आदि व सम्बन्ध म जो मत उपस्थित किये गये हैं वे केवल सम्भावनाओं का सकेत करते हैं उन्हें भी पूर्णतः प्रामाणिक नहीं कहा जा सकता। यह भारतीय विद्या की विदम्बना है कि सदिग्ध अभिमतों को भी सिद्ध प्रमाणा का पद मिलता है और सदिग्ध सम्भावनायें भारतीय परम्पराओं की पवित्रता एवं प्राचीनता का खण्डित करने के लिए प्रयत्न मानी जाती हैं।

५ - महाभारत का सनातन महत्त्व

ऊपर के प्रकरणों म महाभारत के स्वरूप उसकी सामग्री, उसकी रचना और उसके काल के सम्बन्ध म कुछ ऐतिहासिक विवरण एवं विवचन किये गये हैं। आधुनिक और वैज्ञानिक अध्ययन म प्राचीन ग्रन्थों के विवेचन के लिए भी यह भूमिका आवश्यक है। सस्कृत साहित्य के इतिहास व प्रामाणिक ग्रन्थों के आधार पर महाभारत के अध्ययन की यह भूमिका प्रस्तुत की गई है। इनमें विशेष महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ पश्चिमी विद्वानों द्वारा लिखे गये हैं। इन विद्वानों का दृष्टिकोण वैज्ञानिक अवश्य है किन्तु प्राचीन भारतीय साहित्य को आर अत्रिक आन्तरपूर्ण नहीं। प्रायः पश्चिमी विद्वानों व इन अध्ययनों म भारतीय साहित्य व प्रति निरस्कार का भाव पाया जाता है। पश्चिमी विद्वानों व अधिकांश अध्ययन ऐतिहासिक ही हैं। वे प्राचीन ग्रन्थों का सामान्य मस्करण समय आदि व विवचन को ही अधिक महत्त्व देने हैं। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों व विषय-वस्तु व आन्तरपूर्ण अध्ययन को आर उनकी अभिवृत्ति कम रहा है। विज्ञानायना माघाभ्यवा इत्यादि धर्म आदि इन विद्वानों के लिए भारतीय विचार-तत्त्व व समुचित मूल्यांकन म बाधक रहें हैं। इन विज्ञान विद्वानों ने

आधुनिक युग में प्राचीन भारतीय साहित्य के अध्ययन का माग प्रगन्न किया यह भारत के प्रति उनका चिरन्तन उपकार है। इनके माग दर्शन ने ही भारतीय विद्वानों के लिए प्राचीन भारतीय साहित्य के अध्ययन की दिशा का निर्धारण किया। अधिकांश भारतीय विद्वान उन्हीं के द्वारा निर्धारित परिपाटी के अनुसार प्राचीन भारतीय साहित्य का अध्ययन करने लगे हैं। भारतीय साहित्य बहुत प्राचीन है तथा प्राचीन होने के कारण उसमें सम्बन्ध रखने वाले ऐतिहासिक तथ्यों के निरूपण कठिन हो जाते हैं। प्रायः यह निरूपण अनिश्चित सदिग्ध और काल्पनिक रहते हैं। किन्तु यह सदिग्ध निरूपण भी पश्चिमी विद्वानों को प्रतिभा और उनके प्रभाव से इतने महत्वपूर्ण बन गये हैं कि लगभग एक शताब्दी से भारतीय विद्वान् और विद्यार्थी इन्हीं में उलझे रहे हैं। खेद की बात है कि अधिकांश भारतीय विद्वान् भी प्राचीन भारतीय साहित्य के सम्बन्ध में ऐतिहासिक तथ्यों के विवेचन में ही लगे रहे हैं। भारतीय विचार तत्व के आदरपूर्ण मूल्यांकन की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया है। प्राचीन परिपाटी के भारतीय विद्वान् भारतीय विचारतत्त्वों की श्रेष्ठता की जो प्रशंसा करते रहे हैं, वह आधुनिक तत्त्व युग में अविक्र आदर नहीं पा सकती। अतः प्राचीन भारतीय विचार तत्वों का एक ऐसा मनुजित मूल्यांकन अपेक्षित है, जो एक ओर ऐतिहासिक अनिश्चयों के प्रभाव में अचञ्छादिन न हो, तथा दूसरी ओर प्राचीन परिपाटी की प्रशंसा से भी मुक्त हो। प्राचीन तथ्यों के तथ्यों पर आश्रित तथा जीवन के मूल्यांकन से अचित होने पर ऐसा मूल्यांकन अधिक महत्वपूर्ण बन सकेगा तथा प्राचीन भारतीय साहित्य के रक्षायी गौरव की रक्षा कर सकेगा।

प्रस्तुत गांधी प्रयत्न में 'महाभारत में धर्म' का ऐसा ही विवरण विवेचन और मूल्यांकन प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। ऊपर के प्रकरणों में भूमिका के रूप में महाभारत की रचना और उसके काल के सम्बन्ध में कुछ ऐतिहासिक विवरण आवश्यक समझकर दिया गया है। ग्रन्थ के अधिकांश भाग में महाभारत की गतमाहत्वा संहिता को मानकर उसी में प्राप्त सामग्री के आधार पर महाभारत के अनुसार धर्म के स्वरूप तथा उसके विविध पक्षों का विवरण एवं विवेचन किया गया है। ऐतिहासिक अध्ययन की दृष्टि से भी प्रमाणित हो चुका है कि एक लाख श्लोकों की संहिता के रूप में महाभारत का वर्तमान स्वरूप इसी की पाँचवीं शताब्दी में स्थिर हो चुका था। जिन प्रमाणों के आधार पर उक्त निरूपण किया गया है, उन प्रमाणों

सं भी गतादियो पहले महाभारत का यह रूप बतमान रहा हो, यह बहुत सम्भव है। इससे पहले कुछ शतादियो म कई प्रतिभाओ के योग से एक ताव श्लोका के महाभारत का रूप विरचित हुआ हो, यह सम्भव है। यदि भारतीय परम्परा की इस मायता को कि एक ताव श्लोकों का सम्पूर्ण महाभारत ध्यास जी द्वारा रचित है प्रमाणित नहीं किया जा सकता तो दूसरी ओर महाभारत के तीन संस्करणों तथा उनके क्रमिक विवास का बल्पना भी अनुमान मात्र बही जा सकती है।

महाभारत की सामाजी और उमके समय की ऐतिहासिक समस्याओं का महाभारत के विचार तत्वा के सनातन महत्त्व पर अधिक प्रभाव नहीं पड़ता। महाभारत की सतमाहसी महिमा का रूप भी धमा की पाँचवीं गतादनी म सम्पन्न हो चुका था। उसके पहले यदि महाभारत के निर्माण म ध्यास के अनिर्दिष्ट अथ प्रतिभाओं का योग रहा हो तो इससे महाभारत के विचार तत्वा का महत्त्व कम नहीं होना। इन विचार तत्वा का महत्त्व सनातन है रचना काल आदि ऐतिहासिक तथ्यों से उमम को अंतर नहीं पड़ता। यदि यह विचारतत्व विभिन्न काल म विभिन्न रूपों के योग से महाभारत के बतमान रूप म एकत्र हुए हैं तो भी जीवन के गिद्धाता के रूप म इनका महत्त्व समान और सबकालीन है। भारतीय विचारतत्वा म जीवन क्षेत्र के विस्तार के कारण विभिन्नता अवश्य मिलनी है, किन्तु उनमें विरोध बहुत कम है। इसका कारण यह है कि प्राचीन भारत का एक ही धार्मिक और सामूहिक परम्परा म इन विविध विचार तत्वा का विकास हुआ है। व्यक्ति और काल का महत्त्व इस परम्परा म बहुत कम रहा है। जीवन के सनातन तत्वा और गायत्री मूल्या की आर हो भारतीय विचारका का ध्यान अधिक रहा है। अतः ध्यस्तित्व को महत्त्व न देकर ब धमा सामाज्य परम्परा म योग देन रहे हैं। जिन व्यक्तियों तथा दण काल आदि का उद्धान बहुत महत्त्व दिया है। इससे प्राचीन भारतीय मान्यता के सम्बन्ध म ऐतिहासिक तथ्यों का निष्पन्न जात्र करिन हो रहा है। भारतीय मनुष्य का दृष्टि जीवन के बतमान तत्वा और मूल्या का आर रहा है। धार्मिक कानून तथा अथ ऐतिहासिक तथ्यों का उमम अति महत्त्व नहीं है। यह धमा बतमान दृष्टि का परिणाम है कि प्राचीन भारतीय मान्यता के सम्बन्ध म पुराने ऐतिहासिक तथ्यों महा मिलन। इन तथ्यों के सम्बन्ध म ही विद्वानों विद्वानों का प्राचीन भारतीय मान्यता के सम्बन्ध म अनुमान

प्रस्तुत करन का अवसर मिला है। इनमें बहुत से अनुमान खण्डित भी हो चुके हैं। जो अनुमान प्रचलित हैं, उनका भी आधार बहुत अल्प और दुर्बल है। भारतीय साहित्य के सम्बन्ध में ही ऐसे अनुमानों को आदर मिला है। यह भारत की उदारता उदासीनता और दुर्बलता का परिणाम है।

प्राचीन साहित्य के ऐतिहासिक अध्ययन का अपना महत्त्व है। भारतीय साहित्य की प्राचीनता और इस साहित्य में भारतीयों के गान्धर्व दृष्टिकोण के कारण ऐतिहासिक तथ्यों की बहुत कमी है। अतः यह ऐतिहासिक अध्ययन बहुत सदिग्ध और अनिश्चित रह जाते हैं। ऐसी स्थिति में ऐतिहासिक अध्ययन का अधिक महत्त्व देना साहित्यिक और राष्ट्रीय दानों दृष्टियों से अनुचित है। साहित्यिक दृष्टि से यह उम्र साहित्य की भावना के साथ अयोग्य है जो स्वयं ऐतिहासिक तथ्यों का अधिक महत्त्व नहीं देता। राष्ट्रीय दृष्टि में सदिग्ध और अनिश्चित ऐतिहासिक निष्कर्ष हमारे प्राचीन साहित्य की प्राचीनता और पवित्रता का आधार पहुँचाते हैं। यह आघात हमारी राष्ट्रीय भावना को भी क्षति पहुँचाते हैं, इसकी ओर भारतीय विद्वानों और विचारकों ने समुचित ध्यान नहीं दिया है। इन ऐतिहासिक अनुमानों से प्राचीन भारतीय साहित्य के सनातन तत्त्वों का महत्त्व भी कम हो जाता है।

प्रस्तुत अध्ययन में महाभारत के इन सनातन तत्त्वों में धर्म-सम्बन्धी तत्त्वों का विवरण एवं विवेचन प्रस्तुत किया गया है। महाभारत के धार्मिक तत्त्व भारतीय सभ्यता की समान परम्परा में विकसित हुए हैं तथा अन्य धर्मशास्त्रों के बहुत कुछ अनुकूल हैं। विचारों की समानता के कारण इन तत्त्वों का सनातन महत्त्व ऐतिहासिक तथ्यों के कारण कम नहीं होता। कथा और इतिहास के रूप में भी भारतीय परम्परा में महाभारत का सनातन महत्त्व है। महाभारत के पात्र एक सनातन व्यक्तित्व से युक्त हुए हैं तथा महाभारत की कथा रामायण की कथा का भाति एक सनातन कथा बन गई है। धर्म-सम्बन्धी तथा अन्य प्रकार के विचार तत्त्वों का महत्त्व कथा से भी स्वतंत्र अपने गान्धर्व मूल्या के कारण है। पश्चिमी विद्वानों ने महाभारत में मिलने वाली धार्मिक कथाओं तथा धर्मशास्त्र-सम्बन्धी उपदेशों को ब्राह्मणों एवं पुरोहितों के द्वारा जोड़ी हुई बताया है। उनका मत में महाभारत का मौखिक रूप भरतवर्गीय क्षत्रियों का कौटिल्य काव्य है। वे क्षत्रियों और ब्राह्मणों के दृष्टिकोणों में विरोध देखते हैं। किन्तु मत्त यह है कि ऐसा विरोध भारतवर्ष में किना

समय नहीं रहा। जातिवाद व चिन्गी और भारताय विराधिया न जानिया व पारस्परिक सम्बन्धा म जो विरोध का अभाव रहा है, उमकी आर ध्यान नहा दिया है। महाभारत म मिलन यान धम सम्बन्धी तत्व चाहे इनन विस्तृत रूप म महाभारत की मौलिक बार्ति बधा व अन्तगत न रह हा। चिन्तु लगभग दा हजार बप से मिला वाली गतगाहमी महिता व व अभिन्न अग बन गय है। जिन बधा प्रमगा व साथ यह धम सम्बन्धी तत्व मिलन हैं उनक साथ उनका वन्त बुद्ध सङ्गति है। इम प्रकार एक पुरातन बधा और धमगास्त्र शाना हा रूपा म महाभारत का सनातन महत्त्व है। ऐतिहासिक तथ्या का सशित भूमिका देकर प्रस्तुत गोध प्रबन्ध म महाभारत व धम सम्बन्धी तत्वा का इमा दृष्टिकोण से विवरण और विवचन किया गया है।

प्रस्तुत गोध प्रबन्ध म महाभारत ने अध्ययन व सम्बन्ध म जो दृष्टि कोण अपनाया गया है, उसकी प्रेरणा महाभारत के महान् और अधिवारी विद्वान् डा० सुकथनकर के विचारा से मिली है। उहाने अपन महाभारत सम्बन्धी ग्रन्थ म पश्चिमी विद्वाना की ऐतिहासिक खोज का विवरण देकर यह मन व्यक्त किया है कि पश्चिमी विद्वानो की ऐतिहासिक खोज महाभारत के मुख्य लक्ष्य से दूर चली गई है।^{६३} महाभारत के मूल और प्रशिक्ष अशा का पृथक् करके उसके मूल रूप व निर्धारण के प्रयास सम्भवत सफल नहा हा सकते।^{६४} इस विश्लेषण से महाभारत के सामान्य रूप और लक्ष्य पर कोई प्रभाव नहा पडता, वे ज्यो के त्यो बन रहने हैं।^{६५} महाभारत व जिन धम सम्बन्धा अशो को अधिकांश पश्चिमी विद्वान् वाद म जोडा हुआ मानत ह व डा० सुकथनकर के अनुसार महाभारत व बतमान रूप व अभिन्न अग बन गय ह।^{६६} अनेक प्रमाणा व साथ डा० सुकथनकर न महाभारत म धम की प्रधानता का निर्देश किया है। जगल आयाय म डा० सुकथनकर व निर्देश का विस्तृत विवरण दिया गया है। महाभारत के धार्मिक लक्ष्य और महत्त्व को ध्यान दन पर उसक विकास काल आदि से सम्बन्ध रखने वाली ऐतिहासिक

६३—डा० सुकथनकर मीनिंग अ।व महाभारत—प० १८

६४—वही " " प० ३० ३१

६५—वही " " प० २३

६६—वही " " पृ० ६६

आलोचना का महत्त्व बहुत कम हो जाता है।^{१७} उनके मत में यह महाभारत का मुख्य लक्ष्य जीवन की धर्म सम्बन्धी समस्या है।^{१८} यही महाभारत का सनातन महत्त्व है जो ऐतिहासिक आलोचनाओं और खोजों से प्रभावित अथवा परिवर्तित नहीं होना।^{१९} पश्चिमी आलोचकों ने अपने ऐतिहासिक खोज के दृष्टिकोण का प्रमुखता देकर महाभारत के इस सनातन धार्मिक महत्त्व का अत्यन्त गौण बना दिया है। ऐतिहासिक आलोचना के अरण्य में धर्म तत्त्व का यह तीर्थ लुप्त हो गया है। डा० सुकथनकर महाभारत के उन विद्वानों में प्रमुख हैं जिन्होंने हमें साहस और विश्वास के साथ यह स्मरण दिलाया है कि हमारा मुख्य ध्येय महाभारत के धर्मतत्त्व की तीर्थयात्रा है। हम ऐतिहासिक आलोचना के अरण्य में ही भटककर न रह जाना चाहिए। ऐतिहासिक आलोचना का अपना स्थान है किन्तु महाभारत के वर्तमान स्वरूप की रक्षा भारतीयों ने दो हजार वर्षों से की है।^{२०} ऐतिहासिक आलोचना के निरर्थकों की अपेक्षा उसका वर्तमान रूप अधिक माननीय है। जिस वर्तमान रूप में महाभारत युगों में प्रसिद्ध है उसी रूप में प्रमाण मानकर हम अध्ययन करना चाहिए।^{२१} अपने पूर्वानुग्रह के कारण पश्चिमी विद्वान् महाभारत का मही मूल्यांकन करने में असमर्थ रहें हैं।^{२२} आश्चर्य और खेद की बात यह है कि भारतीय विद्वानों का दृष्टिकोण भी पश्चिमी विद्वानों के विचारों से प्रभावित रहा है। डा० सुकथनकर ने भारतीय विद्वानों को एक महान् सद्गति दिया है, उन्होंने कहा है कि जब समय आ गया है जबकि हम अब अपने प्राचीन और पवित्र धर्मग्रन्थों का अध्ययन अपने भारतीय दृष्टिकोण में करें जो युग से भारतीय जनता के पथ प्रदर्शक तथा आध्यात्मिक शान्ति के आश्रय रहें हैं। प्रस्तुत गांधी प्रबंध में डा० सुकथनकर ने इसी महान् सद्गति का यथाशक्ति पालन किया गया है तथा ऐतिहासिक आलोचना के अनिश्चयात्मक प्रपञ्च को अधिक प्रमुखता न देकर महाभारत के सनातन धर्मतत्त्व का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

६७—डा० सुकथनकर कीर्तिग जाव महाभारत—पृष्ठ १२३

६८—वही	"	"	पृ० १२४
६९—वही	"	"	पृ० २३
७०—वही	"	"	पृ० ६८
७१—वही	"	"	पृ० ३१
७२—वही	"	"	पृष्ठ ६५ ८७

महाभारत मे धर्म

१— महाभारत मे धर्म का स्थान—

पश्चिमी विद्वाना ने महाभारत का अध्ययन और विवेचन मुख्यत ऐतिहासिक और वैज्ञानिक दृष्टि से किया है। विदेशी होने के नाते उनका यह दृष्टिकोण स्वाभाविक है। महाभारत के प्रति उनकी ऐसी श्रद्धा नहीं है जसी कि भारतीय जनता की उसके प्रति रही है। अरिक् से अधिक वे इतना कर सकते थे कि विद्वान् होने के नाते वे महाभारत के प्रति भारतीय श्रद्धा का जादर करते तथा इस आदर के प्रभाव से महाभारत के ऐतिहासिक और वैज्ञानिक अध्ययन का जादर की मर्यादा के भीतर रखत। ऐसी स्थिति में उनको महाभारत की रचना तथा उसके पात्रों के बारे में एसी अनगल और अनादर पूर्ण कल्पनायें करने का अवसर न रहता जसी कल्पनायें उनका ऐतिहासिक आलोचना में प्राय मिल जाती हैं। इस सम्बन्ध में महाभारत के विषय में हाल्लसमान, होपकिंस थ्रोपडर जार्ज विद्वाना की अनगल कल्पनायें स्मरणीय हैं। इनके अद्भुत मतों का उल्लेख डा० मुक्यनकर ने अपने ग्रन्थ में किया है।^१ पश्चिमी विद्वाना का यह अनगल ऊहायें एक ओर महाभारत जैसे महान् ग्रन्थ का अनादर करता है वहीं दूसरी ओर वे इन विद्वानों के गाल का भाजपमान करती हैं। केवल सम्भावनाओं और ऊहाओं के आधार पर ऐसे अनादरपूर्ण मत विद्वाना के द्वारा समार के किसी भी महान और प्राचान ग्रन्थ के प्रति प्रकट नहीं किए गए हैं। भारतीय अध्ययन के सम्बन्ध में एम जनगल मत भारतवर्ष के गौरव और विद्वत्ता की भयानक हानि के लिए जपमान जनक हैं।

महाभारत के सम्बन्ध में पश्चिमी विद्वाना का ऐतिहासिक और वैज्ञानिक

खोज का मुख्य निष्पत्त यह है कि महाभारत के धार्मिक तत्व उसमें ब्राह्मणा के द्वारा पीछे से जोड़े गये हैं। अधिकांश पश्चिमी विद्वानों का मत यह है कि महाभारत का मूल प्राचीन सूता के कीर्ति काव्य में है और आरम्भ में महाभारत की रचना भी ऐसे ही कीर्ति काव्य के रूप में हुई होगी। वे विद्वान् विद्वान् महाभारत के इस मूल स्वरूप की खोज में भी रहे और उन्होंने अपनी दृष्टि से प्रक्षिप्त अज्ञातों को निकालकर महाभारत के इस मूल काव्य के निर्धारण का प्रयत्न किया। भारतीय विद्वानों में श्री रमेशचन्द्र दत्त भी इसी पश्चिमी धारणा से प्रभावित रहे तथा वे महाभारत के मूल काव्य के लुप्त होने पर तथा उसमें धार्मिक तत्वों के मिश्रित हो जाने पर शोक करते रहे। उन्होंने भी अपने महाभारत के अनुवाद में महाभारत के मूल काव्य के उद्धार का प्रयत्न किया है। अधिकांश पश्चिमी विद्वान् महाभारत के धर्म सम्बन्धी अज्ञातों का प्रक्षेप मानते हैं। किन्तु भारतीय परम्परा में महाभारत के सम्बन्ध में पश्चिमी विद्वानों का इस धारणा के विपरीत धारणा प्रचलित रहा है। भारतीय परम्परा में महाभारत एक पवित्र धर्मग्रन्थ के रूप में माना रहा है। चाहे किसी भी रूप में महाभारत का विकास हुआ हो किन्तु लगभग दस हजार वर्ष से वह अपने वर्तमान तथा धर्मप्रधान रूप में ही प्रतिष्ठित है। पाँचवीं शताब्दी के दानपत्रों में एक पवित्र धर्मग्रन्थ के रूप में ही उसका उल्लेख मिलता है। मंदिरों में महाभारत के पाठ और गायन के प्रमाण भी मिलते हैं। धर्मराज युधिष्ठिर तथा धर्मयुद्ध के प्रसंग से जनमाधारण में धर्मशास्त्र के रूप में ही महाभारत का माना रहा है। महाभारत का इतिहास और काव्य उसके इस धार्मिक पक्ष का एक निमित्त अथवा आधार बन गया है। क्या प्रसंग में ही धर्म के विस्तृत उद्देश्य नहीं मिलने के लिये महाभारत की कथा के मुख्य पात्र धर्म और अधर्म की विभिन्न प्रवृत्तियों के प्रतीक बन गये हैं तथा स्वयं महाभारत की मूल कथा भी इतिहास होने के साथ साथ स्वरूपतः धार्मिक बन गई है। श्रावण को महाभारत में सर्वत्र भगवान् का अवतार माना गया है तथा उनके नवतृत्व में महाभारत की धार्मिकता का दिव्य एवं आध्यात्मिक बना दिया है। आकार और परिमाण की दृष्टि से भी महाभारत के धार्मिक अंग उसके मूल कथा भाग से कई गुने अधिक हैं। यह परिमाण की अधिकता भी महाभारत के धार्मिक पक्ष का प्रसुव्व बना देती है। पात्रों के चरित्रों में प्रतीकों के लक्षण निखरने के कारण तथा कथा के स्वरूपतः शिक्षामय बन जाने के कारण महाभारत के धार्मिक अंग उसके कथा और काल से समन्वित होकर

एकरस हो गये हैं। इस समन्वय के द्वारा सम्पूर्ण महाभारत का रूप धार्मिक बन गया है।

विषय की दृष्टि से भी महाभारत म धम की प्रधानता है। महाभारत की मूल कथा के प्रसंग में स्यान् स्यान् पर महत्त्वपूर्ण धार्मिक शिक्षा दी गई है। शांतिपर्व और अनुशासन पर्व में धम और नीति की शिक्षा अधिक विस्तार के साथ मिलती है। विस्तार के कारण विदेशी विद्वान् इन अंगों को पोट्टे से जोड़ा हुआ मानते हैं। किन्तु भीष्मपितामह के छह मास तक गरशय्या पर पड़े रहने के कारण महाभारत की कथा में एक स्वाभाविक अवकाश बन गया है तथा विस्तृत धर्मोपदेश के लिए इस अवकाश का उपयोग उचित ही किया गया है। डा० सुब्रह्मण्यम् ने इस रूप में महाभारत के प्रबंध का एकात्मता का समर्थन किया है। अधिकांश विदेशी विद्वान् ऐसे अवकाशों और इनमें दिये गये धर्म-उपदेशों को प्रक्षिप्त मानते हैं। किन्तु बुद्धिगम और दाल्हमान महाभारत के सम्पूर्ण प्रबंध की एकात्मता को मानते हैं। इनमें एक दाल्हमान महाभारत के धार्मिक उद्देश्य को भी स्वीकार करते हैं। शांति पर्व और अनुशासन पर्व के अतिरिक्त अन्य अनेक कथा प्रसंगों में धार्मिक उपदेश दिए हुए हैं। मूलकथा के अतिरिक्त अन्य अनेक प्रासंगिक उपाख्याना म धम की शिक्षा दी गई हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण महाभारत का रूप प्रधानत धार्मिक बन गया है। महाभारत के काव्य को धम काय बहना अनुचित न होगा। धम ही उसकी आत्मा है धम ही उसका प्राण है और धम ही उसका मुख्य कलवर है। कथा और उपाख्यान महाभारत के धमकाय के अंग से जान पड़ते हैं। कौरव-पाण्डवों की कथा महाभारत के काव्य का मूल अवयव है किन्तु धम ही काव्य के इस कल्पवृक्ष का स्तम्भ है और धम ही विविध क्षेत्रों में इसकी शाखाएँ फैली हुई हैं। धम के हाथ फल का यह के इस कल्पवृक्ष पर पत्ते पूरे हैं। पाण्डवों ने जिन सबका बहिनादया और अपमाना का सामना किया व धम की पराप्ता के रूप में उपस्थित हुए हैं। युधिष्ठिर का धम और मत्स्य का आत्म्या का आत्म उपाख्यान है। श्रीकृष्ण का नववृत्त धम का माग म स्वराय मत्स्यता का मन्त्रेन करता है। पाण्डवों का विजय अन्तर्धम की ही विजय है। महाभारत की मूल कथा के प्रसंग में धम की य शाखाएँ और उमक य पत्त कथा के वनमान और प्रसिद्ध रूप में स्पष्ट सिद्धांत हैं। अन्य उपाख्याना तथा अन्य अवसरों पर भी धम का अन्त

गान्वायें और धम के अनेक फल फूल काव्य के इस कल्पवृक्ष पर विवसित हुए हैं। वर्णों और आश्रमा के धम तथा अथ अनक धार्मिक आचार इनम विगेष रूप से गिनाये जा सकत हैं।

इस प्रकार लक्ष्य और विषय दोनों की दृष्टि से महाभारत म धम की ही प्रधानता है। इसी कारण दो हजार (२०००) वर्ष से महाभारत एक धम ग्रन्थ के रूप मे प्रतिष्ठित रहा है। प्राचीन राजवशा के युद्ध का इतिहास हात हुए भी भारतीय जनता की महाभारत के प्रति भावना धार्मिक ही रही है। ऐतिहासिक घटना हाते हुए भी राम रावण के युद्ध की भांति कौरव पाण्डवा का युद्ध भी एक धम युद्ध बन गया है। कौरवो का अनीति और उनक अत्याचारो न उनके पक्ष का अधम का पक्ष बना दिया है। युधिष्ठिर को चूत के लिए विवसत करना लाक्षागृह म पाण्डवो को जीवित जलान का पटयत्र द्रौपदी का चीरहरण अभिमयु का वध द्रौपदी के पाच पुत्रो का वध आदि कौरवा की अनीति के भीषण उदाहरण हैं। धृतराष्ट्र भीष्मपितामह द्राणा पाय अस वृद्ध और कण जम उदात्त चरित्र इस अनीति के साक्षी ही नहीं बरजू सामीप्यर हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण कौरवपक्ष अनीति और अधम का पक्ष बन गया है। भीष्म द्रोण कण आदि के वध के प्रसंग म क्रिय गये पाण्डवा के छत्र कौरवा की उक्त भीषण अनीतिया के सामन तुच्छ है। युधिष्ठिर के धय तथा भीम अर्जुन द्रौपदी आदि के समय न पाण्डवा के पक्ष को धम का दृढ आधार दिया है। इतिहास होत हुए भी महाभारत के पात्र धम और अधम की वृत्तिया के प्रतीक बन गय हैं। घटनाओं क प्रसंग में भी धम के अनेक पक्ष प्रकट हुए हैं। क्या प्रसंगो म भी धम के नतिकर्मील की शिक्षा तथा वर्णों और आश्रमा के आचार का विवरण महाभारत म विपुलता स मितत हैं। इस प्रकार लक्ष्य के साथ-साथ विषय के रूप म भी महाभारत म धम की प्रधानता है। प्राचीन इतिहास का सुन्दर काभ्य होने हुए भी प्रधान रूप म महाभारत धम सम्बन्धी विषया का विवकोप तथा एक धमग्रन्थ बन गया है।

२-महाभारत का अन्त साक्ष्य—

भारतीय परम्परा म महाभारत का एक धमग्रन्थ का दृष्टि से देखा जाता है। इस परम्परा की आस्था का आधार स्वय महाभारत म मितता है।

यह भी सम्भव है। गवता है कि लोग परम्परा को महाभारत के उन बचनो से प्रेरणा मिली हो जिनमें महाभारत को एक धर्मशास्त्र बताया गया है। महाभारत के आरम्भ में ही सीति न कहा है कि महाभारत एक महान् धर्मशास्त्र है।^२ महाभारत के महात्म्य में भी महाभारत को पवित्र धर्मशास्त्र कहा गया है।^३ अपने आचार की विगलता और विषयो की प्रचुरता के कारण महाभारत भारतीय जीवन और मरुति का एक विवकोप बन गया है। उसमें धर्म के अतिरिक्त अथ मोक्ष आदि के विवरण भी विपुलता से मिलते हैं। यह तो नही कहा जा सकता कि महाभारत केवल एक धर्मशास्त्र है उसमें अथ काम और मोक्ष का भी समुचित बरण मिलता है। स्वयं महाभारत में जहाँ उसे धर्मशास्त्र कहा गया है वहाँ इसके साथ-साथ अथशास्त्र और मोक्षशास्त्र भी कहा गया है।^४ महाभारत के महात्म्य में इस मोक्षशास्त्र भी कहा गया है।^५ धर्मशास्त्रों में भी चारों पुरुषार्थों का बरण मिलता है। किन्तु धर्मशास्त्र और महाभारत दोनों में ही अथ तथा काम का परम साध्य नहीं माना गया है। यह दाना धर्म के साधन है। धर्म के अनुकूल अथ और काम के उपभोग को ही मनुष्य के लिए उचित माना गया है। अथ और काम की मयाता भी धर्म से निर्धारित होती है। धर्म ही उनके औचित्य का मान दण्ड है। अतः धर्म, अथ और काम के त्रिवर्ग में धर्म ही प्रमुख बन जाता है। मोक्ष को जीवन का परम पुरुषार्थ माना जाता है और इस प्रकार धर्म मोक्ष का साधन बन जाता है। किन्तु मोक्ष तो अंतिम लक्ष्य है, वह अतः नहीं प्राप्त होता है। उसके लिए जीवन भर धर्म का पानन ही प्रमुख बन जाता है। इस प्रकार मोक्ष का साधन होत हुए भी धर्म की प्रमुखता सिद्ध होती है। मोक्ष ही जीवन का साध्य है इस दृष्टि से महाभारत में अनेक बार उस भी धर्म कहा गया है। महाभारत के विषयो की गणना के प्रसंग में मोक्ष धर्म का उल्लेख किया गया है।^६ मोक्ष का धर्म कहने पर धर्म का अर्थ व्यापक हो जाता है और महाभारत में धर्म का महत्त्व भी बढ़ जाता है।

२—धर्मशास्त्रमिद महत्—महाभारत जादिपव—अध्याय २, श्लोक ३८३।

३—धर्मशास्त्रमिद पुण्य—महाभारत—महात्म्य

४—धर्मशास्त्रमिद—जादिपव—अध्याय ६२, श्लोक २३।

५—मोक्ष शास्त्रमिद प्रोक्त व्यासेनाऽमितबुद्धिना। महाभारत महात्म्य।

६—मोक्षधर्माश्चकथिता विचित्रा बहुविस्तरा।

आदि पव—अध्याय २, श्लो० ३९८।

महाभारत को जहा सम्पूर्ण ज्ञान का भाण्डार कहा गया है, वहा भी महाभारत के विषयो के अतगत धम की गणना सबसे पहले की गई है। आदि पव म वशम्पायन ने कहा है कि धम, अर्था, काम और माक्ष के सम्बन्ध म जो महाभारत म है, वही अयन मिल सकता है जो महाभारत म नहीं है वह कही अयत्र नहीं मिन सकता।^७ इससे यहो प्रमाणित होता है कि धम महाभारत का मुख्य विषय है। महाभारत के विषया की गणना के प्रसंग म अनेक बार उनम धम का स्मरण किया गया है। एक स्थान पर कहा गया है कि इसम अय के अतिरिक्त सम्पूर्ण धम का उपदेश किया गया है।^८ महाभारत के आदि पव म सीति ने कहा है कि महाभारत म धर्मों का रहस्य देशकाल के सहित बताया गया है।^९ शान्तिपव और अनुशासन पव म धम का वर्णन विशेष रूप से मिलता है। शान्तिपव म शरणाध्या पर शयन करन वाले भीष्म के द्वारा उपदेश किये गये धर्मा का वर्णन है।^{१०} इन धर्मा म राज धम और आपद्धम के अतिरिक्त माथ धम भी मम्मिलित हैं।^{११} तरहूवां पव अनुशासन पव है उम भी धम का निश्चय

७—धर्मो चार्थो च कामे च मोक्षे च भरतधम ।

यदिहास्ति तदयत्र य नेहास्ति न तत् क्वचित् ॥

आदिपव—अध्याय ६२, श्लो० ५३

८—अस्मिन्नयश्च धमश्च निखिलेनोपदिश्यते

आदिपव—अध्याय ६१, श्लो० १६३ ।

९—रहस्य च धर्माणा देगकालोपसहितम् ।

आदिपव—अध्याय २, श्लो० ३३५ ।

१०—शान्तिपवणि धर्माश्च ध्याप्याता शारतल्पिका ।

अआदिपव—अध्याय २, श्लो० ३२६ ।

११—राजभिर्षेणितध्यास्ते सम्यग्ज्ञानबुभुत्सुभि ।

आपद्धमार्शच तत्रव कालहेतुप्रदर्शित ॥

यान् बुद्ध्या पुरय सम्यक् सवक्तवमवाप्नुयात् ।

मोक्षधर्माश्च कथिता विचित्रा धहुविन्तरा ॥

आदिपव—अध्याय १, श्लो० ३२७, ३२८ ।

करा जाना बताया गया है।^{१३} महाभारत म धम अर्वा, काम और मोग का संशोध और विस्तार दाना प्रकार म चलन है। इन पान म दीरिन महाभारत रूषी मूय मनुष्या का अन्तार दूर करता है।^{१४} अनुत्तमन पव के सम्बन्ध म आदि पव म बता गया है कि मम धम स सम्बन्ध रगन यान आचार-व्यवहार का पूरण स निरूपण किया गया है तथा विविध प्रकार के दानों का पत्र, दान के विनोप पात्र दान की उत्तम विधि आचार का विज्ञान सत्य की गति आदि धम के रहस्य रगिन नियम हैं।^{१५} य मत्र धम क ही विषय है। इन विषय को दाने मे महाभारत म धम की प्रधानता प्रमाणित होती है। धमशास्त्रो के अनुसार धम का सम्बन्ध वर्णों और आश्रमा से है। धमशास्त्रा म वर्णों और आश्रमा के वर्तन अथवा धम बता यग्य है। उमी प्रकार महाभारत मे भी चारा वर्णों क वर्तान का विधान किया गया है। अनेक स्थानो पर वर्णों और आश्रमा के धर्मों का विवरण महाभारत म मिलता है। अनुक्रमणिका पव मे वर्णाश्रम धम का महाभारत का विषय

१२-एतत् प्रयोदश पव धमनिश्रय कारकम् ।

आदिपव-अध्याय १, श्लो० ३३६१

१३-धर्मार्थकाममोक्षार्थं समासव्यासकीर्तन ।

तथा भारतसूर्योऽणु नृणां विनिहृत तम ॥

आदिपव-अध्याय १, श्लोक ८५ ।

१४-व्यवहारोऽत्र कास्-यैः धर्मार्थो य प्रकीर्तित ।

विविधाना च दानाना फलयोगा प्रकीर्तित ॥

तथा पात्रविनोपाश्च दानाना च परो विधि ।

आचारविधि योगश्च सत्यस्य च परागति ॥

महाभाग्यं यदां चव साहायाना तथैव च ।

रहस्यं चव धर्माणा देगकालोपसहितम् ॥

आदिपव-अध्याय २, श्लोक ३३३, ३३४, ३३५

वताया गया है ।^{१५} अनुक्रमणिका पत्र म विनोप रूप से ब्रह्मचर्य का उल्लेख किया गया है ।^{१६} किन्तु महाभारत म गृहस्थ वानप्रस्थ और सत्यास-आश्रमा क धर्मों का बरण भी किया गया है । अनुक्रमणिका पत्र म आश्रमा के विविध धर्मों का उल्लेख महाभारत के विषय म किया गया है ।^{१७} महाभारत म धम के अाक रूपों का बरण है ।^{१८}

युधिष्ठिर के नायवत्व का भी महाभारत मे धम का आधार माना जा सकता है । आदि पत्र म ही युधिष्ठिर का धममय महाद्रुम कहा गया है ।^१ युधिष्ठिर धमपुत्र थे^२ और धमराज^३ कहलात थे । सत्य धम के प्रति उनका निष्ठा एक उदाहरण बन गई है । युधिष्ठिर के समान ही राजा शान्तनु का भी धममय म्बिर और धमत्माआ म श्रेष्ठ बताया है^४ राजा शान्तनु का धम पूरा मदाचार प्रजा के लिए आदश था और उनके सदाचार स ही प्रजा के नाग इस निराय पर पहुच थे कि काम और अर्था की अपक्षा धम श्रेष्ठ है ।^५

१५-चातुर्वर्ण्यविधा च पुराणानां च कृत्स्नम् ।

तपसो ब्रह्मचर्यस्य वृथिपारचद्रसूययो ॥

आदिपत्र-अध्याय १ श्लोक ६५ ।

१६-वही ।

१७-विविधस्य च धमस्य ह्याश्रमाणां च लक्षणम् ॥

आदिपत्र-अध्याय १, श्लो० ६४ ।

१८-इह मत्रपदं युक्तं धमं चानैकवज्जनम् ।

आदिपत्र-अध्याय ६२, श्लो० ३६ ४७ के मध्य का

१९-युधिष्ठिरो धममयो महाद्रुमः ,

आदिपत्र-अध्याय १, श्लो० १११

२०-धर्मोद् युधिष्ठिरो जज्ञे, आदिपत्र-अध्याय ६३, श्लो० ११५२

२१-एव धमभता श्रेष्ठो धमराजो युधिष्ठिरः ॥

आश्रमवासिक पत्र-अध्याय २, श्लोक १३

२२-वतमानं हि धमेषु सर्वधमभता वरम् ।

आदिपत्र-अध्याय १००, श्लो० ६३ ।

२३-धम एव परं कामादर्थाच्चेति व्यवस्थितः ।

आदिपत्र-अध्याय १००, श्लोक-५ ।

महाराज शांतनु के इस आदेश मे महाभारत क अभिमत का भी संकेत मिलता है । महाभारत के अनुसार धर्म ही प्रमुख है, वही अर्थ और काम को माथक बनाता है, वही मोक्ष का परम साधन है । धर्म के ही विविध पक्षा का महाभारत में प्रधानता से वर्णन किया गया है । इसीलिए महाभारत के पाठ को भी एक धर्म दृश्य माना गया है । महाभारत सम्पूर्ण श्रुतियों का समूह है । धर्मबुद्धि पुस्तको को इसका श्रवण करना चाहिए ।^{२४} महाभारत का श्रवण एक श्रेष्ठ धर्म है ।^{२५} अतः धर्मकामी मनुष्या को महाभारत का श्रवण करना चाहिए ।^{२६} आदिपर्व में सौति ने ऋषियों को तथा उनके निमित्तसे महाभारत के श्रोताओं को यह आशीर्वाद दिया है कि तुम्हारी सदा धर्ममय मति हो । सौति के अनुसार धर्म ही परलाक में एकमात्र वस्तु है ।^{२७} युधिष्ठिर के मायवान रूप में स्वयं जान वाले धर्म के प्रसंग से महाभारत की यह धर्मनिष्ठा प्रमाणित होती है । महाभारत के विपुल धर्म प्रसंगों से तथा महाभारत के उत्तम अतः साध्या से यह सिद्ध होता है कि मुख्य रूप से महाभारत एक धर्मशास्त्र ही है तथा धर्म का निरूपण ही उसका मुख्य उद्देश्य है । महाभारत की इसी मायता का आधार मानकर प्रस्तुत गौध प्रबंध में महाभारत में धर्म का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । अगले अध्याय में महाभारत के धर्म प्रसंगों का विस्तृत विवरण दिया गया है । महाभारत में इन धर्म सम्प्रदायों की विपुलता इस बात को प्रमाणित करती है कि महाभारत को धर्मशास्त्र मानना उचित है ।

२४-सर्वश्रुतिसमूहोऽयं श्रोतव्यो धर्मबुद्धिभिः ।

आदिपर्व—अध्याय ६२, श्लोक ३५ ।

२५-एष धर्मपुरा दृष्टः सर्वधर्मेषु भारतः ।

आदिपर्व—अध्याय-६२, श्लोक ३६ और ३७ के मध्य का

२६-नरेण धर्मनामेन सर्वं श्रोतव्यं इत्यपि ।

आदिपर्व—अध्याय ६२, श्लोक ४४३ ।

२७ धर्मो मतिर्भवतु च सततोत्थितानां

स ह्येव परलोकगतस्य वापि ।

आदिपर्व—अध्याय २ श्लोक ३६१ ।

३-डा० सुकथनकर का मत—

महाभारत के आधुनिक आलोचकों का ध्यान उन्के मूल कथाकान्त पर केंद्रित रहा है। उन्की आलोचना का दृष्टिकान एतिहासिक है। व यह मानत हैं कि प्राचीन कीर्तिकाव्या से महाभारत का विकास हुआ है। महाभारत की रचना किसी एक ब्यक्ति न एक काल म नहीं की वरन् कई ब्यक्तिया के द्वारा कई युगा म उसका विस्तार हुआ है। महाभारत का वर्तमान रूप इम विकास क्रम का पयवसान है। इस विकासक्रम म महाभारत का मूलकथा के अतिरिक्त अय अनक उपाख्यान महाभारत म सम्मिलित हो गय हैं। विदगी आलोचकों का मत है कि धार्मिक अण महाभारत म ब्राह्मणा के द्वारा बहुत वाद म जाड़े गय हैं। होल्ममान ता इम समय को दशवी वारहवी शताब्दी तक मानत हैं।^{२८} किंतु कुमारिल सुबधु और वाण तथा पाचवी शतादी के कुछ शिलालेखा स यह प्रमाणित होना है कि महाभारत का वर्तमान रूप पाचवी शतादी से पहल ही स्थिर हो चुका था। डायो क्रमास्टोम नामक ग्रीक यात्रा न ईसा की पहली शताब्दी म लिखा है कि उन्के समय मे एक लाख श्लोक का महाभारत दक्षिण भारत तक प्रचलित था। इसस प्रमाणित होता है कि इसा के पूव की शताब्दिया म महाभारत का वर्तमान रूप स्थिर हा चुका था।

फिर भी अधिकांश विदेशी विद्वान् महाभारत के प्रासंगिक उपाख्यान और उसके धार्मिक अणों का मूल महाभारत का अण नहीं मानत, वरन् उह वाद म जाना हुआ मानत हैं। उन्के अनुसार महाभारत मूलरूप म एक ऐतिहासिक प्रबंध काव्य है। अत वे महाभारत के धार्मिक अणों की कियेप रूप स प्रशिक्षित मानत हैं। रमेशचंद्रदत्त न भा महाभारत क इम धार्मिक रूप पर वेद प्रकट किया है। विदेशी विद्वानों म एक दाख्मान हो तेमे है जिन्हान महाभारत को काय होन क साथ-साथ धम शास्त्र भी माना है व महाभारत के लक्ष्य को धार्मिक मानत हैं तथा उन्के अनुसार महाभारत के धार्मिक अण मौलिक हैं और उन्के आवश्यक अण हैं। व

२८ कित्तरनिस्त ए हिस्त्री आव इण्डियन लिटरेचर—

महाभारत का एक ही व्यक्ति की रचना भी माना है।^{१०} पाटलिपुत्र के राजा मगध प्रभावित थे कि प्राचीन काल में ही महाभारत एक धार्मिक मंत्र जन्मा था। धर्मगुरु और धर्मशास्त्र मुनिविरुद्ध के माध्यम से ही कथा का रूप धर्म का स्वरूप बनाने में उत्तम भाग लेना माना जाता था।^{११}

डा० मुखयनकर ने पाटलिपुत्र के बुद्ध शास्त्रियों का शास्त्र लिखे हैं कि बुद्ध ने पाटलिपुत्र के राजा मगध का समर्पण किया है कि महाभारत का रूप हीन के माध्यम-माध्यम धर्मशास्त्र भी है और उगका धार्मिक रूप का रूप है। इस प्रकार मुनि बुद्ध ने कि शास्त्र लिखकर एक एक समर्पण रचना किया है।^{१२} महाभारत का धार्मिक रूप उत्तम मंत्र में प्राप्त होता है। बल्कि वह कथा गढ़ाया के माध्यम महाभारत के संशुद्ध रूप में समाहित हो गया है।^{१३} उत्तम मंत्र में नित्य कथा धार्मिक तत्व महाभारत का प्राप्त है प्राप्त होती है।^{१४} यह सम्भव है कि यह धार्मिक तत्व महाभारत के मूल रूप में ही है।^{१५} किन्तु डा० मुखयनकर का विचार है कि वे प्राचीनकाल में ही महाभारत में स्वतंत्र पद्धतियों के माध्यम समाहित हो गए थे कि वह महाभारत में अलग नहीं किया जा सकता और उनका बिना महाभारत का पता नहीं जा सकता।^{१६} अतः उन्होंने यह प्रस्ताव किया है कि हम महाभारत के वर्तमान रूप का ही स्वीकार करना चाहिए जिसे रूप में कि वह मुनि मंत्रों के प्रिय है।^{१७} महाभारत के इस वर्तमान रूप में उगका धार्मिक रूप ही प्रधान है। परिमाण की दृष्टि में भी यह उगका कथाभाग से बड़े गुण अधिका है।

डा० मुखयनकर ने अपने महाभारत सम्बन्धी भाषणा में बड़ी गम्भी

२६—मुखयनकर मीनिंग आव महाभारत—पृष्ठ—२० २१ ।

३०—वही , पृष्ठ—२३ ।

३१—डा० मुखयनकर मीनिंग आव महाभारत—पृष्ठ ८७ ।

३२—वही पृष्ठ ६६ ।

३३—वही पृष्ठ ८५ ।

३४—वही पृष्ठ ६६ ।

३५—वही पृष्ठ ३१ ।

रता और बड़े विस्तार के साथ महाभारत के नतिक तथा धार्मिक महत्त्व का प्रतिपादन किया है। उहान दाल्टमान क मन का समथान किया है कि महाभारत महाकाव्य हान के साथ साथ धर्मशास्त्र भी है।^{३९} उनक अनुसार महाभारत की कथा का एक महावृ नतिक लभ्य है ^{३०} तथा धर्म की धुरी पर ही सम्पूर्ण कथानक घूमता है।^{३८} अपन दूसरे भाषण मे डा० सुकथनकर ने यह सकेत किया है कि कथा की दृष्टि से भी महाभारत का एक निश्चिन लक्ष्य दिखाई देता है, उम लक्ष्य की ओर यह कथा मथर गति से बन्ती जाती है।^{३९} धम और नीति की शिक्षा के बड़े-बड़े प्रसंग कथा के बीच मे मिलने हैं। आरष्यक शांति और अनुशामन पव इसके उदाहरण है। किंतु धर्म के यह प्रमग प्रवच के सौन्दय और गठन को भग नहीं करते। डा० सुकथनकर ने पिसानी के इम मत का समथान किया है कि यह प्रमग काल के गिथिल अन्तरालो म मिलत है।^{४०} आरष्यक पव पाण्डवा के वारह वष के वनवास के प्रसग म धर्म का शिक्षा दता है। शांति और अनुशामन पव युद्ध के अंत और महाप्रस्थान के बीच म आन है।^{४१} काल क अन्तरालो क प्रमग म धम शिक्षा क ये तीनों ही पव महाभारत के अभिन्न अंग हैं। कथा के प्रवच के साथ भी इनकी सगति ठीक बठती है।^{४२}

धम क विगेप और विस्तृत प्रमगा के अनिरिक्त महाभारत की मुख्य कथा भी धर्म और नीति की शिक्षा से परिपूर्ण है। महाभारत का युद्ध धर्म और अधर्म का युद्ध बन गया है।^{४३} पाण्डवो का पक्ष धम का पक्ष है और कौरवो का पक्ष अधम का पक्ष है। धम और अधम का यह सघप देवासुर त्राम की याद तिलाता है। महाभारत क मुख्य नायक युधिष्ठिर धर्मराज और धम क पुन हैं।^{४४} आरष्यक पव शान्तिपव और अनुशामन पव क

३६—डा० सुकथनकर मीनिग आब महाभारत—पृष्ठ ५६।

३७—वही पृष्ठ ८६।

३८—वही पृष्ठ ६०।

३९—वही पृष्ठ ३३।

४०—वही पृष्ठ ३३ ८७।

४१—वही पृष्ठ ८७।

४२—वही पृष्ठ ८६।

४३—वही पृष्ठ ६२ ६३।

४४—वही पृष्ठ १३।

अतिरिक्त महाभारत की कथा व अनन्य प्रसंग जीता का सम्भार गिना दत्त है। डा० सुबयनकर व मन म महाभारत भारतीय भाषाओं का भाष्यार बन गया है।^{४५} महाभारत का अन्त तो गि गन्ट एक भयंकर गिना है जिनका आर म्मुष्य जाति का प्रत्यक्ष महायुद्ध व वाग् ध्यान गता हागा।^{४६}

युद्ध होने हुए भी महाभारत का युद्ध धर्म का युद्ध है। कुण्ठेय व जिस मैदान म महाभारत का युद्ध हुआ, उम गीता व आरम्भ म धर्म प्र क्हा गया है।^{४७} धर्म का पालन कर पाण्डवा और द्रौपदी न अनेक क्थ उठाये हैं। युधिष्ठिर तो स्वभाव स ही धर्म म आहूँ हैं। ये द्रौपदी स कहते हैं कि मेरा मन स्वभाव स ही धर्म म स्थिर है।^{४८} यग व ग्थ म धर्म न जो प्रदन किये उसका उत्तर बेबल युधिष्ठिर ही द सन। धर्म रखा न्वान व बिना युधिष्ठिर स्वयं म भी प्रवेश करने के लिए तयार नहीं हुए। महाभारत व युधिष्ठिर धर्म की मूर्ति हैं इसम कोई सन्दह नहीं।^{४९} व धर्म को स्वयं स भी बढ़कर मानते हैं।^{५०} धर्म के कारण उहाने कष्ट भी स्वीकार किये। धर्म का फल चाहन वाले को वह धर्म वाणिज्यक कहने हैं।^{५१} अनेक उत्ते-जनाओ के होने पर भी युधिष्ठिर धर्म से विचलित नहीं होते। युधिष्ठिर के चरित्र की दृढता धर्म को महाभारत का मुख्य लक्ष्य बना देती है।^{५२} श्रीकृष्ण का योग धर्म व पक्ष को दिव्य बना दता है। महाभारत म सबत्र श्रीकृष्ण को ईश्वर का अवतार माना गया है।^{५३} डा० सुबयनकर न बड़ी

४५—डा० सुकयनकर मीनिंग आव महाभारत— " ३०।

४६—वही " ६१।

४७—वही , ६६।

४८—धर्म एव मन कृष्णे स्वभावात् च व मे घृतम्।

डा० सुकयनकर मीनिंग आव महाभारत प० ६३

४९—डा० सुकयनकर मीनिंग आव महाभारत। पृष्ठ ६४

५०—वही " ७४

५१—वही , ७३

५२—वही " ७७

५३—वही " ६३।

दृढता के साथ यह विचार प्रकट किया है कि महाभारत म कोई भी ऐसा श्लोक नहीं है, जो श्रीकृष्ण के ईश्वरत्व को स्वीकार न करता हो।^{१४} धर्म का तत्त्व बड़ा सूक्ष्म है।^{१५} तथा धर्म का रूप बड़ा जटिल है।^{१६} महाभारत म राज धर्म, कुलधर्म, वणधर्म, आश्रमधर्म, दानधर्म, आपद्घर्म, मोक्षधर्म, स्त्रीधर्म आदि अनेक रूपों म धर्म का वर्णन किया गया है।^{१७}

इस प्रकार अनेक रूपा म महाभारत म धर्म की प्रमुखता है। डा० सुकथनकर के द्रष्टा निर्देशों के आधार पर प्रस्तुत शोध प्रबंध मे महाभारत मे धर्म के विविध पक्षों का विवरण और विवेचन किया गया है।

४—महाभारत में धर्म और त्रिवर्ग—

भारतीय धर्मशास्त्र मे मनुष्य जीवन के चार पुरुषार्थ माने गये हैं— धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्मशास्त्रा में मुख्यतः धर्म का ही वर्णन है। अर्थ और काम को गौण माना गया है तथा धर्म के अनुकूल होने पर ही यह मनुष्य के योग्य वस्तु है। दक्षिणो का मुख्य ध्येय मोक्ष का निरूपण है। महाभारत मे भी धर्म की प्रधानता देती है। पिछले प्रकरणों मे हमने महाभारत के अंत साध्य और डा० सुकथनकर के मत के आधार पर यह प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है कि महाभारत का प्रमुख लक्ष्य धर्म ही है। किंतु स्वयं महाभारत म ही इस बात का प्रमाण मिलता है कि महाभारत म अर्थ, काम और मोक्ष का भी वर्णन है। धर्मशास्त्र होने के साथ साथ महाभारत को अर्थशास्त्र और मोक्षशास्त्र भी कहा गया है।^{१८} जिस प्रकार महाभारत धार्मिक

१४—डा० सुकथनकर मीनिंग आव महाभारत—पृष्ठ ६७

१५—वही — " ८३

१६—वही — " ८३

१७—वही — ' २

१८—धर्मशास्त्रमिद पुण्यमयशास्त्रमिद परम् ।

मोक्षशास्त्रमिद प्रोक्त व्यासेनामितबुद्धिना ॥

विषयों का विवकोप है, उसी प्रकार वह अथ काम और मोक्ष सम्बन्धी विषया का भाण्डार भी है।^{५९} अतः अन्य पुरुषार्थों के साथ धम का क्या सम्बन्ध है, इस विषय म भी महाभारत का मत विचारणीय है। मोक्ष का जीवन का अन्तिम लक्ष्य है, एक दृष्टि से महाभारत भी इसे स्वीकार करता है। मोक्ष के सम्बन्ध म अगले प्रकरण मे विचार किया गया है। माश्र का सम्बन्ध अध्यात्म से है। धम उसका मुख्य साधन है अथ और काम जीवन के साधन है उहे धम के साधन भी मान सकते हैं। धम के साथ इनका सम्बन्ध विचारणीय है। मोक्ष के साथ इनका एसा सम्बन्ध नहीं है। मोक्ष को छाडकर तीन पुरुषार्थों को त्रिवग कहल है। इत प्रकरण म अथ और काम के महत्त्व तथा धम के साथ इनके सम्बन्ध का विवेचन किया गया है।

मनुष्य जीवन क जो चार लक्ष्य अथवा पुरुषार्थ माने गये हैं उह चतुवग भी कहते हैं। धम इन पुरुषार्थों का मूल सूत्र है अथ और काम इनके प्रावृत्तिक आधार है, जो धम क सस्कार से मनुष्य के योग्य बनते है। मोक्ष जावन का अन्तिम लक्ष्य है

प्राकेमर काणे के अनुमार धम से सम्यक् आचरण अर्था मे आंशक हित, काम से वासना भावना तथा कलारमक जीवन की सन्तुष्टि और मोक्ष से आत्मा की मुक्ति का ग्रहण करना चाहिए।^{६०} वात्स्यायन न धम अथ और काम की परिभाषा देते हुए अप्रवृत्त शुभ कर्मों म प्रवृत्ति और प्रवृत्त जशुभ कर्मों स निवृत्ति करान वाला धम विद्या भूमि, हिरण्य, पशु धाय, मित्र आदि का अजन तथा अजित का विवधन अर्था और मन सहित इन्द्रियो का स्व-स्व विषय म अनुकूलत प्रवृत्ति को काम कहा है।^{६१} मोक्ष के अतिरिक्त अविगष्ट तीन को त्रिवग भी कहा जाता है जिसक विषय म महाभारत का

५६—धर्मो क्षायो च कामे च मोक्षे च भरतपथः ।

यदिहास्ति तदपथ्र यनेहास्ति न तत् क्वचित् ॥

आदिपर्व—अध्याय ६२, श्लोक ५३

६०—पाण्डुरग वामन काणे धमशास्त्र का इतिहास—भाग २, १ १ ८

६१—कामसूत्र १, २, ७ १५

कहना है कि ' बुद्धिमान पुरुष त्रिवर्ग को लक्ष्य मान कर कम करते हैं परन्तु यदि तीनों की प्राप्ति नहीं होती है तो वे धम तथा अर्थ के लिए प्रयत्न करते हैं और यदि उनमें से एक को ग्रहण करना होना है तो केवल धम का ग्रहण करते हैं । मध्यम प्रकार के लोग काम और धम की अपेक्षा अर्थ को श्रेष्ठ मानते हैं और मूल केवल काम को ही चरम लक्ष्य मानते हैं ।' ६३ परन्तु वास्तविकता यह है कि धम से ही अर्थ और काम प्राप्त होता है और इसलिए धम को ही त्रिवर्ग का स्रोत कहा गया है । ६४ भातिष्य म भी बतलाया गया है कि धम उत्तम अर्थ मध्यम तथा काम निवृष्ट है और मनुष्य को इस तरह से आचरण करना चाहिए कि धम को प्रमुखता प्राप्त हो । ६५ (तस्मान् धम प्रधानेन भवितव्य यतात्मना) इतना कह कर भी महाभारतकार इस बात को भली भाँति जानते हुए प्रतीत होने हैं कि धम के प्रति लोगो की रुचि बहुत कम होती है । अतएव वे कहते हैं कि—

उध्वबाहुर्विरोधेप न च कश्चिच्छ्रणाति माम् ।
धर्माद्याश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते ॥ ६६

' मैं ऊँचा हाथ उठाकर चितला रहा हूँ परन्तु कोई सुनता ही नहीं कि धम से अर्थ और काम की प्राप्ति होती है उस धम का सेवन क्या नहीं किया जाता । "

आदर्शवादी महाभारतकार का यह उपालम्भ जीवन का उम व्यावहारिक यथार्थता का सामना ला देता है, जिसमें अर्थ तथा काम सर्वत्र छाये हुए दिखाई देने हैं । इसी यथार्थता को ध्यान में रखकर कौटिल्य ने अपने अध्यात्म में लिखा है कि किसी का सुख हीन जीवन नहीं बिताना चाहिए । धम एवं अर्थ के अविरोधी काम का सेवन करना चाहिए अर्थ ही

६३—उद्योगपर्व—अध्याय १२४, श्लो० ३४-४७

६४—उद्योगपर्व—अध्याय १२४, श्लो० ३८

६५—उद्योगपर्व—अध्याय १६७ श्लो० ८-९

६६—सद्विरोधपर्यं अध्याय ५, श्लो० ६२, शल्यपर्व—अध्याय ६०, श्लो० २२,
द्रोणपर्व—अध्याय १५१, श्लो० ३८

प्रधान है—अथ पर ही धम और काम अवलम्बित है।^{१४०} महाभारत म भा-
 शौचिक जीवन की इग आवश्यकता की अनुभव करत हुए
 कहा गया है कि अर्थ स ही धम काम और स्वर्ग की प्राप्ति हो जाती है,
 क्याकि अर्थ क बिना तो लोग की जीवन यात्रा भी सम्भव नहीं। अर्थ के
 महत्त्व का सबसे अच्छा प्रतिपादन शांतिपत्र म अतु न न इग प्रकार किया—
 एव कमभूमि है यहाँ धान की प्रधानता है और कृषि व्यापार गो-पालन
 तथा विविध गिर्य प्राप्ता है। अर्थ ही समस्त कर्मों का आधार है अथ
 के बिना धम और काम भी मिट्ट नहीं होत ऐसा अतुति का कथन है। अर्थ
 धान व्यक्ति भोग्य विषया क द्वारा उत्तम धर्माचरण भी कर सकता है और
 दुःखप्राप्य काम की भी पूर्ति कर सकता है। श्रुति का कथन है कि धम और
 काम अर्थ के ही दो अवयव हैं और अर्थ मिट्टि स उन दोनों की भी पूर्ति हो
 जाती है। इमलिण अर्थयुक्त पुरुष की सभी उपासना करत हैं।^{१४१} जटा और
 मृगचर्म धारण करत बाने, जितद्रिय सयमगाल पक्वधारी मुण्डित मस्तक
 तथा वस्त्रहान रहत बाल विरक्त व्यक्ति भी अर्थ की अभिनाया करत हुए रहते
 हैं। सब प्रकार से परिग्रह रहित बापाय वस्त्रधारी, दानी मूछ धन्याय लज्जा
 गीन गाल तथा मुक्त विद्वान् से लेकर स्वाकामी अथवा वापग्म्यरागत
 निज निज धम का पालन करत बाले व्यक्ति भी अर्थ की अपेक्षा रखते हैं।
 आस्तिक, नास्तिक तथा उच्चतम समय से युक्त व्यक्ति भी अर्थ चाहत हैं इस
 लिण अर्थ की प्रधानता को न मानना तमोमय अज्ञान है और उसको स्वीकार
 करना ही प्रकाश तथा प्रज्ञान है। मुझे तो यहा ठीक ज्ञेयता है कि जो भृत्यो
 का भोग तथा शत्रुता को दण्ड दे सकता है वही अर्थवान् है।^{१४२}

निवर्ग म काम के महत्त्व की सबसे बड़ी स्वीकृति इस बात से हो
 जाती है कि श्रीमद्भगवद्गीता म धर्माविरुद्ध काम को भगवान् का रूप कहा

६७—१,७ "धर्माविरोधेन काम सेवेत । न नि सुख स्थात् अथ एव
 प्रधान अथमूलो हि धमकामाविनि । कौटिल्य का अर्थशास्त्र—अध्याय
 १, श्लो० ७

६८—शान्तिपर्ण—अध्याय १६७, श्लो० ११ से १५ तक

६९—शान्तिपर्ण—अध्याय १६७, श्लोक ११ से २० तक

७०—भगवद्गीता—अध्याय—७, श्लो० ११

गया है (धर्माविरद्धो कामोऽहम्), परन्तु काम की सबसे अच्छी बकालत वा श्रेय भीमसेन को है। उनका कहना है कि—'जिसम काम नहीं वह न ता अर्थ की कामना कर सकता है न धम की जोर न स्वयं काम की ही जन काम ही सर्वश्रेष्ठ है। काम से युक्त होकर ही पत्ते, फल, मूल तथा वायु मात्र सेवन करने वाले सुमयत ऋषि भी तप म समाहित होते हैं। वेदो और उपवेदा के स्वाध्याय म पारगत यक्ति ध्राद्ध, यन तथा दान या प्रतिग्रह मे, वाणिज्य, कृषि, गो-पानन, कारीगरी शिल्प, देवकम आदि सभी म जो यक्ति लग हुए है वे सभी काम से युक्त ह। काम विविध रूप है और काम से सब कुछ प्राप्त है। काम ही सबका सार है और काम से रहित न कोई है न कभी था और न कभा होगा। अर्थात् धम और अर्थ काम मे ही स्थित हैं। जिस प्रकार दही स मक्खन निकलता है उसी प्रकार अथ और धम से काम प्रसूत होता है और जिस प्रकार खली से तेल, तरु स घृत और काष्ठ से फूल और फल श्रेष्ठ हैं उसी प्रकार काम धम एव अर्थ दानो स श्रेष्ठ है। जमे फूल स उमका रस रूप मधु श्रेष्ठ है उसी प्रकार काम धम और अथ से श्रेष्ठ है। काम धम और अर्थ की योनि है। अत धम और अर्थ दोनों ही काम रूप है। काम रहित होकर ब्राह्मण न अच्छे अन्न का भोजन कर सकते हैं और न कामहीन व्यक्ति ब्राह्मणो का दान ही कर सकता है। बिना काम क लाक म पाई जाने वाली विविध चेष्टायें असम्भव हैं। अत त्रिवग मे काम सर्वप्रथम है। मेरा यह मत बहुत गहराई म पठ कर स्थिर किया गया है। मेरे इस कथन म आप कोई अयथा विचार न करें मेरा यह वचन उराम, अनुसस तुच्छता रहित तथा श्रेष्ठ है।"११

अर्थ और काम की इस जोरदार बकालत के पश्चात् धम के महत्त्व का स्थापना का काय नकुल और सहदेव ने बड़ी बुद्धिमायी स किया— मनुष्य चाहे बठा हो पैटा हो, खडा हो अथवा इधर उधर विचरण कर रहा हो, उस अवस्य ही विविध उपाया द्वारा अथयोग को दृढ करना चाहिए। क्याकि यह बात प्रत्यक्ष ज्ञान पर आधारित है और इस विषय म कोई सगाय नहीं हो सकता कि परमप्रिय दुलभ तथा अनिवापत आवश्यक होने के कारण अर्थ को प्राप्त करके हा सभी कामनावा की प्राप्ति की जा सकता है परन्तु जो

अर्घ्य धम से युक्त हो और जो धम अद्य मे युक्त हो, उसी को अमृत सयोग कहा जायेगा। जो अर्घ्यहीन है, उसका काम व्यय है और जो धमहीन है उसका अद्य व्यय है। अन धम युक्त अद्य से वहिष्कृत होकर लोक उद्वेग को प्राप्त होता है। इसलिए नयमगीत हाकर धम की प्रधानता रखते हुए अद्य की मिद्धि करनी चाहिए क्यकि इसी प्रकार मनुष्य विद्वास पात्र बन सकता है और विद्वासपात्र प्राणिया व ही सब काम सिद्ध होत हैं। इसलिए सबसे पहन धम वा आचरण करे फिर धम युक्त अद्य की प्राप्ति कर और तब काम की पूर्ति करे। काम की पूर्ति करके अपने परम अर्घ्य को प्राप्त करके सिद्धाथ हो जावे।^{१२}

अतएव धमगात्रपारा ने काम और अद्य के महत्व को बराबर स्वीकार किया है परन्तु सुविक्रमित माननाय व्यक्तित्व क लिए इन आवश्यक तत्त्वा का धामिव एव आध्यात्मिक म्या से निम्नवाटि का मान कर उन्हें धमनिपून बनान पर बन दिया है। मनु ने इग विषय म विविध मना को उद्धत करन हुए कहा है कि— कोई धर्म और अर्घ्य को श्रेष्ठ मानत है, कोई काम एव अद्य को कोई कवन धम वा तथा कोई कवल अद्य वा ही सर्वश्रेष्ठ समझत है परन्तु बन्नुस्मिति यह है कि त्रिवग म तीना हा श्रेष्ठ हैं।^{१३} परन्तु आहार निद्रा, भय भेषुन आदि वा कामनायें पशु-जावन व समान मानव जीवन म भा स्वाभावित होन म उन पर जोर दन वा आवश्यकता नहा अपितु उनक निय प्रण एव नियमन वा आवश्यकता है।^{१४} अत आपन्नम्य धममूत्र वा कवन है कि जा मनुष्य उन मभी भागा वा भोगता है जा धम व विद्व न हा ता उगवा दाता ताना वा विजय श्री मिदता है।^{१५} इमा वात को दूगर दग

७२—गान्धर्वा—अध्याय १६७ श्लो० २२ मे २७ तक

७३—धर्माविवृत्तौ घ घ कामायो धम एव च ।
अद्य एव तथा घ यश्चिन्नग इति तु स्मिति ॥

मनुस्मृति—अध्याय २१श्लो० २२४

७४—मनुस्मृति अध्याय ५ श्लो० ५६

७५—भोगा च धर्माविवृत्तान् भोगान् । एवमुभौ तीराश्रितयनि ।
आप्तम्य धममूत्र—अध्याय २ श्लो० ८, २०, २२, २३

कृत करते हुए गौतम का कहना है कि 'मनुष्य को धर्म, अथ तथा काम से प्रातः, मध्याह्न तथा सायंकाल को निष्फल नहीं गँवाना चाहिए। इन तीनों म धम को प्रयुक्तता दनी चाहिए।' *१६* कामसूत्र ने भी धम तथा काम में से प्रत्येक का परवर्ती की अपेक्षा क्रमानुसार अधिक महत्त्व माना है। *१७* इसमें स्पष्ट है कि काम और अर्थ के महत्त्व का पूरा रूप स्वीकार करते हुए भी, इन दोनों का धम-सम्मत होना अत्यन्त आवश्यक गया। इसीलिए आदिपर्व म ही महाभारत के माहात्म्य का वनलात हुए अरतकार न धम का ही माना एक विशेष लक्ष्य मानते हुए कहा है कि 'उत्थानगोल हावर आप लोग अपनी मति धर्म म लगाय क्योंकि यही मा बधु है जो परलोक म गय हुए जीव का भी साथ देता है और अथ का सवन कितना ही निपुणता क साथ क्या न किया जाय परंतु उनकी आ तथा आसता पर विश्वास नहीं किया जा सकता।' *१८*

आध्यात्म और मोक्ष—

चार पुस्तकों म धर्म प्रथम है। धम मनुष्य का नैतिक और आचार है। उत्तम वृत्तव्या का पालन धम ही उमका आनंदक पथ है। धम के मस्कार से सस्कृत होकर तथा धम के अनुकूल बनकर अथ और काम मनुष्य के योग्य बनत हैं। प्राकृतिक होन हुए भी एसी स्थिति म धर्म धार्मिक बन जाते हैं। इस प्रकार लौकिक जीवन म धमपूरा व्यवहार मनुष्य का आदर्श माना गया है। इसी धर्म से समन्वित रूप म अथ और काम का भी महाभारत म अपनाया गया है। इसी रूप में महाभारत धर्मशास्त्र है।

७६—गौतम सूत्र—अध्याय ६ श्लो० ४६ ४७ (तुलना करो)

तुलना करो याज्ञवल्क्य स्मृति अध्याय १, श्लो० ११५

७७—कामसूत्र अध्याय १, २। श्लो० ७ ११

७८—धर्म मतिभवतु व सततोत्थितानां

स ह्येक एव परलोकगतस्य बधु ।

अर्थां श्रियश्च निपुणरपि मेध्यमाना

न वासुभावमुपपाति न च स्थिररवम् ॥

आदिपर्व अध्याय २, श्लो० ३८१ ।

के साथ साथ अर्धशास्त्र और वामशास्त्र भी है। धर्म, अर्थ और काम के त्रिवर्ग एक प्रकार से जीवन की त्रिवर्णी हैं। त्रिभु मोक्ष जीवन का गगनागार है। त्रिवर्ग की त्रिवेणा इसी की आर प्रवाहित होती है। मोक्ष जीवन का अन्तिम लक्ष्य है। मोक्ष को हम आध्यात्मिक लक्ष्य कह सकते हैं। जीवन का आचार और व्यवहार में त्रिवर्ग का महत्त्व स्वीकार करते हुए भी महाभारत में इस बात को नहीं भुलाया गया है कि त्रिवर्ग स्वयं में साध्य नहीं है अपितु मनुष्य को उस परम पुरुषार्थ का साधन मात्र है जिसको मोक्ष कहा गया है। मोक्ष धर्म-मय व अनेक अध्याया में विविध प्रकार के मोक्ष और मोक्ष मार्गों का स्पष्ट तथा सभित विवरण प्रस्तुत किया गया है। परन्तु थोड़े शब्दों में त्रिवर्ग का लक्ष्य रूप मोक्ष के महत्त्व का निरूपण गान्तिपर्व में युधिष्ठिर ने अजु न भीम नकुल तथा सहदेव के उत्त वचना को सुनने के पश्चात् इस प्रकार किया है— 'आप सब लोग प्रमाणों को जानने वाले हैं और आपन नि सन्देह धर्मशास्त्र के सिद्धांतों पर कुछ निश्चित मत बना लिया हैं। मैं आप लागा के विचारों को जानना चाहता था, इसलिए आपन अपन अपन जा निश्चित मत मेरे सामने पक्ष किये उसको मैंने सुना। अब आप से जो कुछ कह रहा हूँ उसको भी अनय भाव से सुनिये। जो मनुष्य न पाप में न पुण्य में और न अर्थ, धर्म या काम में लगा हुआ है अपितु जो सब दोषों से मुक्त है और जिसके लिए लाष्ट और साना (कावन) दाना ही बराबर है वही सुख दुःख आदि देने वाली अर्थात्सिद्धियां से मुक्त हो जाता है। जो व्यक्ति पूर्वज में की बातों का स्मरण करते हैं तथा विकारों से युक्त है वे ससार के विविध दुःखा से प्रतिबाधित होकर पुन पुन मोक्ष की प्रशंसा करते हैं। परन्तु हम लोग उनको जानते भी नहीं। स्वयंभू का वचन है कि जो राग से युक्त है अतः मनुष्य का प्रिय अथवा अप्रिय किंसा से राग या द्वेष नहीं करना चाहिए यही प्रमुख बात है न कि काम-परायणता। जिस प्रकार मुझे नियुक्त किया गया है उमा प्रकार मैं काम कर रहा हूँ। सभी प्राणियों का विधि भिन्न भिन्न ढंग में काम में नियुक्त करता है इसलिए सब लोग इस बात को समझ लें कि विधि ही सबमें बड़ा बलवान् है। काइ भी व्यक्ति केवल काम के द्वारा अप्राप्य अर्थ को नहीं प्राप्त कर सकता। जो हानहार होना है वह होकर रहना है। इस बात का जान लो। इसी के अनुसार त्रिवर्गहीन मनुष्य भी लाव हित के

लिए गुह्य अथ का प्राप्त कर लेता है । *१ इसी प्रकार गान्ति पव मे त्रिवग सम्मत आश्रम धम, वणु वम राज धम आदि का उपदेश करने के पश्चात् युधिष्ठिर द्वारा पूछे जाने पर भीष्म न त्रिवग के साध्य माश्र की ओर इस रन म सकेत किया है— सवत्र स्वग देने वाल धम तथा मत्य की प्राप्त कराने वाले तप का विधान है । धम के अनेक द्वार हैं परन्तु धम की क्रिया फन हान नही है । जो जो व्यक्ति जिस जिस विषयम विनेप निश्चय प्राप्त कर लेता है, वह केवल उसी को पहचानता है और किसी दूसर को नही । परन्तु धम भी कोई मशय नही कि वह जैसे जैसे इस सम्पूर्ण लोक तत्र की अमारता को समभता जाना है वसे ही वम वह उससे बिरक्त होता जाता है । इसलिए अनेक दापा से पूण होन क कारण इस लोक म बुद्धिमान् मनुष्य को आत्ममाश्र के निमित्त ही प्रयत्न करना चाहिए । <

अत सौति उग्रथवा ने अपनी वृति का कल्पना भारतद्रुम के रूप म करने हुए जब उनके जमृतरस के रूप मे 'अश्वमघपव को ग्रहण किया और उनके पश्चात् आने वाले त्रिवग सम्मत राजधम वणुधम आश्रम धम आदि को वृथ द्वारा प्रदत्त आश्रय-स्थान कह कर उनके स्वादिष्ट, सुमध्य सरस अच्छेद्य तथा गान्वन पुष्पफलादय का वणुन, *१ ता सम्भवत उनका उद्देश्य मोक्षमाग पव के प्रतिपाद्य विषय 'मोक्ष' से ही है क्यकि उनपु क्त रूपक म ग्रथगत पूर्वपर सवध क अतिरिक्त जसा कि डा० फतहमिह न भारतीय समाज शास्त्र *२ म कहा है । आश्रम धम का आधार जहा इच्छा नान क्रिया सवलित विविध धम है, वहा मोक्ष का आधार है शम—धम की परिणति 'रफ' का खीकर जत्र गम म हो जाती है, तभी आश्रम धम के चरम लभ्य माक्ष या ब्रह्मनिर्वाण की प्राप्ति होती है । इसी का प्रतिपादन न केवल गान्ति पव म आश्रम धमों का अन्त मोक्ष धम म करक दिखाया गया है अपितु ममस्त

७६—शान्तिपर्व—अध्याय १६७, श्लो० ४१ से ४८ तक

८०—शान्तिपर्व—अध्याय १७४, श्लो० १ से ५ तक

८१—तस्य वृक्षस्य वक्ष्यामि शश्वत्पुष्पफलोदयम् ।

स्वादुमेष्परतोपेतमच्छ्रेष्ठममररपि ॥

शान्ति पर्व—अध्याय १, श्लो० ६३

८२—विस्तार के लिए, देखिए 'भारतीय समाज शास्त्र' पृष्ठ ७५ ८५

महाभारत के कथानक म भी प्रचण्ड युद्धाग्नि का प्रथमन शक्ति, सयाम तथा स्वगारोपण म बरके इस जयनामक इतिहास को मुमुक्षुआ के लिय भी श्रोतव्य माना गया है ।

जयो नामतिहासोऽय श्रोतव्या माक्षमिच्छता ॥^{८३}

क्योकि इससे मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है ।

यहाँ प्रश्न यह होता है कि क्या केवल एक भौतिक विजयगाथा मात्र मोक्ष मे किंचित सहायक हो सकती है ? अथवा यह जय नाम का इतिहास एक ऐतिहासिक एव भौतिक युद्ध की आड म कुछ और भी छिपाय हुए है ^{८४} इस प्रसंग म यह याद रखना है कि न ता हम यहाँ पर उन मनीषियों का खण्डन करना अभीष्ट है, जो भारत युद्ध की ऐतिहासिकता को प्रामाणिक करने मे प्रयत्नगील है और न भारत युद्ध को शुद्धरूपेण काल्पनिक मानने वाले पक्ष का ही समर्थन अभीष्ट है । परन्तु भारत युद्ध की ऐतिहासिकता म तनिक भी सन्देह किय बिना यह तो निश्चित ही है कि इस जय, भारत या महाभारत को न केवल अथ धम एव मोक्ष का गारू बहा गया है अपितु इसे मुमुक्षुओ के लिए श्रोतव्य बतार 'मोक्ष ही को इस ग्रन्थ का चरम लक्ष्य माना गया प्रतीत होता है । अत यह कहना अनुचित न होगा कि इस इतिहास को एक ज्य्यात्म विद्या का माध्यम बनाने का भी प्रयत्न किया गया है ।^{८५}

यो तो माक्ष-सहित समस्त चतुर्बग की प्राप्ति लक्षण ग्रन्था क अनुसार, सभी सस्वृत महाबाव्या का लक्ष्य होना चाहिए परन्तु इन चारो की मीमासा तथा अभिव्यक्ति प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे जितने विस्तृत तथा व्यापक रूप म महाभारत मे प्राप्त है उतनी अथत्र कहा भी देखने म नहीं आती । अत इसमे कोई आश्चर्य नहीं कि महाभारत कार ने जय नामक इतिहास क कथानक को एक आध्यात्मिक रूपक बनाने और महाभारत कथा के द्वारा एक विशेष तात्विक प्रकट करने का प्रयत्न किया । इस प्रकार के प्रयत्न सबप्रथम आदिपर्व के प्रथम श्लोक म ही प्राप्त होने ह

८३—स्वर्गारोहण पर्व—अध्याय ५, श्लोक ५१

८४—सी० धी० शीघ्र महाभारत मीमासा

८५—प्रि-सोपल पडानी मिस्ट्रीज आव महाभारत

जिसमें नारायण और नर को नमस्कार किया गया है ८९ क्योंकि जसा आगे चलकर कहा गया है कि यह नारायण और नर महाभारत क्या क कृष्ण और अजु न ही है । ९० इसवे अतिरिक्त महाभारत की अनुक्रमणिका के लगभग प्रारम्भ म ही स्पष्ट बतलाया गया है कि महाभारत के कथानक की सृष्टि दा महाद्रुमो के मेल से हुई है जिनम से एव दुर्योधन नामक मयुमय महावृक्ष है जिसका स्वध करण है शकुनि शाखा है, दुशासन पुष्प फल है तथा अनानी धृष्टराष्ट्र मूल हैं ९१ और दूसरा युधिष्ठिर नामक धममय महावृक्ष है जिसका स्वध अजु न है, शाखा भीमसेन है, नकुल सहदेव पुष्प फल है तथा उसके मूल ब्रह्मरूप कृष्ण तथा ब्राह्मण हैं । ९२

आगे चलकर अगावतरसुपव ९३ म क्या के विभिन्न पात्रा का जो दिव्य जन्म बतनाया गया है उसमे भी इसी प्रकार का तात्पर्य दिखाई पडता है । सबके सब पात्र किमी न किमी दिव्य शक्ति क अगावतार मान हैं जसा कि निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट हो जाता है—

महाभारत क पात्र	अशी
भीष्म	वसु
विदुर, युधिष्ठिर	धम
करण	सूय
कृष्ण बलराम	विष्णु
धृष्टद्युम्न, द्रौपदा	यत्नाग्नि
भीम	वायु
अजु न	इन्द्र
नकुल, सहदेव	अश्विनी

८६—नारायणमस्तुत्य नर च च नरोत्तमम् ।

देवीं सरस्वतीं व्यास ततो जयमुदीरयेत् ॥

आदि पर्वा—अध्याय १, श्लो० आरम्भ का

८७—आदिपर्वा—अध्याय १, श्लो० १७४

८८—आदिपर्वा अध्याय १, श्लो० ११०

८९—आदिपर्वा अध्याय १, श्लो० १११

९०—द्वैतिये अध्याय ६३, श्लो० ६१ से ११७

सात्त्विकी	सख्य
श्रुतवर्मा	हृदि
द्रोण	अग्निपुत्र भरद्वाज तथा द्रोणी
गकुनि	मुत्र (अमुरराज प्रह ताद का गिप्य)

इसी प्रकार अत म स्वा पङ्कचकर ये मभी पाप अपन-अपन पापिव
गरीर की छोडकर मून दिव्याश रूप को ' ' ग्रहण कर लेत हैं । स्वर्गारोहण
पथ मे इमका वरण करत हुए, निम्नलिखित पात्रो को भी अपन-अपन अंगी म
विलीन होत हुए दिखलाया गया है—

महाभारत के पाप	अंगी
धृतराष्ट्र, गांधारी	कुवर
विराट द्रुपद आदि	विश्वदेवा
गकुनि	द्वापर
अभिमन्यु	सोम
दुर्योधन तथा उसके महायक	कुवर, इन्द्र वरण

इन सबेतो के आधार पर अथवा इनमे ही सबेत या प्रेरणा पाकर हा
सम्भवत कई विद्वानो ने महाभारत म रहस्य तात्पर्य अथवा गुह्य अथ दून
का प्रयत्न किया है । इस सम्बन्ध म थडानी महोदय का प्रयत्न विशेष रूप से
उल्लेखनीय है क्योंकि उन्होंने लगभग दो हजार पृष्ठो म प्रकृत परिश्रमपूर्वक
यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि हिंदू विचारधारा की सभी पद्धतिया
परस्पर सम्बन्ध रखती रहती हैं और इही के पारस्परिक सम्बन्ध सहयोग
तथा विरोध के आधार पर ही पुराण रामायण तथा महाभारत की विभिन्न
कथाओ और आख्याना का सृजन हुआ है । मन बुद्धि, चित्त और पंच तन्मात्रा
जीवन की आठ शक्तियाँ हैं तथा ये चतुर्विध जीव वग म व्यक्त हो रही हैं ।
कथाओ और आख्याना के सृजन म इही शक्तियाँ आदि को स्त्री पुरुषा का
रूप दे दिया गया है । महाभारत म उही विभिन्न विचारधाराओ के सघष का

६१—स्वर्गारोहण पथ अध्याय ३, श्लो० ४२

, अध्याय ४, श्लो० २ से लेकर २१ तक

, अध्याय ५, श्लो० १० से लेकर २८ तक

चित्रण हुआ है, जा कि सबकी सब मनुष्य के मानस-क्षेत्र में समवत होनी है। मन का अधिष्ठात्री देव चंद्रमा है, अतः महाभारत के कौरव पाण्डव तथा कृष्ण को चंद्रवर्गी बतलाया गया है।^२ उनके मतानुसार कौरव याय दशन के प्रतिनिधि हैं तथा पाण्डव वनेपिक के। कौरव पक्ष में भीष्म दान के ईश्वर हैं जा दान में अकृता होने के कारण भीष्म रूप में अविवाहित रहते हैं। धृतराष्ट्र वनेपिक में जन्म लेकर भी आखें मूँदकर न्याय दशन का अनुगमन करते हैं अतः अंधे मान गये हैं। विदुर वनेपिक में जन्म लेकर पाण्डवों का याग और कौरवों के न्याय दोनों से ही सम्बन्ध रखते हैं। अश्वत्थामा वनेपिक दान के मन हैं और नानद्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों से सम्बन्ध रखते हैं। कृपाचाय गुड साय मत के अनुसार कम के प्रतिनिधि हैं तथा गकुनि न्यायमत के होते हुए भी साय मत का ओर झुके हुए हैं। इसी प्रकार पाण्डव पक्ष में युधिष्ठिर का वनेपिक की बुद्धि भीम का मन अर्जुन का प्राण नकुल महदव को पाणि-पात् कुंती को पथिवी और द्रौपदी का यन क्रिया बतलाया गया है। यह वट्टन ही व्यौरवार तथा विस्तार के साथ निरूपण क्रिय जाने पर भी थडानी महोदय का प्रयत्न बहुत स्पष्ट तथा सुबांध नहा प्रतीत हाता यद्यपि उपयुक्त महाभारत वर्णन सकेतो के आधार पर इस बात का अस्वीकार करना सम्भव नहीं कि महाभारत का काव्य बारा इतिहास मात्र ही नहा, अपिनु उससे कुछ अधिक भी है।

डा० सुकथनकर ने अपने चतुर्थ भाषण में महाभारत के आध्यात्मिक पक्ष का विवरण किया है। श्रीकृष्ण को परमात्मा मानकर उहाने जावन के आध्यात्मिक लय व साथ महाभारत की सगति दिखाने की चेष्टा का है। महाभारत धम और अधम का युद्ध है। परमात्मा इस द्वन्द्व से पर है। उसी की प्राप्ति मोक्ष है।^३ आत्मा के रूप का उहाने बडी सूक्ष्मता के साथ निबाह किया है। श्रीकृष्ण परमात्मा हैं अर्जुन नरोत्तम हैं अय पात्र जावात्मा की अय अवस्थायें हैं। उदाहरण के लिए धृतराष्ट्र गीता की अहंकार विमूढ आत्मा (३२७) हैं। धृतराष्ट्र व सौ पुन जीव की विभिन्न आकाशा का रूप हैं। नरोत्तम अर्जुन धम का पणपाता है। इस प्रकार महाभारत सामानिक

६२—थडानीवृत "मिस्ट्रीज आव महाभारत, भाग १ नूमिका पृ० २२ २३

६३—डा० सुकथनकर मोनिग आव महाभारत-पृष्ठ ६२

धम युद्ध होने के साथ साथ मनुष्य के आंतरिक युद्ध का रूप बन जाता है।^{१४}

आध्यात्मिक अर्थ में महाभारत मोक्ष गारु भी बन जाता है। गाना महाभारत के इस आध्यात्मिक पक्ष को और भी प्रबल बना देती है। किन्तु धम ही मोक्ष और अध्यात्म का मुख्य साधन है। इसीलिए महाभारत म धम का ही वर्णन अधिक विपुल है। आश्रम धम वण धम स्त्री धम राज धम आदि के रूप में धम का ही विस्तार अधिक दिखाना देना है। धम सम्मत त्रि वग के द्वारा ही मांग की प्राप्ति सम्भव है। धम के ही सूक्ष्म और विविध पक्षों को महाभारत में समझने का प्रयत्न किया गया है। इसी आधार पर प्रस्तुत गोघ प्रबन्ध में महाभारत के अनुसार धम के विविध पक्षों का विवेचन किया गया है।

६४—डा० सुक्यनकर मीनिंग आव महाभारत—पृष्ठ ६८ से १०५ तक

अध्याय — ४

धर्म के रूप

१—'धर्म' शब्द का अर्थ—

'धर्म' शब्द का अर्थ बहुत विविध और व्यापक है। एक ही निश्चित और सीमित अर्थ में 'धर्म' शब्द का प्रयोग नहीं होता। एक ही 'धर्म' शब्द भाषा और विचार की परम्परा में अनेक अर्थों का वाचक बन गया है। इनमें कुछ अर्थ अधिक व्यापक हैं और कुछ कम, कुछ अर्थ सामान्य हैं और कुछ विशेष। 'धर्म' शब्द का सबसे व्यापक अर्थ उसका व्याकरणगत मूल धातु 'धृ' पर आश्रित है। 'धृ' का अर्थ धारण करना है।^१ 'धृ' धातु से निर्मित होने के कारण 'धर्म' का अर्थ धारण करने वाला है। जो धारण करता है वही 'धर्म' है।^२ धर्म से अभिप्राय उन गुणा अथवा लक्षणों से है जो किमी वस्तु के स्वरूप को धारण करते हैं। धारण करने का अर्थ अपाना, पालन करना और बनाये रखना है। योग-दर्शन में एक ही विषय में चित्त की स्थिरता का धारणा कहते हैं।^३ साधारण व्यवहार में किमी मनुष्य के एक निश्चित विचार अथवा विश्वास का धारणा कहते हैं यथा 'यह भरी धारणा है।' धारणा के सभी प्रयोगों में स्थिरता का नाव पाया जाता है। स्थिरता का अभिप्राय एक निश्चित रूप के बने रहने से है। स्वरूप की स्थिरता का निवृत्त अथवा संरक्षण 'धारणा' का मुख्य लक्षण है।

१—राधाकृष्णन् हिन्दुओं का जीवन दर्शन—पृष्ठ-७४

" रिक्लीजन एण्ड सोसाइटी—पृष्ठ १०७

२—देशबन्ध चित्तस्य धारणा—योगसूत्र-३-१

३—धारणात् धर्ममित्याहुः ।

'धु' एक गन्मन् धातु है। गन्मात् हान व कारण 'धम' का प्रयोग वर्त्ता तथा कर्म दाना रूपा म गम्भव है।^४ धारण' एव वर्त्ता का व्यापार है। साथ ही गन्मात् हान व कारण 'धु' अथवा धारण का बर्द्ध 'कर्म' भी आव द्यक है। बोद्ध वर्त्ता विभी कर्म का धारण करता है। उदाहरण म लिए गिव जयो मस्तत्र पर चद्रमा को धारण करता है। गिव इम धारण के वर्त्ता है और चद्रमा का धारण करत है। गिव इत्त धारणा व वर्त्ता है और चद्रमा उगवा कर्म है। प्रतिहारी दण धारण करता है। प्रतिहारी धारण का वर्त्ता है और दण्ड उतवा कर्म है। धम धु' धातु का भाव रूप है।^५ अतएव वह वर्त्ता और कर्म दोनों हा बन साता है। विना स्वरूप को स्थिरता रखन वाला वर्त्ता धम' का वाच्य हा बनता है। जिस स्वरूप का निग्रहण किया जाता है वह स्वरूप भी धम' कहा जा सता है। व्याकरण की दृष्टि स मह दूसरा स्वरूप कर्म है। धमगात्रा म दाना ही अर्था म धम पद का प्रयोग होना है। महाभारत म धारणा व आधार पर ही धम की परि भाषा की गई है और धम को प्रजा का धारण करन वाला कहा गया है। धम की परिभाषा बताते हुए भीष्मजी न मुधिरि से कहा कि प्राणिया व अम्यु ल्य और कल्याण ँ लिए ही धर्म का प्रवचन किया गया है, अन जा दस उद्दय स युक्त हो अर्थान् जिसस अम्युल्य और नि र्थेयस मिद्ध होन हा वही धर्म है एसा गास्त्रवेत्ताओ का निग्रय है।^६ धर्म गन् की दूसरा परिभाषा भीष्मजी न इस प्रकार बताई कि धर्म का नाम धम' इसलिए पडा है कि वह सबको धारण करता है अर्थान् जयोगति म जान से बचाता है और जीवन की रक्षा करता है। धर्म न हा मारी प्रजा को धारण कर रता है। जो प्रजा के धारण स सयुक्त है वहा धम है ऐसा धमवत्ताओ का निग्रय

४—धु + मन्—गद कल्पद्रुम—भाग—२—पृष्ठ—७८३

५—धरति लोकान् त्रियते पुण्यात्मभिरिति वा—गदकल्पद्रुम—भाग—२—पृष्ठ—७८३

६—प्रभवार्थिषु भूतानां धमप्रवचन कृतम् ।

य स्यात् प्रभवसयुक्त स धम इति निग्रय ॥

गातिपत्र—अध्याय १०८—१०

है ।”^{१०} महाभारत के उक्त श्लोक में धर्म का प्रयोग कर्त्ता के रूप में किया गया है । धर्म प्रजा का धारण करने वाला है । अथ धर्मगाम्ना में धर्म का प्रयोग कर्म के रूप में किया गया है । अहिंसा सत्य आदि धर्मों के ऐसे लक्षण हैं, जिनका मनुष्य धारण करता है अथवा जिनका मनुष्य पालन करना है ।

महाभारत में प्रजा अथवा मनुष्य का धारण करने वाला जिन धर्मों को मुख्य माना गया है वह मनुष्य का सामान्य धर्म है । इसमें हम ‘मानव धर्म’ कह सकते हैं । वह मनुष्य के स्वरूप का धारण करता है । वह मनुष्य के मनुष्यत्व का रक्षक है । मनुष्य का यह धर्म स्वतन्त्र है । इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य अपनी स्वतन्त्र इच्छा से इस धारण करता है । दूसरी ओर यह धर्म मनुष्य के मनुष्यत्व की रक्षा करता है । ‘धर्मो रक्षति रक्षितः’ के प्रसिद्ध धर्म सूत्र का यही अर्थ है । मनुष्य के द्वारा स्वतन्त्र इच्छापूर्वक धारण किये जाने पर धर्म उसका मनुष्यत्व और प्रजा अर्थात् समाज का धारण अथवा रक्षण करता है । धर्म का यह सामान्य मानवीय रूप ही लोक के कल्याण का भाग है यही महाभारत के उक्त वाक्य का आशय है ।

धर्म के उक्त अर्थ में धारण की मकमक क्रिया के दोनो रूप घटित हो जाते हैं । प्रजा के धारण करने के अर्थ में धर्म कर्त्ता है । वह प्रजा का धारण करने वाला है । जब मनुष्य उस धर्म का धारण अथवा पालन करता है तो वह धर्म कम बन जाता है । धर्मो रक्षति रक्षितः में धर्म के कर्त्ता और कम दोनो रूपों का समाहार है । रक्षक के रूप में धर्म कर्त्ता है तथा रक्षित के रूप में वह कम है । धर्म के सामान्य मानवीय रूप के अतिरिक्त उसके अन्य रूपा में भी धर्म के कर्त्ता और कम भाव घटित होते हैं । धर्म के

७—धारणाद् धर्मविरपाद् धर्मोण विधृता प्रजा ।

य स्योद् धारणस्युक्त स धर्म इति निश्चय ॥

शांतिपर्व—अध्याय १०६—११

य अय रूप तीन प्रकार के हैं— (१) प्राकृतिक धम (२) विनियम धम और (३) सम्प्रदाय धम । प्राकृतिक धम भौतिक अवस्थाओं व महत्त्व अथवा नम गिन लक्षणा को कहते हैं । इनका 'स्वभाव' कहा जा सकता है । उदाहरण के लिए अग्नि जलती है । यह जलना अग्नि का धम है । यह अग्नि का महत्त्व नसगिव स्वभाव अथवा व्यवहार है । भारतीय विचार धारा म इस धम कहा जाता है । इसम धर्म शब्द का मूल अर्थ घटित होता है । 'वर्म' का भाव म अग्नि इस ज्वलन धम को धारण करती है । कर्त्ता का भाव म यह ज्वलन धम अग्नि के स्वरूप को रखा करता है । न जलन वाली गीतल अग्नि को अग्नि कहना भी उचित न होगा । इसी प्रकार प्राण रक्षा करना ओषधि का धम है जो ओषधि प्राण घात करे उम विष कहना ठीक होगा । व्यापक प्रवृत्ति म यह धम एक नसगिव नियम अथवा व्यवस्था बन जाता है । सूर्य का धम उदित होना, लोका को प्रकाशित करना आदि है । यह प्राकृतिक धम ब्रह्म 'ऋत' का आधार है । इसी प्राकृतिक नियम के सूत्र मे ऋत मानवाय धम का मूल स्रोत बना है ।

'विनियम धम' मनुष्य की विनियम और विभिन्न सामाजिक परिस्थितियाँ तथा उसके विशेष सामाजिक सम्बन्धो म उत्पन्न होते है । गुरु का धम गिष्य को पढाना है माता का धम सन्तान का पालन करना है, सनिक का धम नडना है । जीवन की विनियम परिस्थितियाँ और विशेष सम्बन्धो म मनुष्य का जो उचित कर्त्तव्य है वही उसका धम है । यह सामान्य मानव धम का ही विनियम रूप है । इसम भी कर्त्ता और कर्म दोनों के भाव घटित होते हैं । कर्म के रूप म मनुष्य धर्म-रूप विनियम कर्त्तव्य का पालन करता है । कर्त्ता के रूप म यह धर्म मनुष्य के विनियम सम्बन्ध की रक्षा करता है । शिक्षा देने वाला गुरु ही सच्चा गुरु है पालन करने वाली माता ही माता है लडने वाला सनिक ही सनिक है । इन धर्मों का पालन न करने पर वे अपनी सगाओ के अधिकारा नहीं रहते । य धम ही उनके सम्बन्धगत स्वरूप की रक्षा करते हैं ।

सम्प्रदाया के उत्पन्न होना व बाद ये सम्प्रदाय अथवा मत भी धम' कहलाने लगे । भारतीय धारणा के अनुसार उन्हें सम्प्रदाय कहना ही अधिक उचित है । धम 'गुरु' रिलीजन अथवा मजहब का पर्याय नहीं है ! धम एक सामान्य मानवीय भाव है । रिलीजन अथवा मजहब ईश्वर, आपनात

आदि के सम्बन्ध में एक विशेष मायता का नाम है। 'धम' लौकिक, सामाजिक सामाज्य और मानवीय है। रिलीजन अथवा मजहब, अलौकिक, ईश्वरीय सीमिति तथा सकुचित है। धारण करने का भाव कुछ सीमा तक इनमें भी घटित होता है। इसलिए इनके लिए भी 'धम' शब्द का प्रयोग होना लगा। जो लोग इन सम्प्रदाय धर्मों का पालन करते हैं, वे उनके अनुयायी बन रहते हैं। इसी धम का पालन करने वाला ईसाई और इस्लाम धम का पालन करने वाला मुसलमान बना रहता है। इस सीमित अर्थ में धम का व्याकरणगत भाव चरिताथ होता है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कि वह प्राकृतिक धम' के अर्थ में चरिताथ होता है।

२—प्राकृतिक धर्म और मानवीय धर्म

संस्कृत भाषा का 'धम' शब्द बहुत व्यापक है। प्रकृति और मनुष्य दोनों की क्रियाओं के लिए इसका प्रयोग होता है। व्युत्पत्ति के अनुसार पदार्थ अथवा मनुष्य के स्वरूप का रक्षण करने वाला क्रियाएँ 'धम' कहलाती हैं। इनमें प्राकृतिक और मानवीय दोनों प्रकार की क्रियाएँ सम्मिलित हैं। प्राकृतिक पदार्थों के स्वरूप का रक्षण जो क्रियाएँ करती हैं उन्हें प्राकृतिक धम कह सकते हैं। प्रकृति में जो स्वाभाविक रूप से होता है, वह प्राकृतिक धम' है—जैसे पानी का धम नीचे की ओर बहना है अग्नि का धम जलना है आर्य का धम देखना है। ये सब प्राकृतिक नियम और क्रियाएँ इस धम के अंतर्गत हैं। मनुष्य के मनुष्य स्वरूप का रक्षण करने वाले लक्षण, गुण आचार आदि 'मानवीय धम' कहलायेंगे। भारतीय धम शास्त्रों और महाभारत में धम का अभिप्राय धम के इसी मानवीय रूप से है। मनुष्य के आचार अथवा कर्तव्य के अर्थ में यह धम मनुष्य की इच्छा अथवा उसके स्वल्प पर निर्भर है। प्रकृति जड़ है। उसमें चेतना नहीं है। अतः प्रकृति के धम के सम्बन्ध में स्वल्प का प्रश्न नहीं उठता। स्वल्प चेतना का क्रियात्मक रूप है। वह मनुष्य में ही होता है। स्वल्प में मनुष्य धम का धरण और आचरण करता है। स्वल्प को स्वतंत्र माना जाता है। स्वल्प के द्वारा मनुष्य धम का आचरण करता है अतः धम के कर्ता को स्वतंत्र मानना उचित है। पाणिनि ने भा कर्ता को स्वतंत्र माना है। स्वल्प की स्वतंत्रता के आधार

पर ही मनुष्य का मानवीय धर्म स्वतंत्र मानने योग्य है। इस धर्म का मानन के लिए कोई उगे विषय नहीं कर सकता। शास्त्र जादि केवल उस आदेश द सरत है। धर्म शास्त्रा के विधान ऐसे ही आदेश हैं। किंतु मनुष्य उन आदेशों का पालन अपनी इच्छा से ही करता है। वह उनका पालन करने अथवा न करने में समर्थ है। करन अथवा न करन की स्वतंत्रता इस मानवीय धर्म का लक्षण है।

प्रकृति में चेतना और स्वल्प नहीं होने। जब प्राकृतिक धर्मों के सम्बन्ध में स्वतंत्रता का प्रश्न नहीं उठता। वे अतिव्यय और निश्चिन्त होते हैं। पानी नीचे को अवश्य बहेगा अग्नि अवश्य जलगी। इनका न होने का कल्पना नहीं की जा सकती। प्राकृतिक धर्मों में जवत्तुम् की सनावता नहीं जानी। ब्रह्मचर्य का पालन अतिवि मत्कार दान, दया आदि मानवीय धर्म मनुष्य की स्वतंत्र इच्छा पर निर्भर होते हैं। अतः मनुष्य इन्हें न भी कर, यह भी सम्भव हो सकता है। इनके लिए कोई मनुष्य को विषय नहीं कर सकता और न ये जल प्रवाह की भाँति अपने आप जाते हैं। ये प्राकृतिक धर्मों के समान नसर्गिक नियम नहीं हैं। यदि मनुष्य अपना स्वतंत्र इच्छा से प्रयत्न पूर्वक इन्हें करता है तो ये हात हैं अथवा नहीं होंगे। स्वल्प में मनुष्य के प्रयत्न का भी भाव रहता है। सामान्यतः मनुष्य के धर्म प्रयत्न के द्वारा ही उभर हात हैं। प्राकृतिक धर्मों में यह प्रयत्न नहीं रहता। वे अपने आप होते हैं। यह प्राकृतिक और मानवीय धर्मों में अंतर है। पण्य अथवा मनुष्य के स्वल्प की रक्षा अथवा उनका धारण के अर्थ में तो दोनों ही धर्म समान रूपसे धारक हैं किंतु प्रयत्न की दृष्टि में उनमें अंतर दिखाई देना है।

इस अंतर का समाधान इस प्रकार किया जा सकता है। जो वाय मनुष्य प्रयत्न के द्वारा करता है उस काम वह सरत है। यह मानना की अवस्था है। प्रयत्न द्वारा भावनात्मक के पालन में सफल होना मनुष्य के नियमों का मान है। अधिक अभ्यास और साधना के बाद मनुष्य का धर्म के नियम धारण की काम प्रयत्न का आवश्यकता जाता है और वह काम मनुष्य का

सहज स्वभाव बनता जाता है। इस प्रक्रिया के पूरे होने पर कतव्य मनुष्य का सहज स्वभाव बन जाता है। तब उस धम न कह कर 'धम' कहना उचित है। वह प्रयत्न से नहीं बरन् सहज भाव से होता है। सचेतनता के अतिरिक्त उसमें प्राकृतिक धम से सहज भाव में बहुत समानता होती है। धम के इस रूप में धम के प्राकृतिक रूप का सहज भाव मानवीय धम में भी चरिताथ होता है तथा धम' का व्यापक प्रयोग साथक हो जाता है। धम' के इस रूप का 'गील' भी कहने हैं। 'गील' भी 'धम' के समान व्यापक है। अग्नि के ज्वलन धम को 'गील' भी कह सकते हैं। 'अग्नि' ज्वलन 'गील' है। जल वहन 'गील' है। मानवीय प्रसंग में 'गाल' धम के समान ही मनुष्य का लक्षण है। किन्तु धम में जो प्रयत्न का भाव रहता है वह 'गील' में नहीं रहता। 'गील' मनुष्य का निश्चित स्वभाव अथवा लक्षण है। यह माघ भावस्था का धम नहीं है, बरन् मिद्धावस्था का धम है। जिस प्रकार प्रकृति के धम अथवा 'गील' का व्यवहार सहज भाव से, बिना प्रयत्न होता है तथा उसका अयथा—भाव नहीं होता उसी प्रकार मनुष्य के 'गील' रूप धम का व्यवहार भी सहज स्वभाव से बिना प्रयत्न के होता है तथा हरिश्चन्द्र के सत्य युधिष्ठिर के धम कण के दान आदि की भाँति उसका भी अयथा—भाव नहीं होता। 'धारण' के अर्थ में धम तथा सहजभाव के अर्थ में 'गील' की व्यापकता प्रकृति और मनुष्य के व्यवहार में चरिताथ जाती है। दाना में इतना अंतर अवश्य है कि प्रकृति के धम अचेतन होने के कारण मनुष्य के लिये हानिकारक भी हो सकते हैं (यद्यपि प्रकृति के अविनाशक धम मनुष्य के लिये लाभकारक हैं) किन्तु मनुष्य के मानवीय धम मनुष्य समाज के नियम सदा कल्याण कारक होते हैं व हानिकारक नहीं हो सकते। समाज की हानि धम से नहीं दूसरों के अधम से होती है। अतः मानवीय धम मनुष्य समाज का महल सूचक भी है। वगैरह मूल के अनुसार हम उनमें अभ्युदय और निश्चय की भी आशा कर सकते हैं।

३—धर्म और सम्प्रदाय —

मानवाय धम के हम दो विभाग कर सकते हैं। एक को हम मानवीय धम कह सकते हैं दूसरे को उसकी सीमितता और मरुचिन्ता का दृष्टि से सम्प्रदाय का कहना उचित होगा। मानवीय धम मानवीय धम का वह रूप

है जो देग बाल जाति वण आति के वेद से परे सभी परिस्थितियों मे प्रत्येक मनुष्य का धर्म है। ये मनुष्य के सदाचार के वे गुण हैं जिह भारतीय धर्म शास्त्रो मे धर्म' के अंतगत गिना गया है। मनुष्य की स्वतंत्रता समानता जादि का आदर करना इसी धर्म का लक्षण है। सत्य अहिंसा आदि गुण इसी धर्म के अंग है। इस धर्म म कोई बग विभाजन नहीं होता। यह मनुष्य मात्र का धर्म है। भारतीय धर्म शास्त्रो मे तथा महाभारत म मुख्य रूप से इसी धर्म को महत्व दिया गया है।

किंतु पश्चिमी परम्परा के सीमित धर्म सम्प्रदायो के लिए रिलीजन के पर्याय के रूप मे भी धर्म' शब्द का प्रयोग प्रचलित हो गया है। प्राय धर्म का अभिप्राय ईसाई धर्म इस्लाम धर्म हिंदू धर्म आदि म समझा जाता है। मनुष्या के समाज इनको धारण करते है तथा य धर्म अपन अनुयायिया व ईसाई मुसलमान जादि रूप को सुरक्षित बनाते हैं इस अर्थ मे तो ये भी धर्म की परिभाषा के अंतगत आ जाते हैं। इन धर्मों के प्रचारक इस अर्थ म इनको सावभौम मानवीय धर्म भी मानते हैं कि अपने धर्म-सम्प्रदायो का धोड़कर सभी बग के लाग इन धर्मों मे सम्मिलित हो सकते हैं। धर्म के प्रचार प्रसार को इन धर्मों मे एक पवित्र कर्त्तव्य माना जाता है। दूसरा को धर्म परिवर्तन के लिए विवग करन के लिए इन धर्मों के अनुयायिया ने छन बल का भी प्रयोग किया है। इनके धर्म प्रचार म अनेक अनर्थ हुय है। तलवार के द्वारा भी धर्म का प्रचार हुआ है। इन धर्म सम्प्रदायो के अनुयायी अपने धर्मों की श्रेष्ठता पर गव करने हैं तथा भिन्न धर्म वालो को अपवित्र समझते हैं और उह काफिर आदि नामा से पुकारते हैं। य धर्माभिमानी धर्म प्रचार और धर्म-परिवर्तन के अनर्थ एव अयम पर गहराई म विचार नहीं करते।

'धर्म का एमा रूप जिमका प्रचार करना पडे अथवा जिमके प्रचार म अनर्थ उत्पन्न हा तथा जा समाज को विरुद्ध वर्गों म विभाजित कर दे अपन को मानवीय मानन हुए भी अमानवाय बन जाता है। मनुष्या क एक बग के तग वह धारण किया जाता है इम अर्थ म ता वह भा मानवीय है। उमे मानुषाय बहना अधिक उचित होगा। प्रचार के आग्रह के द्वारा वह मानवीयता का प्रतिघात करता है। धर्म क य रूप मनुष्य क मन्त्र म हा निमित्त हुय है किन्तु इम मन्त्र म आत्मा का स्वतंत्रता क नाय-नाय मग्न प्रचार आदि के प्राकृतिक भावा का प्रभाव अधिक है जो मन्त्र की स्वतंत्रता को

सीमित और कल्पित कर देता है। कुछ विशेष सिद्धांता और मायताआ के अनुरोध के कारण ये धम अपनी सीमा में संकुचित होकर 'सम्प्रदाय' बन जाते हैं। प्रचार के द्वारा ये सामाजिक बनने की आकांक्षा रखते हैं किन्तु इनके विशेष सिद्धान्त सर्वमान्य नहीं बन सके। इनके सामान्य मानवीय सिद्धांत भी इन विशेष सिद्धांता की सीमा में बंधे हुए हैं। इनके विपरीत धमशास्त्रों के सामान्य मानवीय सिद्धान्त स्वतंत्र और सर्वमान्य हैं। वे इन सीमित धम सम्प्रदायों में भी स्वीकृत हैं तथा धमशास्त्रों का न जानने और न मानने वाले भी अपनी स्वतंत्र इच्छा और धारणा से उन मानवीय सिद्धांतों का मानते हैं। यही मानवीय धम का वास्तविक रूप है। धमशास्त्रों में किन्हीं विशेष मायताओं की सीमा से मुक्त मानवीय धम का यह रूप सुरक्षित है। यही भारतीय धमशास्त्रों और हिन्दू धम का गौरव है।

हिन्दू धम की गणना भी ईसाई धम इस्लाम धम आदि के साथ धम सम्प्रदायों में की जाती है। किन्तु ऐसी गणना करने वाले हिन्दू धम और पश्चिमी धमों के मुख्य अंतर को भूल जाते हैं। हिन्दू धर्म में अनेक सम्प्रदाय हैं। जन धम, बौद्ध धर्म, सिख धर्म, वैष्णव धम, शैव धर्म आदि इनके उदाहरण हैं। किन्तु इनमें कोई भी सम्प्रदाय अपने विज्ञापन सिद्धांतों का आरोपण अथवा प्रचार करने का प्रयत्न नहीं करता और न दूसरे सम्प्रदायों को अपवित्र मानता है। इसके विपरीत सभी धम-सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदायों का आदर करने हैं। ईसाई और इस्लाम के सम्प्रदायों में यह उदारता और सहिष्णुता नहीं मिलती। निष्पत्ति यह है कि भारतीय सम्प्रदायों के विशेष रूप और विशेष सिद्धांतों में सामान्य मानवीय धम के अनुकूल हैं। इसीलिए वे आरोपणवादी तथा प्रचारवादी नहीं बन सके। सम्प्रदाय होत हुए भाग्य सामाजिक मानवीय धम की आत्मा में अनुप्राणित हैं। इसके विपरीत ईसाई और इस्लाम धमों के सामान्य मानवीय सिद्धांतों की विशेष मायताओं के आरोपण तथा आरोपण के कारण कुठित एवं निष्पन्न हो गई हैं।

हिन्दू धर्म के इसी उदार रूप का संकेत करते हुए डॉ० राधाकृष्णन ने कहा है कि हिन्दू धम कोई सम्प्रदाय नहीं है बल्कि उन सबका भावमंडल है जो सत् नियमों को मानते हैं और निष्ठापूर्वक सत्य की खोज करते हैं।^{११}

मन्त्रगय को मानवीय धर्म से कितना दूर ले जाता है ।

४— वैदिक धर्म और वैशेषिक धर्म

भारतीय धर्मशास्त्रा और महाभारत में मानवीय आचार एवं गुणा को 'धर्म' माना गया है । वे मनुष्य के लिए पालनीय हैं और उनके मनुष्यत्व को धारण करत हैं । धर्म के इस रूप का स्रोत वेदा में माना जाता है । मनु के अनुसार वेद अखिल धर्म का मूल है ।^{२२} वर्णाश्रम व्यवस्था तथा वर्णों और आश्रमों के आचारों को भी वेद विहित माना जाता है । इस प्रकार धर्मशास्त्रों का धर्म वेदानुकूल है । किन्तु धर्मशास्त्रों में वर्णाश्रम धर्म का विधान विशेष रूप से और विस्तार के साथ किया गया है । सामान्य मानवीय धर्म का निरूपण धर्मशास्त्रों की एक महती विशेषता है । धर्मशास्त्रों के 'धर्म में सामाजिक मानवीय गुणा तथा सामाजिक आचारों का विशेष महत्व है । ये आचार मनुष्य के सामाजिक कर्तव्य होते हैं । इस अर्थ में कर्म रूप भी कहे जा सकते हैं । किन्तु इनमें क्रिया के साथ-साथ सामाजिक भाव की प्रेरणा भी रहती है । दया, दान, आतिथ्य आदि के कर्म भाव से भी ओत प्रोत रहते हैं । शास्त्र का विधान होत हुए भी भाव ही इनका मुख्य स्रोत है ।

वैदिक कर्म में वैदिक विधि की प्रेरणा प्रधान होती है । वैदिक धर्म में कर्म की प्रधानता होती है । इन्हींमें वैदिक परम्परा में धर्म की परिभाषा कर्म की प्रधानता के अनुसार की जाती है । पूव मीमांसा में विधि-रूप कर्म को ही धर्म कहा गया है ।^{२३} जो वेदों में विहित है वही धर्म है । पूव मीमांसा के अनुसार वेद का अर्थ विधि प्रधान ही है ।^{२४} जो वेद-वाक्य विधि-परक नहीं है उन्हें मीमांसादर्शन 'अर्थावाद' मानता है । वे पदार्थ, फल दत्तता आदि की प्ररोचना द्वारा कर्म के उपकारक हैं । वेदा में मुख्यतः कर्म-धर्म का विधान है । ये यज्ञ ही धर्म के मुख्य आधार हैं । गीता^{२५} तथा कुछ वैदिक

२२-वेदोऽखिलो धर्ममूलम्, मनुस्मृति २ ६

२३-सोऽन्ता लक्षणोऽर्थो धर्म-मीमांसा सूत्र-१ १ २

२४-आम्नायस्य त्रिषापत्यात् आनयव्यमनदार्यानाम्, मीमांसासूत्र-१ २ १

२५-गीता-अध्याय ४

व्याख्याकारा ने सभी उत्तम वर्गों का धर्म का रूप देखकर 'धर्म' की धारणा को विस्तृत बना दिया है। उनके अनुसार सभी सामाजिक वर्ग धर्म हैं।^{२१} धर्म की यह व्यापक धारणा ब्रह्म के साथ धर्मशास्त्रों के धर्म की सगति सम्भव बना देता है। इस सगति से धर्म शास्त्रों और महाभारत की वेदानुबन्धना भी सिद्ध हो जाती है।

वैशेषिक दर्शन में 'धर्म' को अम्युदय और निश्चयस का कारण बताया गया है।^{२०} लौकिक उत्पत्ति का नाम अम्युदय है। निश्चयस का अर्थ मोक्ष है। मोक्ष आत्मिक उत्पत्ति का नाम अम्युदय है। प्रायः लौकिक और आत्मिक उत्पत्ति में विरोध माना जाता है। इसीलिये कुछ दर्शन में लौकिक एवं भौतिक मूल्या से त्याग एवं सत्यास का प्रतिपादन किया गया है। किन्तु वैशेषिक दर्शन में लौकिक और आत्मिक उत्पत्ति के समन्वय की कल्पना की गई है। वैशेषिक दर्शन में आत्मा की परिभाषा भी इस प्रकार की गई है कि उसमें गौरीरिक और आत्मिक दोनों प्रकार के गुणों का समाहार है।^{२०} आगे चलकर वैशेषिक सम्प्रदाय में आत्मा को निगुण माना गया है और निश्चयस अथवा मोक्ष का अर्थ आत्मा के अखिल गुणों का ध्वंस किया गया है।^{२१} इस मोक्ष के लिये त्याग और सत्यास को भी आवश्यक माना गया है। किन्तु मूल वैशेषिक सूत्र के अनुसार धर्म में लौकिक अम्युदय और आत्मिक उत्पत्ति दोनों की सगति को सम्भव माना गया है। अम्युदय को सम्मिलित कर धर्म की धारणा बढ विहित धर्म के भी अधिक अनुबल बन जाती है। वेद में विहित बहुत से धर्म, धर्म आदि लौकिक अम्युदय के लिए भी होते हैं। धर्मशास्त्रों में लौकिक अम्युदय को धर्म का महत्वपूर्ण अंग नहीं माना गया है। धर्मशास्त्रों के धर्म में आत्मिक भाव और सामाजिक वृत्त 'य' ही प्रधान है। मोक्ष को भी महाभारत में 'धर्म'

२६—डा० फतहसिंह भारतीय समाजशास्त्र—पृष्ठ ६६

२७—यतोऽम्युदय निश्चयस सिद्धि स धर्म

वैशेषिक सूत्र—१ १ २

२८—प्राणायाम निश्चयो-मेघ जीवन मनोगतीन्द्रियातर विकारा
सुख-दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्नाश्चात्मनो लिङ्गानि ।

वैशेषिक सूत्र—३ २ ४

२९—निश्चयसमेककालीनसकलात्मविशेषगुण ध्वंस ।

वैशेषिक सूत्र—उपस्कार वृत्ति—१ १ २

माना गया है। धर्म के अनेक रूपा के साथ मोग धर्म भी महाभारत का लक्ष्य है।^{३०} धर्मशास्त्रा में धर्म को पुष्टपार्थों में प्रथम और मात्त का अन्तिम माना गया है। वशेषिक दशन की धर्म की परिभाषा सामाजिक धर्म का स्थान नहीं देती। निश्रेयस के साधन के रूप में हम उमका अनुमान कर सकते हैं। मत्तचार रूप धर्म मनुष्य के अम्युदय का भी कारण बन सकता है। यावत्पूर्व धर्म भी उपाजित किया जा सकता है। यदि सदाचार रूप सामाजिक धर्म का जम्युदय और मात्त का कारण मान लिया जाय तो वैदिक, वशेषिक और स्मात तीनों प्रकार के धर्मों का समन्वय हा जाता है तथा लौकिक सामाजिक और आत्मिक मून्या का सामजम्य हा जाता है।

धर्म के य वैदिक और वशेषिक रूप धर्म की मौलिक धारणा के अनुरूप हैं। वैदिक कर्म का गामन वर की विधि में अवश्य है। उनमें नित्य कर्मों में मनुष्य की स्वतन्त्रता नहीं है। उनके न करने से प्रत्यवाय होता है। किन्तु काम्य कर्मों में मनुष्य को अधिक स्वतन्त्रता है। मनुष्य इनको करने अथवा न करने में स्वतन्त्र है। मनुष्य अपने सकल्प द्वारा उन कर्मों को करता है। सकल्प द्वारा वे उत्तरे पालनीय धर्म बन जाते हैं। नित्य कर्म भी सकल्प के द्वारा धर्म बन जाते हैं। वशेषिक के अभीष्ट कर्म, जो अम्युदय और निश्रेयस के साधन बनते हैं वे भी सकल्प के द्वारा ही किये जाते हैं। निश्रेयस के साधक हाने के साथ-साथ वे अम्युदय आदि श्रेयों के साधक भी हाने हैं। इस प्रकार वैदिक और वशेषिक धर्म भी धर्मशास्त्रा और महाभारत के धर्म की भाँति कल्याण कारक बन जाते हैं। वे मनुष्य के मनुष्यत्व और प्रजा अथवा समाज का धारण कर धारक के अर्थ में भी धर्म बनते हैं। धर्म के वैदिक और वशेषिक रूप धर्मशास्त्रा के धर्म के समान भावभीम स्वतन्त्र और मानवीय हैं तथा अनुदार मम्प्रदाय के वाचक धर्म से विवेचनीय हैं।

६— धर्मशास्त्रों का धर्म—

धर्मशास्त्रा और महाभारत में जिसे धर्म का विवरण किया गया है

३०—आदिपर्व अध्याय ६२, श्लोक २३

शांतिपर्व अध्याय २७४, श्लोक १६

वह वेद-मम्मत अवश्य है किन्तु वेद त्रिधिया के समान व्यक्तिगत और लौकिक नहीं है। उसमें मनुष्य व आत्मिक गुणा और श्रेष्ठ सामाजिक वृत्त्या की प्रधानता है। ये गुण और वर्त्तव्य अत्यन्त उदार एवं मानवीय हैं। वर्णाश्रम के अनुकूल होने हुए भी धर्मशास्त्रों के धर्म का सामान्य रूप सावभौम और उदार है तथा इन दृष्टि से सम्प्रदाय रूप धर्म की अनुदारता से रहित है। यह आरोपण और आग्रह से रहित श्रेष्ठ एवं उदार मानवीय धर्म है।

धर्मशास्त्रा म इस धर्म का रूप या विवरण तीन प्रकार म मिलता है। मनु और याज्ञवल्क्य की स्मृतियों म धर्म के कुछ लक्षण गिनाय गये हैं। व मानव के नतिक गुण हैं। इनमें अहिंसा क्षमा सत्य आदि गुण मुख्य हैं। य नतिक गुण धर्म का रूप हैं। ये गुण अनेक हैं। किन्तु अनेक गुणा के अतिरिक्त धर्मशास्त्राचार्यों ने धर्म का एक सामान्य रूप भी बतनाया है। याज्ञवल्क्य ने इस सामान्य धर्म को आत्म-दग्धन' कहा है।^{३१} व्यास जी ने गीता और महाभारत म 'समता' को धर्म का सार माना है।^{३२} यह धर्म का दूसरा रूप है। धर्म का तीसरा रूप विभिन्न आश्रमों और वर्णों के विशिष्ट कर्त्तव्यों के रूप म मिलता है। अपनी स्थिति के अनुसार ब्रह्मचारी गृहस्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि का जो कर्त्तव्य है, वही उनका धर्म है। गीता की भाषा म हम इस कर्त्तव्य को 'स्व धर्म' कह सकते हैं। य प्रत्येक मनुष्य का अपनी स्थिति के अनुसार उचित कर्त्तव्य है। मनु ने अपने धर्मशास्त्र म धर्म के दश लक्षण बताय हैं— 'धृति, क्षमा, दम, अस्तेय शौच निग्रह धीविद्या सत्य अक्रोध।'^{३३} धृति का अर्थ धर्म है। धर्म का अर्थ कष्ट सहना और सबट में अपन धर्म स विचलित न होना है। दूसरों के दोष और अपराध के प्रमग म उदारता का व्यवहार क्षमा है। दम का अर्थ इन्द्रियों को सयम म रखना है। स्तेय का अर्थ चारी

३१—इज्याचार दमोऽहिंसा दान स्वाध्याय व्रमणाम् ।

अथ तु परमाधर्मो यद्योगनात्मदग्धनम् ॥

याज्ञवल्क्य स्मृति-१-८

३२—गीता-अध्याय ६ ३२

३३—धृति क्षमा दमोऽस्तेय शौचमिन्द्रिय निग्रह ।

धीविद्या सत्यमक्रोधो दग्धक धर्म लक्षणम् ॥

मनुस्मृति अध्याय ६-श्लोक-६६

करना है। अतः अस्नय चोरी न करने को बह्य। शौच का अर्थ शरीर और मन की पवित्रता रखना है। निग्रह उत्तेजना के पूर्व ही इंद्रिया का नियंत्रण म रखना है। धी का अर्थ है बुद्धि। विद्या धम के सभी लक्षणा का आधार है। प्रकृति और भावना का बग रोकने म बुद्धि सहायक होनी है। सत्य धम का एक महत्वपूर्ण रूप है। अक्रोध मनुष्य की बुद्धि का स्वच्छ रखना है। इसी कारण धम के लक्षणा म अन्य दोषा को छाड़कर अक्रोध का शामिल किया गया है।

यानवल्क्य न धम के नौ लक्षण बताय हैं। जिनको उन्होंने धम क साधन कहा है, उनम कुछ लक्षण ता मनु क समान हैं। सत्य, अस्नय शौच इंद्रिय निग्रह, दम आदि मनु और यानवल्क्य दानो म समान रूप से पाय जात हैं। यानवल्क्य न अहिंसा, दान आदि कुछ नवीन लक्षणा को स्थान दिया है। ३४ इनम अहिंसा सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसीलिए यानवल्क्य न इसको अपन लक्षणा म प्रथम स्थान दिया है। अहिंसा का अर्थ मन वचन कम से किसी का कष्ट न पहुँचाना है। वस्तुतः अहिंसा का भाव इतना व्यापक है कि सत्य, अस्तय क्षमा आदि इसी के अंतर्गत आ जात हैं। इनम भी हम अपन का दूसरो को कष्ट पहुँचान से रोकत हैं। यह अहिंसा का निषेधात्मक रूप है। भावात्मक रूप म अहिंसा का अभिप्राय प्रेम और उदारता स है। दान और सेवा उसके उदाहरण हैं।

मनु और यानवल्क्य न धम क जो लक्षण गिनाये हैं उनम कुछ महत्व पूर्ण नैतिक गुणा का ग्रहण किया गया है। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य महत्व पूर्ण गुणा की बल्पना की जा सकती है। इस सम्बन्ध म मनमेद भी हो सकती है, जसा कि मनु और यानवल्क्य म है। नैतिक गुणा का स्वरूप बडा व्यापक हाता है। अन अहिंसा क्षमा शौच इंद्रियनिग्रह आदि म अनक गुणा का समाहार सम्भव है। धम का धारणा के सम्बन्ध म गुणा की गणना को महत्व न देकर हम धम की भावना को महत्व देना चाहिए। उम धम की भावना का मूल प्रत्यक गुण म लाजा जा सकता है। यानवल्क्य ने आत्म-दर्शन के रूप मे धम के उस सामा य भाव का संकेत किया है। 'आत्मदर्शन

३४—अहिंसा सत्यमस्तेय शौचमिन्द्रिय निग्रह ।

दान, दमो, दया, क्षान्ति सर्वेषा धमसाधनम् ॥

यानवल्क्य स्मृति-अध्याय १ १२१

का अभिप्राय आत्मदृष्टि से है। मनुष्या म अय प्रकार से अनेक भेद होत हैं। किन्तु आत्मा अथवा चेतना की दृष्टि से सब समान होत हैं। बल, बुद्धि, विद्या, धन आदि म अंतर हात हुए भी गुण-दुर्ग, रूप शोभादि का अनुभव मरना समान रूप से होता है। हम प्रकार आत्मा मनुष्य की गमता का आधार है। देवल ने इसी गमता को धम का सबस्व माना है। उनर अनुमार धमाचरण का रूप यह है कि 'जिस व्यवहार को हम अपने पुनिबून मानत हैं वह व्यवहार हम दूसरा के प्रति भी नहीं करना चाहिए।' ^{२५} तगा व्यवहार करन से दूसरा को भी बष्ट होगा। धम का यह आचरण तभी सम्भव हा मरता है जबकि दूसरा को हम समान मानें। भगवद्गीता म इसी आत्ममूलक समभाव का यागी का लक्षण बताया है कि "ओ अपनी उपमा से अथवा अपना समानता से मुख और दुख मे दूसरो को समभाव से दखता है वह परमयोगी है।" ^{३५} धम की दृष्टि से ही नहीं योग और आध्यात्म की दृष्टि से भी समता का भाव ही सर्वश्रेष्ठ है। यह समता ही धम का मून तत्व है। यह समता का भाव ही उन समस्त सदगुणा का स्रोत है जो मनु और यानवत्वय द्वारा धम के लक्षणो मे गिनये गये हैं। यह समता ही मानवीयता का मम भी है। यह समता ही धम का आधार है। व्यवहार म इसका पानन ही धम का सामाय रूप है।

प्रेम, समय और सदाचार इस समता की अभिव्यक्ति के तीन मुख्य रूप हैं। प्रेम समता का सामाय भाव है। वह हमारे अतिचार की मयादा बनता है। मयादा का मानन पर समय हमारा कर्त्तव्य बन जाता है। समय का अय आरमानुशासन है। समता और प्रेम के अनुकूल दूसरो के प्रति व्यवहार सदाचार है। समय को हम शीन बह सकते हैं। धृति गीच, ई द्रयनिग्रह अक्रोध आदि समय के अ तगत हैं। क्षमा अहिंसा दान दया आदि सदाचार

३५—धूयतां धम सबस्व श्रुत्वा चाप्यवधायताम् ।
आत्मन प्रतिबूलानि परेषां न समाचरेत् ॥
देवल

३६—आत्मोपम्येन सबन्न सम पश्यति योऽनु न ।
मुख वा यदि वा दुख स योगी परमो मत ॥
भगवद्गीता—अध्याय ६ ३२

के अन्तर्गत हैं। समता और प्रेम के भाव इनकी प्रेरणा है। हिंसा चोरी आदि सबको अपन प्रतिभूल लगते हैं। अन दूमरों के प्रति भी उनका व्यवहार करना उचित नहीं है। अहिंसा, अमन्य आदि सबको अपने अनुकूल लगते हैं अन वे धर्म के अनुकूल हैं। दान दया, क्षमा, सत्य आदि अनुकूल और प्रिय आचरण के ऐसे रूप हैं जिनमें किसी एक का अनुपालन करने पर भी धम का सामान्य रूप सिद्ध हो जाता है। इनमें एक का पालन करने वाला भी स्वभावतः धम के अन्य लक्षणों का पालन करेगा। धम के इन लक्षणों की गणना में कुछ मतभेद मिलता है, इसका कारण यही है कि भिन्न भिन्न आचार्यों ने भिन्न भिन्न सद्भावों और मनुष्यों को महत्व दिया है। फिर भी उनके मतों में समानता अधिक है। इसका कारण सामान्य धम का आधार है। इसके अतिरिक्त और भी लक्षण गिनाये जा सकते हैं किन्तु ये सभी लक्षण साम्य के सामान्य धम से घटित होते हैं। ये लक्षण साम्य के सामान्य धम के विशेष रूप हैं, जो व्यवहार में साकार होते हैं।

सामान्य धम और धम के लक्षणों के रूप में मानव धम के जिन व्यापक रूप का विवरण धम शास्त्रों में किया गया है वह सावभौम मानवीय धम है। धम की इस धारणा में मानवीय भावा और गुणों के उस रूप को ग्रहण किया गया है जो मनुष्य होने के नाते प्रत्येक मनुष्य के लिए मानवीय हैं। धम का यह रूप मनुष्य के मनुष्यत्व की रक्षा करता है। जब तक मनुष्य इसका पालन करता है तभी तक वह मनुष्य रहता है। अपने व्यवहार से धम के इस सावभौम रूप का खण्डन करने पर मनुष्य-मनुष्य नहीं रहता। दया से हीन हिंसा करने वाले मनुष्य को प्रायः हम मनुष्य नहीं मानते और उसे राक्षस की सजा देते हैं। क्रोध में भी मनुष्य प्रायः राक्षस बन जाता है। ब्रह्मचर्य अस्तेय आदि के उल्लंघन में भी वह राक्षस तुल्य नृपति व्यवहार करता है जो उसे मनुष्य पदवी से च्युत कर देता है। इसीलिए दया, अक्रोध ब्रह्मचर्य अस्तेय आदि नैतिक गुण धम के लक्षण माने गये हैं। इनका पालन मनुष्य को मनुष्य बनाये रहता है। मनुष्यता की रक्षा के लिए केवल नैतिक गुण ही नहीं बरन् बौद्धिक गुण भी अपेक्षित हैं। बुद्धि और विद्या में हात मनुष्य को प्रायः हम मनुष्य नहीं मानते और उसे पशु की सजा देते हैं। इसीलिए मनु ने अपने धम के लक्षणों में बुद्धि (धी) और विद्या की गणना की है। नैतिक और बौद्धिक गुणों के साथ-साथ पवित्र आचार भी मनुष्य का लक्षण है।

इसीलिए धर्म के लक्षणा में शौच को स्थापित दिया गया है। धर्म व ये लक्षण और साधन सावभौम और साववालिन हैं। याग व महायज्ञता की भाँति व देण, काल और नियम से अनवच्छिन्न हैं। य सभी दम, सभी काल और सभी परिस्थितियाँ में पालनीय है। जाति कुल, सम्प्रदाय आदि व भेदा व आधार पर भी इनमें भेद नहीं किया जा सकता।

धर्म के इन सामान्य और सावभौम रूपों के अतिरिक्त धर्मशास्त्रों में धर्म का एक और रूप भी मिलता है जिसे हम 'विशेष धर्म' का नाम दे सकते हैं। यह विशेष धर्म देश, काल, जाति परिस्थिति आदि की सीमाओं के अनुसार विहित होता है। अतः यह सबके लिए एक नहीं हो सकता। धर्म शास्त्रों में वही धर्म और आश्रम धर्म के रूप में जिन धर्मों का वर्णन किया गया है और गीता में जाति धर्म कुलधर्म आदि के रूप में जिन धर्मों का उल्लेख किया गया है, व इस विशेष धर्म के ही विविध रूप हैं। गीता की भाँति धर्म में इनके स्वधर्म कह सकते हैं। यह विशेष काल परिस्थिति सम्बन्ध आदि के प्रसंग में एक वग अथवा व्यक्ति का अपना धर्म है। इस अर्थ में यह विशेष धर्म, सामान्य धर्म और उसके लक्षण के अनुकूल है। स्वधर्म के पालन के साथ साथ सामान्य धर्म का पालन भी प्रत्येक वग और व्यक्ति के लिए आवश्यक है। अतः दोनों का समन्वय अपेक्षित है। धर्म शास्त्रों में जहाँ स्वधर्म के पालन के प्रसंग में राजधर्म आदि की भाँति उनके धर्मानुकूल पालन का आदेश दिया गया है वहाँ इस पिछले धर्म का अभिप्राय सामान्य धर्म से ही है और दोनों का समन्वय वांछित है। मनुष्य समाज के देश काल सम्बन्ध आदि के अनुसार उनके विभाजन हो सकते हैं। व्यक्ति भी अनन्त है। अतः इन विशेष धर्मों अथवा स्वधर्मों के अनेक रूप हो सकते हैं। धर्म शास्त्रों में इस प्रसंग में चार वर्णों, चार आश्रमों कुल जाति तथा स्त्री, पुत्र, गिण्य वधु आदि कुछ प्रमुख भेदों का ही विवरण किया गया है और उन्हीं के स्वधर्मों का उल्लेख है। जैसे ब्रह्मचारी का धर्म इन्द्रिय सयम, सुख का त्याग और विद्योपाजन है। इसी प्रकार गृहस्थ और वानप्रस्थों के वर्तव्य उनके धर्म हैं। अश्वमेध, अयापन यजन याजन, दान प्रतिग्रह आदि ब्राह्मणों के धर्म हैं। प्रजा की रक्षा युद्ध आदि क्षत्रियों के धर्म हैं। वृषि, गो पालन और व्यापार आदि वृषियों के धर्म हैं। गृह का धर्म सेवा करना है। यह धर्म का विशेष रूप है जो प्रत्येक व्यक्ति को अपना स्थिति के अनुसार पालनाय है। धर्म के यह विशेष रूप भी

धर्म के उन नतिक लक्षणा से सम्बन्ध रखते हैं जिनको मनु और यानबल्क्य न गिनाया है। यह धर्मशास्त्रों की व्यावहारिक सीमा है। इनके अतिरिक्त सामान्य मानव धर्म के आधार पर कोई भी वग अथवा व्यक्ति किसी भी प्रसंग और परिस्थिति में अपने स्वधर्म का निरायण कर सकता है।

धर्मशास्त्रों के सम्मिलित धर्म के ये रूप विविक्त होते हुए भी परस्पर विरोधी नहीं हैं वरन् इसके विपरीत इन सबमें समन्वय अपभित है। इस प्रकार धर्म की यह समृद्ध कल्पना मनुष्य-समाज की विगलता तथा जीवन और उसकी परिस्थितियों की विविधरूपता की दृष्टि में अत्यन्त समृद्ध और व्यावहारिक है। इसके अतिरिक्त धर्म की यह धारणा पूर्ण रूप से मानवीय और प्रमुखतः जनता-श्रवण है। मनुष्य का आदर, स्वतन्त्रता और अविरोध धर्म का इस धारणा के प्रमुख लक्षण है। ये लक्षण इस धर्म को सावभौम बनाते हैं। सकुचित धर्म सम्प्रदाय भी अपने को सावभौम कहते हैं। इन सम्प्रदायों को अंगीकार करके सम्पूर्ण मानवजाति इनमें से किसी एक धर्म की अनुगामी बन सकती है। किन्तु इन धर्म सम्प्रदायों की अनेकता ही उनका सावभौमता का खण्डन करती है। सम्पूर्ण मानव-जाति के द्वारा अंगीकृत होने पर अथवा सम्पूर्ण मानवजाति पर आरोपित होने पर कोई भी सिद्धांत अथवा विश्वास सावभौम बन सकता है। यदि अपनी आकांक्षा के अनुसार इस्लाम धर्म विश्व विजयी बन जाता तो वही सावभौम बन जाता। सम्पूर्ण विश्व पर आरोपित होने पर साम्यवाद सावभौम बन सकता है किन्तु यह धर्म की सावभौमता का वास्तविक रूप नहीं है। धर्म की सावभौमता मानव-समाज में उसकी ध्यापन स्वीकृति पर निर्भर नहीं करती वरन् उसके सिद्धांतों का सावभौम स्वीकार्यता पर निर्भर करती है। यदि किसी धर्म का सिद्धांत मानव मात्र के लिए माननीय है तो वह वस्तुतः सावभौम है चाहे उसके अनुयायी कितने ही अल्पसंख्यक क्या न हों। इस अर्थ में ईसाई और इस्लाम धर्म तथा अन्य सभी सम्प्रदाय अर्थात् सावभौम हैं। इन सबमें कुछ ऐसे मानवीय सिद्धांत हैं जो मानव-मात्र के लिए माननीय हैं। इन धर्म सम्प्रदायों की सावभौमता वही खण्डित होता है, जहाँ ये प्रचार और आरोपण का अवलम्ब लेते हैं। सिद्धान्तों के सम्बन्ध में भेद हो सकता है, अतः उनकी सावभौमता का आप्रह उचित नहीं है। स्वतन्त्रता समानता अप्रचार, अनारोपण दूसरों के मन का आदर आदि ही धर्म की सावभौमता के वास्तविक तत्व ही सन्त हैं। मनुष्य की स्वतन्त्रता का आदर ही अंतिम धर्म है। इसे मानने पर सभी

साम्राज्य मानवीय बन जाँ है । भारतीय धर्म परम्परा म इगो रूप म अरक साम्राज्य बनने रहे है । साम्राज्यां का यह रूप मानवीय धर्म के उक्त मया र्णों के साथ साथ है ।

अंगु भारतीय मूर्ति का धर्म मनुष्यता का धर्म है । यह प्रेम और समता का साम्राज्य और मानवीय भाव है । यह किसी जाति का नोवंबर रूप मीमिग मय नहीं है । ईश्वर क किसी विचार रूप अपरा उपागता की किसी विचार विधि म भी उगका मस्वय नहीं है । इमक अतिरिक्त धर्म क उपायु ल मय र्णों का समन्वय मनुष्य-जीवन क उग धर्म म य म हागा है । तिम मर्णित दान म अमृत्यु और विश्व मय कता गया है । अमृत्यु मीरिग उपाति है । निधेदम आध्यात्मिक उपाय का पराकाष्ठा है । धर्म मर्णित और सामाजिक भाषा का यह रूप है तिमम जाका क दन मीग मय का मयम होगा है । धर्म का साम्राज्य रूप और उगक विचार मयण दाता हा मनुष्य मान क विचार मयण रूप म माय हैं । महाभारत तथा अप धर्म-शास्त्रा म धर्म क मी मानवीय तथा मानवीय एव उपाय रूप क साम्राज्य और विचार मय का किमृग विवरण मितता है । प्रस्तुत गाप प्रवचन म धर्म क म दाना र्णों का महाभारत क अनुगार विवचन किया गया है । धर्म क साम्राज्यिक रूप का धर्मशास्त्रा तथा महाभारत म कोई स्थान गहा है । ईश्वर तथा दयता मय-पी धर्म क रूप का मुद्द विवरण महाभारत म मितता है किन्तु यह गुरुमि तथा दुराधरुग नही है । वरन् साम्राज्य धर्म के प्रभाव क उपाय एव विधि रूप है ।

महाभारत में धर्म का स्वरूप

धर्म का स्वरूप—

महाभारत में धर्म का स्वरूप बहुत कुछ धर्मशास्त्रों के अनुकूल है। अर्थात् अध्यायों में यह स्पष्ट किया जा चुका है कि धर्मशास्त्रों और महाभारत जिसे धर्म कहा गया है वह रिलीजन से भिन्न है। धर्मशास्त्रों का धर्म एक दार, मानवीय और सावभौम धर्म है। इनकी तुलना में रिलीजन को धर्म सम्प्रदाय कहना अधिक उचित है। धर्मशास्त्रों का धर्म मानवीय है। वह मानवीय व्यवहार का गोल है। ईश्वर सम्बन्धी कोई मायता उसमें आवश्यक् नहीं। रिलीजन के नाम से जो धर्म-सम्प्रदाय प्रसिद्ध हैं उनमें ईश्वर सम्बन्धी मायतायें अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इन मायताओं के आग्रह प्रायः मानवीय गोल का खंडन भी करते रहे हैं। धर्म प्रचार के सम्बन्ध में इन सम्प्रदायों के पण्डितों का वचन भी मानवीय गोल के विपरीत है। वे मनुष्य की समता और स्वतंत्रता का खण्डन करते हैं। धर्मशास्त्रों का धर्म ही एक ऐसा धर्म है जिसमें ऐसा कोई आत्मविरोध नहीं है और जो अपनी उदारता एवं मानवीयता के कारण सावभौम धर्म बन सकता है। मनु याज्ञवल्क्य आदि आचार्यों ने अपने धर्मशास्त्रों में धर्म की लक्षणा का विवरण किया है। मनु ने धर्म की दसलक्षण गिनाये हैं, जो इस प्रकार हैं—धृति क्षमा दम, अस्तय, शौच इन्द्रिय निग्रह धी विद्या, सत्य, अक्रोध।^१ याज्ञवल्क्य ने धर्म की लक्षणा का धर्म की साधन कहा है। उनके अनुसार धर्म के यह साधन हैं—अहिंसा सत्य अस्तय, शौच,

१—धृति क्षमा दमोऽस्तेय शौचमिन्द्रिय निग्रह

धीविद्या सत्यमक्रोधो दण्ड धर्मलक्षणम् ॥

इन्द्रियनिग्रह दान, दम दया, क्षाति ।^१ इसी प्रकार अथ धर्मशास्त्रों में भी धर्म के लक्षण गिनाये गये हैं । ये लक्षण मनुष्य के शील और सगाचार के रूप में हैं । गाल और सदाचार के ये लक्षण अनेक हो सकते हैं । इसीलिए धर्मशास्त्रों में जो लक्षण गिनाये गये हैं, उनमें कुछ समानता होत हुए भी कुछ अंतर भी हैं । गुणों की गणना की अपेक्षा धर्म की सामान्य भावना अधिक महत्त्वपूर्ण है । यही भावना धर्म का मूल है । धर्म का सामान्य सिद्धान्त ही धर्म का स्तम्भ है । धर्म के विविध लक्षण जो धर्मशास्त्रों में गिनाये गये हैं वे धर्म वृक्ष की शाखाओं के समान हैं । मनुस्मृति में धर्म का कोई सामान्य सिद्धान्त नहीं बताया गया है । यद्यपि यह कहा जा सकता है कि धर्म की सामान्य भावना मनु के धर्म लक्षणों में भी प्राप्त होती है । याज्ञवल्क्य ने आत्मदशन को परमधर्म कहा है ।^२ याज्ञवल्क्य के अनुसार आत्मदशन को धर्म का सामान्य सिद्धान्त कह सकते हैं । याज्ञवल्क्य के इस आत्मदशन के अनुकूल ही अथ धर्मशास्त्रों में भी आत्मभाव को ही धर्म के सामान्य सिद्धान्तों का आधार माना गया है । देवल ने इस आत्मभाव का निरूपण व्यवहार की प्रतिकूलता और अनुकूलता के द्वारा किया है । उनके अनुसार जो व्यवहार हमारे प्रतिकूल है वह व्यवहार हमें दूर करने के प्रति नहीं करना चाहिए । देवल के अनुसार व्यवहार का यही रूप धर्म का सार्वभौम है ।^३ सिद्धान्त की दृष्टि से हम इसे

२—अहिंसा सत्यमस्तेय शौचमिन्द्रिय निग्रह ।

दान दमो दया क्षाति सर्वेषां धर्मसाधनम् ॥

याज्ञवल्क्यस्मृति—अध्याय १, श्लोक १२६

३—इत्याचार दमोऽहिंसा दान स्वाध्याय कर्मणाम् ।

अथ तु परमोधर्मो यद्योगेनात्म दानम् ॥

‘ याज्ञवल्क्यस्मृति—अध्याय १ श्लोक ८

४—धृयतां धर्मसर्वस्व धृत्वा च वाक्पायताम् ।

आत्मन प्रतिवृत्तानि परेषां न समाचरेत् ॥

देवल

समानता का भाव कह सकते हैं । आत्मदर्शन अथवा आत्मभाव इस समता का तार्किक आधार है । महाभारत में भी देवल के समान शब्दों में धर्म के इस सिद्धान्त का निबन्ध किया गया है । अपन साथ समानता के भाव को इस सामान्य धर्म का प्रमाण बताया गया है ।^५ भगवद्गीता में भी इस आत्मोपम्य का संकेत मिलता है ।^६ यह आत्मोपम्य धर्म का मूल आधार है । धर्म शास्त्रों में गिनाये हुए धर्म के लक्षण इसमें अनुगत होते हैं । यह उन लक्षणों में व्याप्त रहता है ।

इस रूप में धर्म एक ओर मनुष्य के आत्मिक बल्याण का साधन है तथा दूसरी ओर समाज में सामंजस्य का मूल बन जाता है । जो व्यवहार हमें अपने प्रतिकूल जान पड़े है, वैसे व्यवहार जब हम दूसरों के प्रति करते हैं तो हमारे व्यवहार से दूसरों को दुःख होता है तथा उनका अनिष्ट होता है ।

५—न तत्परस्य सदध्यात् प्रतिकूल यदात्मन ।

एष संक्षेपतो धर्म कामादयः प्रवर्तते ॥

कारणे धर्मशास्त्र-खण्ड २, भाग—१, पृष्ठ—७

६—आत्मोपम्येन सत्र सम पश्यति योग्यु न ।

सुख वा यदि वा दुःख स योगी परमो मतः ॥

भगवद् गीता—अध्याय ६, श्लोक ३२

यद्यप्यविहितं नेच्छेदात्मनः कम पुरुषः ।

न तत् परेषु कुर्वति जानन्नप्रियमात्मनः ॥

गार्गीयस—अध्याय २५६, श्लोक २०

प्रत्याख्याने च दाने च सुखदुःखे प्रियाप्रिये ।

आत्मोपम्येन पुरुषः प्रमाणमधिगच्छति ॥

अनुशासनपत्र—अध्याय—११३, श्लोक ६

इहें हम अपम भी कह सकते हैं। दूसरा व प्रतिकूल व्यवहार न करने का समाज म सामजस्य और सद्भाव यज्ञ है। यह समाज की स्थिति को दृढ़ बनाते हैं। धर्म का यह रूप धर्म की उच्च परिभाषा को मापक बनाना है जो धर्म शब्द की व्युत्पत्ति से पटित होती है। धर्म की परिभाषा महाभारत में भी मिलती है। महाभारत के ही प्रमाण से यह परिभाषा प्रायः दी जाती है। यह परिभाषा महाभारत में दो स्थानों पर लगभग समान ढंग पर मिलती है। कण्वक म कहा गया है कि धारण करने व कारण धर्म को धर्म कहा जाता है। धर्म ही समाज का धारण करता है। जो धारण युक्त है वही निश्चिन्त रूप से धर्म है।^{१०} लगभग इही ढंग म शान्तिपत्र म धर्म की व्याख्या का गई है।^{११} धर्म शब्द की व्युत्पत्ति के अनुसार धर्म की जो परिभाषा महाभारत म दी गई है तथा देवल के वचन के समान दूसरा व प्रतिकूल व्यवहार व निषेध के रूप म धर्म का जो विधान महाभारत म किया गया है वह स्पष्ट रूप से सामाजिक और आध्यात्मिक है। 'आत्मोपम्येन वा आधार धर्म को आध्यात्मिक बनाता है। आत्मभाव से प्राप्त समता और एकरा ही धर्म का मूल सूत्र है। आत्मभाव व अनुकूल व्यवहार विभी व प्रतिकूल नष्ट होता। भावरूप म वह दूसरो व अनुकूल होता है। इस अनुकूलता से समाज म सामजस्य पैदा होता है। यह सामजस्य ही समाज का धारण अथवा उभार रक्षा करता है। विरोध और सघप से समाज नष्ट होता है। महाभारत का युद्ध स्वयं इसका एक भीषण उदाहरण है। धर्म का आंतरिक गीत मनुष्य को आदर्श व्यक्ति बनाता है। उक्त रूप से धर्म का व्यवहार समाज का धारण और उसकी रक्षा करता है। महाभारत व अनुसार यही धर्म का सामाजिक स्वरूप अथवा सिद्धांत है। शान्तिपत्र भाषा म इस सिद्धांत को 'आत्मोपम्य' अथवा आत्मभाव कह सकते हैं। सामाजिक दृष्टि से इसे समता कहा जा

७—धारणाद् धर्ममित्याहुधर्मो धारयते प्रजा ।

यत् स्याद् धारणस्युक्तं स धर्म इति निश्चयः ।

कण्वक—अध्याय ६६, श्लोक ५८

८—धारणाद् धर्ममित्याहुधर्मो विधृता प्रजा ।

यत् स्याद् धारणस्युक्तं स धर्म इति निश्चयः ॥

शान्तिपत्र—अध्याय १०६, श्लोक ११

सकना है। सामाजिक समता का भाव आत्मभाव से घटित होता है। मुख दुःख आदि की दृष्टि से हम दूसरो को अपन समान समझें यही धर्म का दृष्टिकोण है। यह धर्म की दृष्टि दो चक्षुआ के द्वारा सम्भव होती है। भौतिक विषयो की ओर से आत्मा की ओर अभिमुख होना धर्म दृष्टि का एक चक्षु है। सबमें एक ही आत्मा है और सबके मुख-दुःख हमारे समान है, यह जानकर समानता का व्यवहार करना तथा दूसरा के प्रतिकूल व्यवहार न करना यह धर्म दृष्टि का दूसरा चक्षु है। इन दोनों चक्षुओ के सतुलन से धर्म दृष्टि शुद्ध और स्वच्छ रहती है। इन दोनों दृष्टियो से धर्म का व्यक्तिगत और सामाजिक तथा आन्तरिक और व्यावहारिक दोनों पक्ष समन्वित होत हैं।

महाभारत में निर्धारित धर्म के स्वरूप का यह आत्मिक तथा समता और सामञ्जस्य से पूरा दृष्टिकोण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। धर्म का यही रूप माननीय होने के कारण सावभौम बन सकता है। धर्म के इस स्वरूप में मनुष्य समाज के कल्याण का सनातन मूल निहित है। यही धर्म का वास्तविक रूप है। रिलीजन के नाम से जो सम्प्रदाय ससार में प्रसिद्ध और प्रचरित हैं वे धर्म की उक्त कसौटी पर खरा उतरने पर ही अपने नाम को सायक कर सकते हैं। इन सम्प्रदायों में कुछ नैतिक गुणों को महत्त्व अवश्य दिया गया है किन्तु इनके संगठन और प्रचार में इन नैतिक गुणों तथा समता के उस सिद्धांत का खण्डन किया गया है, जो महाभारत के अनुसार धर्म का मूल तत्व है। धर्म के मूल मानवीय सिद्धांत का खण्डन करने के कारण अनेक धर्म सम्प्रदाय एक प्रकार से आत्मविरोधी बन गये हैं। वे धर्म के उस मूल सिद्धांत के अनुकूल नहीं हैं जिसका निर्देश महाभारत में किया गया है तथा जो स्वतंत्र विचार और विश्लेषण की कसौटी पर भी खरा उतरता है। प्रसिद्ध धर्म-सम्प्रदायों के प्रचार और विस्तार में धर्म के सिद्धान्त का जो खण्डन मिलता है उसकी ओर ध्यान न देने के कारण ही इन सम्प्रदायों के अनुयायी अपने धर्म पर गव करते हैं। ससार के अर्थ विचारका न भी इन धर्म-सम्प्रदायों का इस आत्म विरोध की ओर ध्यान नहीं दिया और उनमें किसी ने भी इन धर्म सम्प्रदायों की अधार्मिकता को अनावृत करने का साहस नहीं किया। महाभारत में जिस प्रकार धर्म के निरूपण में आत्मभाव और समता को धर्म का मूल तत्व माना गया है तथा प्रतिकूल व्यवहार का निषेध किया गया है, उसी प्रकार अविरोध को भी धर्म का महत्त्वपूर्ण पक्ष माना गया है। अविरोध से युक्त होने पर ही धर्म

वास्तव म धम कहा जा सकता है। जो दूसरी ओर धम मे ही बाधक होता है, वह वास्तव म धम नहीं है वरन् वह कुधम है।^{१०} इस अविरोध का अभिप्राय 'यत्किगत और सामाजिक' दोनों प्रकार की गतियों से है। वास्तविक धर्म का 'यवहार' वही है, जो 'यक्ति के' अथ धर्माचरण का लण्डन न करे। इसी प्रकार सामाजिक दृष्टि से सच्चा धर्माचरण वही है जो दूसरों के विरुद्ध अथवा प्रतिकूल न हो तथा उनके अपने धर्माचरण का विरोधी न बने। मनुष्य का नतिक और सामाजिक आचार तथा धम-सम्प्रदाय आदि सभी अर्थों म धम की परीक्षा म अविरोध की इस कसौटी का उपयोग आवश्यक है। इस कसौटी का उपयोग करने पर धार्मिक प्रतीत होने वाले अनक सामाजिक आचार तथा अनक प्रसिद्ध धम सम्प्रदाय अधम की सजा से लाञ्छित होंगे।

२—धम के प्रमाण—

धम शास्त्रा म धर्म का विधान प्राय आदेश के रूप मे किया गया है। आज्ञा के लिए प्रमाण की अपेक्षा होती है। प्रमाण का आधार होने पर ही आदेश माय होता है। उत्कृष्ट होने पर मनुष्य का अपना अनुभव और तब ही प्रमाण हो सकता है। किन्तु चतना का इतना उत्कृष्ट अनुभव की इतनी समृद्धि और बुद्धि की इतनी स्वच्छता साधारण जना के लिए सम्भव नहा है। उनका अनुभव सीमित रहता है और उनकी बुद्धि भी विकसित नहीं होता। अतः साधारणजनों के लिए धम सम्बन्धी आज्ञा अथ प्रमाणा के आधार पर माय होत हैं। प्राचान समाजा म प्राय श्रुति का प्रमाण सर्वम अधिक महत्व पूण माना जाता है। मनु न बन् का धम का मूल माना है।^{१०} उनक अनुसार धम का परम प्रमाण श्रुति है।^{११} ईश्वरोक्त जयवा प्राप्त होने के कारण

८—धम यो बाधते धर्मो न स धम कुधम तत् ।

अविरोधान् तु यो धम स धम सत्यविक्रम ॥

वनपत्र—अध्याय—१३१, श्लोक ११

१०—वेदोन्मितो धम मूलम् ।

मनुस्मृति—अध्याय २, श्लोक ६

११—धम विज्ञागमानानां प्रमाण परम श्रुति ।

मनुस्मृति—अध्याय २, श्लोक १३

वेद को नित्य प्रमाण माना गया है। अत्यन्त प्राचीनकाल से भारतीय जनता और भारतीय विद्वान् वेद का प्रमाण मानते रह रहे हैं। वे वेदविहित कर्मों का धम मानकर पालते रह रहे हैं। महाभारत म वेदाक्त कर्म को परमधम माना गया है।^{१२} स्मृति और धर्मशास्त्र भी वेद के अनुकूल ही धम का विधान करते हैं। मनु ने वेद के ज्ञाताओं की स्मृति का प्रमाण माना है।^{१३} स्मृतियाँ और धमशास्त्रों में धमकृत्या का विस्तारपूर्वक विधान किया गया है। उनमें धम का सामाजिक पक्ष अधिक प्रमुख है। धमशास्त्रों के इसी सामाजिक प्रभाव से वेद और स्मृति के साथ सदाचार भी धम का प्रमाण बना। धमशास्त्रों में जिस रूप में धम का विधान किया गया है वह अत्यन्त मानवीय और सामाजिक है। 'आत्मनः प्रतिकूलानि' म तथा गीता और महाभारत के 'आत्मोपम्येन' में इस मानवीय भावना का मूल मिलता है। धम के जो विभिन्न लक्षण धमशास्त्रों में बताये गये हैं, उनमें यह मानवीय भावना ओतप्रोत है। व्यवहार और सम्बन्ध में वे धम सामाजिक हैं। धमशास्त्रों की इसी मानवीयता और सामाजिकता के कारण स्मृति अथवा धमशास्त्रों का प्रमाण माननीय है। यदि ऋषियों और मुनियों का वेद और धमशास्त्रों का प्रणेता मानें तो भी वेदों का प्रमाण अत्यन्त आदरणीय है। अथ धम प्रवर्तकों की भाँति वेद और स्मृतियों के प्रणेता ऋषियों का उद्देश्य किसी धम-सम्प्रदाय की स्थापना किसी धम संगठन का निर्माण अथवा किसी धम सम्प्रदाय का प्रचार नहीं था। ये ऋषि मुनि सात्त्विक जीवन के अनुरागी तथा तप के द्वारा आत्मा के साधक थे। आत्मसाधन होने के कारण ही वे 'आत्मदर्शन' और 'आत्मोपम्येन' में धम का मूल खोज सके। आत्मा की ज्योति से प्रकाशित होने के कारण ही उनका धमविधान इतना मानवीय है।

✓ वेद और स्मृति के बाद मदाचार अथवा शिष्टाचार को धम का प्रमाण

१२—वेदोक्त परमो धम ।

अनुशान्तिपर्व अध्याय १४१, श्लो० ६५

१३—स्मृतिगीते च तद्विदाम् ।

मनुस्मृति—अध्याय २, श्लो० ६

माना गया है ।^{१४} सदाचार का अर्थ सज्जना अथवा सात्त्विक पुरषों का आचार है । सज्जनों को गिष्ट भी कहते हैं । गिष्ट का अर्थ गिहित है । मनुष्य की स्वाभाविक वृत्ति रजोगुण और तमोगुण से प्रेरित होती है । सत्त्वगुण की ओर गति तो शिक्षा के द्वारा ही सम्भव होती है । गिष्ट जन ही सज्जन बन सकते हैं । सत्त्व को शुभ भी कहते हैं । सात्त्विक आचार ही शुभ होता है । राजसिक और तामसिक आचार ही अशुभ के कारण होते हैं । सज्जना का सदाचार समाज के लिए धर्म का आदर्श बन जाता है । वेद का विधान और स्मृतिया का धर्म निर्देश शास्त्रिक होता है । सदाचार धर्म की साक्षात् प्रेरणा है । सदाचार का प्रत्यक्ष और साक्षात् आदर्श लोगों को एक सजीव प्रेरणा प्रदान करता है । सदाचार का प्रत्यक्ष आदर्श धर्म सम्बन्धी विवाद में निर्णायक का काम भी देता है । धर्म के विधानों में विरोध हो सकता है और इस विरोध के कारण धर्म का निरूपण कठिन हो सकता है । किन्तु सदाचार के प्रत्यक्ष आदर्शों में इतना अधिक विरोध नदाचित् सम्भव नहीं है । सात्त्विक पुरषों का आचार प्रायः धर्म के सिद्धांतों के अनुकूल होता है । सदाचार का आदर्श धर्म-व्यय का प्रकाशस्तम्भ कहा जा सकता है । धर्म के सम्बन्ध में मतभेद होने पर भी धर्म का तत्त्व एक कठिन रहस्य दिखाई देता है ।^{१५} ऐसा स्थिति में सज्जना अथवा महाजनों के मार्ग को ही उचित माना जाता है ।^{१६}

१४—वेदोक्त परमो धर्म स्मृतिशास्त्रगतोऽपर ।

गिष्टाचीण पर श्रोतस्त्रयोधर्मा सनातना ॥

अनुशासनपर्व, अध्याय १४१, श्लो० ६५

वेद स्मृति सदाचार स्वस्य च प्रियमात्मन ।

एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

मनुस्मृति—अध्याय २, श्लो० १२

१५—धेना विभिन्ना स्मृतयो विभिन्ना ।

नासौ मुनियस्य मतं न भिन्नम् ॥

१६—धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम् ।

महाजनं येन गतं संपद्य ॥

कौरवा की सभा में जब दुर्योधन ने द्रौपदी का चीरहरण किया, तो द्रौपदी ने धृतराष्ट्र, द्रोण, भीष्म आदि वृद्धों से धर्म के निणय की पुकार की। उस कठिन समय में वे वृद्ध धर्म की सूक्ष्मता और धर्म के निणय की कठिनता का प्रस्ताव रखकर निष्क्रिय बने रहते हैं। ऐसे समय में वह सदाचार जिसे मनुस्मृति और महाभारत दोनों में धर्म का प्रमाण माना गया है धर्म का निणायक और निर्देशक बन सकता था। सत्कार का यह आदेश कौरव वृद्धों का मांग दर्शन कर सकता था। सज्जनों के आचार में स्त्री के चीरहरण जैसे निन्दनीय कर्म का कोई उदाहरण नहीं मिल सकता है। द्रौपदी के चीरहरण का प्रसंग में वेद और स्मृति का प्रमाण भी निणायक बन सकता था। स्त्री के चीरहरण का औचित्य किसी भी वेद अथवा शास्त्र के द्वारा सम्मत नहीं है। दूत में जीत लेने पर भी कौरव किसी भी धर्म प्रमाण के अनुकूल द्रौपदी का चीरहरण नहीं कर सकते थे। वे उस अपनी दासी तो बना सकते थे।

अस्तु वेद, स्मृति और सदाचार धर्म के तीन मुख्य प्रमाण हैं। इनमें प्रमाणित आचार ही धर्म है। वेदा में यज्ञादि का प्रमाण अधिक मिलता है। स्मृतियाँ वर्णों और आश्रमाके 'यक्तिगत और सामाजिक' धर्म का वर्णन मिलती हैं। सदाचार धर्म का सजीव आदेश है। महाभारत में धर्म के यही तीन प्रमाण माने गये हैं। अहिंसा सत्य, दया आदि इन्हीं के अनुसार धर्म ठहरते हैं। स्मृतियाँ में इनका विधान है। सज्जनों ने अपने सदाचार के द्वारा इनका आदेश उपस्थित किया है। मनु ने आत्मप्रियता अथवा आत्मतुष्टि को धर्म का एक चतुर्थ प्रमाण माना है।^{१७} इसे स्वाय अथवा स्वरता समझने का भ्रम हो सकता है। देवल और महाभारत के 'आत्मन प्रतिबुद्धानि' की मर्यादा में यह आत्मप्रियता अर्थात् नहीं हो सकती। इस मर्यादा के अंतर्गत अपने प्रिय और अनुकूल कर्म भी धर्म हो सकते हैं। एक दृष्टि से यह आत्मप्रियता

१७—स्वस्य च प्रियमात्मनः ।

मनुस्मृति—अध्याय २, श्लोक १२

आत्मनस्तुष्टिरेव च ।

मनुस्मृति—अध्याय २, श्लोक ६

धम का महत्त्वपूर्ण तत्व है। धम केवल परोपकार ही नहीं है, वह आत्मोपकार भी है। दोना के सन्तुलन में मुक्त होने पर धम समाज का धारक बन सकता है तथा आर्मी, ब्युरक्रेटि और परिभाषा को चरितार्थ करता है। 'आत्मोपभवन, जात्मन प्रतिबुलानि तथा अविरोध के अनुसार आत्मप्रियता ही नहीं अन्य आचार भी धम बनते हैं। धमशास्त्रों और महाभारत में वेद स्मृति आदि धम के प्रमाण अवश्य मान गये हैं किन्तु उनके अनुसार धम का मूल सिद्धांत आत्मभाव और अविरोध ही है। ये धम के लक्षणा में समता और मानवीयता का संचार करके उन्हें उदार और सावभौम बनाते हैं। इन्हें हम धम का परम प्रमाण कह सकते हैं।

३—धर्म के लक्षण—

दु गामन के द्वाग द्रौपदी के चीरहरण व समय द्रौपदी ने धम व सम्बन्ध में वद प्रश्न कौरव सभा के वृद्धों से किये। द्रौपदी के उस सबटकाव में विनामह भीष्म ने धम की सूक्ष्मता व कारण द्रौपदी व प्रश्न का विवेचन करने में अपनी अममयता प्रकट की।^{१८} इसमें सन्देह नहीं कि धम का विषय बड़ा सूक्ष्म और कठिन है। किन्हीं परिस्थितियों में धम के विरोध और व्यावहारिक रूप का निराय बनना कठिन हो जाता है। इस निराय व सम्बन्ध में मतभेद हो सकते हैं। नीतिकार इन मतभेदों को चर्चा करने रहते हैं और धम के तत्व का महत्ता का घोषणा करते रहे हैं।^{१९} किन्तु ऐसी स्थिति में भी वे महाजनों के माग को धम का माग मानते रहे हैं।^{२०} धम का विचार निरालेह सूक्ष्म है और व्यवहार में उसका निराय प्राय कठिन हो जाता है। फिर भी धमशास्त्रों में धम के स्वरूप और लक्षणा का बहुत बुद्ध विवरण मिलता है। व्यवहार के सम्बन्ध में भी धम के आदर्श समाज में मिलते हैं। धमशास्त्रों व मता और समाज में प्राप्त आदर्शों के आधार पर धम के अधिकांश प्रश्नों का निराय किया जा सकता है। द्रौपदी व चीरहरण के प्रश्न

१८—न धर्मसौक्ष्म्यात् सुभगे विवेक्तु

गकनोमि ते प्रश्नमिम यथावत् ।

सभापत्र—अध्याय ६७, श्लोक ४६३

१९—धमस्य तत्त्व निहित गुहायाम् ।

२०—महाजनो येन गत स पथा ।

धर्म का निराय इतना कठिन नहीं था, जितना कि भीष्म पितामह न बताया । द्यूत में जीत लाने पर द्रौपदी को दासी बनाया जा सकता था किंतु स्त्री न के लाने उसका केशकपण चीरहरण, अपमान आदि किसी प्रकार भी चिंत न था । स्त्री का आदर सभी धर्म शास्त्रों को अभीष्ट है । इस विषय में शास्त्र और व्यवहार दोनों एकमत हैं । स्त्री के अपमान का कोई भी आदेश मात्र में अभिनवित नहीं है । धर्म शास्त्रों का आदेश और महापुराणों का आदेश बहुत दूर तक धर्म के भाग को प्रकाशित कर सकता है ।

धर्म का निराय की इन्हीं सम्भावनाओं के आधार पर धर्म शास्त्रों में धर्म के स्वरूप और सिद्धान्त का निर्धारण हुआ है तथा धर्म के लक्षणों एवं भागों का निरूपण किया गया है । आत्मोपम्येन, 'आत्मन प्रतिबुद्धानि', अविनेदेन आदि के अनुसार धर्म शास्त्रों और महाभारत में जो धर्म के स्वरूप एवं सिद्धान्त का निराय किया गया है वह बहुत कुछ समीचीन है । उस समय की गुहा बहुत दूर तक प्रकाशित हो सकती है । इस कसौटी पर बहुत से धर्म सम्प्रदायों और भ्रातृ आचारों की अधार्मिकता अनावृत्त की जा सकती है । धर्म के इस स्वरूप और सिद्धान्त का विवरण पिछले प्रकरण में किया जा चुका है । धर्म के इसी स्वरूप और सिद्धान्त के आधार पर धर्म शास्त्रों में धर्म के अनेक लक्षणों का वर्णन किया गया है । महाभारत में भी धर्म के लक्षणों का विवरण मिलता है । धर्म के इन लक्षणों की परीक्षा करने पर विदित होगा कि ये सभी लक्षण धर्म के सामान्य स्वरूप और सिद्धान्त से अनुगत होते हैं तथा उनके साथ संगत हैं । उदाहरण के लिए हम अहिंसा, सत्य दया आदि किसी भी लक्षण को ले सकते हैं । ये सभी लक्षण आत्मोपम्येन तथा आत्मन प्रति बुद्धानि के अनुरूप हैं । हम नहीं चाहते कि कोई हमारी हिंसा करे । हमारी हिंसा हमारे प्रतिकूल है । अपने दुःख को समान ही दूसरे को दुःख को मानकर आत्मोपम्येन के अनुसार हमें हिंसा नहीं करनी चाहिए, जो हमारे ही समान दूसरों को भी प्रतिकूल है । इसी प्रकार धर्म के अन्य लक्षण भी धर्म के सामान्य सिद्धान्त से अनुगत हैं । धर्म के इन लक्षणों को धर्म के सामान्य सिद्धान्त का विशेष और व्यावहारिक रूप कहा जा सकता है ।

विभिन्न धर्म शास्त्रों में धर्म के जो लक्षण बताये गये हैं उनमें कुछ

समानता भी मिलती है तथा कुछ अंतर भी मिलता है । उनमें केवल यही अंतर है कि धर्मशास्त्रा म धर्म क कुछ लक्षणों का उ नग मिलता है, जा दूसरे धर्म शास्त्रा म नहीं मिलता । उदाहरण क लिये अहिंसा का उ नग मनुस्मृति क धर्म-लक्षण म नहीं है किन्तु याज्ञवल्क्य स्मृति म है । यही 'दान क विषय म भी है । यस्तुत धर्म क य विशेष लक्षण परिगणित नहीं किये जा सक्ते । जोधा क प्रसंगा के समान इनकी सम्या भी अनन्त भयना अल्पधिन हो सकती ह । इसीलिए कुछ धर्म शास्त्रा म कुछ लक्षण छूट गय ह जो दूसरे धर्म शास्त्रा म गिनाय गय ह । किन्तु य सभी लक्षण धर्म के सामान्य सिद्धांत से अनुगत होते हैं । इसी सामान्य सिद्धांत के द्वारा किसी भी परिस्थिति म धर्म क विषय लक्षण का निर्धारण किया जा सकता है ।

धर्म के य लक्षण दो प्रकार के हैं—एक सामान्य और दूसरे विशेष । अहिंसा क्षमा धृति आदि को धर्म के सामान्य लक्षण कहा जा सकता है । ये सभी क लिए माय हैं । धर्म के विशेष लक्षण वे हैं जो वरुण आश्रम सम्बन्ध आदि के अनुसार विशेष मनुष्यों क लिए ही माय होने हैं सबके लिए नहीं । उदाहरण के लिए अध्यापन याजन और प्रतिग्रह ब्राह्मण के ही विशेष धर्म हैं । प्रस्तुत प्रकरण म हम धर्म के सामान्य लक्षणों का ही विवरण करेंगे । धर्म के विशेष लक्षणों का विवरण अय प्रकरण म किया जायेगा ।

धर्म के सामान्य लक्षणों म सबसे अधिक प्रसिद्ध मनु और याज्ञवल्क्य क द्वारा दिये गए लक्षण हैं । मनु ने धर्म के दस लक्षण बताये हैं—धृति क्षमा, दम, अस्तेय गौच इन्द्रियनिग्रह धी विद्या सत्य और अस्तेय ।^{२१} याज्ञवल्क्य क अनुसार धर्म के लक्षण नौ हैं—अहिंसा सत्य, अस्तेय गौच इन्द्रिय निग्रह दान दम दया, और क्षान्ति ।^{२२} मनु और याज्ञवल्क्य के ममान

२१—धृति क्षमा दमोऽस्तेय गौचमिन्द्रियनिग्रह ।

धीविद्या सत्यमक्रोधो दशक धर्म लक्षणम् ॥

मनुस्मृति—अध्याय—६, श्लोक ६६

२२—अहिंसा सत्यमस्तेय गौचमिन्द्रियनिग्रह ।

दान दमो दया क्षान्ति सर्वेषां धर्मसाधनम् ।

याज्ञवल्क्य स्मृति—अध्याय १, श्लोक १२१

ही महाभारत में भी धम के जनक सामान्य लक्षण बताये गये हैं जो सबके लिए मान्य हैं ।

युधिष्ठिर ने जब कृष्ण से कहा कि जनादन ! मनीषी पुरुष धम को अनका प्रकार का और बहुत से द्वारवाला बतलाते हैं । वास्तव में उसका लक्षण क्या है ? तब श्री कृष्ण ने धम का निश्चित लक्षण इस प्रकार बताया कि राजन् ! अहिंसा, शौच, क्रोध का अभाव, क्रूरता का अभाव, दम, गम और सरलता—ये धम के निश्चित लक्षण हैं । २३ मनुष्य के सनातन धम के लक्षण बताते हुए भीष्म जी ने युधिष्ठिर से इस प्रकार कहा कि ' अहिंसा, सत्य अक्रोध, तपस्या, दान, मन और इंद्रिया का समय विभुद्धि बुद्धि, किसी के दोष न देखना, किसी से डाह और जलन न रखना तथा उत्तम शील-स्वभाव का परिचय देना—ये धम हैं देवाधिदेव परमेश्वरी ब्रह्माजी ने इन्हा को सनातन धम बतलाया है । जो मनुष्य इस सनातन धम में स्थित है, उसे ही कल्याण का दशन होता है । २४ वेद में जिसका प्रतिपादन किया गया है, वही धम है । जो मनुष्य जिसके साथ जाता बतवि करे उसके साथ भी उमे वमा ही बतवि करना चाहिए, यह धम (याय) है । घोरी करना, भूठ बोलना एव हिंसा करना आदि अधम भी दंग और काल के भेद से धम हो जाते हैं । भूठ बोलना अवस्थाविनेप में धम माना जाता है । हिंसा करना जमे सर्पिणी के अण्डा का नाग कर देना श्रेष्ठ कम समझा जाता है । सर्पिणी के अण्डा के नाग से बहुत से मनुष्या के जीवन का भना हो जाता है तथा उसने वह मनुष्य अधम के बजाय पुण्य का भागी होता है । इसानिए अवस्था विनेप में जा अधम

२३—अहिंसा शौचमक्रोधमानुशस्य दम शम ।

आजव चव राजेद्र निश्चित धमलक्षणम् ॥

आश्वमेधिक पर्व—अध्याय ६२

२४—(अहिंसा सत्यमक्रोधस्तपो दान दमो मति ।

अनसूयाप्यमात्सयमनीर्ष्या शीलमेव च ॥

एय धम कुरुधेष्ठ कथित परमेष्ठिना ।

ब्रह्मणा देवदेवेन अय चय सनातन ॥

अस्मिन् धर्मे स्थितो राजन् नरो भद्राणि पश्यति ।)

शान्तिपर्व—अध्याय १०६, श्लोक १२ और १३ के मध्य में

कह जाते हैं, व ही काय धर्म माने जाते हैं । धर्म व लक्षण बताते हुए व्यासजी ने युधिष्ठिर से कहा कि 'बिना दो हृद्द वस्तु को न मना, दान, अध्ययन और तप म तत्पर रहना, जिमी भी प्राणी की हिमा न करना, मत्स्य बोलना क्रोध त्याग दना और मम करना—ये सब धर्म व लक्षण हैं ।'^{२५} किसी भी प्राणी से द्रोह न करना जिस धर्म का पालन किया जाता है, वही साधु पुरुषों की राय म उत्तम धर्म है । इस विषय को बताते हुए देवस्थान ने स्वाम्भुवमनु का कथन युधिष्ठिर से इस प्रकार कहा कि 'किसी से द्रोह न करना, सत्य बोलना (वचिवश्वदव वम द्वारा) समस्त प्राणियों को यथायोग्य उनका भाग समर्पित करना सबके प्रति दयाभाव बनाये रखना, मन और इन्द्रिया का ममम करना अपनी ही परती से सतान उद्वेग करना तथा मृदुलता लज्जा एव अचंचलता आदि गुणा को अपनाना—य श्रेष्ठ एव अभीष्ट धर्म है ।'^{२६} अष्टक के पूछन पर ययानि ने उनकी श्रेष्ठता का कारण इस प्रकार बताया कि 'गन, तपस्या, सत्य धर्म, ह्री, धी, क्षमा सौम्यभाव और द्रत पालन की अभिलाषा—राजा गिनि म य सभी गुण अनुपम है तथा बुद्धि म नी उनकी समता करने वाला कोई नहीं है । राजगिनि ऐसे धर्मात्मा और सदाचार सम्पन्न तथा लज्जापीन थे कि उनकी तुलना करना किसी से भी कठिन है । वे हम सबसे आगे बढ़ गये थे ।'^{२७}

२५—अदत्तस्यानुपादानं दानमध्ययनं तप

अहिंसा सत्यमक्रोध इन्द्रिया धर्मस्य लक्षणम् ॥१०

दार्तिपर्व—अध्याय ३६—श्लो० १०

२६—अद्रोहं सत्यवचनं सविभक्तो दया दम ॥११

प्रजनं स्वेषु दारेषु मादत्तं ह्योरचापलम् ।

एव धर्मप्रधानेष्टे मनु स्वाम्भुवोऽब्रवीत् ॥१२

दार्तिपर्व—अध्याय—२१—श्लो० ११ १२

२७—दानं तप सत्यमयापि धर्मो, ह्री धी क्षमा सौम्यमयो विधित्ता राज्ञे
नायप्रमेयाणि राज्ञः, निवे स्थितायप्रतिमस्य बुद्ध्या ॥

दार्तिपर्व—अध्याय ३३—श्लो० १६, २०

धर्म प्राप्ति किन किन साधनों से प्राप्ति होती है। इस विषय में नकुल ने इस प्रकार कहा कि “यम दम, ऋय, सत्य शौच सरलता, यज्ञ धृति तथा धर्म—इन सबका पालन ऋषियों के लिए श्रेष्ठ है।” २८ इन सबके पालन से ऋषि-लोग मोक्ष पाते हैं। श्रेष्ठ धर्म की प्राप्ति के लिए श्री शौनक जी ने जनमेजय से इस प्रकार कहा कि “यत्न, दान दया, वेद और सत्य तथा तप ये छह कम श्रेष्ठ धर्म को प्राप्त कराने वाले हैं।” २९ ये छह वस्तुएँ परम पवित्र हैं राजाभा को इनका भली भाँति से आचरण करना चाहिए। इन छहों का श्रेष्ठ आचरण करने वाला राजा परम श्रेष्ठ धर्म प्राप्ति का अधिकारी होता है। सुख और दुःख दोनों ही प्रकृतिस्य प्राणियों के धर्म हैं। यदि मनुष्य को दुःख नहीं अनुभव होगा तब उसे सुख का भी कुछ ध्यान नहीं होगा। मनुष्य को दुःख के अनुभव के बाद ही सुख का अनुभव होता है। यदि किसी मनुष्य का कोई दुःख ही नहीं होगा तो उसे सुख का भी ज्ञान नहीं होगा। धर्म के माग बताते हुए विदुर जी ने इस प्रकार कहा कि यत्न अध्ययन दान तप, सत्य, क्षमा दया और निर्लोभता—ये धर्म के आठ प्रकार के माग बताये गये हैं। ३० मनुष्य को स्वर्ग में ले जाने वाले दस कम हैं—सत्य, विनय की मुद्रा, शास्त्र ज्ञान विद्या, कुटीरिता, शील, बल धन, शूरता और चमत्कारपूर्ण बात बताना स्वर्ग के हेतु हैं। मनुष्य का मदा एकाग्रचित्त होकर पुण्य का ही

२८—शमो दमस्तथा धय सत्य शौचमयाजवम् ।

यज्ञो धृतिश्च धर्मश्च नित्यमार्थो विधि स्मृत ॥१७

शांतिपर्व—अध्याय १२—श्लो० १७

२९—यज्ञो दान दया वेदा सत्य च पृथिवीपते ।

पञ्चतानि पवित्राणि षण्ठ सुचरित तप ॥७

तेन सम्यागृहीतेन श्रेयास धर्ममाप्स्यसि ॥८

शांतिपर्व—अध्याय १५२—श्लो० ७, ८

३०—इज्याध्ययनदानानि तप सत्य क्षमा धृणा ।

अलोभ इति मार्गोऽय धर्मस्याऽऽविष स्मृत ॥१६

उद्योगपर्व—अध्याय ३५—श्लो० ५६

तत्र जना वानि । य । ये सुनिविर म कता कि मे सुप्रसन्न जमना
 तिता धर्मज्ञ है । यम, मय्य शीघ्र दम मय्यता तत्रा भववता तात म
 भोर ब्रह्मचर ए मय मेरे शरीर है । भक्ति, समता धानि दया और
 भ्रमण, डाट का न जात— म मय धर्म तत्र पट्टिका व डाट है । ३१ स्वयं
 गात्र व सात प्रसाद वगता एव दयति ते भवत मे कदाचि 'तत्र दान
 दम दम, तत्रा, मय्यता और मय्यताप्रतिपा व प्रति दया । ३२ गभा प्राणिना
 व प्रति दया और मंत्री का धर्म, दात और मय्य प्रति मय्यताका वा
 प्रयाग—ताता शरीर म यथावत्तन का मात है ।' ३३

४—धर्म के अर्थ—

विद्यत प्रारण म धर्म व स्वयं और मय्यता का विवरण किया गया
 है । किन्तु दया म हा धर्म का विवरण पूरा नहीं हो जाता । धर्म का स्वयं
 सामान्य है । यह धर्म व निगम का एक सामान्य सिद्धांत उपस्थित करता
 है । धर्म व मय्यता भी सामान्य हैं । ये धर्म के उन अर्थ का मताने हैं जो

३१—अहिंसा समता गतिरानुगम्यममत्सर ।

द्वाराण्येतानि मे विद्धि त्रियो ह्यसि तवा मम ॥८

धनपर्वा—अध्याय—३१४—श्लो० ८

३२—तपश्च दान च गमो दमश्च

ह्यीराजय सर्वभूतानुकम्पा ।

स्वयस्य लोकास्य वदति सता

द्वाराणि सप्तय महति पु साम ॥२२

आदिपर्वा—अध्याय ६०—श्लो० २२

३३—न हाहस सवनन त्रिपुलोकेषु विद्यते

दया शैत्री च भूतेषु दान च मयुरा च वाक् ॥१२

आदिपर्वा—अध्याय ८७—श्लो० १२

सबके लिए माय है। अहिंसा, दया, धृति, गौत्र आदि सबके लिये माननीय है। किन्तु जीवन के व्यवहार में धर्म का प्रदा विशेष परिस्थितियाँ और सम्बन्धों में खटा हाता है। जीवन बहुत विशाल और जटिल है। उसके अनेक पक्ष अनेक परिस्थितियाँ और अनेक सम्बन्ध हाते हैं। जीवन की इस जटिलता और विविधता के अनुरूप धर्म के विशेष लक्षण अनेक रूप में जाते हैं। इस प्रकार धर्मशास्त्र और महाभारत में धर्म के सामान्य सिद्धान्त एवं स्वरूप तथा सामान्य लक्षणा के साथ साथ धर्म के विविध विशेष रूपों का भी विवरण किया गया है। डा० सुक्यनकर ने अपने ग्रन्थ में धर्म की इस जटिलता और विविधरूपता का उल्लेख किया है।^{३४} महाभारत के विशाल काल में धर्म के इन विविध पक्षों और अंगों का विस्तार के साथ विवरण मिलता है। इस अध्याय के पिछले प्रकरणों में महाभारत के अनुसार धर्म के सामान्य सिद्धान्त तथा धर्म के प्रमाण और धर्म के सामान्य लक्षणा का विवेचन किया गया है। अगले अध्याय में धर्म के विशेष पक्षों और अंगों का विस्तृत विवरण किया जायेगा। यहाँ धर्म के स्वरूप का विवेचन पूरा करने की दृष्टि से धर्म के इन विविध पक्षों और अंगों का दिग्दर्शन मात्र करना अभीष्ट है।

धर्म के ये अंग अथवा पक्ष जीवन की परिस्थितियों के अनुसार अनेक हो सकते हैं। तक की दृष्टि से हम इन्हें अनन्त भी कह सकते हैं। जीवन के इन सभी पक्षों और अंगों का विवरण सम्भव नहीं है। किसी भी परिस्थिति में आत्मनः प्रतिकूलानि' और अविरोध के सामान्य सिद्धान्त के अनुसार विशेष धर्म के रूप का निर्णय किया जा सकता है। सामाजिक व्यवस्था और सम्बन्धों के अनुसार धर्म के मुख्य पक्षों एवं अंगों का ही विवरण धर्मशास्त्रों तथा महाभारत में किया गया है। प्रस्तुत गौत्र प्रवचन में अगले अध्याय में धर्मशास्त्रों और महाभारत के अनुसार धर्म के इन्हीं पक्षों एवं अंगों का विवरण किया गया है।

धर्म के इन पक्षों और अंगों में वण और आश्रम मुख्य हैं। वणों और आश्रमों की व्यवस्था ही प्राचीन भारतीय समाज का विधान थी। इसी व्यवस्था के अनुसार धर्मशास्त्रों में धर्म के कर्तव्यों का निरूपण किया गया

१। दान-अपत्या समाप्त वा विभाजन है। दान-दान गतिन वन्द और नृप
 य वार वार वा। मय है। दम-गाम्नां म दान नृपक नृपक वाप्य वाराय है।
 दान-धर्म, नृपक्य वाराप्रम्य और नृपक्य मे वार आरम ह। इनक भा अन्त
 अन्त मय है। मनुज दान प्रवण के अन्ते अप्याया मे इमी व्यप्याया के
 अनुप्य एक एक अप्याय म प्रत्येक वार और आरम के धर्मो अप्याया वार
 वा विभूय विवरण किया गया है। यहाँ दान म दान मने इम
 प्रकार है।

मनु ने दान-धर्म के ६ मुख्य धर्म बताये हैं—अप्यायन, अप्यायन यजन
 याजन, दान और प्रतिग्रह।^{३५} महाभारत म दान-धर्म के मुख्य धर्म इम
 प्रकार बताये गये हैं—अप्यायन अप्यायन, यजन याजन तथा दान और प्रति
 ग्रह।^{३६} मनु ने दान-धर्म के ६ मुख्य धर्म बताये हैं—प्रजा की रक्षा दान
 यन और अप्यायन।^{३७} महाभारत म दान-धर्म के मुख्य धर्म इम प्रकार बताये
 हैं—गुरुवीरता तज धर्म चतुरता और युद्ध म म न भागना दान दान और
 स्वामिभाव।^{३८} महाभारत म दान-धर्म का यण इम प्रकार किया है कि

३५—अप्यायनमप्यायन यजन याजनं तथा ।

दान प्रतिग्रहश्च घटककर्माप्ययजनमन ॥

मनुस्मृति—अध्याय १०, श्लो० ७५

३६—अप्याययेदधीयीत याजयेत यजेत वा ।

न युया प्रतिग्रह एषीयात्त घ दद्यात् कथञ्चन ॥

शान्तिपर्व—अध्याय २३४, श्लो० ११

३७—प्रजानां रक्षणं दानमिज्याप्यायनमेव च ।

विषयेस्य प्रसात्तिश्च क्षत्रियस्य समासत ॥

मनुस्मृति अध्याय १, श्लो० ६०

३८—शौच तेजो धुनिर्वास्य युद्धे चाप्यपलायनम् ।

दानमीश्वर भावश्च क्षात्र कम स्वभावजम् ॥

भीष्मपर्व—अध्याय ४२, श्लो० ४३

राजा को शाय की रक्षा करने वाला, मृत्युभाषी, उचितदण्ड देने वाला होना चाहिए ।^३ मनु ने वश्य के ७ मुख्य धर्म बताये हैं—पशु रक्षण, दान यज्ञ, अध्ययन, वाणिज्य, लेनदेन और खेती ।^४ महाभारत में वश्य के मुख्य धर्म इस प्रकार बताये गये हैं—व्यापार पशुपालन और खेती ।^५ मनु न शूद्र का १ मुख्य धर्म बताया है—उच्च वर्णों की सेवा ।^६ महाभारत में भी शूद्र का मुख्य धर्म—तीनों वर्णों की सेवा ही बताया है ।^७ मनु न ब्रह्मचारी के २ मुख्य कर्त्तव्य बताये हैं—अध्ययन, और गुरु की सेवा ।^८ महाभारत में ब्रह्मचारी के धर्म इस प्रकार बताये हैं—धर्म का रहस्य सुनना वेदोक्त व्रत

३६—सम्यग्दण्डे स्थितिधर्मो धर्मो वेदक्रतुक्रिया ।

व्यवहारस्थितिधर्म सत्यवाक्यरनिस्तया ॥

अनुशासनपत्र—अध्या० १४१, श्लो० १५

४०—पशूना रक्षण दानमिज्याध्ययन मेव च ।

वशिष्यपय कुसीद च दौश्यस्य कृषिरेव च ॥

मनुस्मृति—अध्याय १ श्लो० ६०

४१—वशिष्या पशुरक्षा च कृष्यादानरतिं शुचि ।

वेदाध्ययन सम्पन्न स वैश्य इति सन्ति ॥

शांतिपर्व—अध्याय-१८६, श्लो० ६

४२—एकमेवतु शूद्रस्य प्रभु कम समादिशत् ।

एतेषामेव वर्णानां शुभ्रूषामनसूयया ॥

मनुस्मृति—अध्याय १, श्लो० ६१

४३—प्रजापतिर्हि वर्णानां दास शूद्रमकल्पयत् ।

तस्माच्छूद्रस्य वर्णानां परिचर्या विधीयते ॥

शांतिपर्व—अध्याय ६०, श्लो० २८

४४—कुर्यादध्ययने यत्नमाश्रायस्य हितेषु च ।

मनुस्मृति—अध्याय-२, श्लो० १६१

का पालन करना, होम और गुरमेवा करना ।^{४५} मनु ने गृहस्थ क ५ मुख्य धम इस प्रकार बताया है—अध्ययन और अध्यापन ब्रह्मयज्ञ है श्राद्धतपण पितृयज्ञ, होम देवया, जीवो को बलि देना भूतयज्ञ और अतिथिसत्कार मनुष्य यज्ञ हैं ।^{४६} याज्ञवल्क्य ने गृहस्थ के लिए मनु की भाँति ही पांच यज्ञों को मुख्यधम बताया है ।^{४७} महाभारत में गृहस्थ क मुख्य धम इस प्रकार बताया है—याय स प्राप्त किये धन स यज्ञ करे, दान दे तथा सदा अतिथियों को भोजन कराये । दूसरों की वस्तु बिना दिये ग्रहण न करे ।^{४८} महाभारत में स्त्री को वाय म कुशन, सन्तानवती, पतिव्रता तथा पति की प्रिय बताया है ।^{४९} मनु ने वानप्रस्थ के मुख्यधम इस प्रकार बताये हैं—नागरिक आहार और उपकरणों का त्याग ।^{५०} महाभारत में वानप्रस्थ के मुख्य धम इस

४५—रहस्यध्वरणं धर्मो वेदव्रतनिषेवणम् ।

अग्निकाय तथा धर्मो गुरुकायप्रसाधनम् ॥

अनुशासनपर्वा—अध्याय १४१, श्लो० ३५

४६—अध्यापन ब्रह्मयज्ञ पितृयज्ञस्तु तपणम् ।

होमो द वो बलि भोतो नृपज्ञोऽतिथि पूजनम् ॥

मनुस्मृति—अध्याय ३ श्लो० ७०

४७—बलिकमस्वधा होम स्वाध्यायाऽतिथि सत्क्रिया ।

भूतपित्रभर ब्रह्ममनुष्याणा महाभरवा ।

याज्ञवल्क्यस्मृति—अध्याय ३, श्लो० १०२

४८—धर्मागत प्राप्य धन यजेत्, दद्यात्सदवातिथीन् भोजयेच्च ।

अनाददानश्च पररदत्त स्या गृहस्थोपनिषत् पुराणी ॥

आदिपर्वा—अध्या० ६१—श्लो० ३

४९—सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रजावती ।

सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता ॥

आदिपर्वा—अध्या० ७४, श्लो० ४०

५०—सत्यञ्च ग्राम्यमाहार सर्गं चव परिच्छेदम् ।

पुत्रेषुभार्या निक्षिप्य वनगच्छेत्सहैव वा ॥

मनुस्मृति—अध्याय ६, श्लो० ३

प्रवार बताय हैं—सस्कारो मे गुद होकर घर की ममता त्याग कर गाव स
चाहर घने वन में निवान करना चाहिए ।^{५१}

मनु के अनुमार तीमरे आश्रम म वन म निवाम करके अत म सब
आसक्तियो को छोडकर सयाम ग्रहण करके परित्रजन करना चाहिए ।^{५२}
परित्रजन का अय स्वच्छद विचरण है । नयासी सब आसक्तिया और वधना
मे मुक्त हो जाता है । महाभारत म सयासी के विषय म कहा है कि वह
अवेला वन मे रह और कोई वस्तु साथ न रखे ।^{५३} अपरिग्रह और स्वातंत्र्य
का यह जीवन भारतीय जीवन कल्पना की चरम कोटि है ।

५—धर्म और शील—

महाभारत म धर्म क साथ साथ 'शील' की भी अनक स्थाना पर
प्रज्ञता की गई है । धर्म क ममान 'शील' भी ससृजत भाषा का एक एमा शब्द
है जिमका अंगरेजी म अनुवाद सम्भव नहीं है । 'शील' शब्द म धर्म की पवि
त्रता तथा आचार की सात्विकता का समाहार है । साथ ही उसम 'धर्म' का
पर्यायभाव भी निहित है । 'जलने' को अग्नि का धर्म अथवा 'शील' दाना ही
कह सकत हैं । 'धर्म' म भी भूलत सृजना सपन्वित है किन्तु 'दिवि' क
प्रभाव स 'धर्म' म कतय' का भाव प्रधान बन गया है । 'शील' की सृजना
मुरक्षित रही है साथ ही उसम धर्माचार का भाव भी समाहित हा गया है ।
'धर्म' की कतयता जब मनुष्य का महज स्वभाव बन जाती है तब उस 'शील'
कहना उचित है । युधिष्ठिर का धर्म अथवा सत्य इमका उदाहरण है ।

५१—सस्कृत ससिस्कारस्तयव ब्रह्मचयवान् ।

ग्रामान्निःक्रम्य चारण्ये मुनि प्रव्रजितो वसेत् ॥

आश्वमेधिक पर्व—अध्याय ४६, श्लो० ६

५२—त्यक्त्वा सगापरित्रजेत् ।

मनुस्मृति—अध्याय ६, श्लो० ३३

५३—उपेक्षा सर्षामूतानामेतावद् भिषुलक्षणम् ।

शान्तिपर्व—अध्याय २४५, श्लो० ७

महाभारत म 'शील' की महिमा अनेक स्थानों पर बतलाई गई है। एन प्रकार से 'शील' को धर्म के सभी लक्षणों का मूल बतल सफल है। 'शील' म ही धर्म के समस्त लक्षणों का उद्गम तथा पथवर्तमान जाना है। शान्ति पथ म प्रह्लाद की मर्यादा के प्रसंग म 'शील' का 'धर्म' का आशय बताया है। प्रह्लाद के 'शरीर' से तेज के रूप म 'शील' निकलता। उससे पाछे 'धर्म' भी बन गया। 'धर्म' न उच्चार दिया कि जहाँ यह 'शील' रहता है वही मैं (धर्म) भी रहता है।^{१४४} उसी प्रसंग म महाभारत म कहा गया है कि धर्म सत्य सदाचार बल और 'शुद्ध' सब शील व आधार पर ही रहते हैं। 'शील' ही इन सबका मूल है।^{१४५} 'शील' की शक्ति अपार है। 'शील' से मनुष्य तीनों लोकों को जीत सकता है। संसार म 'शीलवान्' मनुष्य व लिये कुछ भी असाध्य नहीं है।^{१४६} इस सम्बन्ध म प्रह्लाद का उदाहरण दिया गया है। दत्यराज प्रह्लाद न इन्द्र का राज्य हर लिया तथा तीनों लोकों का अपना वर म कर लिया।^{१४७} महाभारत के युधिष्ठिर 'शील' के अवतार हैं। युधिष्ठिर के 'शील' के 'शील' की प्रशंसा करने हुये धृतराष्ट्र ने अपने पुत्र दुर्योधन से कहा कि प्रिय पुत्र! यदि तुम युधिष्ठिर के समान अथवा उससे भी अधिक श्रेष्ठ को प्राप्त करना चाहते हो तो शीलवान् बना।^{१४८} युधिष्ठिर व अतिरिक्त धृतराष्ट्र न माघाता जनमजय पाभाग प्रह्लाद आदि के उदाहरण दिए हैं जिन्होंने 'शील' के द्वारा पृथिवी का राज्य प्राप्त किया।^{१४९}

५४—धर्म म प्रह्लाद मां विद्धि यत्रासौ द्विजसत्तम ॥५०

तत्र यास्यामि दत्येन्द्र यत् शीलं ततो ह्यहम् ॥५०३

५५—धर्म सत्य तथा वृत्त बल धर्म तथाप्यहम् ।

शीलमृत्ता महाप्राण सदा नास्त्यत्र सग्य ॥६२

५६—शीलेन हि प्रयो लोका गक्या जेतु न संशय ।

न हि किंचिदसाध्य दी लोके शीलवता भवेत् ॥१५

५७—प्रह्लादेन हृत राज्यं महेंद्रस्य महात्मन ।

शीलमाश्रित्य दत्येन प्रलोभ्य च वने कृतम् ॥२०

५८—यदीच्छसि धिय तात यादृशी सा युधिष्ठिरे ।

विशिष्टां वा नरव्याध शीलवान् भवपुत्रक ॥१४

शान्तिर्पा—अध्याय १२४, श्लोक ५०, ५०, ६२, १४, २०, १४

५९—एते हि पाथिवा सर्वे शीलवन्ता दयस्विला ।

अतस्तेषा गुणश्रीणा वसुधा स्वयमागता ॥

शान्तिर्पा—अध्याय १२४, श्लोक १७

भारतीय सस्कृति में राज्य और बभ्रव का आधार भी धर्म तथा गान का माना गया है। भारतीय सस्कृति के इस दृष्टिकोण की तुलना उन सस्कृतियों से करने योग्य है जिनमें आक्रमण, अनीति छुन आदि का अबलम्ब लेकर राज्य विस्तार को सब के योग्य समझा जाता है। भारतीय सस्कृति की इसी परम्परा के अनुसार 'मत्स्यमेव जयते' स्वाधीन भारत का राजमंत्र बना है। महाभारत में भी धर्म और गान की इस महिमा का समर्थन किया गया है। पाण्डवों की विजय क्या के रूप में भी गान की महिमा को चरिताय करती है। गान का मनुष्य का सिद्ध आधार कह सकते हैं। जिसे धारण किया जाता है वह धर्म है। धारण करने पर जब धर्म मनुष्य का सहज और निश्चित स्वभाव बन जाता है तब उसे गान कह सकते हैं। गान में धर्म की पवित्रता और चरित्र की सुन्दरता का समाग है।

धर्म के समान गान के भी अनेक प्रकार हो सकते हैं। धर्म के अनेक उद्देश्य धर्मशास्त्रों और महाभारत में गिनाये गये हैं। गान्ति पत्र में मन वचन और क्रम से सभी प्राणियों के प्रति अद्रोह तथा अनुग्रह और दान का प्रथमनीय गान बताया गया है।^{६०} धर्म के लक्षणा की भाँति गान के भी अनेक रूप हो सकते हैं। किन्तु धर्म के सामान्य स्वरूप की भाँति गान का सामान्य स्वरूप भी गान के सभी रूपों में व्याप्त रहना है। गान का यह सामान्य स्वरूप धर्म के स्वरूप के ही समान है। धृतराष्ट्र ने गान का स्वरूप इस प्रकार बताया है— अपना जो क्रम और पुण्याय दूसरा के नियम हित करने हो उसे नहीं करना चाहिये^{६१} तथा जिस काय की भरी सभा में प्रथमा हो उस करना चाहिये। यही मन्त्रों में गान का स्वरूप है।^{६२} गान का वह स्वरूप धर्म का आन्तरिक तत्व और आधार है।

६०—अद्रोहं सर्गिभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा ।

अनुग्रहश्च दानं च गौलमेतत् प्रथमयेत ॥६६

६१—यदयेषां हितं न स्यादात्मन कर्म पौरुषम् ।

अपत्रपेत वा येन न तत् कुर्यात् क्षयचन ॥६७

६२—तत् कर्म तथा कुर्याद येन श्लाघ्येत ससदि ।

गौल समासेनतत् ते कथितं कुरुसत्तम ॥६८

गीता तपर्व—अध्या० १२४, श्लो० ६६, ६७, ६८

६—परम धर्म—

‘धम के लक्षण के प्रसंग म धम के अनेक रूपा का उल्लेख किया गया है। आत्मोपम्य की समानता तथा आत्मन प्रतिबुलानि के अविरोध क द्वांग महाभारत म धम के जिस सामान्य स्वरूप एव सिद्धांत का निदशन किया गया है वह जीवन की परिस्थितिया और सम्बन्धा के अनुमार अनेक रूप ग्रहण करता है। दया, क्षमा, दान जादि उत्ती धम क विविध लक्षण है। धम के इन अनेक लक्षणा की तुलना अथवा कभी इनका सघष होने पर यह प्रश्न उठता है कि धम के इन अनेक लक्षणो म सबसे श्रेष्ठ कौन है। सबसे उत्तम अथवा श्रेष्ठ को परम कहत है। सत्य अहिंसा, दया आदि मे परम धम’ किसे कहना चाहिये। तुलना करना और सब श्रेष्ठ को जानने की इच्छा करना मनुष्य का स्वभाव है। अय क्षेत्रा म भी वह सबश्रेष्ठ को जानना चाहता है। धम क क्षत्र म इसका निणय करना अत्यत कठिन है। धम के सभी रूप अपन अपने अवसर पर महत्वपूर्ण और श्रेष्ठ लिखाई देते हैं। उनम से किसी की भी उपक्षा नहीं का जा सकती। फिर भी धम शास्त्रो तथा महा भारत म कही कही धम के किसी लक्षण को परम धम कहा गया है। इससे धम के उस लक्षण की विशेष महिमा प्रकट होती है। जिन धर्मों को ‘परमधम वताया गया है व निस्सन्देह अधिक व्यापक हैं तथा व धम के सामान्य सिद्धांत के अधिक निकट हैं। इस दृष्टि से उ ह परम धम कहना उचित है। परम का अय यही है कि वे धम श्रेष्ठ और उत्तुष्ट हैं तथा अय धम उनकी तुलना म गौण है। तुलना करते पर विदित होगा कि ये गौण धम इस परम धम के अन्तगत आ जाते है तथा उमसे अनुगत होत है। उदाहरण के लिये सत्य अहिंसा दया आदि को विभिन्न स्थानो पर परम धम कहा गया है। अमनय अक्रोध आदि इनस अनुगत हाते है। सत्य अहिंसा, दया आदि के होने पर अस्तय अक्रोध आदि स्वय ही प्राप्त हो जाते हैं। धम यवस्था के क्रम म परम धम को धम क सामान्य स्वरूप तथा गौण धर्मों के बीच रखा जा सकता है। समानता अविराध आदि की तुलना म सत्य, अहिंसा, दया आदि अपर सामान्य कहे जा सकते हैं। य धम के ऐसे सामान्य हैं जो समानता आदि की तुलना म अधिक मूल और ग्राह्य हैं। इनक द्वारा साधारण जन धम क सिद्धांत का अवय कर सकत हैं।

महाभारत म सत्व, सत्य, अहिंसा दया आदि का विभिन्न स्थाना पर परम धम कहा गया है । अनुगीता म गीता कं अनुरूप सत्य की महिमा वर्णित है । प्रकृति के गुणो म 'सत्व को 'परम धम कहा गया है । ^{१३} सत्व ही धम का आधार है । सात्विक भाव से ही धम के समस्त लक्षण घटित हाते हैं । अतः सत्व को परम धम कहना उचित है । रजस और तमस अधम के प्ररक एव धम के बाधक होते हैं । शांति पव के अतमत माधम पव म सत्य को परम धम बताया गया है । ^{१४} युधिष्ठिर धम के पुत्र थे । वे सत्य वादी थे । उनके चरित्र म 'सत्य ही 'धम' का पर्याय बन गया है । भारतीय आचार म सत्य की महिमा अपार है इसी महिमा के कारण उसे 'परम धम' माना गया है । शांति पव म युधिष्ठिर से भीष्म न कहा है कि सत्युष्पा म सदा सत्यरूप धम का ही पालन हुआ है । सत्य ही सनातन धम है । सत्य को ही सदा मिर भुवाना चाहिए, क्याकि सत्य ही जीव की परम गति है । सत्य ही धम तप और याग है, सत्य ही सनातन ब्रह्म है । सत्य का ही परमयत्न कहा गया है तथा सब कुछ सत्य पर ही टिका हुआ है । सत्य से बढ़कर कोई धम नहीं है और झूठ स बढ़कर कोई पातक नहीं है । सत्य ही धम की आधार शिला है । अतः सत्य का लोप न करना चाहिए । ^{१५}

६३—न हि सत्त्वात् परो धम कश्चिदयो विधीयते ॥

आश्वमेधिक पर्व—अध्याय—३६, श्लोक ६

६४—नास्ति सत्यात् परो धर्मो ।

शांतिपर्व—अध्याय ३४२, श्लोक १८

६५—सत्य सत्सु सदाधम सत्य धम सनातन ।

सत्यमेव नमस्येत सत्य हि परमा गति ॥४॥

सत्य धम स्तपो योग सत्य ब्रह्म सनातनम् ।

सत्य यज्ञ पर श्रेष्ठ सर्वे सत्ये प्रतिष्ठनम् ॥५॥

नास्ति सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातक परम् ।

द्वियतिहि सत्य धम स्य तस्मात् सत्य न लोपयेत् ॥२४॥

शांतिपर्व—अध्याय १६४, श्लोक ४, ५, २४

अहिंसा को प्राय 'परम धम' कहा जाता है। अहिंसा परमो धम' का महावाक्य महाभारत तथा अथ धम शास्त्रो म अनेक स्थानो पर मिलता है। याज्ञवल्क्य के अनुसार 'अहिंसा धम के जलपणा मे प्रथम है। महाभारत म अहिंसा को परम धम^{६६} और सत्य मे प्रतिष्ठित कहा गया है।^{६७} अहिंसा को ही सबसे बडा दान सबसे बडा यज्ञ तथा सबसे बडा मित्र बताया गया है।^{६८} अहिंसा प्राण दान है। वह निस्स-देह सबसे बडा दान है। यम से पुण्य होता है। अहिंसा सबसे अधिक पुण्यदायक यज्ञ है। वह परम मित्र के समान हितकारी भी है। अहिंसक का अहित करने की कल्पना दूसरे महत्ता नहीं करते। वन पर्व मे युधिष्ठिर ने यम के प्रश्नो के उत्तर म दया को परम धम बताया है^{६९} दया का क्षेत्र अहिंसा की अपेक्षा अधिक व्यापक है। एक प्रकार स अहिंसा को भी दया का एक रूप मान सकते है। अहिंसा और दया म मनुष्य का आदर तथा मानवीय भावना सबसे अधिक गहन रूप म प्रकट होती है। इह 'परम धम' मानना उचित है।

परम धम के ये अनेक रूप धम के सामान्य सिद्धांत के अनुरूप हैं तथा एक दूसरे से सगत है। इनम एक के अनुशीलन स ही अथ धर्मों के पालन की क्षमता प्राप्त होती है। अत ये निस्स-देह परम धम के गौरव क योग्य है।

६६—अहिंसा परमो धर्मो हिंसा चाधर्मलक्षणा ॥

आश्वमेधक पर्वा-अध्याय ४३ श्लोक २०३

६७—अहिंसा परमो धम स च सत्ये प्रतिष्ठित ॥

वनपर्वा-अध्याय-२०७ श्लोक ७४

६८—अहिंसा परम दानमहिंसा परम तप ।

अहिंसा परमो यज्ञस्तथाहिंसा परफलम्

अहिंसा परम मित्रमहिंसा परम सुखम् ॥

अनुशासन पर्वा-अध्याय-११६, श्लोक २८, २९

६९—आनृगस्य परो धम परमायच्च मे मतम् ।

वनपर्वा-अध्याय-३१३ श्लोक १२९

७-सनातन धर्म--

'परम धर्म' के समान ही महाभारत में धर्म के कुछ रूपों को 'सनातन धर्म' कहा गया है। सनातन का अर्थ शाश्वत अथवा सबकालीन है। कुछ धर्म सामयिक भी हो सकते हैं। दश काल के अनुसार धर्म के 'यावहारिक' रूप बदल सकते हैं। अतः धर्म के उन रूपों का निर्धारण अपेक्षित है जो सब कालीन अर्थात् सनातन है। ये धर्म के ऐसे रूप हैं जो देश काल से निरपेक्ष हैं तथा सदा सत्य रहते हैं धर्म का सामान्य स्वरूप जिसका निर्धारण आत्मोपमन की भूमता तथा अविरोधन के सामञ्जस्य के द्वारा किया गया है वह सनातन अर्थात् सबकालीन धर्म का सर्वोत्तम रूप है। सत्य अहिंसा आदि भी हमें ही सबकालीन धर्म हैं। इन्हें भी 'सनातन धर्म' कहा जा सकता है।

महाभारत में विविध स्थानों पर सत्य अहिंसा आदि को सनातन धर्म कहा गया है। इनको ही परम धर्म बताया गया है। ये परम अर्थात् सर्वश्रेष्ठ धर्म हैं। ये सनातन धर्म भी हैं। ये धर्म के वरु रूप हैं जो सबकाल में मान्य हैं।

सनातन धर्म बताते हुए भीष्म जी ने युधिष्ठिर से कहा कि सत्यरूप में सनातन रूप धर्म का ही पानन हुआ है। सत्य ही सनातन धर्म है। सत्य को ही सदा मिर भुक्ताना चाहिए, क्योंकि सत्य ही जीव की परम गति है। सत्य ही धर्म तप और योग है सत्य ही सनातन ब्रह्म है। सत्य को ही परम धर्म कहा गया है तथा सब कुछ सत्य पर ही टिका हुआ है। श्रेष्ठ पुरुषों का सनातन धर्म भीष्म जी ने इस प्रकार बताया कि मन वाणी और क्रिया द्वारा सभी प्राणियों के साथ कभी द्रोह न करना तथा दया और दान यह श्रेष्ठ पुरुषों का सनातन धर्म है। सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं और झूठ से बढ़कर कोई पानक नहीं है। सत्य ही धर्म की आधारशिला है। अतः सत्य का

७०—स एव धर्म सोऽधर्मो देवकाले प्रतिष्ठितः ।

शांतिपर्व-अध्याय-३६, श्लोक ११

द्विविधो चाप्युभावेतौ धर्माधर्मौ विज्ञानताम् ॥

शांति पर्व—अध्या० ३६, श्लोक, १२

लोप न करें।^{७१} धर्म का रूप बताते हुए भीष्म जी ने युधिष्ठिर से कहा कि अहिंसा, सत्य, अक्रोध और दान इन चारों का सदा सेवन करो। यह सनातन धर्म हैं। मनीषी पुरुष धर्म को समस्त प्राणियों का हृदय कहते हैं। अतः समस्त प्राणियों को धर्म का आश्रय लेना चाहिए। मनुष्य को चाहिए कि वह अकेला ही धर्म का आचरण न करे, धर्म का दिक्कावा न कर।^{७२} उत्पत्ति चाहने वाले पुरुष के पाँच गुरु—पिता माना अग्नि, परमात्मा तथा गुरु हैं। इनकी सेवा सदा-यवहार तथा सब अनियों की स्थापना ही सनातन धर्म है। क्षमा और दया यही जितात्मा पुरुषों का सदाचार है और यही सनातन धर्म। विद्वान् पुरुष को सदा क्षमा का ही आश्रय लेना चाहिए। जब मनुष्य सब कुछ सहन कर लेता है तब वह ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है। क्षमावानो व लिए ही यह लोक है। क्षमाशील पुरुष इस जगत् में सम्मान प्राप्त करत हैं।^{७३} भीष्म जी ने पाण्डवों को सनातन धर्म इस प्रकार बताया है कि हितपी गुरुद्वों का कर्तव्य है कि वे स्नेहवश हित की बात बतावें। यही सनातन धर्म

७१—सत्यं सत्सु सदा धर्मं सत्यं धर्मं सनातनम् ।
सत्यं धर्मस्तपो योगो सत्यं ब्रह्म सनातनम् ।५
गान्धिपर्व—अध्याय १६२, श्लोक ४, ५

अद्रोहो सबभूतेषु कर्मणा मनसा गिरा ।
अनुपहृष्टश्च दानं च सतां धर्मं सनातनम् ।२१
गान्धिपर्व—अध्याय १६२, श्लोक २१, २४

७२—अहिंसा सत्यमक्रोधो दानमेतच्चतुष्टयम् ।
अज्ञातान्त्रो सेवस्व धर्म एष सनातनम् ।२३
अनुशासनपर्व—अध्याय १६२, श्लोक २३, ६०, ६१

७३—एनदात्मवता वृत्तमेव धर्मं सनातनम् ।
दक्षपर्व—अध्याय २६, श्लोक ५२, ५२, ५३

है ।^{१०४} हित की बात बताने से अपने मित्रा तथा हिन चाहने वाले बड़े लोगों का प्रेम प्रकट होता है । इसलिए माता पिता तथा गुरु आदि सदा छोटा को हिन की और कल्याण की बात बताने रहते हैं । मनुष्य के लिए हितकारी बाने बड़ी उपयोगी हानी है । बड़े लोग अपने अनुभव से जो भी बातें बताते हैं वे छोटे के ध्यान में भी नहीं आती हैं । क्योंकि बहुत-सी बातें अनुभव से प्राप्त होती ह जो बिना अधिक उम्र के ज्ञात नहीं हो पाती । माता पिता उम्र के ही कारण अधिक अनुभवी तथा ज्ञानी हो जाते ह और उमी अनुभव के द्वारा वे छोटे को हित की तथा नान की बातें बताते ह । इसलिए छानो को सदा बड़ो की बातें माननी चाहिए इमो में उनका कल्याण है । चोरी न करने के विषय से बताते हुए भीष्म जी ने युधिष्ठिर से कहा कि 'दूमरो के धन का अपहरण नहीं करना चाहिए—यहां सनातन धम है ।'^{१०५} चोरी न करने से मनुष्य का मन प्रमद और निभय रहता है तथा वह मनुष्य अपने कतव्या और धर्मों के पालन म शात चित्त से लगा रहता है । श्रेष्ठता को प्राप्त करने के लिए मनुष्य की सब दुगुणा से दूर रहना चाहिए । एक बार मृत्यु न ब्रह्माजी ने कहा कि मैं रोते विदस्वते प्राणिया के प्यारे प्राणो का अपहरण नहीं कर सकूंगी, क्योंकि यह अग्रम प्रतीत हाता है । तब ब्रह्माजी न कहा कि प्रजाओ के सहार से तुझे अधम नहीं प्राप्त हागा क्योंकि यह तो मेरे द्वारा कही हुई बात है अर्थात् ससार मे जो जन्म लेगा, उमका नाग भी अवश्य हागा ।

७४—विदिते चापि क्तव्य मुहुर्द्धिरनुरागत

एष धर्मश्च कामश्च अथश्च व सनातन ॥

विराटपव—अध्याय ४, श्लोक ६

७५—न हतव्य परधनमिति धम सनातन ॥

नार्ति पव—अध्याय २५६, श्लोक १२

७६—तस्मात् सहर क्त्याणि प्रजा सर्वाश्चतुर्विधा ।

धर्म सनातनश्च त्वा सर्वथा पावपिप्यति ॥

द्रोणपव—अध्याय ५४ श्लोक ३३, ३४

ब्रह्माजी ने मृत्यु से इस प्रकार कहा कि कत्याणि । तू चार थोंगिया मे विभाजित समस्त प्राणिया का सहार कर । सनातन धम तुझे सब प्रकार से पवित्र बनाये रखेगा ।”^{७७} सनातन धम की स्थिति बताते हुए कपिलजी ने कहा कि बुद्धिमान पुरुष के लिए दश पौणमास, अग्निहोत्र तथा चातुर्मास्य आदि क अनुष्ठान का विधान है क्यकि उनम सनातन धम की स्थिति है ।^{७८} य वदिक कम हैं । वदिक विधान के अनुसार ये सवदा पालनीय ह । किन्तु मुख्य रूप से सनातन धम का अभिप्राय शील और सदाचार के उन रूपा स ह जो मावभौम होने के कारण सवकाल म सभी मनुष्या क लिय पालनीय हैं तथा सत्य, अहिंसा दया आदि जिनके उदाहरण ह ।

७७—दग् च पौणमास च अग्निहोत्र च धोमत ।

चातुर्मास्यानि च वासस्तेषु धर्म सनातन ॥२०

गार्गी पर्व—अध्याय २६६, श्लोक २०

महाभारत में धर्म के तत्व

१—धर्म और धर्म के तत्व-

महाभारत में भी धर्म का वही रूप माना गया है जो सामान्य रूप से भारतीय परम्परा में स्वीकृत है तथा विशेष रूप से जिसका प्रतिपादन धर्मशास्त्रों में किया गया है। महाभारत का धर्म भी वही सामान्य मानवीय धर्म है, जो एकता और शांति का कारण बनता है। जो व्यवहार हमें अपने लिए अनुचित लगता है वसा व्यवहार हम भी दूसरों के प्रति नहीं करना चाहिए यही धर्म है। इस विषय में भीष्म जी ने युधिष्ठिर से इस प्रकार कहा कि “जो बर्ताव अपने लिए अप्रिय है, वह दूसरों के लिए भी प्रिय नहीं हो सकता।” परोपकार इस धर्म का भावात्मक रूप है।* परपीडन अर्थात् दूसरों को दुःख पहुँचाना सबसे बड़ा अधर्म है। अनर्थ और अतिचार के सभी रूपों में अधर्म का यह रूप व्याप्त रहता है। धर्म का उक्त सामान्य रूप भी मानवीय कल्याण के कल्पवृक्ष का बीज है। वह मानवीय सद्भावों की अनेक शाखाओं में विकसित होता है और सुख शांति के फल फूलों में फलता-फूलता है।

समानता और परोपकार के सामान्य धर्म से मनुष्य में अनेक सद्गुण पैदा होते हैं अथवा यों कह सकते हैं कि यह सामान्य मानवीय धर्म अनेक सद्भावों और सद्गुणों से सम्पन्न होता है। इन अनेक सद्भावों और सद्गुणों को हम धर्म के तत्व कह सकते हैं। प्रस्तुत अध्याय में धर्म के इन तत्वों का संक्षिप्त विवरण किया जायगा। धर्म के इन तत्वों से विदित होता है कि इस

१—यदयविहित नेच्छेदात्मनः कम पुरुष ।

न तत् परेषु कुर्वीत जानघ्नप्रियमात्मन ॥

शांतिपर्व—अध्याय २५६, श्लोक २०

माताचार्य धर्म का जीवन म विना विस्तार है तथा विस्तार के साथ साथ भाव म भी यह धर्म विना उभार है । भाव, धन और व्यवहार क इन तरंग धर्म क इन तरंग म समाहित है कि इनका पालन करने पर मनुष्य का व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन भरना सुख और सुखी बन सकता है । अहिंसा ही धर्म का सधन है यह धर्म पुण्य बताते हैं । अहिंसा का श्रेष्ठता घतान हुए भीष्म जी ने गुणित्व म कहा कि अहिंसा परम धर्म है अहिंसा परम सधर्म है अहिंसा परम दान है और अहिंसा परम सत्स्या है । अहिंसा परम धर्म है अहिंसा परम फल है अहिंसा परम मित्र है और अहिंसा परम सुख है ।^१ ब्रह्माजी ने ब्राह्मणों से कहा कि अहिंसा सबसे श्रेष्ठ धर्म है और अहिंसा अधर्म का सधन (स्वरूप) है । प्रवान दयताओं का और धर्म आदि धर्म मनुष्या का सधन है । धर्म क विषय म बताते हुए श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि ' जिस काय म हिंसा न हो वहो धर्म है । महाविषा ने प्राणियों का हिंसा न होने दन क लिए ही उत्तम धर्म का प्रवान किया है । श्री कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि मने विचार से प्राणियों की हिंसा न करना ही सबसे श्रेष्ठ धर्म है । किसी की प्राण रक्षा के लिए मूठ बालना पडे तो यान् विन्तु उगवी हिंसा किगी तरह न हान द ।'^२ साथ न कहा कि जब भीम का रथ द्रोणाचार्य क पास आ गया तब भीम ने द्रोणाचार्य से कहा कि शिक्षित ब्राह्मण यदि अपने धर्मचार्यों म ही रत रहते तो क्षत्रिया का इतना सहार न होना । भीम ने कहा कि ' प्राणियों की हिंसा न करने को ही सबसे श्रेष्ठ धर्म माना गया है । उसकी जड है ब्राह्मण और आप तो उन ब्राह्मणों म भी सबसे उत्तम

२—अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परो धर्म ।

अहिंसा परम दानमहिंसा परम तप ॥२८

अहिंसा परमो यज्ञस्तथाहिंसा पर फलम् ।

अहिंसा परम मित्रमहिंसा परम सुखम् ॥ २९

अनुशासन पत्र-अध्याय ११६, श्लोक २८, २९

३- यत् स्यादाहिंसासंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः ।

अहिंसार्थं भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ॥

कणपत्र अध्याय ६६, श्लोक ५७ २३

ग्रहवेत्ता हैं।”^४ भीष्म के वचन को सुनकर द्रोणाचार्य का सत्य का ज्ञान हुआ और उन्होंने अस्त्र छोड़कर समाधि लगा ली। प्राचीन काल में युद्ध लड़ना क्षत्रियों का ही काम था। ब्राह्मण तो क्षत्रियों के गिम्बक होते थे। धर्म-पाषाण नौगणिक जी से इस प्रकार कहा कि “अहिंसा सबसे महान् धर्म है परन्तु वह सत्य में ही प्रतिष्ठित है। सत्य के ही आधार पर श्रेष्ठ पुरुषों के सभी काय आरम्भ होने हैं।” अहिंसा और सत्य भाषण—य समस्त प्राणियों के लिए अत्यन्त हितकर हैं। ब्राह्मण का समस्त प्राणियाँ में स किसी की भी कभी और कहीं भी हिंसा नहीं करनी चाहिए। महायज्ञास्वी विप्रवर सत्सुपात् न दुष्पुत्र का रूप त्याग कर अपन प्रकाशमान स्वरूप को प्राप्त करके अनुपम राजवान रूप में यह बात कही कि ‘समस्त प्राणियाँ में श्रेष्ठ ब्राह्मण है अहिंसा मन्वन्त उत्तम धर्म है।’ अहिंसा की श्रेष्ठता बताते हुए भीष्म जी ने युधिष्ठिर से कहा कि प्राणियों की हिंसा न हो इसके लिए धर्म का उपदेश किया गया है अतः जो अहिंसा से युक्त हो वही धर्म है एसा धर्मात्मा का निश्चय है।^५ जो मूर्ख धर्म को दम्बता और उत्तम वचन बोलना चाहता है उसको एसी बात कहनी चाहिए, जो मृत्यु होने के साथ ही हिंसा और परनिन्दा से रहित हो। अहिंसा से मनुष्य सुखी रहता है इस विषय में भीष्म जी ने युधिष्ठिर से कहा कि जो मनुष्य अहिंसा आदि परम धर्म को समस्त प्राणियों के लिए सुखद

४—अहिंसा सर्वभूतेषु धर्म ज्ययास्तर विदुः ।

सत्यं च ब्राह्मणो मूलं भवति च ब्रह्मवित्तम ॥३८

द्रोणपर्व-अध्याय १६२, श्लोक ३८

५—अहिंसा परमो धर्म स च सत्ये प्रतिष्ठित ।

सत्ये कृत्वा प्रतिष्ठा तु प्रवर्तते प्रवृत्तय ॥

वनपर्व-अध्याय २०७, श्लोक ७४

६—अहिंसा परमो धर्म सर्वप्राणभक्ता वर ।

आदि पर्व अध्याय ११ श्लोक १३

७—अहिंसार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ।

य स्यादाहिंसासम्पृक्तं स धर्म इति निश्चय ॥१२

शांतिपर्व-अ० १०८, श्लोक १२

और दुःखनिवारक जानता है वही सबज्ञ है और वही सुखी होता है ।"८ जा कम हिंसा से रहित हैं, वे सदा मनुष्य की रक्षा करते हैं । मनुष्य को चाहिए कि उसने प्रियजन यदि कोई हिंसात्मक काम उसके लिए करते हों तो वह उन सब कर्मों को रोक दे । दूसरे की आयु से अपनी आयु बढ़ाने की अर्थात् दूसरा के प्राण लेकर अपने प्राण बचान की इच्छा न करे । जो मनुष्य जीवन भर नहीं खाता है और विधिपूर्वक उत्तम व्रत का पालन करके अपने अन्तःकरण का शुद्ध बना लेता है वह योगी भी योगशक्ति प्राप्त कर लेता है । ब्राह्मण जाजलि के द्वारा धर्म के विषय में पृच्छने पर तुलाधार ने इस प्रकार कहा कि प्राणिया की हिंसा न करने से जिस धर्म की सिद्धि होती है उससे बढ़कर महान् धर्म कोई नहीं है ।"९ तुलाधार ने कहा कि जो बृद्ध हैं पुत्र और पौत्रों से सम्मन्त्र हैं शास्त्र के अनुसार यथोचित आचरण करते हैं और किसी भी जीव की हिंसा नहीं करते हैं उही महात्माओं के वर्तव्य का मैं भी अनुसरण करता हूँ । अहिंसा और दया आदि भावों से प्रेरित होकर किया हुआ काम इहलोक और परलोक में भी उत्तम फल देने वाला है । यदि मन में हिंसा की भावना हो तो वह श्रद्धा का नाश कर देती है । फिर नष्ट हुई श्रद्धा काम करने वाले इस हिंसक मनुष्य का ही सबनाश कर डालती है । नारदजी ने प्राचीन काल में भीष्म जी को एक ब्राह्मण की कथा सुनाई थी उसी को भीष्म जी ने युधिष्ठिर से कहा कि वे ब्राह्मण यज्ञ में पशु की बलि दना नहीं चाहते थे कि तु स्वर्ग के विमान आदि देखकर वे हिंसा से स्वर्ग की आशा से यज्ञ में हिंसा कर बैठे और उनका किया हुआ सारा धर्म नष्ट हो गया । तब उसे यह दृढ निश्चय हुआ कि हिंसा से बड़ी हानि होती है और अहिंसा ही परम कल्याण का साधन है । अहिंसा को श्रेष्ठ धर्म बताते हुए नारद जी ने कहा कि

८—यश्चन परम धर्मं सान्भूतसुखावहम् ।

दुःखान्नि सरणं वेदं सान्नि स सुखी भवेत् ॥ ७

गीतिर्पा—अध्याय २१५, श्लोक ७

९—न भूतानामहिंसाया ज्यायान् धर्मोऽस्ति कश्चन ।

गीति पर्व—अध्याय २६२ श्लोक २६३

अहिंसा ही सम्पूर्ण धर्म है। हिंसा अधर्म है और अधर्म अहितकारक होता है।^{११} श्रेष्ठ पुरुषों के लिए अहिंसा ही श्रेष्ठ धर्म है।

भारतीय धर्मशास्त्रों में दया का महत्वपूर्ण स्थान है। धर्मात्मा मनुष्य सदा जीवा पर दया करते हैं। यहाँ तक कि सयामी लोग तो रास्ते में भी दख-दखकर बड़े ध्यान में चलते हैं कि कहीं कोई चीटी भी न दब जाय। दया का विषय में बताते हुए भीष्म जी ने युधिष्ठिर से कहा कि 'भारतनन्दन' जो समस्त प्राणियों पर दया करता है और क्रूरतारहित कर्मों में ही प्रवृत्त होता है उसे सभी आत्मों का भोक्तृ का फल प्राप्त होता है।^{१२} जो बालका और वृद्धों के प्रति भी दयापूर्ण बर्ताव करते हैं उन्हें भी उत्तम फल प्राप्त होता है। राजा के लिये समस्त प्राणियों की रक्षा तथा उनके प्रति परम दया ही श्रेष्ठधर्म है। दया की श्रेष्ठता बताते हुए भीष्म जी ने युधिष्ठिर से कहा कि 'जो राजा प्रजापालन में तत्पर रह कर प्राणियों पर दया करता है, उसके इन बर्ताव को धर्म पुरुष परम धर्म मानते हैं।'^{१३} दमयन्ती ने अपने पिता के घर आकर चार ब्राह्मणों का चारों दिशाओं में राजा नल का पता खगान के लिए भेजा तब उसने उन ब्राह्मणों से कहा कि 'तुम इन बातों को जोर-जोर से सबका सुनाना यदि नल कहीं हाग, तो उन्हें यह बातें असह्य होंगी और वे उसका उत्तर देंगे। उन बातों में से एक बात यह भी थी कि मुझ पर दया करो।

१०—अहिंसा सर्वलो धर्मो हिंसाधमस्तथाहित'।

गीता पर्व—अ० २७२, श्लोक १६३

११—सर्वभूतेष्वनुक्रोशं कुर्वतस्तस्य भारत ।

आजुगस्यप्रवृत्तस्य सर्वावस्य पद भवेत् ॥

गीता पर्व—अध्याय ६६, श्लोक १६

१२—तस्मादेवं पर धर्म मयते धर्मकोविदा ।

यो राजा रक्षणे युक्तो भूतेषु कुर्वते दयाम् ॥

गीता पर्व—अ० ७१, श्लोक २७

मैं न तुम्हारे ही मुख से मुन खला है कि दयालुता सबसे बड़ा धर्म है ।”^{१३} तब न कभी दमयंती को दयालुता को बड़ा धर्म बताया था । उसी का स्मरण कराकर वह उनसे दया करने के लिए कह रहा थी ।

२—दम ही सबसे बड़ा धर्म है—

सत्तार म समय ही सब मनुष्यों के लिए सुखकारी है । समयी मनुष्य से सब को अभय रहना है और उसका सब सम्मान करते हैं । असमयी पुरुषा से सभी प्राणिया को सदा भय बना रहता है । इसलिए दम की श्रेष्ठता बताने हुए विदुर जी न दुर्योधन से कहा कि “मिद्धात के जानने वाले वृद्ध पुरुष कहते है कि इस सत्तार म दम ही कल्याण का परम साधन है । ब्राह्मण के लिए तो विनोय रूप से वही सनातन धर्म है ।”^{१४} दम तेज का वृद्धि करता है । दम पवित्र एव उत्तम साधन है । दम से निष्पाप एव बढ हुए नज से सम्पन्न पुरुष परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लेता है । विदुर जी न कहा कि ‘जो दमरूपी गुण से युक्त है, उसी को दान, क्षमा और सिद्धि का यथायत्न लाभ प्राप्त होता है क्यकि दम ही दान, तपस्या, ज्ञान और स्वाध्याय का सम्पादन करता है ।’^{१५} विदुरजी ने दुर्योधन से कहा कि जिस पुरुष म क्षमा धर्म अहिंसा समर्पिता सत्य सरलता इन्द्रिय समय धीरता, मृदुता लज्जा, स्थिरता उदारता अक्रोध सन्तोष और श्रद्धा ये गुण विद्यमान हैं वह पुरुष इन्द्रियविजयी माना गया है । दमनशील पुरुष काम, लोभ अभिमान क्रोध निद्रा आत्मप्रशंसा मान इर्ष्या तथा शोक—इन दुगुणो को अपने पास नही फटवन देता । कुटिलता और गठता का अभाव तथा आत्मगुद्धि यह

१३—तत् कुहृत्वं नरव्याघ्र दयां मयि नरपथे ।

आनृशस्यं परो धमस्त्वत्त एव हि मे धृत ॥

वन पथ—अ० ६६ श्लोक ४३

१४—इह नि श्रेयस प्राहुवृ द्वा निश्चिन्वद्गिन ।

ब्राह्मणस्य विनोयेण दमो धम सनातन ॥ ६

१५—तस्य दान क्षमा सिद्धिर्भयावदुपपद्यत ।

दमो दान तपो ज्ञानमघोत धानुयतरो ॥१०

उद्योग दर्श—अध्याय ६३, श्लोक ६, १०

दमयुक्त पुरुष का लक्षण है ।^{१६} विदुरजी ने दम की श्रेष्ठता बताते हुए कहा कि "धारा आश्रमा म दम को ही उत्तम व्रत बताया गया है । यह दम जिन पुरुषों के अम्यास म आकर उनके अम्युदय का कारण बन जाता है ।^{१७} जो सत्कारि शीलवान् प्रसन्नचित्त तथा आत्मपानी विद्वान् है, वह इस जगत म सम्मान प्राप्त करता है और मृत्यु के पश्चात् उत्तम गति का भागी होता है । इन्द्रियसयमी की विनोपना बताते हुए विदुर जी ने कहा कि जो तिलोभ, कम भे कम चाहने वाला, भोगों के चिन्तन से दूर रहने वाला तथा समुद्र के समान गम्भीर है उस पुरुष को दान्त (इन्द्रियसयमी) कहा गया है ।^{१८} जो सम्पूर्ण भूतों का हिन चाहने वाला और सबके प्रति मत्रीभाव रखने वाला है उममें किनी भी पुरुष को उद्वेग नहीं प्राप्त होता है । जो समुद्र के समान गम्भीर एवं उत्कृष्ट पान्थी अमृत से तृप्त है वहां परम शान्ति का भागी होता है । विदुरजी ने कहा कि ' जो कर्त्तव्य कर्मों द्वारा आचरित है तथा पहने के साधु पुरुषों के द्वारा जिसका आचरण किया गया है उममें अपना कर नाम दम स सम्पन्न पुरुष सदा आनन्दमग्न रहते हैं ।^{१९}

महर्षियों ने अपने-अपने ज्ञान के अनुसार धम की एक नहीं अनेक विधियाँ बताई हैं परन्तु इन सबका आधार इन (मन और इन्द्रिया का सयम) हा है । जिसन अपन मन और इन्द्रिया का दमन कर लिया है, वह मुख म सोता मुख से ही जागता और सुखपूर्वक ही नोका में विचरता है । उसका मन सदा प्रसन्न रहता है । दम की श्रेष्ठता बताते हुए भीष्म जी ने युधिष्ठिर से कहा कि 'हमने समार में दम के समान दूसरा कोई धम नहीं

१६—महाभारत उद्योगपर्व-अ० ६३, श्लोक १४, १५, १६

१७—आश्रमेषु चतुर्वाहृदममेवोत्तम व्रतम् । १२३

१८—अतोऽनुपस्तथाह्येषु कामानामविचिन्तिता ।
समुद्रकल्प पुरुष स दात परिकीर्तित ॥

१९—कमणाऽऽचरितं पूर्णं सद्भिराचरितं च यत् ।
तदेवास्वाय मोदन्तो दाता नामपगमयन्ता ॥२१
उद्योगपर्व—अध्याय ६३, श्लोक १२३, १७, २१

सुना । जगत् म सभी धमवाला व यहाँ दम का हा उत्कृष्ट बताया गया है । गवा उसका भूरि भूरि प्रशंसा की है ।"२ जिसकी इन्द्रियाँ और मन वग म नहीं हैं वह पुण्य निरन्तर कलन उठाता है । साथ ही वह अपने ही दापा स बहुत स दूसर दूसरे अनर्थों की भी मृष्टि कर लेता है । दम की विपत्ता बनात हुए भीष्म जी न कहा कि दम तेज की वृद्धि करता है, दम पवित्र साधन है, दम से पापरहित हुआ तजस्वी पुरुष परमपद को प्राप्त कर लेता है । दम स ही उस अपने गुद्ध बर्णों की यथावत् सिद्धि प्राप्त होता है । दम उसक लिए दान, यन और स्वाध्याय स भी बढ़कर है । २१ दम से अर्थात् मन के समय से युक्त पुरुष का महान् धम की प्राप्ति हाती है । वह दाना लोका म परम सुख पाता है । धम व सिद्धान्त का जानन वाल वृद्ध पुरुष दम को ब्रह्मण का साधन बतात है । विप्रेत ब्राह्मणा के लिए ता दम ही सनातन धम है । व ही धम के स्थापक होने है । यदि व ही दमनशील मन और इन्द्रिया वाते न हागे, तव धम के वाय तथा धम क उपदेग का कस द सकेग, इसलिए ब्राह्मणो का समयी होना अत्यन्त आवश्यक है । प्राचान काल म ब्राह्मण ही सबके गुरु तथा आदश होते थे । उनका पृथिवी का देवता समझा जाता था । व ही सबका उन्नति के माग पर रो जाने थे । इन्द्रिया का समयी मनुष्य ही ससार मे कुछ उन्नति कर सकता है । चारा जाश्रम म दम को ही उत्तम व्रत बताया गया है । सब जाश्रम के नियम भिन्न भिन्न है किन्तु उन चारो आश्रमो म इन्द्रिय समय का नियम सबके लिए आवश्यक है । विना इन्द्रिय समय क कोई भी मनुष्य अपन आश्रम के कर्तव्या को पूरा नहा कर सकता है । जिसन मन और इन्द्रियो का दमन कर लिया है उसम गुरुजना के प्रति आदर का भाव समस्त प्राणिया क प्रति दया उत्पन्न हा

२०—दमेन सदृश धम नाद्य लोकेषु शुभ्रम् ।

दमो हि परमो लोके प्रशस्त स धर्मिणाम् ॥१०

२१—दमस्तेजो वधयति पवित्र च दम परम् ।

विपाप्मा तेजसा युक्त पुरुषो विदते महत् ॥ ६

दमात् तस्य क्रियासिद्धिर्यथावदुपलभ्यते ।

दमो दान तथा यज्ञानधीता चातिवर्तते ॥ ८

गान्ति पव अ० १६०, श्लोक १० ८ ८

जानी है। सयमी मनुष्य की कही भी निदा नहीं होती है। उसके मन में कोई कामना नहीं होती है। वह छोटी वस्तुओं के लिए किसी के सामने हाथ नहीं पसारता है। वह तुच्छ विषय भोगों की अभिलाषा नहीं रखता है। वह दूसरों के दाप नहीं देयता है। उसका मन मदा धम के मन्वय में लगा रहता है। दम का दाप बताते हुए भीष्म जी ने युधिष्ठिर से कहा कि "दम अयान् सयम म एक ही दोष है, दूसरा नहीं। वह यह कि क्षमा शील हान के कारण उस लाग अममथ समझने लगते हैं। क्षमा से ही मनुष्य में सहिष्णुता आ जाता है। सयमी पुरुष को वन में जाने की आवश्यकता नहीं है। असयमी पुरुष को ही वन में जान की आवश्यकता रहती है किन्तु जिसका मन उचल है उनको वन में जान में भी क्या लाभ है। सयमी पुरुष जहाँ रहे वहीं उसके लिए वन और आश्रम है। २२ सयमी पुरुष घर में रह कर ही भाक्ष प्राप्त करता है। पान से इन्द्रिय सयम के लक्षण बताते हुए भीष्म जी ने कहा कि किसी दूसरे की वस्तु का लन की इच्छा न करना सत्य गम्भीरता और वीरता रखना, भय को त्याग देना मन के रोगों को शांत कर देना यह दम (मन और इन्द्रियों के सयम) का लक्षण है। इसकी प्राप्ति ज्ञान में होती है। २३ जिस मनुष्य का सच्चा पान हा जाना है वही सयमी बनता है और फिर इससे अनका सुख भोगता है। धृति के विषय में भीष्म जी ने इस प्रकार कहा कि 'सुख या दुःख प्राप्त होने पर मन में विकार न होना धृति है। जो अपनी उन्नति चाहता हो उस बुद्धिमान् पुरुष का मदा ही धृति का मेव न करना चाहिए। २४ धय मनुष्य

२२—एक एव दमे दोषो द्वितीये नोपपद्यते ।

यदेन क्षमया युक्तिमशक्त मयते जन ॥

शांतिपर्वा—अ० १६० श्लोक ३४, ३५, ३६

२३—दमो नायस्त्वृहा नित्य गाम्भीर्य धयमेव च ।

अभय रोगशमन ज्ञानेन तदवाप्यते ॥ १२

शांतिपर्व — अ० १६२, श्लोक १२

२४—धृतिर्नाम सुखे दुःखे यथा नाप्नोति विक्रियाम् ।

ता भजेत सदा प्राज्ञो य इच्छेद् भूतिमात्मन ॥

शांति पर्व—अ० १६२, श्लोक १६

का बहुत बड़ा गुण है। धयवात् मनुष्य ही इस ससार म अनेक बड़ो दुःखा को हँस हँस कर भेलता है और अत म सुख प्राप्त करता है। क्रोध मनुष्य का बहुत बड़ा शत्रु है। जो मनुष्य क्रोध को जीत लते हैं वे अनका सक्ठो स पार हो जाते हैं। इस ससार म क्रोध एक् एसा अवगुण है कि इसक् होने स उस मनुष्य क सब सहायक उसे छोड जात है और वह बिल्कुल अक्ला गूय की भाँति दुःख भोगता रहता है। इसीलिए पानी मनुष्य क्रोध पर विजय प्राप्त करके अपने जीवन को सफल बनाते है। जो मनुष्य उभडन वाल क्रोध को क्षमा द्वारा त्याग देता है, वही श्रेष्ठ पुरुष कहा जाता है। जो मनुष्य किसी पर क्रोध नहीं करता है वह सौ वर्षों तक प्रत्येक मास म बिना थकावट के निरन्तर यज्ञ करने वाले से भी श्रेष्ठ समझा जाता है। क्रोध न करने स जो फल मिलता है उसके विषय म द्रव्यानी स गुरुकाचार्य ने इस प्रकार कहा कि 'जो उत्पन्न हुए क्रोध को अक्रोध (क्षमाभाव) के द्वारा मन से निवाल देता है समझ लो, उसन सम्पूर्ण जगत् का जीत लिया। जो क्रोध को रोक लेता है निःदा सह लता है और दूसरे के सताने पर भी दुःखी नहीं होता वही सब पुरुषार्थों का सुदृढ पात्र है।' २५ शमीक ने अपने पुत्र को क्रोध न करने का उपदेश दिया उहाने पुत्र से कहा कि क्रोध प्रयत्नशील साधका के अत्यंत दुःख से उपाजित धम का नाश कर देता है। २६ यह क्रोध धम का नाशक होता है, इसलिए श्रेष्ठ मनुष्या को क्रोध मिटाकर उत्तम आचरण करना चाहिए। क्रोध को जीतकर ही मनुष्य स्वय सुखी रहता है तथा अय सबको सुख देता है।

२५—य समुत्पतिता क्रोधमक्रोधेन निरस्यति ।

देवयानि विजानीहि त न सब मिद जितम् ॥३॥

य सधारयते मयु योऽतिवादास्तितिक्षते ।

यश्च तप्तो न तपति दृष्ट्वा सोऽयस्य भाजनम ॥

आदि पर्व - अध्याय ७६, श्लोक ३ ५

२६—क्रोधो हि धम हरति यतीना दुःखसचित्तम् ॥

आदि पर्व - अ० ४२, श्लोक ७३

३--क्षमा की महिमा —

ससार मे सब धर्मों म क्षमा सबसे श्रेष्ठ गुण है । जो मनुष्य अपमान स तिरस्कार अथवा गाली दन या डाँट बताने से कभी क्रोध नहीं करता वरन् क्षमाशील बना रहता है, वही मनुष्य सब मनुष्यों मे श्रेष्ठ कहा जाता है । क्षमाशील मनुष्य को ही साधु पुरुष कहते हैं । क्षमाशील मनुष्य को ही स्वर्ग यश और मोक्ष की प्राप्ति हाती है । भगवान् श्री कृष्ण ने क्षमा के विषय मे युधिष्ठिर से इस प्रकार कहा कि— क्षमा ही यश दान, यत्न और मनोनिग्रह है । अहिंसा धम और इन्द्रिया का सयम क्षमा के ही स्वरूप हैं । क्षमा ही दया और क्षमा ही यत्न है । क्षमा से ही हमारा जगत् टिका हुआ है अत जो ब्राह्मण क्षमावान् है, वह देवता बहलाता है वही सबसे श्रेष्ठ है ।^{२०} विदुर जी ने क्षमा की श्रेष्ठता बताते हुए घृतराष्ट्र से कहा कि—‘ तात ! समय पुरुष क लिए सब जगह और सब समय म क्षमा के समान हितकारक और अत्यन्त शीतम्पन्न बनाने वाला उपाय दूसरा नहीं माना गया है । जो शक्तिहीन है वह ता सब पर क्षमा करे ही, जो शक्तिमान है, वह भी धम के लिए क्षमा कर तथा जिसकी दृष्टि म अथ और अनथ दोनो समान हैं उसके लिए तो क्षमा सदा ही हितकारिणी होती है ।’^{२०} धम (मनोनिग्रह) ही क्षमाशील साधका को सिद्धि की प्राप्ति कराने वाला है । जिनम क्षमा है, उही के लिए यह लोक और परलोक दोना कल्याणकारक हैं । ‘क्षमाशील मनुष्य का कभी किसी को अपमान नहीं करना चाहिए । शक्तिशाली पुरुष सदा क्षमा करता है किन्तु

२७—क्षमा यश क्षमा दान क्षमा यज्ञ क्षमा दम ।

क्षमाहिंसा क्षमा धम क्षमा चेन्द्रियनिग्रह ॥

क्षमा दया क्षमा यज्ञ क्षमयव घृत जगत् ।

क्षमावान् ब्राह्मणो देव क्षमावान् ब्राह्मणो धर ॥

आश्वमेधिक पर्व—अध्याय ६२ में से

२८—नात श्रीमत्सार किञ्चिदभ्यत् पथ्यतम मतम् ।

प्रभविष्णोयथा तात क्षमा सबत्र सबदा ॥५८

क्षमेदगक्त सबस्य शक्तिमान् धमकारणात् ।

अर्पतिषी समी यस्य तस्य नित्य क्षमा हिता ॥५९

उद्योगपर्व—अध्याय ३६, श्लो० ५८-५९

गतिगीन मनुष्य क्रोध करता है ।^{२९} गतिगानी वा मन गति से पूछा होता है, इस कारण उसे गिमी को शक्ति दिलाने की इच्छा नहीं होती है । उसका गति का प्रभुत्व चारा आर स्वयं हा फला रहता है इस कारण वह क्षमागीत होता है । क्षमा वं लिए उपदेश दत्त हुए गामीने अपन पुत्र म कहा कि— तुम सग इन्द्रिया को बग म रखते हुए क्षमागील बनो क्षमा से ही ब्रह्माजा वं निरखवनीं तोना म जा सकोग ।^{३०} क्षमा का श्रेष्ठता बतान हुए यजुश्चिन् न द्रौण्यी से कहा कि “सुगोमन । पुण्य को मभी आपत्तिया म क्षमा भाव रखना चाहिए । क्षमागील पुरुष से हा समस्त प्राणिया का जीवन बनाया गया है । क्षमा ब्रह्म है, क्षमा सत्य है, क्षमा भूत है, क्षमा भविष्य है क्षमा तप है और क्षमा गौध है । क्षमा ने ही सम्पूर्ण जगत् का धारण कर रक्खा है । जो मनुष्य यह जानता है कि क्षमा धर्म है, क्षमा यत्न है, क्षमा वेद है और क्षमा शास्त्र है, वह मय कुछ क्षमा करत वं योग्य हा जाता है । क्षमागील मनुष्य मनवेत्ता, ब्रह्मवत्ता और तपस्वी पुरुषा से भी ऊँच लोक प्राप्त करत है । क्रोधी मनुष्य अपन्न हाता है । क्षमावान् मनुष्य विद्वान् होत है । जत्र मनुष्य सब कुछ सहन कर लता है, तत्र वह ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है । जिन मनुष्यो का क्रोध क्षमाभाव से दबा रहता है, उह सर्वोत्तम लोक प्राप्त होने है । अत क्षमा सबसे उत्कृष्ट मानी गई है ।^{३१} यन् मनुष्यो म पृथ्वा वं समान शमाशांन पुरुष न हा ता मानवा म कथा सधि हा ही नहा सकती कपोति

२६—क्षमावत्त च देवेन्द्र नावमयेत बुद्धिमान् ।

गतस्तु क्षमने नित्यसशक्त ऋध्यते नर ॥

आदिपर्वा—अध्या० ८७—श्लो० ५६ वं मध्य का

३०—तस्माच्चरेया सतत क्षमागीनो जितेन्द्रिय ।

क्षमया प्राप्स्यते लोकान् ब्रह्मण समनतरान् ॥१०

आदिपर्वा—अध्याय ४२, श्लो० १०

३१—क्षमत्य पुरवेणेह सर्वापसु सुगोमने ।

क्षमावतो हि भूताना ज म चक प्रकीर्तितम् ॥३२

क्षमा ब्रह्म क्षमा सत्य क्षमा भूत च भावि च ।

क्षमा तप क्षमा गौध नमयेद धृत जगत् ॥३७

वनपर्वा—अध्याय २८ श्लो० ३२, ३७ ३६, ३८, ३४, ४२, ४४, २५, ३०

भगडे की जड़ता क्रोध ही है। क्रोध प्रजापति व नाग और ज्वनति का कारण है, यदि राजा क्राधी हो जाय तो सारी प्रजाप्रा का गीत्र ही नाग हो जाय। क्षमा की श्रेष्ठता बताते हुए युधिष्ठिर ने कहा कि "क्षमा तेजस्वी पुरुषा का तेज है, क्षमा तपस्विना का ब्रह्म है, क्षमा सत्यवादी पुरुषा का सत्य है। क्षमा यत्न है और क्षमा ही गम (मनोनिग्रह) है। क्षमावाना के लिए ही यह लोक है। क्षमावाना के लिए ही परलोक है। क्षमागील पुरुष इस जगत म सम्मान और परलोक म उत्तम गति प्राप्त है।"^{३२} क्षमा सासारिक मनुष्य का सबसे बड़ा मित्र है।

किन्तु सबन अति की क्षमा भी दाप हो जाती है। क्षमा म जा दाप आ जात है उनक विषय म प्रह्लाद ने अपन पौत्र बलि से इस प्रकार कहा कि 'तात ! न तो तेज ही मदा श्रेष्ठ है और न क्षमा ही। जो सदा क्षमा ही करता है, उस आक दोष प्राप्त होने है।^{३३} अधिक क्षमागीन व भृत्यगण भी उसका अपमान करने लगते हैं। इस सत्कार म सबका द्वारा अपमान तो मृत्यु मे भा अधिक निन्दित है। क्षमागील को उसक सबक, पुत्र, भृत्य तथा उदासीनवृत्ति व लाग, यहाँ तक कि उसकी स्त्री भी बटुवचन सुनाया करती है। क्षमागील पुरुषो को सदा य तथा और भी बहुत-से दाप प्राप्त होते हैं। इसलिए क्षमा श्रेष्ठ गुण माने हुए भी कहा नहीं दोष का कारण भा हो जाता है। अधिकारी क लिए क्षमा दोष बन जाती है तथा विद्वाना क लिए क्षमा श्रेष्ठ गुण हो जाती है।

३२—क्षमा तेजस्विना तेज क्षमा ब्रह्म तपस्विनाम् ।

क्षमा सत्य सत्यवता क्षमा यत्न क्षमा गम ॥४०

क्षमावतामया लोक परश्चव क्षमावताम् ।

इह सम्मानमृच्छन्ति परत्र च शुभा गतिम् ॥४३

वनपर्व—अध्याय २६, श्लो० ४० ४३

३३—न श्रेय सतत तेजो न नित्य श्रेयसी क्षमा ॥५३

यो नित्य क्षमते तात् बहून् दोषान् स विदति ॥५३

वनपर्व—अध्याय २८, श्लो० ५३, ६३

४—सत्य से बढ़कर तप नहीं है—

सगार म सत्य से बढ़ कर कोई वस्तु नहीं है । सत्य बाने बाना मनुष्य ही मयका विद्यागपाय बनता है । जो असत्य बोलता है सोग उमका आर नहा करत है तथा उमकी किसी बात पर विश्वास भी नहीं करने है । सत्य बोलने बाल मनुष्य के हृदय म भगवान का वास होता है ।

सत्य की श्रेष्ठता बताते हुए भीष्मजी न युधिष्ठिर स कहा कि भारत! सत्य बोलना अच्छा है । सत्य से बढ़कर कोई धम नहीं है । ३४ क्रोध म भरे हुए अजुन ने जय युधिष्ठिर को मारन क लिए स्वर्ग हाय म न ची थी तब श्रीकृष्ण ने पूछा था कि तुम क्या करन जा रहे हो । जय अजुन न अपना रहस्य बताया तो श्रीकृष्ण ने उह धिक्कारा । तब अजुन न उनसे उचित करने योग्य काम क लिए आता मागी । तब श्रीकृष्ण न अजुन का धम का उपदेश इस प्रकार लिया कि सत्य बोलना उत्तम है । सत्य से बढ़कर दूसरा कुछ नहीं है परंतु यह समझ लो कि सत्युत्पयो द्वारा आचरण म लामे हुए सत्य के यथाथ स्वरूप का ज्ञान अत्यंत कठिन होता है । ३५ श्रीकृष्ण ने कहा कि 'जहा मिथ्या बोलने का परिणाम सत्य बोलने के समान मगलकारक हा अथवा जहाँ सत्य बोलने का परिणाम अमय भाषण के समान अनिष्टकारा हो, वहाँ सत्य नहीं बोलना चाहिए । वहाँ असत्य बोलना हो उचित होगा । विवाह काल म, स्त्रीप्रसंग के समय, किसी क प्राणा पर सवट आन पर, सवस्त्र का अपहरण होते समय तथा ब्राह्मण की भलाई क लिए आवश्यकता हो गो

३४—सत्यस्य वचन साधु न सत्याद् विद्यते परम् ।

शांतिपर्व—अध्याय १०६, श्लो० ३३

३५—सत्यस्य वचन साधु न सत्याद् विद्यते परम् ।

सत्त्वेर्नैव सुतृप्त्यै परम सत्यमनुष्ठितम् ॥३१

करणपर्व—अध्याय ६६, श्लो० ३१

अनस्य बोल दें । इन पांच अवसरों पर झूठ बोलने से पाप नहीं होता ।^{३६} मृत्यु के विषय में बनाने हुए भीष्म जी ने कहा कि "सत्पुरुषों में मद्रा सत्यम् धर्म का ही पालन हुआ है । सत्य ही सनातन धर्म है । सत्य को सदा सिर झुंझाना चाहिए क्योंकि सत्य ही जीव की परम गति है । सत्य ही धर्म, तप और याग है, सत्य ही मनाता ब्रह्म है, सत्य को ही परम यज्ञ कहा गया है तथा सब कुछ सत्य पर ही टिका हुआ है ।"^{३७} मृत्यु से अनेक धर्म प्राप्त होत हैं । दान का दक्षिणाओं सहित यज्ञ का त्रिविध जग्निआम हवन का वेदा के स्वाध्याय का तथा अय जो धर्म का निगम करने वाले शास्त्र हैं उनके भी अध्ययन का फल मनुष्य मृत्यु से ही प्राप्त कर लेता है । इसका अभिप्राय यही है कि यदि मनुष्य पर और कुछ पुण्य काय न हो सकें और वह केवल मृत्यु ही बोलता हो तो उसे मत्र पुण्या का फल मिल जाता है । सत्य के लक्षण बताते हुए भीष्म जी ने कहा कि नित्य एकरस अविनाशी और अविचारी होना ही सत्य का लक्षण है । समस्त धर्मों के अनुकूल कर्त्तव्यपालनरूप याग के द्वारा इस मृत्यु की प्राप्ति होती है ।^{३८}

३६— भवेत् सत्यमवक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत् ।

यत्रानृतं भवेत् सत्या सत्या चाप्यनृतं भवेत् ॥

विवाहकाले रतिसम्प्रयोगे, प्राणात्यये सबधनापहारै ।

विप्रस्य चार्ये ह्यनृतं वदेत्, पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥

कण्णपर्व—अध्याय ६६, श्लो० ३२, ३३

३७—सत्यं सत्सु सदा धर्मं सत्यं धर्मं सनातनम् ।

सत्यमेव नमस्येत सत्यं हि परमा गतिः ॥४

सत्यं धर्मस्तपो योगं सत्यं ब्रह्म सनातनम् ।

सत्यं यत् परं प्रोक्तं सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥५

गातिपर्व—अध्याय १६२ श्लो० ४, ५

३८—सत्यं नामाव्ययं नित्यमविकारि तथैव च ।

सर्वधर्माविरुद्धेन योगेन तदवाप्यते ॥१०

गातिपर्व—अध्याय १६२ श्लो० १०

सत्य व तरह स्वरूप भीष्म जी ने इस प्रकार बताया कि 'राजद्र' सत्य, समता, दम, मत्सरता का अभाव, क्षमा, तथा तितित्वा (सहनशीलता) अनुग्रहा, त्याग, परमात्मा का ध्यान आपना (श्रेष्ठ आचरण), निरन्तर स्थिर रहन वाली मुनि (धर्म) तथा आत्म्या-य तरह सत्य व ही स्वरूप है । य पृथक् पृथक् तरह रूपों में बताया हुए धर्म एवमात्र सत्य का ही लक्षित कराने वाले हैं । य सत्य का ही आश्रय नन और उगी की वृद्धि एव पुष्टि करने हैं । सत्य व गुणा का सामा नहीं बताई जा सकती । अंतर, दवता तथा श्राद्धाण भा सत्य का प्रगसा करन हैं । सत्य सत्य का पालन करन स हा मनुष्य मत्सरता स रहिन हो गवता है । सत्यवाणा पुरष को ही उत्तम रीति स क्षमाभाव का प्राप्ति होती है ।^{३५} सत्य का श्रेष्ठता बतात हुए भीष्म जी न कहा कि सत्य स बढकर कोई धर्म नहा और नूट स बढकर कोई पातक नही है । सत्य ही धर्म की आधारिणा है अन सत्य का लोप न कर ।^{३६} सत्य के बिना कोई भी मनुष्य सामन आन हुए मृत्यु की सना का वभी सामना नहा कर सकता, इसलिए असत्य को त्याग दना चाहिए । क्योंकि अमृतद्वय सत्य म ही स्थित है ।^{३७} सत्य की महिमा बनान हुए गृधु जो न भरद्वाज मुनि से कहा कि असत्य अधकार का रूप है । वह मनुष्य को नीच गिराता है । अज्ञानाधकार से घिरे हुए मनुष्य तमोगुण स

३८—सत्यं च समता च च दमरश्च न सगय ।

अमात्सर्ग क्षमा च ह्रींस्तितित्वाभानसूयता ॥८

त्यागो ध्यानमथार्थं च धृतिश्च सनत स्थिरा ।

अहिंसा च राजे द्र सत्याकारास्त्रयोदश ॥९

शांतिपथ—अध्याय १६२, श्लो० ८, ८ २२ २३ १३, १४

४०—नास्ति सत्यात् परो धर्मो नानृणात् पातकं परम् ।

स्थितिर्हि सत्यं धर्मस्य तस्मात् सत्यं न लोपयेत् ॥२४

शांतिपथ—अध्याय १६२ श्लो० २४

४१—न मृत्यु सेनामायातौ जातु कश्चित् प्रबाधते ।

ऋते सत्यमसत् त्याज्यं मये ह्यमृतमाधितम् ॥

शांतिपथ—अध्या० १८५, श्लो० २८

सुख-दुःख है, व मानो सत्य और असत्य ही हैं। जहा सत्य है वही प्रकाश है और जो प्रकाश है वही सुख है तथा जहा असत्य है वही जन्म है और अन्धकारमय है तथा वही दुःख है—ऐसा भृगुजी ने भरद्वाज मुनि से कहा। सत्य परलोक म जिस प्रकार जीवो का उद्धार करता है उस प्रकार यज्ञ, वेत्ताध्ययन, दान और नियम भी नहीं तार सकते। जो झूठ बोलन वाला है, उस मनुष्य को इस लोक या परलोक म सुख तो मिलता ही नहीं है वह अपन पूजाओ को भी नहीं तार सकता और न भविष्य म होने वाली सन्तति का ही उद्धार कर सकता है। सत्य का महत्व सब तपस्याओं से बढ़कर है इस प्रकार सत्य का महिमा बतात हुए ब्राह्मण ने राजा से कहा कि सत्य ही एकमात्र अविनाशा ब्रह्म है। सत्य ही एतमात्र अन्ध तप है सत्य ही एकमात्र अविनाशी यज्ञ है सत्य एकमात्र नाश रहित सनातन वेद है। वेदा मे सत्य ही जागता है। सब म श्रेष्ठफल सत्य का ही माना गया है। धम और इन्द्रिय सयम का सिद्धि भी सत्य से ही होती है। सत्य ही वेद और वदाग है। सत्य ही विद्या तथा विधि है। सत्य ही व्रतचर्या तथा सत्य ही आचार है। * * अत मनुष्य को स यव्रत का आचरण करना चाहिए। सत्यरूपी व्रत के पालन मे तत्पर रहना चाहिए। वह सदा सत्य की कामना करनी चाहिए। सबक प्रति समान भाव रखना चाहिए। सत्य बोलना शुभ काम है। सत्य से बढ़कर दूसरा कोई वाय नहीं है। सत्य ने ही सबका धारण कर रक्खा है और सत्य म ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। सत्य की महिमा बतात हुए भीष्म जी न कहा कि क्रूरस्वभाव वा न पापी भी सत्य का आश्रय लकर सत्य की दुहाई दकर अपने अपने कर्मों म प्रवृत्त होते है। * *

४४—सत्यमेकाक्षर ब्रह्म सत्यमेकाक्षर तप ।

सत्यमेकाक्षरो यज्ञ सत्यमेकाक्षर धृतम् ॥६४

सत्य वेदेषु जागति फल स ये पर स्मृतम् ।

सयाद् धर्मो दमश्चव सर्वे सत्ये प्रतिष्ठितम् ॥६५

सत्य वेदास्तयाङ्गानि सत्य विद्यास्तया विधि ।

व्रतचर्या तथा सत्यमोज्जार सत्यमेव च ॥६६

गान्तिपथ—अध्याय १६६, श्लो० ६४, ६५, ६६, ६७ ६१

४५—अपि पापहतो रीण सत्य वृत्वा पृथक् पृथक् ।

अद्रोहमविमवा प्रवत ते तदाश्रया ॥११

गान्तिपथ—अध्याय २४६ श्लो० ११

जहा सत्य है, वही धम है। सत्य से ही सबकी वृद्धि होती है। इसलिए असत्यपूर्ण वताव नहीं करना चाहिए। सत्र धर्मों में सत्य ही श्रेष्ठ है, इस विषय में ब्राह्मण ने राजा से कहा कि सत्य प्राणिया का जन्म देने वाला (पिता) है सत्य ही सन्तति है, सत्य से ही वायु चलती है और सत्य से ही मूय तपता है। सत्य से ही आग जलती है तथा सत्य पर ही स्वर्गलोक प्रतिष्ठित है। यज्ञ तप, वद, स्ताभ, मन्त्र और सरस्वती— सब सत्य के ही स्वरूप हैं।^{४६} जिस प्रकार माता के समान कोई भुक्त नहीं है और ब्राह्मणों के समान लोक में कल्याण करने वाला दूसरा नहीं है उसी प्रकार सत्य से बढ़कर कोई धम नहीं है। द्रौपदी ने कहा कि वह मभा नहीं है जहाँ वृद्धपुरुष नहीं हैं, वे वृद्ध नहीं हैं जो धम की बातें बतावे, वह धम नहीं है जिसमें मृत्यु न हो और वह सत्य नहीं है जो धन से युक्त हो।^{४७} जिस प्रकार धान से विद्या सुरक्षित रहती है स्वच्छता से रूप की रक्षा होती है तथा सदाचार से कुल की रक्षा होती है उसी प्रकार सत्य से धम की रक्षा होती है।^{४८} मनु मुञ्जातजी ने घृतराष्ट्र से सत्य के विषय में इस प्रकार कहा कि राजेद्र! तुम मृत्युस्वरूप हाँ जाओ, सत्य में ही सम्पूर्ण लोक प्रतिष्ठित है। वे धम त्याग

४६—प्राणिनां जनन सत्य सत्य सततिरेव च ।

सत्येन वायुरभ्येति सत्येन तपत रवि ॥६७

सत्येन चाग्निबहति स्वयं सत्यप्रतिष्ठित ।

सत्यं यज्ञस्तपो वेदा स्तोभा मन्त्रा सरस्वती ॥६८

शांतिपर्व—अध्याय १६६, श्लो० ६७, ६८

४७—न सा सभा यत्र न सति वृद्धा

न ते वृद्धा यो न वदति धमम् ।

नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति

न तत् सत्यं यच्छलेनानुविद्धम् ॥

सभापर्व—अध्या० ६७, श्लो० १२ से आगे

४८—सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रम्यते ।

मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते ॥

उद्योगपर्व—अध्या० ३४, श्लो० ३६

और अप्रमाद आदि गुण भी सत्यस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति कराने वाले हैं, सत्य म हा अमृत की प्रतिष्ठा है ।" ४९ सत्य श्रेष्ठपुरुषो वा व्रत है । वेद का सार भी सी सत्य ही है । सत्य के विषय म धम-याध ने माकण्डेय जी से इस प्रकार कहा कि ' जो शिष्ट पुरुष है, वे सदा धम के माग पर ही चलते हैं और मत्य धम को ही अपना परम आश्रय मानते ।' ५० सत्य बोलने से आयु का बढना आवश्यक ह । सत्य बोलन बाल अजु न ने जब गपथ खाकर शस्त्र छूकर प्रतिज्ञा की कि मैं धमराज युधिष्ठिर को मानूंगा तब श्रीकृष्ण न कहा कि किसी के जावन की रक्षा के समय असत्य भी श्रेष्ठ होता है । इसलिए युधिष्ठिर की जीवन रक्षा के समय तुम्हारी गपथ आदि सब बातें असत्य न होकर पुण्यदायक होगी । श्रीकृष्ण के समझान पर अजु न मान गय और उ होने युधिष्ठिर से अपने वचना के लिए क्षमा माग ली । सत्य की महिमा बताते हुए गकृतला न दुष्यत से कहा कि ' राजन् ! मत्य परब्रह्म परमात्मा का स्वरूप है । मत्य सजसे बडा नियम है । आप अपनी सत्य प्रतिज्ञा को न छोडिये । मत्य आपका जीवनसङ्गी हो । सी कुँए खोलवान की अपेक्षा एक बावडी बन घाना उत्तम हैं ; सी बावडियो की अपेक्षा एक यज्ञ कर लेना उत्तम है मी यन करने की अपेक्षा एक पुत्र को जम दना उत्तम है और सी पुत्रा की अपेक्षा भी सत्य का पालन श्रेष्ठ है ।' ५१ सत्य के समान कोई धम नहीं है । मत्य म

४९—सत्यात्मा भव राजे इ सत्ये लोका प्रतिष्ठिता ।

तास्तु सत्यमुत्थानाहु सा ये ह्यमृतमाहितम् ॥३७

उद्योग पर्वा—अध्याय ४३, श्लोक ३७

५०—ये तु शिष्टा मुनियता धृतित्यागपरायणा ।

धमप-यानमाहृदा सधमपरायणा ॥६६

वनपर्व-अ० २०७ श्लोक ६६

५१ - राजन् सत्य पर ब्रह्म सत्य च समय पर ।

मा श्याशो समय राजन् सत्य सगनमस्तु त ॥१०६

धर कूपगताद् वापी धर वापीगतान् व्रतु ।

धर व्रतुगतान् पुत्र सत्य पुत्रगताद् वरम् ॥१०२

आदि पर्व-अ० ७४, श्लोक १०६, १०२

उत्तम बुद्ध भी नहीं है और भूत से बढ़कर तीव्रतर पाप इस जगत् में दूसरा कोई नहीं है। वशम्पायन ने जनमजय से कहा कि गगानन्दन भीष्म ने श्रीकृष्ण के कहन पर पाण्डवा तथा धृतराष्ट्र आदि सभी मुहूर्ता से कहा कि 'तुम्हें सदा सत्य धर्म के पालन का प्रयत्न करते रहना चाहिए, क्योंकि सत्य ही सबसे बड़ा बल है।' १२ सत्य की श्रेष्ठता बताते हुए शकुन्तला ने दुष्यन्त से कहा कि 'एक हजार अश्वमेध यज्ञ एक ओर तथा सत्य भाषण का पुण्य दूसरी ओर यदि तराजू पर दानों को रक्खा जाय तो हजार अश्वमेध यज्ञों की अपेक्षा सत्य का फल ही भारी होता है।' १३ सत्य अथवा सत्य पुण्यवान् कार्यों से तथा धार्मिक कृत्यों से भी श्रेष्ठ बताया गया है। सत्य की श्रेष्ठता बताते हुए भीष्मजी ने युधिष्ठिर से कहा कि 'सम्पूर्ण वेदों को धारण करना और समस्त तीर्थों में स्नान करना—इन सत्कर्मों का पुण्य भी सत्यवादी पुरुष को पुण्य से बराबर ही हो सकता है अर्थात् इनमें सत्य श्रेष्ठ है।' १४ सत्यमुच ही सत्य में बड़ा गुण तथा बड़ा बल है। जिस मनुष्य में सत्य है उसका प्रताप बहुत फल जाता है। सत्य के प्रताप से मनुष्य कीर्ति प्राप्त करता है और अन्त में पुण्य कर्मा के फल से स्वर्ग को प्राप्त करता है। सत्य मनुष्या का सदा सत्य बोलना चाहिए।

५—सत्य का फल—

समाप्त पसा माया जाल है कि इसके मोह में फसकर मनुष्य कठिनाई

१२—सत्येषु यत्कृतं च सत्यं हि परमं बलम् ॥४६

अनुशासन पत्र—अध्याय १६७, श्लोक ४६

१३—अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् ।

अश्वमेध सहस्राङ्घ्रिं सत्यमेव विशिष्यते ॥१०३

आदिपत्र—अ० ७४, श्लोक १०३

१४—धारणं सत्यवेदानां सर्वतीर्थान्वगाहनम् ।

सत्यं च ध्रुवतो नित्यं समं वा स्यान्न वा समम् ॥२८

अनुशासन पत्र—अ० ७४, श्लोक २८

से ही तप कर पाता है। गृहस्थ पुत्र्य को स्त्री, पुत्र, धन आदि वस्तुओं में इतना मोह हो जाता है कि वह इन्हीं के मोह के कारण कुछ भी धम नहीं कर पाता है। यदि किसी मनुष्य के पास धन का अभाव हो जाता है तो वह उसके अहंकार से बहुत पीड़ित हो जाता है और ईश्वर तन को मानन में उमका अहंकार धीण होता है। यदि कोई धन के अभाव के कारण बहुत दीन रहता है तो उसे दिन रात धन की ही चिन्ता लगी रहती है और वह चिन्ता के कारण भगवान् का दिनरात याद करता है। इस प्रकार म भगवान् का चिन्तन या सुमिरन दुःख में ही होता है, सुख में सब प्राण भगवान् का भूल जाते हैं। ससारी जीवों को तो भगवान् का ध्यान तब आता है जब उनके स्नेह के आधारभूत स्त्री पुत्र आदिका नाश हो जाता है धन चना जाता है और रोग तथा चिन्ता से बड़ा उठाना पड़ता है तभी उन्हें बराग्य होता है और फिर केवल भगवान् के सहारे के उनका लिए ससार में कुछ नहीं रहता। बराग्य से मनुष्य को आत्मतत्त्व की जिज्ञासा होती है। जिज्ञासा से शास्त्रों के स्वाध्याय में मन लगता है तथा शास्त्रों के अर्थ और भाव के ज्ञान से वह तप को ही कर्याण का साधन समझता है। ससार में ऐसा विवेकी मनुष्य दुर्लभ है जो स्त्री, पुत्र आदि प्रियजनो से मिलने वाले सुख के न रहने पर तप में प्रवृत्त होने का ही निश्चय करता है। तपस्या से मनुष्य को दूसरे जन्म में श्रेष्ठ घरों में जन्म प्राप्त होता है। ससार में जो राजे महाराजे तथा अत्याय गृहस्थ महान् कुला में उत्पन्न देखे जाते हैं वह सब उनकी तपस्या का ही फल है। रश्मी बस्त्र मुदर आभूषण वाहन आमन और उत्तम खान पान आदि सब कुछ तपस्या का ही फल है। भीमसेन ने तपस्या का कामना से प्रेरित बताने हुए मुनिशिरस कहा कि किसी न किसी कामना से संयुक्त होकर ही ऋषिलोग तपस्या में मन लगाते हैं। फल मूल और पत्ते चबाकर रहते हैं वायु पीकर मन और इन्द्रियो का संयम करते हैं। कामना से ही लाग वेद उपवेदा का स्वाध्याय करते तथा उसमें पारंगत विद्वान् हो जाते हैं। कामना से ही यज्ञकर्म श्राद्धकर्म दान और प्रतिग्रह में लोगों की प्रवृत्ति होती है।^{१५१}

५५—कामेन युक्ता अप्यस्तपस्येव समाहिता ।

पलाशफलमूलादा वायुभक्षा मुसयता ॥३०

वेदोपवेदेष्वपरे युक्ता स्वाध्यायपारगा ।

श्राद्धयज्ञक्रियाया च तथा दानप्रतिग्रहे ॥३१

शांति पर्व-अ० १६७, श्लोक ३०, ३१

कामना प्रत्येक मनुष्यों की अलग-अलग होती है। कोई ईश्वर प्राप्ति के लिए तप करता है, तो कोई धन व भव प्राप्त करने के लिए तपस्या करता है तो कोई इन्द्रपद प्राप्त करने के लिए घोर तपस्या करता है। इस प्रकार तपस्याओं के करने के भिन्न भिन्न कारण होते हैं। पराशर जी ने कहा कि 'तपस्या मे सभी का अधिकार है। जितेन्द्रिय और मनोनिग्रह-सम्पन्न हीन बण के लिए भी तप का विधान है क्योंकि तप पुरुष को स्वर्ग की राह पर लाने वाला है।' १६ पूर्वकाल मे शक्ति-प्राप्ति प्रजापति न तप म स्थित होकर और कभी कभी ब्राह्मणपरायण व्रत म स्थिर होकर ससार की रचना की थी। सम्पूर्ण स्वर्गवासी देवता आदि सबके सब तपस्या से ही सिद्धि को प्राप्त हुए हैं। पुत्रों ने धनाध्यक्ष का पद भी बड़ी भारी तपस्या करके प्राप्त किया था। जगत् का मूल कारण बताते हुए भीष्मजी ने मुद्गिष्ठिर से कहा कि 'राजन् ! इस सम्पूर्ण जगत् का मूल कारण तप ही है एसा विद्वान् पुरुष कहते हैं। जिस मूल ने तपस्या नहीं की है उस अपन गुण कर्मों का फल नहीं मिलता। भगवान् प्रजापति न तप से ही इस समस्त मसार की सृष्टि की है तथा ऋषियों न तप से ही वेदों का ज्ञान प्राप्त किया है।' १७ जोषध आरोग्य आदि की प्राप्ति तथा नाना प्रकार की क्रियाएँ तपस्या से ही सिद्ध हानी हैं क्योंकि प्रत्येक साधन की जड़ तपस्या है। ससार म जो कुछ भी दुर्लभ वस्तु हो वह सब तपस्या से सुलभ हो सकती है। ऋषिया ने तपस्या से ही अग्निमा आदि जष्टविध एदवय को प्राप्त किया है। तप ही मनुष्य के बल्याण का मुख्य साधन है। तप का मूल गम और दम है। जो मनुष्य तपस्यारूप धर्म से सम्युक्त हो

१६—तप सर्गित तात हीनस्यापि विधीयते ।

जितेन्द्रियस्य दानस्य स्वर्गभागप्रवर्तकम् ॥६४

शांति पर्व-अध्याय २६५, श्लोक १४

१७—समित् तपोमूल कव्य परिचलते ।

न ह्यतस्तपसा मूढ क्रियाफलमवाप्नुते ॥१

प्रजापतिरिध सर्ग तपमवासृजत् प्रभु ।

तयव वेदानृपस्तपसा प्रतिवेदिरे ॥२

शांतिपर्व-अध्याय १६१, श्लोक १, २

पूणतया समय का पालन करत हुए सत्ता तन म ही तत्पर रहता है, जगती सत्र कामनाय पूण हो जाता है । तप की महिमा बताने हुए व्यास जी ने अपन पुत्र धृक्देव से कहा कि तपस्या से मनुष्य उस ब्रह्मभाव का प्राप्त कर लता है जिसम स्थित होकर वह मम्पूण जगत् की मृष्टि करता है अत ब्रह्मभाव को प्राप्त व्यक्ति समस्त प्राणियों का प्रभु हो जाता है । ५८ तप सब प्रकार से निर्णय होता है । इसम भागवासनारूप दोष नहीं रहता । इसलिए तप विगुद्ध कहा जाता है । इस लोक म जो तपस्या (सकामभाव से) की जाता है उसका फल परलोक म भागा जाता है परंतु जो ब्रह्मोपासन इस लोक म निष्कामभाव से गुरतर तपस्या करत है व इसी लोक म तत्त्वगान रूप फल प्राप्त करते हैं अर्थात् सासारिक बंधना से मुक्त हो जात हैं । तपस्या के विषय म बतात हुए सनत्मुजातजी ने धृतराष्ट्र से कहा कि 'तपस्या ही सारे जगत् का मूल है, वेदवेत्ता विद्वान् इस (निष्काम) तप से ही परम अमृत मोक्ष का प्राप्त हात है ।' ५९ कामनाया के लिए जो तपस्या करते हैं उनकी इच्छाय यही पूण हो जाती है और जिनकी कोई कामनायें नहीं हाती है ववल ईश्व रोपामना ही उनका लक्ष्य होता है तो उन लोगो की मोक्ष हो जाती है । तपस्या क्या है इस विषय मे व्यास जी ने अपने पुन से कहा कि 'वेद का सार है सत्य वचन, सत्य का सार है इन्द्रियों का समय समय का सार है दान और दान का सार है तपस्या । तपस्या का सार है त्याग ।' ६० अपन धम

५८—तपसा तदवाप्नोति तद् भूत्वा सृजते जगत् ।

तद् भूतश्च तत स भूताना भवति प्रभु ॥१०

शांतिपर्व-अध्याय २३, श्लोक १०

५९—तपसा वेदविद्वांस पर त्वमृतमाप्नुयु ॥१३

उद्योग पर्व-अध्याय ४३, श्लोक १३

६०—वेदस्योपनिषत् सत्य सत्यस्योपनिषद् दम ।

दमस्योपनिषद् दान दानस्योपनिषत् तप ॥११

तपसोपनिषत् त्याग ॥ ११३

शांतिपर्व-अध्याय २५१, श्लोक ११, ११३

म तत्पर रहना ही तप है । शरीर को सुखा देना ही तपस्या नहीं है, इस विषय में भीष्म जी ने युधिष्ठिर से कहा कि “किसी भी प्राणी की हिंसा न करना, सत्य बोलना, क्रूरता को त्याग देना मन और इन्द्रियों को सधम में तथा सबके प्रति दयाभाव बनाय रखना—इन्हीं को धीरपुरुषों ने तप मना है । शरीर को सुखाना ही तप नहीं है ।”^{६१} केवल गारीरिक तपस्या से कुछ नहीं होता है जब तक मनुष्य मन और वचन से भी सबके प्रति सद्भाव रखे । इसलिए सब मनुष्यों को श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा तप का धर्म प्राप्त करना चाहिए । मुनि और उपसुन्द नामक दो महान् दत्ताराज तीनों लोका पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से विध्य पर्वत पर कठोर तपस्या करने लगे । व्यासजी ने कहा कि ‘उन दत्तों की तपस्या के प्रभाव में दीघकाल तक सतप्त होने के कारण विध्य पर्वत घुआ छोड़ने लगा, यह एक अद्भुत सी बात हुई । उनकी उग्र तपस्या देखकर देवताओं को बड़ा भय हुआ ।’^{६२} शेषनाग की उग्र एवं तीव्र तपस्या से समस्त प्रजावग सतप्त होने लगा तब ब्रह्माजी ने उनका दशन करके उनकी मनोकामना पूरी की और उनको वर देकर प्रजा का सत्ताप दूर किया ” मन्त्रवेत्ता ब्राह्मण अत्यन्त कठोर तपस्या करके भी यश के लिए गुरुजनों की शरण ग्रहण करते हैं ।’^{६३} तपस्या की महिमा बताते हुए भीष्मजी ने कहा कि तपस्या से स्वर्ग मिलता है तपस्या से सुयश की प्राप्ति होती

६१—अहिंसा सत्यवचनमानुशस्य दमो घृणा ।

एतत् तपो विदुर्धारा न शरीरस्य शोषणम् ॥१८

शांतिपर्व अध्याय ७६, श्लोक १८

६२—तयोस्तप प्रभावेण दीघकाल प्रतापित ।

धूम प्रमुमुचे विध्यस्तदनुत्तमिवाभवत् ॥१०

ततो देवा भय जम्बुद्वीप दृष्ट्या तयोस्तप १०३

आदि पर्व अध्याय २०८, श्लोक १०, १०३

६३—तथा मन्त्रविदो विप्रास्तपस्तपसा सुदुःकरम् ।

गुहनभ्युपगच्छति यन्तोऽर्थाय भामिनि ॥

आदिपर्व-अध्याय १२३, श्लोक १२

है तथा तपस्या से बड़ी आयु, ऊँचा पद और उत्तमात्तम भाग प्राप्त हान है। तपस्या की महिमा का बयान करते हुए नारदजी ने युधिष्ठिर से कहा कि 'जो लोग कठोर तपस्या के द्वारा यही अपना गरीर का त्याग करते हैं वे भी उस इन्द्रसभा में जाकर तेजस्वी रूप धारण करके सत्ता प्रकाशित हो सकते हैं।'^{१४} कठोर तपस्या में अनवरत फल तो प्राप्त होते ही हैं, साथ ही साथ मनुष्य का मन और गरीर भी गुड़ हो जाते हैं। कठोर तपस्या करके मनुष्य यज्ञ कीर्ति प्राप्त करता है तथा दान के उद्धार के लिए बड़े-बड़े काम कर जाता है और आन वाली सत्तति को तपस्या का भाग प्रदर्शित कर जाता है।

६—सत्त्वगुण की महिमा—

प्रकृति के तीन गुण माने गये हैं—सत्त्व रजस और तमस। इनमें सत्त्वगुण सबसे श्रेष्ठ है। वह धर्म और तप का सहकारी है। सत्त्व का अर्थ अच्छा भाव है। सत्त्वगुण के उत्कर्ष से मनुष्य में नैतिक गुण और धार्मिक भाव उत्पन्न होते हैं। इसीलिए सत्त्वगुण को गीता में दवीसम्पत्ति कहा है। महाभारत में भी सत्त्वगुण को धर्म और तप में उपयोगी माना गया है। तीनों गुणों में सत्त्वगुण ही सबसे श्रेष्ठ माना जाता है। सत्त्व गुण वाला मनुष्य ही तपस्या का वर्त्ता जाता है। सत्त्वगुण से ही मनुष्य मोक्ष का अधिकारी बनता है। सत्त्वगुण की प्रशंसा करते हुए ब्रह्माजी ने महर्षियों से कहा कि सत्त्वगुण इन्द्रिया की उत्पत्ति का कारण है उसे वकारिक हतु मानते हैं। वह इन्द्रिया और उनके विषयों के प्रकाशित करने वाला है। सत्त्वगुण से बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं बताया गया है।^{१५} सात्त्विक वर्तव के लक्षण बताते हुए ब्रह्मा

६४—तपसा ये च तीव्रेण त्यजन्तीह क्लेवरम ।

ते तत् स्थान समासाद्य धीमन्तो भाति नित्यम् ॥

सभाषर्षि—अध्याय १२, श्लोक २२

६५—सत्त्व धीकारिकी योनिरिन्द्रियाणा प्रकाशिका ।

न हि सत्त्वात् परो धर्म क्वचिदप्यो विधीयते ॥६

आश्वमेधिक पर्व—अध्याय ३८ श्लोक ६

जी ने कहा कि "क्षमा, धय, अहिंसा, समता, सत्य सरनता, पाप, त्याग तथा सत्याम—य सात्त्विक वृत्ति वृत्ताय गये हैं।" १६ मनीषी पुरुष इसी अनुमान से उस सत्त्वस्वरूप आत्मा का और परमात्मा का मनन करत है। सत्यगुण म सत्य और सत्त्वगुण सब अविकल रूप से विद्यमान रहत हैं। सच्चे त्यागी क लक्षण बतात हुए श्री कृष्ण ने अजु न से कहा कि जो मनुष्य अकुशल कम से तो द्वेष नहीं करता और कुशल कम में आसक्त नहीं होता, वह गुद्ध सत्त्वगुण से युक्त पुरुष सशयरीहित, बुद्धिमान और सच्चा त्यागी है। १७ शास्त्रविहित कम करना कतय है इस भाव से जाशक्ति और फल का त्याग करके जा मनुष्य काय करना है वहा सात्त्विक त्यागी माना जाता है। अच्छे गुणा क रहन से मनुष्य मुक्त होकर परमात्मा को प्राप्त करता है। जीव सत्तार म अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मृत्यु को प्राप्त हाता है तथा अकेला ही पुण्य और पाप का फल भोगता है। शौच के लक्षण बताते हुए भगवान् न युविष्ठिर से कहा कि ब्रह्मचय, तपस्या समा, मधु मास का त्याग धर्ममर्यादा के भीतर रहना और मन का चण म रखा ये सब शौच के लक्षण है। १८ जो मनुष्य मालाब बनवाता, वृक्ष लगाता, यज्ञो का अनुष्ठान करता तथा सत्य बोधता है ये सभी

६६—क्षमा धृतिरहिंसा च समता सत्यमज्जवम् ।

पान त्यागोऽप्य सायास सात्त्विक वृत्तमिष्यते ॥७

आश्वमेधिक प - अध्याय ४८, श्लोक ७

६७—न द्वेषकुशल कम कुशले नानुपज्जते ।

त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी द्धिन्नराशय ॥१०

भौत्स पर्व - अध्याय ४२, श्लोक १०

गीता-अध्याय १८

६८—ब्रह्मचय तप क्षातिर्मधुमानस्य वजनम् ।

मर्यादायां स्थितिश्च नाम शौचस्य लक्षणम् ॥

आश्वमेधिक पव - अध्याय ६२

द्विज स्वर्गलोक मे सम्मानित होते है । मनीषी पुरुष धम को समस्त प्राणिया का हृदय कहते है । जत समस्त प्राणिया का धम वा ही आश्रय लना चाहिए । पुण्य का फल बताते हुए ब्राह्मण ने काश्यपजी से कहा कि "जने फल देने वाला वृक्ष फलने का समय आने पर बहुत से फल प्रदान करता है, उसी प्रकार गुद हृदय से किए हुए पुण्य का फल अधिक होता है ।" मनुष्य गुभ अथवा अशुभ जो जा कम करता है, पूषजम के शरीर से किय गये उन सब कर्मों का फल उस अवश्य भोगना पडता है । इसलिए मनुष्य का विषया का त्याग करना चाहिए, क्योंकि विषयो का त्याग ही वास्तविक त्याग अथवा तपस्या है । लोक मे तप शब्द विख्यात है । उस तप का फल है—नानस्वरूप प्रसाश तथा निष्काम काम । तप दो प्रकार का हाता है शारीरिक और मानसिक इनके लक्षण बताते हुए भीष्मजी ने कहा कि ब्रह्मचय और अहिंसा को शारीरिक तप कहने है । मन और वाणी का भलीभाति किया हुआ मयम मानसिक तप कहलाता है । *

७-दान का महत्त्व —

भारतीय धम मे दान का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है । दान दन से मनुष्य का मन गुद होता है और उसके स्वर्ग की प्राप्ति हाती है । दान की महिमा बताते हुए राजा कुरु ने द्रुप से कहा कि जा पुण्यात्मा मानव वहाँ (कुरु क्षेत्र मे) दान देगे, उनका वह दान शीघ्र ही सहस्रगुना न जायेगा । ** दान

६६—यथा प्रमूयमानस्तु फलो दद्यात्फल बहु ।

तथा स्याद् विपुल पुण्य गुद न मनसा कृतम् ॥२

आश्वमेधिक पत्र-अध्याय १८, श्लोक २

७० - ब्रह्मचयमहिंसा च शरीर तप उच्यते ।

वाङ्मनोनियम मय्यमानसां तप उच्यते ॥१७

शान्ति पत्र-अध्याय २१७, श्लोक १७

७१—य पुन पुण्यभात्री च दान दास्यति मानवा ॥१८

तेषां सहस्रगुणितं भविष्यत्यविरेण च ।*

शान्तिपत्र—अध्याय ५१, श्लोक १८*

दा प्रकार के वतात हुए भृगु जी न भरद्वाज से इस प्रकार कहा कि "दान दा प्रकार का बताया जाता है एक परलोक के लिए है और दूसरा इहलोक के लिए । सत्पुरुषों का जो कुछ दिया जाता है, वह दान परलोक में अपना फल देने के लिए उपस्थित होता है और असत्पुरुषों का जो दान दिया जाता है उसका फल यहाँ भोगा जाता है । जसा दान दिया जाता है वसा ही उसका फल भी भोगा जाता है ।" *२ जो मनुष्य जालस्य और प्रमाद का त्याग करके अहिंसा का पानन करते हुए दान आदि शुभकर्म करता है तो उस इन पुण्य कर्मों के कारण स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है । *३ दान सबदा श्रेष्ठ लोग अथवा गरीब ब्राह्मण को ही दान चाहिए । दान देने वाला ब्राह्मण श्रोत्रिय हा निग्रन हो, गृहस्थ हा, नित्य अग्निहोत्र करता हा दरिद्रता के कारण जिम स्त्री और पुत्रों के तिरस्कार सहन पड़ते हा तथा दाता न न तो जिमसे प्रत्युपकार प्राप्त किया हो और न आगे प्रत्युपकार प्राप्त होन की सम्भावना हा हो । ऐम ही लोगों को गोदान करना चाहिए धनवानों का नहीं । धनवानों का दान देने से कोई लाभ नहीं है । *४ इसी प्रकार

७२— दान तु द्विविधं प्राहुः परत्रायमिहैव च ।

सद्भ्योऽप्यद् दायते किंचित् सत्परत्रापतिष्ठते ॥३॥

असद्भ्यो दायते यत् तद् दानमिह भुज्यते ।

यादृशं दायते दानं तादृशं फलमश्नुते ॥४॥

शांतिपर्व—अध्याय १६१, श्लोक ३४

७३— एव य मानुषात्ल्लोकाद् दानातिभिरतद्भिर ।

अहिंसायसमाप्तुक्तं कारणं स्वर्गमश्नुते ॥

वनपर्व—अध्याय १८१, श्लोक १०

७४— श्रोत्रियाय दरिद्राय गृहस्थायाग्निहोत्रिणे ।

पुत्रदाराभिभूताय तथा ह्यनुपकारिणे ॥

एषाविधेषु दातव्या न समृद्धेषु भारत ।

को गुणो भरतर्षेष्ट समृद्धेष्वभिर्वाजितम ॥

वनपर्व—अध्याय—२००, श्लोक २७—२८

य मोनह प्रार क मनुष्य दा लन याम्प रही है । दा इता न/ देना
 गहिए—पिता आर गुज्रा, मिय्यागानी पागी कृष्ण ग्राम-गुरो/न
 उदविक्रय करन याल, गूढ ग यन कराने यान नार ब्राह्मण, गूढ क पनि
 ब्राह्मण सांभ को परह कर ध्ययमाय करे याल तथा मयका और स्त्री-ममूना
 का दिया हुआ दान ध्यय है । *५ मुधिष्ठिर जय का म बठ ध तर भीममन
 न क्रोध म भर कर मुधिष्ठिर न राय प्राप्त करत क तिए कहा । दा मनुष्य
 नभी द सयता है जब उगर पाग कुछ जीवित हा या राग्य हो । दान का
 महत्व यतात द्रुण भीम न कहा कि मनीषी विद्वान् दानगीतता का ही धम
 बहुत है, अत आप उस दानशीलता को ही प्राप्त काजिए । आनका इग
 दयनीय अवस्था म नहीं रहना चाहिए । *६ सम्पूर्ण दाम्ना का ज्ञान मानव
 उसी ब्राह्मण का दान दे जा दाता का तथा अपना भी समारमागर स उडार
 कर मवे । वही गतिगाली ब्राह्मण है । मावण्डयजी न मुधिष्ठिर स कहा कि
 जो विद्वान् ब्राह्मण को भूमिगात करता है उस दाना क पाग सभी
 मनोवाछिन भोग स्वत आ जान हैं । जो उत्तम वणवान विगुड ब्राह्मण का
 सुवण दान करता है उसे निरतर सौ स्वण मुद्राआ क दान का पत्र प्राप्त
 हाता है । जो काम कधे पर जुआ उठान म समय चलवान् चल ब्राह्मणा को
 नान करत है व दुख और सकटा मे पार होकर स्वर्गलोक म जात है ।
 अतिधियो का भोजन कराने से अग्निदब हविष्यअन्न स भी अधिव सातुष्ट हेते

७५—गुरी चानृत्तिके पापे कृतघ्ने ग्रामयाजके ।

वेदविक्रयिले दत्ता तथा कृपलयाजके ॥

ग्रहावधुषु यद् दत्ता यद् दत्ता कृपलोपती ।

स्त्रीजनेषु च यद् दत्ता घ्यासप्राहे तथैव च ॥

परिवारकषु यद् दत्ता कृया दानानि षोडश ।

वनपत्र-अध्याय २००, श्लोक ७८८३

७६—उदारमेव विद्वांसो धम प्राहुमनीयिण ।

उदार प्रतिपद्यन्व नाचरे स्यातुमहति ॥५३

वनपत्र-अध्याय ३३, श्लोक ५३

हैं।^{१००} जो अपनी शक्ति के अनुसार अच्छे ढंग से तयार किया हुआ भाजन ब्राह्मणों को अर्पित करता है वह उस पुण्यकर्म के प्रभाव से प्रजापति के लोक में जाता है। अन्न के दान का प्रभाव बताते हुए माकण्डेय जी ने युधिष्ठिर से कहा कि युधिष्ठिर ! तुम सारे दाना को छाड़कर केवल अन्नदान करते रहो। इस ससार में अन्नदान के समान विचित्र एवं पुण्यदायक दूसरा कोई दान नहीं है। अन्न अन्न ही सबसे महत्व की वस्तु है। उसमें बढ़कर कोई दूसरी वस्तु नहीं है। वेदा में अन्न को प्रजापति कहा गया है। अन्न का दान करने वाला मनुष्य पहले स्वर्ग में प्रवेश पाता है मत्स्यवादी उनके बाद स्वर्ग में प्रवेश पाता है तथा बिना मागे दान करने वाला पुरुष उसके पीछे स्वर्ग में प्रवेश पाते हैं। य तीनो पुण्यात्मा मानव समान गति को प्राप्त हाते हैं।^{१०१} सरस्वती जी ने ब्रह्मर्षि ताम्य से जो धर्म की बातें कही थी उनका माकण्डेयजी ने युधिष्ठिर से इस प्रकार कहा कि गोदान करने वाले मनुष्य उत्तम लोक में जाते हैं। एक-दोनेवाले बलवान् बलों का दान करने से दाताओं को स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है। बलवान् से चन्द्रलोक और सुवर्णदान में अमरत्व की प्राप्ति होती है। जो वासे का भोहनी बल उत्तर कालिक दक्षिणाद्रय के साथ कपिला गौ का दान करता है उसकी ही हृद्दे वह गौ उन गुणों के साथ कामधेनु बनकर परलोक में दाता के पास पहुँच जाती है।^{१०२} क्या के दान का महत्व बताने हुए माकण्डेयजी ने कहा कि 'ओ ब्राह्मण विवाह की विधि से दान करने योग्य क्या

७७-वसुधरा तु यो दद्याद् द्विजाय विदुरात्मने ।

दातार ह्यनुच्छ्रित सर्वे कामाभिवाञ्छिता ॥

वनपर्व-अध्याय २००, श्लोक ३२३

७८-तस्मात् त्वासव दानानि हित्वात्प्र सम्प्रयच्छ ॥३५^१

न हीदृशपुण्यफल विचित्रमिह विद्यते ॥३५^२

वनपर्व-अध्याय २००, श्लोक, ३५^१, ३७^३ ४२

७९-पर लोक गोप्रदास्त्वाप्नुवति

दत्त्वानडवाह सुपलाक स्रजति ।

यासो दत्त्वा चाद्रमसा तु लोक

दत्त्वा हिरण्यममरत्वमेति ॥८

वनपर्व-अध्याय १८६, श्लोक ८, ११

का (श्रेष्ठ धर को) दान करना है, और विधि पूर्वक अयाय्य वस्तुओं का दान सम्पन्न करता है वह इन्द्रलोक में जाता है ।'^८

पव क जबसर पर दिया हुआ दान दुगुना तथा ऋनु आरम्भ होन के समय दिया हुआ दान दस गुना पुण्यदायक होता है । सन्नाति पर तथा चन्द्रग्रहण और मूषग्रहण के जबसर पर दिया हुआ दान अक्षय्य बताया गया है । जिसने भूमिदान नहा किया है वह परलोक में पृथ्वी का उपभोग नहीं कर सकता । जिनमें सवारी का दान नहीं किया है, वह सवारी पर चढ़ कर नहीं जा सकता । इस जन्म में मनुष्य जिन जिन पदार्थों का श्राद्धणा को दान करता है भावा जन्म में वह उन उन पदार्थों का उपभोग क लिए पाता है । सुवर्ण अग्नि की प्रथम सातान है । भूमि भगवान् विष्णु की पत्नी है तथा गौण भगवान् मूष की कन्याएँ हैं । इन ताना क महत्त्व को बनाते हुए माकण्डेयजा न युधिष्ठिर से कहा कि जो कोई सुवर्ण गौ और पृथिवी का दान करता है उसक द्वारा ताना लोक का दान सम्पन्न हो जाता है ।'^९ मनुष्य को याय से कमाय हुए धन का दान करना चाहिए । विगुड मन से उत्तम समय पर मत्स्याय का धोना-ना भी दान दिया गया हा तो वह परलोक में अत्यन्त फल दन वाला माना गया है । अयाय से प्राप्त किय हुए धन का दान निष्कन्त हो जाता है । दुःख से कमाय हुए धन क विषय में व्यास जी न युधिष्ठिर से कया कि तुम सह कर कमाय हुए धन का परित्याग करना अत्यन्त कठिन है । दान न बढ़कर दूमरा बार्द दुष्कर काय नहीं है । इगतिव मरे मन में दान ही

८०—यो ब्राह्मदेयां तु ददाति कन्यां

भूमिप्रदाने च करानि विद्रे ।

ददाति दान विधिना च यत्र

स सोऽहमाप्नोति पुरंदरस्य ॥१५

धनपत्र—अध्याय १८६, श्लो० १५

८१—सोऽहमाप्नोति भवति इति

य काश्चन पात्र मही च ददात् ॥१०८

धनपत्र—अध्याय २०० श्लो० १२८ १२४ १२५, १२७

मवश्रेष्ठ है।^{१८२} ब्राह्मण को धम क त्रिण दान दिया जाता है। नट-ननका को यग के लिए दान (धन) देन हैं सेवका को उनके भरण पोषण क लिए दान (वतन) दिया जाता है और राजाआ का भय के कारण दान (कर) नन है। न मागने वाल को दान दना श्रेष्ठ बनान हुए भीष्म जी न मुनित्रिभिर से कहा कि 'याचक' को जो दान दिया जाता है वह दयार्प परमधम है परंतु जो लोग कन उठाकर भी याचना नहीं करत उन ब्राह्मणा को प्रत्येक उपाय से अपने पास बुलाकर नन दना चाहिण।^{१८३} याचना न करन वाला ब्राह्मण श्रेष्ठ होता है। श्रेष्ठ पुरुष यदि दान स्वीकार करें ता राजा को उन्हें प्रतिदिन बडी श्रद्धा से साथ दान दना चाहिये क्योंकि श्रद्धापूर्वक दिया हुआ दान आत्मगुद्धि का सर्वोत्तम साधन है। पृथिवी अचल और अमय है इसनिण पृथिवी का दान श्रेष्ठ है। पृथिवी के दान की श्रेष्ठता बताते हुए भीष्म जी ने कहा कि दम्भ, रत्न पगु और धान जी आदि नाना प्रकार के अन— इन सबको नन वाली पृथिवी ही है अन पृथिवी का दान करन वाला ममस्त प्राणियो म मद्रस अधिक अभ्युदयगील होता है।^{१८४} पृथिवी का दान करने वाले पुण्य गो तप, यन विद्या सुगीलता लोभ का अभाव मत्यवादिता गुण गुध्रूपा और दवाराधने—इन सबका फल प्राप्त हो जाता है। जो दवताआ गितरा ऋषिया ब्राह्मणा जीर अतिधिया को अन नकर सतुष्ट करता है उनक पुण्य का फल महान् है। अन्नदान करनेवाले मनुष्य क चल ओज यग

८२—तस्माद् दु खार्जितस्यैव परित्याग सुदुष्कर ।

न दुष्करतर दानात् तस्माद् दाा मत मम ॥३१

वनपव अध्याय २५६, श्लो० ३१

८३—आनृास्य परो धर्मो याचते यत् प्रदीयते ।

अयाचत सीदमानान् सर्वोपायनिमत्रयेत् । ६

अनुशासनपर्ण—अध्याय ६० श्लो० ६

८४—दोग्ध्री वासासि रत्नानि पयून् दोग्धिपवास्तया ।

नूनिव सबनूतोषु गारवतीरघते समा ॥३

अनुशासनपर्ण—अध्याय ६२ श्लो० ३

और कीर्ति का तीनों लोग म गदा ही विस्तार होता रहता है । अन्न और जल का दान सबसे श्रेष्ठ है क्योंकि मनुष्य का जीवन इन्हीं से धारण होता है । सहस्र गौ व दान का महत्त्व बताते हुए यज्ञि जी न कहां कि 'सहस्र गौधा का दान करन घाल मनुष्य जहाँ सोन के महन हैं, जहाँ स्यगगगा बहता है तथा जहाँ गंधर और अप्सरायें निवास करती हैं उस स्वर्गलोक म जात है ।'^{८५} दीपक के दान की श्रेष्ठता बताते हुए भीष्म जान कहां कि दीप दान करने वाले मनुष्य निश्चय ही पूण चंद्रमा के समान कातिमान् हान हैं ।'^{८६} धममूलक दान वह है जिसम मनुष्य ईर्ष्या रहित होकर ब्राह्मणों का दान दता है । अपनी कीर्ति का सुनने की इच्छा वाला मनुष्य यदि याचक का दान दना है तो वह अथमूलक दान हाना है । जो दान यह साच कर गिया जाता है कि यदि इस याचक का मैं दान नहीं दूंगा तो यह मरा अनिष्ट करेगा इस भय से विद्वान् मनुष्य मूम को भी दान द देते है तो वह भय मूलक दान कहलाता है । अपन प्रिय मित्र की भलाई सोच कर जो मित्र का दान देता है वह कामनामूलक दान है । अधिक गरीब को देखकर दयावान् जा दान देता है वह दयावश दान कहलाता है । यह धम, अथ, भय कामना और दया ये पांच प्रकार का दान पुण्य और कीर्ति बढ़ाने वाला है । मनुष्य को दान म अपन घर की प्रिय से प्रिय वस्तु भी द देनी चाहिए । श्रेष्ठ ब्राह्मणों की सेवा म अपने पुत्र और अपने गरीब को भी अपण कर दना चाहिए । तीन पदों की श्रेष्ठता बताते हुए 'याघ ने माकण्डेय जी से कहा कि 'श्रेष्ठ पुरुष तीन ही पद बताते है—किसी से द्रोह न करे दान करे और सदा सत्य बोल यह श्रेष्ठ पुरुषों का सर्वोत्तम व्रत है ।'^{८७} तीनों लोकों म दान से बढ कर

८५—प्रासादा यत्र सोवर्णा वसोवर्णा च यत्र सा ।

गंधर्वाप्सरसो यत्रतत्र याति सहस्रदा ॥५

अनुशासनपर्वा—अध्याय ८०, श्लो० ५

८६—पूणचन्द्रप्रतीकाशा दीपदाश्च भव त्युत ॥४०

अनुशासनपर्वा—अध्याय १०० श्लो० ४०

८७—धीण्येव तु पदायाहु सता व्रतमनुत्तमम् ।

— -- --, ह्येद् दद्याच्च सत्यं च सदा वदेत् ॥

वनर्वा—अध्याय २०७ श्लो० ६३३

गान्धर्वत पुण्यदायक कम दूसरा नहीं है। इसलिये उत्तम बुद्धिवाले पुरुष ससार दान का ही सर्वोत्कृष्ट पुण्यकर्म बताते हैं।

७ - गुरुजनो की सेवा तथा पूजा करना धर्म है-

भारतीय सस्कृति म गुरुजना की सेवा तथा पूजा करना धर्म माना जाता है। प्रत्येक बालक बचपन से ही अपन माता पिता तथा गुरु का जादर करता है। पाठशाला पढ़ने के लिए जाता है ता प्रथम जाकर गुरु को प्रणाम करता है तथा उनके चरणों को छूता है। पूजने योग्य क विषय म बनात हुए भीष्म जी न युधिष्ठिर म कहा कि "आचार्य, ऋत्विज, सम्बन्धी, स्नातक प्रियमित्र तथा राजा इन छहों को अध्यक्ष देकर पूजन योग्य बनाया गया है। य (छहों) यदि एक वष दितावर अपन यहा आवें ता इनके लिए अध्यक्ष निवेदन करके इनका पूजा करनी चाहिए। ऐसा शास्त्रन पुराणों का कथन है।" सहेव ने आचार्य, पिता गुरु, पुजनीय तथा अध्यक्ष निवेदन के सवया योग्य भगवान् श्री कृष्ण की पूजा की।

सभा म आवे हुए ब्राह्मणा और क्षत्रिया म विविष्ट व्यक्तिया को पहचान कर महदेव ने क्रमन पूज्य व्यक्तिया की पूजा करके अध्यक्षनिवेदन का काय किया। भारतीय सस्कृति म ऐसी धारणा है कि पूज्य लोग को सब कुछ भेंट कर देना चाहिए। श्रीकृष्ण न चण्डकौणिक मुनि के आगमन की बात मगध दग क राजा क यहा की पूजा आदि क विषय म कहा कि पाद्य अध्यक्ष और आचमनीय आदि क द्वारा राजा न महर्षि का पूजन किया और अपने सार राय के सहित पुत्र का उह सौप दिया। दवनाआ की पूजा के विषय

८८-आचार्यमृत्विज च व सयुज च युधिष्ठिर ।

स्नातक च प्रिय प्राहु षडर्घ्यार्हान् नृप तथा ॥२३

एतानर्घ्यानिभिपतानाहु सवत्सरोपितान् ।

सभापर्वा-अध्याय ३६, श्लो० २३, २३ १/२

८९-पाशाटर्पाचमनीय स्तमचयामास भ रत ।

स नृपो राज्यसहित पुत्र तस्म यवेदपत् ॥३

सभापर्वा-अध्याय १६, श्लो० ३

म धम्मपापा । जमजय म कता कि ' कुम्भश्च मुनिविर डे अनर प्रार
 यात्र तथा भाति भाति व िय मुनिपाय वपापों द्वारा उग भवा म ष्याम
 वा ष्याता एव पूजा वा । ' धम्मपापा । जमजय म ष्याता की पूजा
 वा वाना उम प्रकार सिगा कि ' उा मनुष्येभु । प्रभुत्वात्ता माता जा तम
 स्तार और चत्ता जाति आर प्रार व मुनिपाय वपापों द्वारा ष्याता और
 श्राद्धणा की पूजा वा । '

धमध्याप कवा अता माता पिता की सेवा म ष्याता ष्याता वा
 पतिव्रता व त्ता म जय कीतिव द्वात्ता धमध्याप व पाप धम का उता
 मुना गय तव धमध्याप । उमम कता कि ' ममार म माता पिता वा मया म
 रद्वार अय तो धम तपी है । उमन कता कि ' श्राद्धण ! माता पिता व
 गया हा मरी तपस्या है । एग तास्या का प्रभाव दगिद । मुझे िव्यहृष्टि प्राप्त
 हा ग । जिगर कारण उग पतिव्रता उ आन को मिरितापुरी भजा ।
 धमध्याप उ अपना िव्यहृष्टि से जात तिया था कि एा कीतिव जा न अपन
 माता पिता की उपक्षा की है । तव उगा कता कि ' आपा अन माता पिता
 की आपा तिय तिया ही घर छोड िया जीर वष्याययन व तिए आ गय
 आपक मोर सं व दोनो बूढे एव तपस्वी माता पिता अध हो गय है । इग
 लिए माता पिता को मनुष्ट किय बिना आपरा यह गारा धम जीर वत व्यय

६०—वादिप्रविविधदिय मधरुच्चावचरपि ।

पूजयित्वा कुदनेष्टो दवतानि निवेरय च ॥६

सभापर्ष—अध्याय ४, श्लो० ६

६१—अक्षयामास देवांश्च द्विजाश्च यदुपुङ्गव ।

मात्यजाप्यनमस्कारगधरुच्चावचरपि ॥११

सभापर्ष—अध्याय २, श्लो० ११

६२—प्रवृत्तचभुजतिोऽस्मि सम्परय तपसो बलम् ।

यदयमुक्तो सि तया गच्छ त्व मियिलामिति ॥२

बनपर्ष—अध्याय २१५, श्लो० २

हो गया है। इसलिए शीघ्र जाकर अपने माता पिता की सेवा कीजिए, इसी में आपका कल्याण है। व्याध न कौणिक जी से कहा कि 'द्विजश्रेष्ठ! आप माता पिता के पाम जाकर आनन्दरहित हो शीघ्र ही उनकी सेवा में लग जाइये। मैं इसने बहकर जोर काई धर्म नहीं देखता।' ३ धर्मव्याध ने कहा कि 'ब्रह्मन्! ये माता पिता ही मेरे सर्वश्रेष्ठ देवता हैं। मैं सदा पूजक बन तथा रत्ना से इन्हीं को सन्तुष्ट करता हूँ।' ४ व्याध ने कहा कि 'जिह् विद्वान् साग अग्नि' कहत हैं, व मेरे लिए य ही है। चारों वेद और यन सब कुछ मर गिए य माता पिता ही हूँ। जा पुण्य माता पिता का सेवा में सलग्न रहना है और उनको सन्तुष्ट करता है, वह सदा प्रसन्न एवं उन्नति प्राप्त करता है। मन्वा का महत्त्व बताते हुए विदुरजी ने धृतराष्ट्र से कहा कि "जो नित्य गुरुजनो का प्रणाम करता है और वृद्ध पुरुषों की सेवा में लगा रहना है, उसकी नीति आयु यज्ञ क्षौर बल —य चारा वन्त हैं।" ५ उनमें चाहने वाले पुरुषों के पाँच गुण बताते हुए धर्मव्याध ने कौणिक जी से कहा कि 'ब्राह्मणश्रेष्ठ! उन्नति चाहनेवाले पुरुष के पांच ही गुण हैं—पिता, माता, अग्नि, परमात्मा तथा

६३—मातापित्रो सकाश हि गत्वा दृग द्विजसत्तम ।

अतद्रित कुरु क्षिप्र मातापित्रोहि पूजनम् ॥

अत परमह धर्म नाय पश्यामि कचन ॥१३

वनपत्र—अध्याय २१५, श्लो० १३

६४—एतो मे परम ब्रह्मन् पिता माता च देवतम् ।

एतो पुण्य फल रत्नस्तोषयामि सदा द्विज ॥२१

वनपत्र—अध्याय २१४, श्लो० २१

६५—अभिवादनशीलस्य नित्य धृद्धोपसेविन ।

चत्वारि सम्प्रवधत कोतिरापुण्यो बलम् ॥७४

उद्योगपत्र—अध्याय ३६, श्लो० ७४

गुरु । ११ जो जो गवस प्रणि उत्तम यथाप करमा, उग गुरुम्य धम ना पावन करन वात न द्वारा गग साप अगिया की गया गम्यत हागी रग्मा । यर गवका गताया धम है । गुरु का गया म अनर निप्य विज्ञात यत गव । गुरु न मतोप म वर तामर निप्य त श्रय तथा मरग्या प्राग की थी । गुरु का गया तथा आजा स उपमयु को टुबारा र्द अगिं प्राप्त हृद । इम प्रकार बहा की गया करत म मनुष्य का मत ता प्रगप्र होता हा है गाप गाप उग अनर लाभ हात है जो प्रत्य त म निगार्द गही हा । जो मनुष्य गाता विता को मनुष्य करता है उगता वाति इम साव म ता कर्मा हा है उगता पन उग परताव म भी प्राप्त होता है । इगनिण गवको बहा का गया करनी चाहिण क्षया उता आर गम्मा भी पूण रूप म करना चाहिण ।



३६—पञ्च गुरवो ब्रह्मन् पुरुषस्य बुभूषत ।

पिता माताग्निरात्मा च गुरुश्च द्विजसत्तम ॥२७

वनपव—अध्याय २१४ श्लो० २७

महाभारत में वर्ण-धर्म

१—वर्णों की व्यवस्था—

पिछले अध्यायों में यह विस्तार पूर्वक स्पष्ट किया जा चुका है कि महाभारत और धर्मशास्त्रों में धर्म का अर्थ ईश्वर के किसी विशेष रूप की उपासना की विशेष प्रणाली नहीं है। महाभारत और धर्मशास्त्रों का धर्म मानव धर्म है। मनुष्य के कर्तव्य और आचार के रूप में उसकी व्याख्या की गई है। सामाजिक जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में मनुष्य के कर्तव्य के रूप में जो उचित है वही उसका 'धर्म' है। धर्म की इस व्यावहारिक व्यवस्था के लिए धर्मशास्त्रों में मनुष्य समाज का विभाजन चार भागों में किया गया है। उन्हें चार वर्ण कहते हैं। मानवीय जीवन और समाज के लिए चार मुख्य कर्तव्य हैं—विद्या, रक्षा, व्यापार और सेवा, इन्हीं के आधार पर चार वर्णों में समाज का विभाजन किया गया है। चार वर्णों के उक्त मुख्य कर्तव्यों का पूरा और पुष्ट बनाने के लिए इनके महकरी कर्तव्यों अथवा धर्मों की व्यापक व्यवस्था धर्मशास्त्रों में की गई है। इस सम्बन्ध में महाभारत की मायतायें धर्मशास्त्रों के बहुत कुछ समान हैं। महाभारत में भी धर्मशास्त्रों के समान चार वर्णों को मानकर उनके कर्तव्य धर्मों का बणन किया गया है।

वर्ण-व्यवस्था हिन्दू धर्मशास्त्र और हिन्दू समाज की एक ऐसी विशेषता है जिसका उदाहरण अन्य किसी देश में नहीं मिलता। अन्य देशों में भी कुछ विभाजन समाज में मिलते हैं। किन्तु उन विभाजनों का ऐसा धार्मिक अथवा सांस्कृतिक महत्त्व नहीं है जसा कि हिन्दू समाज की परम्परा में रहा है।

भारतवप म वुद्ध विगप परिस्थितिया और विगप कारण म वण विभाजन एक अत्यन्त सूक्ष्म जटिल और कठार व्यवस्था क रूप म स्थापित होगया । आधुनिक काल म अधिकांश विचारक वण-व्यवस्था का भारतवप समाज का दोष मानत हैं । किन्तु धम और मरुति की रक्षा म वण-व्यवस्था न इतिहास क कठिन युगा म हिन्दू समाज का उपकार भा क्रिया है । प्राय वण-व्यवस्था को सामाजिक विपमता की दृष्टि स ही दगा जाता है । किन्ता सामाजिक यह सत्य भी है कि वण-व्यवस्था क कारण हिन्दू-समाज म सामाजिक विपमता उत्पन्न हुई । किन्तु दूसरी ओर भारतवप म वण-व्यवस्था की स्थापना क धार्मिक और सांस्कृतिक कारणों का विचार करना तथा धम एक सस्मृति की रक्षा म वण-व्यवस्था के योग का मूल्यांकन भी अपक्षित है ।^१

वण विभाजन की जो व्यवस्था भारतीय परम्परा म मिलती है, उसम समाज को चार वर्णों म विभाजित किया गया है । वण चार ही हैं । जातिया की संख्या बहुत अधिक है । अत वण का अर्थ जानि लगाना उचित नहीं है । ज म से वण मानन के कारण वण और जाति एक दूसरे के पर्याय बन गय । किन्तु धम शास्त्रो म प्राय 'वण' शब्द का ही प्रयोग किया गया है । य वण चार हैं—ब्राह्मण क्षत्रिय वश्य और शूद्र । भारतीय धम शास्त्र जीवन का एक रूपता म विश्वास नहीं करता । जीवन के अनेक लक्ष्य रूप और कम है । यह अनकता स्वाभाविक है । साथ ही यह जीवन म सौन्दर्य का विधान करती है । इस अनेकता के अनुरूप धम शास्त्रो म जीवन के पुरुषार्थों आयु के आश्रमा और समाज क वर्णों का चतुर्विध विभाजन किया गया है । पुरुषार्थों का विभाजन जीवन के लक्ष्यो की दृष्टि से है । जीवन के प्रमुख लक्ष्य चार वर्णों मे समाहित है । आश्रमा का विभाजन जीवन की सफलता और पूणता का दृष्टि से है । वर्णों का विभाजन सामाजिक कर्मों की अनेकरूपता की दृष्टि से है । किन्तु कुछ लोगो का विचार है कि यह समाज म विपमता का कारण बना । यह किसी अर्थ म सत्य है । किन्तु वण विभाजन का अभिप्राय समाज म श्रम विभाजन की भाति कम विभाजन था । प्राचीन काल मे वण-व्यवस्था

का आधार कम ही था । गीता मे इसका स्पष्ट संकेत मिलता है ।^२ गीता ने जन्म का आधार न मान कर वण-व्यवस्था को पुन कम का आधार प्रदान करने का प्रयत्न किया है । प्राचीन वैदिक काल मे वण व्यवस्था इतनी कठोर न थी ।^३ कोई भी अपने कम और स्वभाव के अनुसार किसी वण को ग्रहण कर सकता था । वण जन्म पर आश्रित न था । षड मे एक ऐस व्यक्ति का उल्लेख है जो यह कहता है कि मैं एक कवि हू मेरा पिता वद्य है और मेरी माता अन्न कुटती है ।^४ संभवत धम शास्त्रो और स्मृतिया वं काल म वण व्यवस्था का आधार जन्म बन गया । इसका कारण मुख्यत कुल परम्परा है । कुल परम्परा म व्यवसाय सुगम बन जाते हैं । सामाजिक विपन्नता इसका एक प्रतिफल परिणाम था । किन्तु मूलत इस व्यवस्था का आधार कम विभाजन था । धार्मिक और सांस्कृतिक कर्मों की विपुलता वैदिक समाज की एक विशेषता थी । अत उस समाज में वण विभाजन और भी अधिक आवश्यक हो गया । विद्या रक्षा व्यापार और सेवा के चार मुख्य कम मान कर चार वण मान गये । ब्राह्मण का प्रधान काय विद्या पढना जोर पढाना था, क्षत्रिय का काय रक्षा करना वश्य का काय व्यापार करना तथा वृषि करना था और गृहो का काम तीना वर्णों की सेवा करना था । हर एक के जीवन में ये चारो बातें विद्यमान थी परन्तु उम वण के मानव म उस वण के कार्यों का प्राधान्य रहता था तथा अन्य धम व काय गौण रूप मे रहत थे । ब्राह्मण के जीवन म विद्या का, क्षत्रिय के जीवन म रक्षा एव वीरता का वश्य के जीवन म व्यापार व समाज के पालन का तथा गृह के जीवन म तीना वर्णों की सेवा का काम प्रमुख था । सारी वस्तुजा एव गुणा को जीवन म समानता नहीं मिल सकती । प्रत्येक मनुष्य का कम स्वाभाविक हाता है । अपनी प्रकृति के अनुकूल जा भी काय हा वह काय करना ही मानव का धम हाता चाहिए । इसी गुण की प्रधानता के आधार पर वण-व्यवस्था धम शास्त्रो म स्थिर हुई ।

२—चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।

तस्य कर्तारमपि मा विद्वेद्यकर्तारमव्ययम् ॥

गीता—अध्याय—४, श्लोक १३

३—३१० राधाकृष्णन् इण्डियन फिलासफी—भाग-१, पृष्ठ १११

४—

”

”

पृष्ठ ११२

सत्यमेव जयते व भावविधक शक्येत् व सो-के पुस्तक गुण म विज्ञा है। पुस्तक गुण ५, समाज की एक विधा पुस्तक क गुण क गुण का लक्ष्य है। समाज व चारा सत्य गुण पुस्तक व अर्थ म उन्मत्त २० है। अर्थ पुस्तक व पुन म शास्त्र का बाहु म धारणा का जपाना म वे-का का ओर परा मे गुण का पना जाता वटा है। त्रिम प्रकार म एक म तद व समाज का निर्माण ओर सफल इन अर्थ का मर्याद म हुआ है। उगी प्रकार समाज समाज क, निर्माण का चारा सती व समाज म हुआ है। म अर्थ जपान समाज क म वाप जाता कर मता। समाज त्रिम ५, पुन का प्रधान मना है। समाज प्रकार समाज समाज का प्रधान मना का कारण शास्त्र क प्रतिपत्त शास्त्र का प्रमत्त मना म्प्रा है। समाज चारा म जाव धनु है। चारा म बुद्धि का धनु है। बुद्धि का गुण ५ म समाज समाज म भी चारा म्प्रा म्प्रा है। शास्त्र का जपान म शास्त्र का हा प्रधाना है। उमक विज्ञान शास्त्र का उच्छ्रु है। शास्त्र म जपान भाव का समाज म्प्रा है वटा शास्त्र है। बाहुमा म समाज शरीर की रक्षा जाता है। उगी प्रकार धारण समाज समाज का रक्षा करता है। जपाना म धनु ओर परा म गुण का उन्मत्त हुआ है। समाज व्यवस्था म शुद्ध को निर्माता म्प्रा म्प्रा है। अर्थ सत्य समाज शास्त्र, धारण और धनु हा जाये तो समाज का मारा वाम धनु हा जायगा। समाज शुद्धा व विना अती स्वाभाविक गति म नहीं पत मचना। पुस्तक म चार वणा की उत्पत्ति का मरी म्प्रा है। अर्थ पुस्तक व अर्थ अर्थ अर्थ अर्थ हात हुआ भी वृत् एक समिष्ट रूप म हा जावित रह सकता है। उमका प्रकार समाज भी उमका समय तक अपना अस्तित्व रग मचना है। तब तक उमका व चारा अर्थ आपरा म सामूहिक रूप म समाजित हा अर्थवा शरीर का भाव ही समाज का भी अस्तित्व मिट साता है। अर्थ पारस्परिक सम्बन्ध म हा समाज का बल्याण है। आदिपुरुष स आविभूत वण व्यवस्था का मरी म्प्रा मन्तव्य है।

५—शास्त्रेण १०, ६०

६—शास्त्रेण १०, ६०, १२

महाभारत और मनुस्मृति म नान वा सम्पादन सबका कर्त्तव्य माना है । परन्तु विनोपन अध्ययन और अध्यापन यन करना और करवाना, दान दना ओर दिलाना तथा लेना इत्यादि ब्राह्मणा क कर्त्तव्य है । * क्षत्रिय का बाप प्रजा की रक्षा करना, अध्ययन करना दान दना विषय भोग म वीन राग हाना इत्यादि है ।^८ वश्या के लिए पशुपालन कृषि दान दना, यन करवाना अध्ययन करना वाणिज्य तथा समाज का उदर पोषण इत्यादि कार्यों का विधान किया गया है ।^९ गूढा के लिए इन तान वर्णों की निम्नाय तथा व्याभाव म विहीन हाकर सेवा करना है ।^१ इन चारों वर्णों म यह निराय

७—अयोपयेदधीयीत याजयेत यजेत वा ।

न वृथा प्रतिगृह्णीयात्त च दद्यात् कथयन् ।

शांतिपर्व—अध्याय २३४, श्लोक ११

८—जधीयीत क्षत्रियोऽथो यजेत, दद्याद् दान न तु याचेत् किञ्चित् ।

न याजयेद्वापि चाध्यापयीत, एष स्मृत क्षत्रधम पुराण ॥

तथा राजयो रक्षण च प्रजाना, कृत्वा धर्मणाप्रमत्तोऽयदत्त्वा

यत्परिष्टा सबवेदानथीत्थ दारान् कृत्वा पुण्य कृदावसेद्गृहान् ।

स धर्मत्मा धममधीत्यपुण्य यच्छ्रिया व्रजति ब्रह्मलोकम् ॥

उद्योग पर्व—अध्याय २६, श्लोक २४

९—वश्यस्य सतत धम पाशुपाल्य कृषिस्तथा ।

जग्निहोत्रपरिस्पन्दो दानाध्ययनमेव च ॥

वाणिज्य सत्पथस्थानमातिथ्य प्रगमो दम ।

विप्राणा स्वागत त्यागो वश्यधम सनातन ॥

अनुगासनपर्व—अध्याय १४१, श्लोक ५४ ५५

१०—प्रजापतिर्हि वर्णाना दास शूद्रमकल्पयत् ।

तस्माच्छूद्रस्य वर्णाना परिचर्या त्रिधीयते ॥

शांतिपर्व अध्याय—६० श्लोक २८

सस्कार नहीं हान । इसलिये वे द्विज नहीं बनने । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्व इन तीन के उपनयन आदि सस्कार होते हैं । अतः वे 'द्विज' कहलान है । ये तीन द्विज वण उच्च और श्रेष्ठ माने जाते है । इनमे भी ब्राह्मण सवश्रेष्ठ मान जाते हैं । किन्तु य तीना ही द्विज वण शूद्रा स उच्च हैं । सामाजिक व्यवहार म य तीना ही शूद्रो के साथ थोडा बहुत अन्याय करते रहे हैं । शूद्रों का कम सेवा' बताया गया है , किन्तु अपना इच्छा से कोई 'सेवा' का पमद नहीं करता । किसी न किसी सामाजिक और आर्थिक दबाव से शूद्र सेवा आदि क निम्न कम करने क लिय विवग हुये हैं । अन्य वर्णों के कर्मों मे इतनी विवगना नहीं है । उनम कुछ उत्तरदायित्व हैं तो कुछ कुछ सुविधायें तथा कुछ लाभ भी हैं । क्षत्रिया का शासन का तथा वश्या को सम्पत्ति का गौरव मिला । ब्राह्मणा को भी सम्मान का लाभ मिला यद्यपि सम्पत्ति और अधिकार की दृष्टि से वे त्यागा रह ।

फिर भी प्राय वर्णों के सम्बन्ध म यही माना जाता है कि य कम विभाजन क आधार पर बने । द्विजा क सम्बन्ध म तो यह अधिक मत्य है । वे कम क आधार पर ही तीन वर्णों म विभाजित हुये हैं । एक बार धर्मशास्त्र यह कहने हैं कि सस्कार से ब्राह्मण द्विज बनत हैं ।^{११} दूसरी बार यह भी कहा गया है कि पहल सभी ब्राह्मण थे । फिर कम भेद स धार वण बन गये ।

इम प्रकार वर्णों की उत्पत्ति कस हुई इस विषय म भारद्वाज ऋषि न भृगु मे पूछा ता उन्होंने कहा कि 'मुन ! पहले वर्णों म कोई अन्तर नहीं था, ब्रह्माजी स उत्पन्न होन क कारण यह सारा जगत् ब्राह्मण ही था । पाद विभिन्न कर्मों के कारण उनम वणभेद हो गया ।'^{१२} ' जा मनुष्य जपन ब्राह्म

११—जमना ब्राह्मणो भेय सस्कारद्विज उच्यते ।

विद्यया याति विप्रय श्रोत्रियस्त्रिभिरेव च ॥

कारो धर्मशास्त्र—भाग १, पृष्ठ १८६, अत्रि—१४१ १४२

१२—न विनेयोस्ति वर्णाना सर्वं ब्राह्मिद जगत् ।

ब्रह्मणा पूर्वमृष्ट हि कमभिर्वर्णता जनम् ॥

शांतिपर्व—अध्याय १८८ श्लो० १०

णोचित धर्म का परित्याग करके विषय भोग के प्रेमी, क्रोधी, तीक्ष्ण स्वभाव वान और साहम का काम पसन्द करने वाल हो गये, व ब्राह्मण क्षत्रिय भाव का प्राप्त हो गये । जिहाने गौओ से तथा कृषिकर्म क द्वारा जीविका चलान की वृत्ति अपना ली तथा जो ब्राह्मणोचित धर्म को छोड बठ, वे ही ब्राह्मण वरु भाव को प्राप्त हुए । इसी प्रकार जो गौच और सदाचार से भ्रष्ट होकर हिमा और असत्य क प्रेमी हो गये, लोभवग व्याघो के समान सभी तरह के निच कम करके जीविका चलान लगे, वे ब्राह्मण गूढभाव को प्राप्त हुए ।^{१३} पवित्रता और सत्यता तथा ज्ञान के कारण तीना द्विज थ्रेष्ठ कहलान लग और असत्यता और अज्ञान क कारण गूढ निम्नवोटि म आ गय और इन तीना द्विजो की सेवा का काय ही उनका प्रधान काय रह गया । उनकी अपवित्रता के कारण ही वे बढ पढने से बचित रखे गये तथा असत्यता और निन्दनीय काय करने के कारण ही गूढो को हीन समझा जान लगा ।

वदिक काल म जब जम से जाति नही बनी थी तब ता कोई भो गूढ का लडका अपने ज्ञान और सत्यता क कारण ब्राह्मणत्व का प्राप्त हो सकता था और पहले कई क्षत्रिय राजा ब्राह्मणो के समान तपस्या का जीवन बिताकर ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए ।

जमे राजा विश्वामित्र क्षत्रिय होत हुए तान और तपस्या के कारण ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो गय थे । किन्तु स्मृतिकाल मे जब जम से जाति बन गई तब शूद्रो का जीवन शूद्रता मे ही बँध गया और वे थ्रेष्ठ काय करके भी अपनी जाति को नही बदल सके । जो मनुष्य जिस जाति म उत्पन्न होता था वह फिर उसी जाति का बना रहने लगा चाह वह थ्रेष्ठ काय करे या अपवित्र

- १३—कामभोगप्रियास्तीक्ष्णा क्रोधना प्रियसाहसा ।
 त्यक्तस्वधर्मा रक्ताङ्गास्ते द्विजा क्षत्रता गता ॥
 गोम्यो वृत्ति समास्थाय पीता कृष्युपजीविन ।
 स्वधर्मान् नानुतिष्ठति ते द्विजा शैश्या गता ॥
 हिसानृतप्रिया लु घा सर्वाधर्मोपिजोविन ।
 कृष्णा गौचपरिभ्रष्टास्ते द्विजा शूद्रता गता ॥

निन्दनीय कार्य करे ऊँचे वर्ग अपन निन्दनीय कार्य में गूढ़ न हो सके और श्रेष्ठ कार्यों से गूढ़ ऊँचे न बन सके । जन्म से जाति बनने से लोग का अपनी उत्पत्ति का ध्यान न रहा । पहले क्षत्रिय वर्ग भी अपन तप, त्याग और ज्ञान में ब्राह्मणत्व का प्राप्त करना चाहत थे, और गूढ़ा में भी कई ऐसे लोग हुए हैं जिन्होंने घोर तपस्याएँ करके ब्राह्मणत्व को प्राप्त करने के प्रयत्न किये थे ।

वदिक युग में वरण-व्यवस्था जन्म पर आश्रित नहीं थी वरन् मनुष्य की स्वतन्त्र इच्छा पर निर्भर थी । कोई भी मनुष्य अपनी इच्छानुसार व्यवसाय चुन सकता था और उस व्यवसाय की लक्षणा अथवा चिह्न में पहचाना जाता था । वरण का अर्थ भारतीयों के लिए चिह्न से था 'रग' से नहीं था ।

'वरण' का अर्थ 'रग' अवश्य है । किन्तु श्वेत का रंग नहीं मानते । काले आदि ही रंग माने जाते हैं । इमीलिये पश्चिमी देगा में काले लोग को रंग-वाले (कलड) कहा जाता है । भारतीय परम्परा में उच्च जाति के लोग को सबरण कहते हैं । वे प्रायः गौरवरण के होते हैं । अतः सबरण का अर्थ रंग-वाले या 'काल रंग' के नहीं हो सकता । वरण का जय चिह्न ही करना उचित है । प्रत्येक वरण के कुछ चिह्न अथवा लक्षण होते थे, जिनमें वह वरण पहचाना जाता था । रंग भेद के आधार पर वरण व्यवस्था बनी है, यह मत समीचीन नहीं है । रंग भेद के आधार पर गूढ़ा को निम्न वरण में डाल दिया गया है यह तो सम्भव हो सकता है ।

वरण-व्यवस्था में जो उच्चस्थान द्विजा को दिया गया है उसका कारण उनके श्रेष्ठ कर्म ही थे तथा गूढ़ा को जो हीन पद दिया गया है उसका कारण वरण-व्यवस्था की योजना नहीं है वरन् जन्म का कारण कुछ सामाजिक परिस्थितियाँ हैं जो अन्य देगा में भी अन्य रूपा में पाई जाती हैं । समाज के कुछ वर्गों का निर्यातन और गोपण भारतवर्ष की ही विशेषता नहीं है । अन्य रूपा में वह समाजों के समाजा में मिलता है इसी कारण समाज के अनेक वर्गों में साम्यवादी और समाजवादी प्रवृत्तियाँ का विकास हुआ है ।

भारतीय समाज में वदिक काल से ही आचार की स्वच्छता और पवित्रता का अत्यन्त महत्त्व रहा है । यह स्वच्छता और पवित्रता धर्म एवं सस्कृति का अंग है । निम्न और मलिन कर्म करने के कारण गूढ़ा के लिए इतनी स्वच्छता और पवित्रता रखना सम्भव नहीं था । सम्पन्न तथा

मलिन कार्यों से मुक्त रहन व कारण उच्च द्विज वर्ण के लोग अधिक स्वच्छ और पवित्र रह सकते थे । अतः वे गूद्रों का अलग रगत थे । सवा कम और मलिनता व कारण गूद्र निम्न वर्ण म रह गय । उह वनाध्ययन स भी वचन कर दिया गया । सामाजिक परिस्थितिया व ाव व कारण वे सना हीन बने रहे । उच्च अपनी श्रेष्ठता का गव करते रहे । कोई किसी दुर्भावना अथवा द्वेष के कारण द्विजो ने गूद्रो के साथ अन्याय नहीं किया । अब तक गूद्रा व प्रति द्विजातिया के भाव' म बहुत कुछ मानवीयता रही थी । फिर भी इतना अवश्य है कि अपनी सुविधा और श्रेष्ठता के कारण वे समाज व इम वर्ग की हीनता को सहन करते रहे ।

भारतीय समाज म वर्ण व्यवस्था व विकास के कुछ विषय कारण हैं । इन कारणों को सांस्कृतिक कहना अधिक उचित होगा । सस्कृति म धर्म दशन कला साहित्य आदि सभी सम्मिलित है । किन्तु सामान्यरूप म प्राकृतिक आकाशाओ स भिन्न मनुष्य जीवन की साधना की जो दिशाएँ हैं उह हम सांस्कृतिक कह सकते हैं । प्राकृतिक सुख स्वाथ अधिकार आदि से भिन्न जीवन की साधना की दिशाएँ ही सांस्कृतिक कहलान की अधिकारी है । भारतीय जावन की प्रमुख विशेषता यही है कि उसका दृष्टिकोण ससार के सभी देशो की अपेक्षा अधिक सांस्कृतिक रहा है । ससार के प्राचीन देगो मे कला साहित्य आदि के उदाहरण अवश्य मिलते हैं । किन्तु किसी भी देग मे न इतने विपुल परिमाण म प्राचीन साहित्य मिलता है और न साधारण जीवन का स्वरूप इतना अधिक सांस्कृतिक है । भारतवष को छोडकर सभी प्राचीन देश राज्य के विस्तार म लग रह जो जीवन की एक प्राकृतिक दिशा है । प्राचीन भारत मे जिस प्रकार बंदो और पुराणो के रूप म एक विपुल लाक साहित्य मिलता है वसा ससार के किसी प्राचीन समाज म नहा मिलता । इसके अतिरिक्त लौकिक जीवन व साधारण क्रम म सस्कृति का जितना विपुल सौ दय समाहित है वसा भी किसी देश म नहीं मिलता । वर्ण व्यवस्था का योजना भारतवष के इसी विशेष सांस्कृतिक दृष्टिकोण का फल है ।

३—ब्राह्मणो का प्रभुत्व —

ब्राह्मणो की श्रेष्ठता का कारण कोई जातीय द्वेष या मानवीय अन्याय नहीं है जसा कि प्रायः कुछ लोग समझते हैं, बरन् उसका कारण प्राचीन भारतीय समाज म विद्या और साधना का व्यापक महत्व और प्रचार है । इस

वण विभाजन के कारण श्रेष्ठ वन वर ब्राह्मणा ने कोई लौकिक लाभ नहीं उठाया, वरन् तप और त्याग का जीवन स्वीकार करके सस्कृति, विद्या और साधना की उस परम्परा का युगा तक पोषण किया जिसका संरक्षण आज हमारी सरकार और हमारा समाज अपनी सम्पूर्ण शक्ति और अपने सम्पूर्ण साधना के द्वारा करने में अममर्ष है। इस अममयता का कारण केवल एक है लौकिक लाभ का दृष्टिकोण अपना लेने पर कोई भी समाज अपनी सस्कृति की रक्षा नहीं कर सकता। तप और त्याग के दृष्टिकोण से ही सस्कृति का विकास और संरक्षण सम्भव है। ब्राह्मणा के प्रभुत्व का कारण प्राचीन भारतीय समाज में सस्कृति का महत्व ही था। प्राचीन सस्कृति में विद्या साधना, धर्म और आचार का बहुत व्यापक महत्व होने के कारण उसका संरक्षण और प्रचार करने वाला एक पृथक् वर्ग बन गया जिसे ब्राह्मण वर्ग का नाम मिला। विद्या और सस्कृति में पूर्णतः मग्न हो जाने के कारण यह वर्ग अन्य किसी कार्य में योग नहीं दे सकता था। इसी प्रकार दान की रक्षा और व्यापार के लिए दो अलग वर्ग बन गए। विद्या की श्रेष्ठता के कारण ब्राह्मणा को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है।

ब्राह्मणों की श्रेष्ठता का कारण उनकी त्यागमयी वृत्ति है। वे अपने व्रतों का पालन दृष्टान्त में करते थे, वे गान्ध्या के निर्माता और परम योगस्वी होने थे। वे दया के कारण समस्त भूतों के लिए सुखदायी हैं। ब्राह्मणा की महिमा बताते हुए भीष्मजी ने युधिष्ठिर से कहा कि 'सदा तपस्या उनका धर्म और बाणी उनका महान् बल है। वे धर्मों की उत्पत्ति के कारण धर्म के नाता और सूक्ष्मदर्शी हैं।' ^{१४} उनकी इच्छा सदा धर्म के कार्यों के करने की ही होती है। वे सदा पुण्यकर्मों द्वारा धर्म में ही स्थित रहने वाले और धर्म के मनु हैं। उन्हीं का आश्रय लेकर चारों प्रकार की सारी प्रजा जीवन धारण करती है। ब्राह्मण अपने पूजार्थों की चलायी हुई भारी धर्म मयादा का भार मदा वहन करते हैं। वे सबके पयप्रदायक हैं, सबके नेता हैं और सनातन धर्म के करने वाले हैं। ब्राह्मण सदा धर्म का भार वहन करते हैं, उन्हें धर्म का भार

१४—तपो येषां धर्म इत्येव वाक् चैव विपुल बलम् ।

प्रभवश्चैव धर्माणां धर्मना सूक्ष्मदर्शिनः ॥

अनुशासनपर्व—अध्याय १५१, श्लोक ६

सहन करने मे कष्ट का अनुभव नहीं होता है । व सम्पूर्ण जगत के लिए दीप की भांति प्रकाशक तथा नेत्रवालो के भी नेत्र हैं अर्थात् नेत्रवालो को भी सहा सही धर्म का माग बताने वाला है । ब्राह्मण सबको शिक्षा देने वाला है । वेद ही उनका धर्म है । वे शास्त्रज्ञान मे कुशल, मोक्षदर्शी समस्त भूतो की गति के नाता और अध्यात्म तत्व का चिन्तन करने वाले हैं । श्रेष्ठ ब्राह्मण सब प्रकार के बन्धनो से मुक्त और निष्पाप है । उनके चित्त पर द्वन्दो का प्रभाव नहीं पडता । व सब प्रकार के परिग्रह का त्याग करने वाले और सम्मान पान योग्य है । ब्राह्मण आदि, मध्य और जत के भाना, सशयरहित भूत-भविष्य का विशेष ज्ञान रखने वाले तथा परम गति का जानने वाले और पान वाले होते हैं ।^{१५} ज्ञानी मनुष्य इही सब श्रेष्ठ कारणा क कारण सदा ब्राह्मणा का आदर करते हैं । इहां श्रेष्ठ गुणा और त्याग तपस्या के जीवन के कारण ब्राह्मणो का प्रभुत्व स्थापित हो गया । किसी भी काय मे ब्राह्मणोका स्वयं का स्वाध बिल्कुल नहीं हाता । स्वाध रहित स्वभाव होने क कारण ही दूसर लोग उह सम्मान की दृष्टि से देखते हैं और उह अपना व दशका हित कारी दवता मानते हैं । परापकारी व त्यागमयी साधना के कारण ही ब्राह्मण इस पृथिवी क दवता कहलान लगे है ।

१५—धमकामा स्थिता धर्मो मुकृतधमसेतव ।

यान् समाश्रित्य जीवति प्रजा सर्वाश्रतुविधा ॥

पचान सधनितारो यज्ञवाहा सनातना ।

पितृपतामहीं शुर्वोमुद्धर्ति पुर सदा ॥

दीप सर्गस्य लोकस्य चभुश्रभुष्मतामपि ।

सर्गगिन्ना धृतिपना निपुणा मोक्षदग्नि ।

गतिज्ञ सर्गभूतानामप्यात्मगतिचिन्तका ॥

मादिमप्यावसानानां ज्ञानारविद्यभ्रसंगया ।

परावरविशेषज्ञा गन्तार परमां गतिम् ॥

विमुक्ता पूतपाप्मानो निद्रा निष्परिग्रहा ।

मानार्हा मानिना नित्य ज्ञानविद्रुमहात्मभि ॥

अनुगामनसर्ग—अध्या० १५१, श्लो० ७, ८ १०, ११, १२ १३

धम गान्धा और महाभारत मे ब्राह्मणा को उनके गुण और वनव्य के कारण ही श्रेष्ठ माना गया है । जो ब्राह्मण उक्त गुणा से सम्पन्न हैं तथा जो उक्त वतव्या का पानन करत हैं वे ही सच्चे ब्राह्मण हैं । ऐस ब्राह्मण प्राचीन काल म बहुत रह है । ऐसे ही ब्राह्मणा न प्राचीन काल म विद्या साधना और ससृति का विस्तार किया था । आज इसी ब्रह्मभाव के अभाव के कारण भारतीय ससृति का सरक्षण कठिन हा रहा है । प्राचीन भारतीय समाज म विद्या त्याग और तप का आदर था अत ब्राह्मण इनकी साधना म सन्तुष्ट रह । वतमान युग म वभव और सत्ता का मान होन के कारण विद्या त्याग और तप का मूल्य घट रहा है । अत ब्राह्मण नी अपन धम स च्युत हो रह हैं । यह प्राचीन भारतीय ससृति क लिय हितकारक नहीं है किन्तु यह समय की अनिवाय गति दिखा देती है ।

४—शूद्रो का हीन स्थान—

वण व्यवस्था का सबसे अधिक शोचनीय और आपत्तिजनक पक्ष शूद्रा का हीन स्थान है । इसम सन्देह नहीं कि चतुर्थ वग क साथ भारतीय समाज म बहुत अन्याय हुआ है । जहाँ तक आर्थिक और सामाजिक अन्वय का प्रश्न है वह दूसरे दशो म भी रहा है । किन्तु भारतीय समाज म शूद्रा का तिरस्कार कुछ अधिक रहा है । इसके कुछ कारण तो विदगा क ही समान है किन्तु कुछ अन्य कारण भारतीय समाज म विशेष रूप स मिलन हैं । विद्या साधन और आचार का विपुल महत्व एक ओर जहाँ उच्च वर्गों का श्रेष्ठता का कारण बना वहा दूसरी ओर उसन हीन वग को हीनतर बनाया । धम और अध्यात्म की प्रधानता के कारण विद्या साधना और ससृति म आचार की बाह्य पवित्रता, स्वच्छता शुद्धता का महत्व बहुत रहा । मलिन वाय करन वाले शूद्रो के साथ उच्च वर्गों का सम्बन्ध इस कारण और भी दूर हो गया । बाह्य स्वच्छता का एक उच्च आदर्श शूद्रा के तिरस्कार का एक प्रधान कारण है । भारतीय समाज मे कृषि के विस्तार क साथ मासाहार कम होन पर उच्च वग की स्वच्छता का आदर्श अधिक ऊँचा ता गया तथा शूद्रा का तिरस्कार और बढ़ गया । दूसरे दगा म निम्नवग के साथ ऐना व्यवहार न हाने का कारण उन दसा की श्रेष्ठतर मानवीयता नहीं वरन् इसका कारण उन दगा म विद्या और ससृति का दतना व्यापक प्रचार न होना तथा उनम आध्यात्मिकता का प्रधान स्थान न हाना और आचरणपत्र

शुद्धता का कठोर आग्रह न होना है। इसके अतिरिक्त उन दंगा म मासाहार का प्रचार, पवित्रता क लिए विशेष आग्रह न होना आदि निम्नवर्ग क निरस्कार म बाधक रहा।

भारतीय समाज की इस विडम्बना को ठीक ठीक समझन म उक्त कारणों को न समझन के कारण प्राय सभी विदेशी विद्वानों न भूल की है। गूद्रों की स्थिति को उच्चवर्ग का घोर अत्याय माना जाता है। परिणाम की दृष्टि से इस अत्याय म कोई सदेह नहीं है। किन्तु जिन परिस्थितियों क कारण वह पदा हुआ उनम अमानवीयता का उद्देश्य स्वोजना समाज का मही जययन नहीं है। पिछले अनेक दशकी म जिन लोगों ने गूद्रों के प्रति उच्च वर्ग की भावनाओं को निकट स देखा है, व इस तथ्य को प्रमाणित कर सकते हैं कि गूद्रों के प्रति उच्च वर्गों की भावना में मानवीयता का अभाव नहीं था। इस प्रकार विद्या और आचार के उच्च जादशों के आधार पर भारतीय समाज म इस वर्ग विभाजन की मृष्टि हुई। इस विभाजन को तो पूरगत आय मगत तो नहीं कहा जा सकता किन्तु इसम अत्याय का आग्रह रहा है एमा कहना भी अनुचित है। मानवीयता के अभाव का दोषारापण भी सगत नहीं है। इतना अवश्य कहना होगा कि विद्या और ससृष्टि का यह उच्चादश तथा इसम अतिनिहित मानवीयता सम्पूर्ण भारतीय समाज के लिए समानरूप से शितकारी नहीं बन सकती है। इसका अभिप्राय यही है कि अनेक प्रकार स उपयोगी होत हुए भी इस वर्ण व्यवस्था म कुछ दोष अवश्य हैं। भारतीय समाज के पुनर्गठन म इस व्यवस्था का पूर उच्छेद करने की अपेक्षा इन दोषों का परिहार करके एक श्रेष्ठतर समाज का निमाण करना अधिक हिन कर हागा। इस प्रकार हमार दीघ इतिहास की सासृष्टिक परम्परा भी सुरक्षित रह सकती है और उन परम्परा के दोषों का निराकरण करके एक श्रेष्ठतर परम्परा का विकास भी हो सकता है।

समाज के विभिन्न वर्गों क आधार पर समाज का विभाजन इस व्यवस्था की एक विशेषता है। विद्या रक्षा व्यापार और सेवा के कार्य इतन आवश्यक हैं कि क किसी न किसी रूप म सभी समाजों म वतमान है और इसी प्रकार किसी न किसी रूप म य वर्ग भी सभी दंगों म मिलत हैं। मन्त्रिण कार्य करन वाले गूद्र वर्ग की सरया औद्योगिक विकास के माय एक तरह स बन रही है। भारतीय वर्ण व्यवस्था की आलोचना अत्यन्त मरल है

विन्दु इम बढत हुए सूद्रवग क साथ आज का जागरित समाज भी समुचित याय नही कर रहा है। विद्या, माघना सस्कृति और आचार इम वण व्यवस्था को सबसे बडी दन है। ऐसी स्थिति म हम अपा इतिहास के अनु रूप अपनी परम्पराओं के श्रेष्ठ पक्षा का सरक्षण करना चाहिए। वण-व्यवस्था म जो दोष रहे हैं व वन्दुत कुछ मनुष्य समाज के सामाय दोष है। विन्दु व मनुष्य-समाज क विकास क अनुरूप इनका सशोधन हा सकता है। इम सशोधन स हमारे प्राचीन इतिहास और सस्कृति के कत्राधर क; कत्रक भा धुन सकता है और वड विस्त्रावास म अपनी पूण प्रभा से प्रकाशित हो सकता है।

५—विद्या के साधक ब्राह्मण—

भारतीय सस्कृति म ब्राह्मणा के ज्ञानमय तथा मरन और सात्त्विक जीवन का आदर्श जीवन के पान प्रधान दृष्टिकोण का द्योतक है। प्राचीन काल मे यह सरलता का आदर्श बभब की लिप्सा का बहुत कुछ प्रतिरोध करता रहा। धम शास्त्रा म बभब और शासन का मोह त्याग कर तप और ज्ञान म ही अपन जीवन को समर्पित कर देना ब्राह्मण का मुख्य कर्तव्य माना गया है। प्राचीन व्यवस्था म दान दम्भिणा, भिक्षा आदि के द्वारा ब्राह्मणा के निर्वाह का एक साधारण प्रबन्ध था। इस प्रबन्ध क द्वारा ब्राह्मणा को जाविका की चिन्ता मे मुक्त कर दिया गया था जिससे वे पूण रूप से पान की साधना म सलग्न हो सकें। इस प्रकार ब्राह्मण का जीवन पूणत ज्ञानमय था। प्राचीन ब्राह्मण आध्यात्मिक आदर्श का जीवन्त प्रताक था। पान का सम्पादन और उसकी परम्परा का प्रकार ही उसका मुख्य धम था। अध्ययन और अध्यापन ही उसका मुख्य काम था। यह पान आधुनिक विज्ञान अथवा शास्त्रा क ज्ञान की भाँति बवल वाह्य और बौद्धिक नहीं था, वरन् उसम मनुष्य क मगल का और आत्मिक तत्वा का भी ममावेग था। इसलिए यह पान केवल मन्त्रिक का विकास न हाकर व्यक्ति और समाज क कल्याण का साधक था। मन शुद्धि इस पान की आवश्यक भूमिका थी। इसीलिए ब्राह्मणा क निर सात्त्विक जीवन का विधान विद्या गया था। सात्त्विक जीवन चरित्र और सत्ताचार का आधार है। इसी पान और सदाचार के आदर्श को समाज म प्रतिष्ठित करने के लिए शास्त्रकारा न ब्राह्मणा का पूण्यता का पद प्रदान किया था।

प्राचीन भारतीय समाज म ब्राह्मणों का बड़ा प्रभुत्व रहा है। विद्या के क्षेत्र म ब्राह्मणों का नेतृत्व और वतः सवने अधिक महत्वपूर्ण है। धम तप त्याग आदि ब्राह्मणों की प्रभुता के प्रमुख कारण रहे हैं। ऋग्वेद की पुरुषसूक्त की कल्पना म ब्राह्मणों को विराट पुरुष का मुल माना गया है। ब्राह्मणों की ब्रह्मा के मुख से उत्पत्ति बताते हुए महेश्वर ने उमा से कहा कि "ब्राह्मणों की सृष्टि विधाता के मुख से हुई है, इसीलिए वे वाणीविशारद होने हैं।" १६ 'ब्राह्मणों को इस भूमि का देवता बनाया गया है। ब्रह्माजी न उन्हें सव लोकों की रक्षा के लिए उत्पन्न किया है। सदा तप करना ही ब्राह्मण का धम है। विधाता ने पूर्वकाल म धम का अनुग्रह करने के लिए ही अपन तपोबल से ब्राह्मणों को उत्पन्न किया था। उपवास (इन्द्रिय संयम) व्रत का आचरण करना ब्राह्मणों के लिए सदा धम बतलाया गया है। व्रत के पालन पूर्वक उपनयन संस्कार का होना उसके लिए परम आवश्यक है क्योंकि उसी से वह द्विज होता है। गुरु और देवताओं की पूजा तथा स्वाध्याय और अभ्यास रूप धम का पालन ब्राह्मणों को अवश्य करना चाहिए। वदों का स्वाध्याय यज्ञ और दान ब्राह्मणों का धम है यह शास्त्र का नियम है। वदों को पढ़ाना यज्ञमान का यत्न कराना और दान लेना ये उसकी जीविका के साधनभूत हैं। मत्स्य मनोनिग्रह तप और गौचाचार का पालन—यह उसका सनातन धम है।" १७

१६—मुखतो ब्राह्मणा सृष्टास्तस्मात् ते वाग्बिशारदा ॥

अनुशासनपर्व—अध्याय १४१, २६ और ३० के मध्य में से।

१७—विप्रा कृता भूमिदेवा लोकाना धारणे कृता ।

तपएव सदा धर्मो ब्राह्मणस्य न सशय ।

स तु धर्मस्यमुत्पन्न पूर्व धात्रा तपोबलात् ॥

उपवास सदा धर्मो ब्राह्मणस्य न सशय ।

व्रतोपनयन च व द्विजो येनोपपद्यते ॥

गुरुदत्तपूजाय स्वाध्यायान्धसनात्मक ।

स्वाध्यायो यजन दान तस्य धम इति स्थिति ।

धर्मस्यध्यापन च यथाजन च प्रतिग्रह

सत्य गतिस्तप गोच तस्य धम सनातन ।

अनुशासन पर्व—अध्याय १४१,

श्लोक ३०, ३२, ३२, बाकी २६ ३० के मध्य का

धर्म सत्य, इन्द्रिय निषेध तथा मत्सरणा वा अभाव मत्सा, मत्प्रीतिरिति वा दोष न दग्ता यम करना, दास दास धर्म और शास्त्र ज्ञान—य ब्राह्मण के कारण यत है । २० ब्राह्मण को इन मोक्ष न मनुष्य भाषा तथा सोम्य स्वभाव वा होना चाहिए । भयन स्वल्प वा ज्ञान, उद्योग तथा दुःख सह्य की दक्षि और धर्म न विपरता य शुभ जिम मनुष्य न शास्त्र है यत पण्डित कहताया है । २१ 'विषया की आर दोषा यानी इन्द्रिया की भाग कामनाया वा पूजा साधयानी न माय स्वाय करना प्रमाण से दूर रहना तथा किमी प्राणी की हिंसा न करना य तीन निश्चय ही सत्वज्ञान की उत्पत्ति न कारण है । २२ ब्रह्मभाव की प्राप्ति क्षमा से ही प्राप्त हानी है । ब्राह्मण धर्म न सतु है । 'सर्व मनुष्यां वा ब्राह्मणं वा पूजा करती चाहिए । उक्त प्रति सुयोग्य पुत्र जमा अपन पिता न माय ध्यय हार करता है यमा ही कर । यथापि धर्म न कारण मनीषी ब्राह्मण इन सब मोक्ष वा धारण करते हैं ।' २३ ब्राह्मण की यानी और विचार न निर्भी

२०—धर्मश्च सत्य च दमस्तपश्च

अमातस्य ह्युस्तिरितानुया ।

यज्ञश्च दान च धृति धृत च

व्रतानि च द्वादश ब्राह्मणस्य ॥

उद्योग पर्व—अध्याय ४३, श्लोक २०

२१—आत्मज्ञान समारम्भस्तिरिक्ता धमनित्यता ।

यमर्थाप्रापक्यन्ति सच पण्डित उच्यते ॥

उद्योग पर्व—अध्याय ३३, श्लोक १५ से आगे

२२—इन्द्रियाणामुक्षदोर्णानि काम त्यागोऽप्रमादत ।

अप्रमादोऽविहिता च ज्ञानयोनिरसगयम् ॥

उद्योग पर्व—अध्याय ६६, श्लोक १८

२३—ते पूज्यास्ते नमस्कार्या वर्तेयास्तेषु पुत्रवत् ।

ते हि लोकनिमान् सर्वान् धारयन्तिमनीषिण ॥

अनुशासन पर्व—अध्याय १५१, श्लोक ३

कता होती है। वह सत्य बात कहने में कभी नहीं डरना। ब्राह्मण में उत्कृष्ट तेज होता है। उनके तेज और ज्ञान के समक्ष अपना भी, घूत लोग ठहर नहीं सकते थे। उनमें ज्ञान और धर्म का कुछ ऐसा प्रभाव होना था कि अच्छे अच्छे ज्ञानी धर्मात्मा राजा ब्राह्मणों का बड़ा सम्मान तथा आदर करते थे।

६—समाज के रक्षक क्षत्रिय

समाज का दूसरा महत्वपूर्ण वर्ग क्षत्रिय कहलाता है। ब्राह्मण धर्म विद्या, तप साधन आदि में लीन रहते थे। किन्तु समाज में सुरक्षा हान पर ही इनकी साधना सम्भव हो सकती थी। शासन सुरक्षा आदि का भार क्षत्रिया का था। यह शक्ति के द्वारा ही हो सकता था। अतः जिस प्रकार विद्या और तप ब्राह्मणों की मुख्य विभूति हैं उसी प्रकार शक्ति और तेज क्षत्रिया के गौरव हैं।

भारतीय धर्म शास्त्रों में शक्ति की साधना तथा धर्म सस्कृति और समाज की रक्षा क्षत्रिया का मुख्य धर्म माना गया है। किन्तु भारतीय सस्कृति दूसरों के प्रति अत्याचार में विश्वास नहीं करती। भारतवासियों ने शक्तिशाली होत हुए भी दूसरे देशों पर आक्रमण करके साम्राज्य स्थापित करने की कामना कभी नहीं की। उनकी शक्ति-साधना का प्रयोजन केवल आत्म रक्षा था। क्षत्रिया का बल अथवा बल नहीं था, वह ज्ञान से युक्त होने के कारण श्रेयस बल था। इसीलिए क्षत्रिया के लिए बल साधना के साथ-साथ अध्ययन का भी विधान था। ज्ञान के साधन और मान के साथ-साथ ज्ञान की रक्षा भी क्षत्रिया का प्रमुख धर्म था। ज्ञान का मान और रक्षण ही सस्कृति का रक्षण है। अतः ब्राह्मणों का रक्षा क्षत्रियों का प्रथम कर्तव्य था। प्राचीन काल में तपोविना की रक्षा का भार राजाओं पर था। तपस्वी ऋषि मुनि राजाओं के कुलगुरु होते थे। उन्हीं की मंत्रणा से राजा योग धर्मनीति का निवाह करते थे। वन में जाकर राजा ऋषि, मुनि और तपस्वियों के सुख दुःख का हाल भी पूछते थे। इस प्रकार ऋषि मुनि तपस्वियों और ब्राह्मणों के रक्षक क्षत्रिय सस्कृति के पोषक थे। इनके अतिरिक्त समाज में शक्ति और सुन्यवस्था की स्थापना भी उनका कर्तव्य था। समाज के भीतर वनमान अतिचारियों से भी दान, दुबल और अमहायजनों की रक्षा उनका धर्म था। ब्राह्मणों के साथ-साथ स्त्री, बालक, गौ आदि सरल और दुबल जीवों का संरक्षण भी क्षत्रियों के धर्म का महत्वपूर्ण अंग था।

वर्णाश्रम धम की व्यवस्था म ब्राह्मणा और क्षत्रिया की महिमा सबसे अधिक है । जिस प्रकार ब्राह्मणा का मुख्य कम धम और विद्या की साधना है उसी प्रकार क्षत्रिया का मुख्य कम समाज की रक्षा है । सुरक्षा का स्थिति धम और विद्या की साधना के लिए आवश्यक है । रक्षा के धम का पालन पराक्रम से होता है । मनुष्य के बाहु इस पराक्रम के पीठ हैं । इसीलिए क्षत्रिया की सृष्टि पुरुषसूक्त की कल्पना म विराट पुरष की बाहुआ से मानी गई है । क्षत्रियो की सृष्टि का बरण करते हुए महेश्वर ने उमा से कहा कि "क्षत्रिया की सृष्टि दोनो भुजाओ से हुई है इसीलिए उन्हें अपन बाहुबल पर गव हाता है । २४ क्षत्रिय अपन पराक्रम और बाहुबल से समाज की रक्षा करके उसके लिए साधना और प्रचार के लिए वाछित परिस्थिति का निमाण करते है ।

प्राचीन काल म राजा को लोग ईश्वर के सदृश ही पूजते थे और उनके आचरण के समान ही अपना आचरण भी बनाने का प्रयत्न करते थे । प्राचीन काल म वीर तेजस्वी राजा के सनिक भी वीर और तेजस्वी होते थे । "इन्द्रिय सयम स्वाध्याय जग्निहोत्र कम, दान, अध्ययन यज्ञोपवीत धारण, यज्ञानुष्ठान, धार्मिक काय का सम्पादन, पोष्यवग का भरण पोषण चारम्भ किए हुए कम को सफल बनाना अपराध के अनुसार उचित दण्ड दना वदिक यज्ञादि कर्मों का अनुष्ठान करना व्यवहार म याय की रक्षा करना और सत्य भाषण म अनुरक्त होना ये सभी कम राजा के लिए परम धम हैं । २५ क्षत्रिय

२४—बाहुभ्या क्षत्रिया सृष्टास्तस्मात् तेषाहुगविता ।

अनुशासनपत्र—अध्याय १४६,

श्लोक २६ और ३० के मध्य में से

२५—तस्य राज परो धर्मो दम स्वाध्याय एव च ।

अग्निहोत्र परिस्पन्दो दानाध्ययनमेव च ॥

यज्ञोपवीतधारण यज्ञोपमत्रियास्तथा ।

भत्यानां भरण धम कृते कमध्यमोद्यता ॥

सम्यग्दण्डे स्थितिधर्मोपमो वेदकृतुत्रिया ।

व्यवहारस्थितिधम सयवाचरतिस्तथा ॥

अनुशासन पर्ण—अध्याय १४१, श्लोक ४६, ६०, ५१

धम पर समाज और महत्त्व की व जय धम तथा मूल्य निभर हैं । इसीलिए शास्त्रो म अनक स्थानो पर क्षत्रिय धम की प्रगप्ता की गइ है । महाभारत व अनुमार ममन्त धम क्षात्र धम म समाहित हैं । वह सबका अवलम्बन है । क्षात्र धम की श्रेष्ठता बताते हुए भीष्मजी ने युधिष्ठिर स कहा कि नरेन्द्र । जैसे हाथी व पदचिह्न म सभी प्राणियों क पद चिह्न विनीन हा जात हैं उसी प्रकार सब धर्मो को सभी अवस्थाआ म राजधम व भीतर ही समाविष्ट हुआ समझो । २६ धम क ाता आय पुरुषा का कथन है कि अय समस्त धर्मो का आश्रय ता अल्प है हा उनका फल भी अल्प ही है । परन्तु क्षात्रधम का आश्रय भी महान् ह और उमक फल भी बहुसह्यक एव परम कल्याणरूप है अत इतक समान दूसरा काई धम नहीं है । सभी धर्मो म राजधम ही प्रधान है क्यकि उमके द्वारा सभी वर्णो का पानन होता ह । राजधर्मो म सभी प्रकार के त्याग का समावेश है और ऋषिगण त्याग को सर्वश्रेष्ठ एव प्राचीन धम बताते हैं । सत्ता स चल आन वाल धम मक्या वार नष्ट हो चुके है परन्तु क्षात्रधम न उनका पुन उद्धार एव प्रसार किया है । युग-युग म आदिधम (क्षात्रधम) की प्रवृत्ति हुई है इसलिए इम छानधम का लोक म सबसे श्रेष्ठ बताते हैं । युद्ध म अपन शरीर का आहुति दना ममन्त प्राणियों पर दया करना लोक-व्यवहार का गान प्राप्त करना प्रजा की रक्षा करना विपाद ग्रस्त एव पाटित मनुष्यों को दुःख और कष्ट म छुटाना—य सब बातें राजाआ के क्षात्रधम म ही विद्यमान हैं ।

क्षत्रिया की रक्षा के द्वारा ही इन पृथिवी पर सबका सुख गान्ति हाता है । मुरत्या व ही द्वारा ब्राह्मणा वस्था तथा क्षत्रिया के बढे-बढे काय निवि घ्नता पूर्वक सफल और पूरा होते है । क्षत्रिया व पराक्रम से दुष्टा का दमन होता है और सत्पुरुषा का साहस मिलता है । शत्रिया व बल और पराक्रम स ही यह पथिवी हरी भरी है । उनके ही बल स आज प्राचीन षय हमार

२६—यथा राजन् हस्तिपदे पदानि

सत्वीर्यत सर्वोत्सवोद्भवानि ।

एषां धर्मान् राजधर्मेषु सर्वान्

सर्वावस्थान् सम्प्रलीनान् निबोध ।

शान्तिपरा—अध्याय ६३, श्लोक २५

समक्ष बचे हुए हैं। समस्त विश्व मे क्षत्रियो जसा पराक्रम किसी अय जाति म दिखाई न दिया और न देगा। भारत ही एक ऐसा देश है जिमके क्षत्रिय राजाओ ने अपन दश की रक्षा के लिए अपने प्राण तक द न्यि किन्तु युद्ध से हारकर पीछे न लौटे। युद्ध करते समय भी क्षत्रिया के समक्ष सदब धम रहता था। जो क्षत्रिय धमपूर्वक लडकर विजय प्राप्त करता है विश्व मे उसी की यगकीर्ति की ध्वजा सबदा के लिए अमर हो जाती है। वेदाध्ययन स्वग प्राप्ति का कारण है परोपकार रुप महान यग भी स्वग का हुतु है तपस्या को भी स्वगलोक का साधन बताया गया है परन्तु क्षत्रिय के लिए इन तीना की अपक्षा युद्ध म मृत्यु का वरण ही स्वग प्राप्ति का जमोष साधन है।

इस क्षत्रिय धम और मर्यादा के पालन के लिए क्षत्रिया के लिए भी सस्वृत और सयत जीवन आवश्यक है। विपयो मे जासक्त क्षत्रिय सस्वृति का रक्षक नही हो सकता। इसलिए मनु ने विपयो मे आसक्ति को क्षत्रियो के लिये वर्जित किया है। प्राचीन-काल मे बहुत से राजा अपने ज्ञान और सयम के लिए प्रसिद्ध रहे हैं। उत्तरकाल म ऐश्वय के मद मे लीन होकर वे विपयो के दास बन। राजाओ और क्षत्रियो का यह पतन ही देश क पतन का कारण हुआ। अत्याचारो स समाज और सस्वृति की रक्षा के लिए सदा एक शक्ति के साधक और साहसी बग की आवश्यकता होगी। यौवन-काल मे सयम और सदाचार द्वारा शक्ति और बल का सम्पादन कर सस्वृति की रक्षा म उसका उपयोग करन वाले साहसी वीर समाज के भूषण हागे। यही क्षत्रिय धम एक सजग देग क युवको का उत्तम आदग है।

७-समाज के पोषक वैश्य —

धम गास्त्रा की बण-व्यवस्था म वशमा को भा द्विजा क अन्तगत माना जाता है। ब्राह्मण क्षत्रिय और वश्य ये तीना द्विज कहलाते हैं। ब्राह्मणा का इतना मान होने हुए भी विद्या आदि के लिए सुरक्षा के आवश्यक होने के कारण क्षत्रिया को भी अतिगय मान दिया गया है। वश्या का धम गास्त्रा म ऐसा विगेष मान ता नही निया गया है फिर भी थोड्ड मानकर ही उनका गणना द्विजा म की गई है। वश्य का धम प्रधान रुप म आर्थिक और लौकिक है। वश्या क आर्थिक धम म प्रावृत्तिक प्रलाभन क प्रावृत्तिक आकषण बहुत है। इसीनिण वश्या को विगेष मान नहा निया गया हैं। इन प्रलाभना का

प्रभाव इतना है कि धमशास्त्रा के अनुरोध के बिना भी वश्य धन-वभव व प्रताप से सहज ही श्रेष्ठ (सेठ) बन गये ।

वश्या की उत्पत्ति विधाता के उदर से हुई है । इस विषय म महेश्वर न उमा से कहा कि ' वश्या की उत्पत्ति (विधाता के) उदर स हुई है इसा लिए वे उदरपोषण के निमित्त कृपि, वाणिज्यादि वार्तावृत्तिका आश्रय ले जीवन निर्वाह करते है ।' २७ दूसरे वर्णों के लोग वश्या की सहायता से ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं क्योंकि वे प्रत्यक्ष फल देन वाले हैं । यदि वश्य न हा ता दूसर वश के लोग भी अपना जीवन आसानी स न निर्वाह कर सकें । पशुजो का पालन, खेती यापार, अग्निहोत्रकम, दान, अध्ययन, समाग का आश्रय लेकर सदाचार का पालन, अतिथिसत्कार दम, दम ब्राह्मणा का स्वागत और त्याग—ये सब वश्यों के सनातन धम हैं । यापार करन वस्तु सदाचारी वश्य का तिल चदन और रस की विक्री नही करनी चाहिए तथा ब्राह्मण क्षत्रिय और वश्य—इन त्रिवग का सब प्रकार स यथाशक्ति यथा योग्य आनिध्यसत्कार करना चाहिए ।" २८

२७—उदरादुद्गता व श्यास्तस्माद् वार्तोपजीवित ।

अनुशासनपर्वा—अध्याय १४१,

श्लोक २६ और ३० के मध्य में है ।

२८—तथैव देवि व श्याश्च लोकयात्राहिता स्मृता ।

अथे तानुपजीवति प्रत्यक्षफलदा हि ते ।

यदि न स्युस्तथा व श्या न भवेद्युस्तथा परे ।

व श्यस्य सतत धम पाशुपाल्य कृपिस्तथा ।

अग्निहोत्रपरिस्पन्दो दानाध्ययनमेव च ॥

वाणिज्य सत्पयस्यानमातिथ्य प्रशमो दम ।

विप्राणां स्वागत त्यागो धैर्यधम सनातन ॥

तिलान् गंधान् रसाश्च विक्रीणीयान् च धि हि ।

अनुशासनपर्वा—अध्याय १४१, श्लोक ५४, ५५, ५६

वश्य को व्यापार धर्मपूर्वक करना चाहिए भूठ बोलकर या कम तोल कर अधिक धन की इच्छा नहीं करनी चाहिए। धन के आधिक्य का दखकर वश्य को कुमांग पर नहीं जाना चाहिए और एक पत्नीव्रत रहकर ही सदा पवित्र जीवन बिताना चाहिए। धन के मोह में फसकर अधर्म कर्मा नहीं करना चाहिए। पशुओं की रक्षा का भार भी वश्य पर ही था। वृद्ध या अपंग गाय बल का भी वश्य दाना घास डालता था उन्हें बेचना नहीं था। वश्य अपने वरुण धर्म का परिश्रमपूर्वक पालन करके कृतकृत्य होकर अधिक अवस्था यतीत हो जान पर राजा की आज्ञा लेकर वानप्रस्थ याश्रम का ग्रहण कर।

वरुण व्यवस्था का विभाजन मूल रूप में धर्म का विभाजन था। समाज की सांस्कृतिक परम्पराओं के संरक्षण के लिए बौद्धिक धर्म की आवश्यकता थी यह धर्म ब्राह्मणों का धर्म था। समाज की रक्षा के लिए बाहुविक्रम की आवश्यकता थी यह क्षत्रियों का धर्म था। समाज के पालन के लिए उत्पादन के धर्म की आवश्यकता थी यह वश्या का धर्म था। वश्या ने जय के उत्पादन को ही अपना परम लक्ष्य बनाकर इस व्यवस्था के मूल आधार को खण्डित किया। पूजावाद के अथवात्र न समाज में अनेक विपमताया और विवृतिया को अवसर दिया। साम्यवाद इही विपमताओं को जाग्रत समाज को चुनौती है। आर्थिक व्यवस्था में धन के आधार को उन्मूलित कर उम धर्म के आधार पर प्रतिष्ठित करना एक महान क्रांति है। यह क्रांति अथवात्र और आर्थिक विपमताया का दूर कर सकेगी ऐसी सम्भावना है।

८-समाज के सेवक शूद्र—

शूद्रों की स्थिति भारतीय समाज और धर्मशास्त्र का एक शोचनीय विडम्बना है। चारों वर्णों में शूद्र सबसे अधिक हीन और न्यनीय है। विद्या धर्म और सभ्यता के माघक हान के नात ब्राह्मण पवित्र और पूजनाय हैं। समाज और सभ्यता के रक्षक हान के कारण शत्रिया का अनेक स्थान पर चारों वर्णों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। धन और बल का महिमा के कारण वश्य हा एम है जो धन मान बल स्वयंसेवता पवित्रता आदि समस्त मानवाय अधिवारा में बचिन रहकर जिन जीवन विनाये आय है।

धर्मशास्त्रों में उद्योगों का मजा का हा शूद्रों का एतमान धर्म माना गया

है।^{२९} उनके उपनयन आदि मस्कार नहीं होने तथा द्विजों के द्वारा पालित धमवृत्त्य आदि भी उनके लिए आवश्यक नहीं हैं। धमशास्त्रो म तो उह वेद की शिक्षा से ही वचिन किया गया है किन्तु अय शिक्षा भी वे ग्रहण न कर सके जिनकी उह आना थी। गूद्रा की निम्नस्थिति का सकेत पुष्पनूक्त म मिलता है जिसम गूद्रा को विराट् पुरुष के चरणा म स्थान दिया गया है। इस विषय म महेश्वर ने उमा से कहा कि “गूद्रों की सृष्टि पर मे हुई है इम लिए वे परिचारक होते हैं।”^{३०} शरीर म चरण सबसे नीचे और मलिन हाने हैं। वे किमी श्रेष्ठ कम के अधिकारी नहीं हैं। बाहु पराक्रम के साधन हैं तथा उरु अवलम्ब हैं, किन्तु चरण केवल सेवा के ही अधिकारी हैं। जिस प्रकार शरीर का सञ्चालन चरणा के द्वारा होता है, उसी प्रकार समाज का सञ्चालन भी गूद्रों के द्वारा होता है।

‘गूद्र का परम धम तीन वर्णों की सेवा करना है। जो गूद्र सत्यवादी जितन्द्रिय और घर पर आय हुए अतिथि की सेवा करन वाला है वह महान तप का मन्त्र्य कर लेता है। उसका सेवारूप धम उसके लिए कठार तप है। नित्य सदाचार का पालन और देवता तथा ब्राह्मणों की पूजा करन वाल बुद्धि मान गूद्र का धम का मनोवाछित फल प्राप्त हाता है। अय वर्णों की भाँति गूद्र भी सम्पूर्ण धर्मों के साधक बताये गय हैं। यदि गूद्र न हा ता सेवा का काय करने वाला कोई नहीं है। पहल के जो तीन वण हैं वे सब गूद्रमूलक ही है क्योकि गूद्र ही सेवा का कम करने वाल माने गये है। वाणिज्य, कारीगर क काय गिल्प तथा नाय्य भी गूद्र का धम है। उसे अहिसक, सदा-

२६—एकमेव तु शूद्रस्य प्रभु कम समादिगात् ।

एतेषामेव वर्णानां शुभ्र पाप्मनसूयया ॥

मनुस्मृति—अध्याय १, श्लोक ६१

३०—शूद्राश्च पादतः सृष्टास्तस्मात् ते पारिवारिकाः ।

अनुगासन पव—अध्याय १४१,

श्लोक २८ और ३० के मध्य में मे ।

चारी और दवताआ तथा श्राह्यणा का पूजक होना चाहिए । जो दूद्र ऊपर कह हुए धर्मों का पालन करता है, वह अपन अभीष्ट फला का भागी होता है ।¹³¹ चारा आथमा म स सयाम को छोड़कर तीना आथमा का उपभोग सत्वाचारी दूद्र कर सक्ता है ।

इस प्रकार निवृष्टधर्म, जिस प्राचीन काल म दूद्रा का एकाधिकार बना लिया था । यह प्राचीन काल की ही नहीं, वर्तमान सभ्यता की भी मना तन ममस्या है । छुआछूत वण भेद आदि का मिटाना अथवा अच्छा वेतन, विगा मीषा तक इसना सुधार तो है किंतु इसका पूरा समाधान नहीं है । छुआछूत का मिटाना निवृष्ट कार्यों क करने वाला की सामाजिक स्थिति और उनक प्रति सामाजिक दृष्टिकान म सुधार है । अच्छा वेतन उनकी आर्थिक स्थिति का उत्तमन है । किंतु इन सब सुधारों का प्रयाजन इन कार्यों क करने वाला की स्थिति को अच्छा बनाना है इन कार्यों को मिटाना अथवा कम करना नहीं है । नागरिक और वनानिक सभ्यता क विकास म य काय और ना विस्तृत तथा आययक हा रह हैं अत इनका कम करने की वरपना सभ्यता का बार्द विचारक नहा करता ।

विज्ञान क प्रभाव स आर्थिक व्यवस्था समान हानी जा रही है । इमग अथ व्यवस्था का समस्या का निराकरण हा तापगा । जय समार क टग

३१—दूद्र धम वरानिय सुधूषा क द्विजानिनु ।

त दूद्र सन्निवरा सायवाशे त्रिनद्रिय ॥

सुध वुरनिवि प्रात तर सच्चिनुव धरन् ।

विप त त्रि सुभाचारो देवताद्रिभुजक ।

दूद्रा धमदमगिष्ठा सत्यसुन्देन बुद्धिमान् ॥

वयः पूर्वो इन्द्रपुत्रा सर्वे कमदता स्मृता ।

वदन्तस्त्रिनु सुधूषा वगपथ इति स्मृता ॥

अनुशासनवर्ष-आश्वय १६१ अ० २७ २८ २९

जापम म गति समझीता कर लेंगे तो रक्षा की समस्या का समाधान हो जायेगा और वन की समस्या अर्थात् क्षत्रिय वग भी मिट सकता है । राष्ट्र की सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण से वश्यों की आवश्यकता न रहेगी । विज्ञान के अधि-राधिक प्रचार से सेवा भी कुछ कम हो जायेगी । विश्व की जब ऐसी स्थिति हा जायगी, उम समय नान का क्षेत्र अवश्य रह जायेगा, नान की समस्या नहीं मिट सकगी इस समाज म मानव जीवन की बसोटी ज्ञान हो होगा ।

महाभारत में ब्राह्मणधर्म

१ ब्राह्मण धर्म—

वशाश्रम धर्म की व्यवस्था में ब्राह्मणों का सर्वोच्च स्थान है। ऋग्वेद की पुरपत्नी की कल्पना में ब्राह्मणों को विराट पुरुष का मुख माना गया है। (ब्राह्मणाऽस्य मुखमासीत्) प्राचीन भारतीय समाज में ब्राह्मणों का बड़ा प्रभुत्व रहा है। विद्या के क्षेत्र में ब्राह्मणों का नैतृत्व प्रभुत्व और कर्त्तव्यत्व सर्वत्र अधिक महत्वपूर्ण है। धर्म तप त्याग आदि ब्राह्मणों की प्रभुता का अर्थ प्रमुख आधार रहे हैं। प्राचीनकाल में ब्राह्मण राजा और प्रजा दोनों का गुरु रहे हैं। सरल एवं सात्विक जीवन में तप और ज्ञान की साधना करके वे प्राचीन भारतीय समाज का नेतृत्व करते रहे हैं। प्राचीन भारतीय समाज और सभ्यता की अनेक विशेषताओं का श्रेय ब्राह्मणों को दिया जा सकता है। अपने सात्विक गुणों के कारण ब्राह्मण समाज में पूजित रहे हैं। राजा भी उनका आदर देते रहे हैं। दिव्य गुणों और सात्विक जीवन के कारण ब्राह्मण पृथ्वी के देवता (महीसुर, भूसुर) ('बड़ी प्रथम महीसुर चरणा तुलसी दास) रहे हैं।

कुछ आधुनिक विचारक ब्राह्मणों का इस प्रभुत्व में सामाजिक अत्याचार का बीज खोजते हैं। वे उन्हें भारतीय समाज के विभाजन और विघटन के लिये उत्तरदायी ठहराते हैं। उनके मत में सामाजिक वर्गों में ऊँच-नीच का विधान और विशेषतः दूद्रो का दलन ब्राह्मणों का ही अपराध है। धर्म और विद्या की साधना में विशेष रूप से मलग्न रहने के कारण धर्मशास्त्रों की रचना प्रायः ब्राह्मणों ने ही की है। धर्मशास्त्रों के अर्थ में प्राचीन ऋषि ब्राह्मणों के पूर्वज थे, ब्राह्मण उन्हीं के गोत्रधारी वंशज हैं। वरण विभाजन की व्यवस्था

धर्मशास्त्रों पर आधित है। इसीलिये ब्राह्मणों को इसके लिये उत्तरदायी माना जाता है। किंतु कोई आलाचक्र इस बात का उत्तर नहीं देता कि ब्राह्मणों को यह प्रभुता और श्रेष्ठता कैसे मिली तथा उनके द्वारा रचित धर्मशास्त्रों के विधान समाज में किस प्रकार स्वीकृत हुए। प्राचीन भारतीय समाज एक स्वतंत्र समाज था। उसमें ऐसी सगठित धार्मिक व्यवस्था अथवा राजनीतिक सत्ता नहीं थी जैसी कि आधुनिक धर्मों और आधुनिक समाजों में पाई जाती है। ऐसी स्वतंत्र स्थिति में कोई भी विचारक भिन्न विधान प्रस्तुत कर सकता था। कोई भी बग विद्या के अधिकार से वंचित नहीं था। क्षत्रिया और वन्या को ता वदाध्ययन का भी अधिकार था। धर्मशास्त्र श्रुति के अंतर्गत नहीं हैं, वे स्मृति के अन्तर्गत हैं। धर्मशास्त्रों के अध्ययन और निमाण का अधिकार तो गूढ़ों को भी था। ऐसी स्थिति में किसी को भी भिन्न धर्मशास्त्रों की रचना से वंचित करने का दावा ब्राह्मणों को नहीं ठहराया जा सकता। फिर ब्राह्मणों के पास कोई सगठित धार्मिक अथवा राजनीतिक सत्ता नहीं थी जिसके द्वारा वे इस्लामी धर्मशास्त्रों की भांति अपने धर्मशास्त्रों को समाज पर आरापित कर सकते। मत्स्य यह है कि जिस समय अथ बग विद्या का अधिकार होते हुए भी अथ और काम की आराधना में साक्ष्य थे, उस समय तप और त्याग का सात्त्विक जीवन बरण कर ब्राह्मणों ने विद्या की लाभ रहित साधना को अपना धर्म बनाया। धर्मशास्त्रों की रचना ब्राह्मणों की इसी विद्या साधना का एक अल्प अंग है। समाज की वास्तविक व्यवस्था और उसकी तत्कालीन आवश्यकताओं के कारण ही प्राचीन समाज में धर्मशास्त्रों के विधानों को बहुत कुछ स्वीकार किया। ब्राह्मणों तथा अन्य वर्गों ने भी इन विधानों के अनेक अंगों का उल्लेख भी किया है। क्या बग विभाजन के समान इस उल्लेखन के लिये भी ब्राह्मण उत्तरदायी हैं। वस्तुतः धर्मशास्त्रों का विधान पूर्णतः विधान अथवा ब्राह्मणों की रचना नहीं है। बहुत कुछ अंश में वह प्राचीनकाल में वर्तमान सामाजिक व्यवस्था का पजो करण मात्र है। यह कहना अधिक सगत है कि प्राचीन भारतीय समाज में ब्राह्मण वर्णों की नहीं बल्कि ब्राह्मणधर्म की प्रधानता और प्रभुता थी। यतः, तप, योग साधना विद्या आदि मूल्या को समाज में अग्रिम मान दिया जाता था। इसका कारण प्राचीन भारतीय समाज की प्रधानतः सात्त्विक और आध्यात्मिक वृत्ति थी। प्राचीन भारतीय समाज की इसी स्थिति में ब्राह्मणधर्म की प्रभुता स्थापित हुई है। समाज और शास्त्रों में ब्राह्मणों की श्रेष्ठता भी इसी का फल है। अथ वर्गों ने अथ और काम के आकर्षण में शास्त्रों द्वारा सम्मत

विद्या का साधना आदि को द्वाता मत्तय नहीं किया। अन्य वर्गों के द्वांग विद्या का, साधना आदि का अंग परिष्कार करने पर जब ब्राह्मण विद्या विद्या और त्याग के द्वारा उपासना पानन करती रहे तो उनका एक निश्चिन्त बग के रूप में स्मृत हो जाता स्वाभाविक था। इस प्रकार श्राना भाग्यीय गमाज की स्थिति तब सामान्य मान्यता तथा धार्मिक भावना एक हीवमांग जाति का अधिकार और भार था।

धर्मशास्त्रों में इसी परम्परा के अनुकूल धर्म, विद्या का साधना आदि साहित्यिक कर्मों के विषय अधिकारी के रूप में ब्राह्मणों का वर्णन किया गया है। इसी अधिकार के अनुकूल धर्मशास्त्रों में (ब्राह्मणों के ही द्वारा) ब्राह्मणों के लिये दान, दया तथा अहिंसा आदि गुण अभीष्ट माने गए हैं। महाभारत में भी इस प्रकार का धर्मशास्त्र ही है। वह स्मृति के अन्तर्गत है। महाभारत में भी धर्मशास्त्र की परम्परा के अनुकूल ही ब्राह्मणों के कर्तव्य और साधना बताया गया है। महाभारत में भीष्म जी ने युधिष्ठिर के पूछने पर उन्हें ब्राह्मणों के कर्तव्य इस प्रकार बताया कि ब्राह्मणों को अध्ययन अध्यापन यज्ञ, याजन तथा दान और प्रतिग्रह इन छह कर्मों का आश्रय लेना चाहिये।^१ मनुस्मृति में मनु ने भी ब्राह्मणों के ये ही छह कर्म महत्त्वपूर्ण बताये हैं।^२ इनमें तान अध्ययन याजन और दान हैं जिनका शत्रिय और वश्य को भी करने का अधिकार है। किन्तु तान कर्म अध्यापन याजन और प्रतिग्रह में ब्राह्मणों के अनिश्चित और किसी का अधिकार नहीं है। यह ब्राह्मणों के साथ बौद्ध पक्षपात नहीं है किन्तु विद्या और अन्य सांस्कृतिक मूल्या की रक्षा का नियम

१—अध्यापयेदयोयीत याजयेत यजेत वा
न वृथा प्रतिगृह्णीयात्त स दद्यात् कथंचन ।

धार्मिक—अध्या० २३४, श्लो० ११

२—अध्यापनमध्ययन यजन याजन तथा ।
दान प्रतिग्रहरचय षट्कर्माण्ययजमान ॥

मनुस्मृति—अध्या० १०, श्लो० ७५

है। शासन और व्यापार के साथ अध्यापन की संगति नहीं हो सकती। आचार्य के लिये जो त्याग और तप अपेक्षित है, वह शासन और व्यापार के साथ नहीं हो सकता। याजन के लिये वेद की विधिवादी भाव आवश्यक है। इन विधिवादी भाव इतना विस्तार है कि वह मनुष्य का सम्पूर्ण समय चाहता है। प्रतिग्रह का अर्थ दान करना है। त्यागी को ही प्रतिग्रह का अधिकार उचित है। शासन और व्यापार में सतन्त्र क्षत्रिय और वश्य बंधन दान दे सकते हैं किन्तु दान ले नहीं सकते। ब्राह्मण दान दे भी सकते हैं और दान ले भी सकते हैं। ब्राह्मण के उक्त छः कर्मों में उनका क्रम ध्यान देने योग्य है।

इस क्रम में ही भारतीय समाज में ब्राह्मणों का मान और महत्त्व का रहस्य मिलता है। ब्राह्मणों के छः कर्मों में अध्यापन प्रथम है। अध्यापन का अर्थ विद्यादान है। यह सब दानों में कठिन अंत श्रेष्ठ है। ब्राह्मणों के इस विद्यादान के ही द्वारा भारतवर्ष में विद्या का इतना प्रचार और विस्तार हुआ था। अध्यापन के लिए अध्ययन भी आवश्यक है। यजन और याजन का क्रम धार्मिक और सांस्कृतिक रहस्य से पूर्ण है। यजन धर्म का मुख्य आधार है। याजन के द्वारा ब्राह्मण समाज के धर्म और संस्कृति की रक्षा में योग देते हैं। याजन में दक्षिणा के रूप में कुछ लाभ भी होता है यद्यपि ब्राह्मणों के इस अर्थ-लाभ के सम्बन्ध में कुछ भ्रम भी है जो अब याजकों की दुर्लभता के द्वारा मिटता जा रहा है। दान और प्रतिग्रह में भी दान प्रथम है। इस प्रकार ब्राह्मणों के कर्तव्यों का क्रम धार्मिक और सांस्कृतिक व्यवस्था का रक्षक है।

२ ब्राह्मण आदरणीय एवं अवध्य है—

विश्वकोश के कारण ब्राह्मण आदरणीय है। वह सबका गुरु है। महाभारत में भी धर्मशास्त्रों के समान ब्राह्मणों को आदरणीय और अव्यय माना गया है। आदिपर्व में लिखा है कि—गुरुं ज्वं अमृतं जेतुं के लिये जान लग तत्र उनकी माता विनया न ब्राह्मणों के महत्त्व को बताते हुए कहा कि 'ब्राह्मण समस्त प्राणियों का अप्रज, सब वर्णों में श्रेष्ठ, पिता और गुरु हैं' १

३—तदेतद्विधिलिङ्गं स्त्वं विद्यास्तं द्विजोत्तमम् ।

भूतानामप्रभूर्भूविप्रो बलश्रेष्ठ पिता गुरु ॥

आदिपर्व—अध्या० २८, श्लो० ७३

माता पिता तो बालक व जन्म दन व कारण पूजनीय हैं, किन्तु ज्ञान व मेत्र में विद्या आरम्भ करान के कारण गुरु भी बालक का पिता ही है। पिता गरीर का पालन करता है, किन्तु गुरु जिज्ञा द्वारा बालक की बुद्धि तीव्र कर के एक नवीन सृष्टि करता है, इसलिए गुरु को पिता न भी अधिक आदरगाय और पूजनीय माना जाता है। महाभारत म विनता न गरड से कहा है कि "सत्पुरुषो व त्रिय ब्राह्मण आदरणीय माना गया है। तुम्हें काय आ भी जाय तो भी ब्राह्मण की हत्या से सवथा दूर रहना चाहिये।" * गुरु हान व कारण ही ब्राह्मण की हत्या करना धमघास्त्रा म वर्जित है।^१ महाभारत म भी इसे माना गया है। विनता न गरड से कहा कि अमृत जन व लिए जात समय तुम्हें जो रास्ते म मिले उसका तुम भक्षण कर लना किन्तु ब्राह्मण को नहीं मारना। विनता ने कहा कि "ब्राह्मण समस्त प्राणिया के लिए अवध्य है। वह अग्नि के समान दाहक होता है।"^२ ब्राह्मण की श्रेष्ठता बताते हुए अर्णो माण्ड्य न धर्मराज से कहा कि "ब्राह्मण का वध सम्पूर्ण प्राणिया व वध न भी अधिक भयकर है। * विद्या का साधक और जिज्ञक तथा धर्म एव

४—एवमादिस्वरूपस्तु सतां व ब्राह्मणो मत्र ।

स त तात न हतय सकृद्भ नापि सर्षिया ॥

आदिपर्ष—अध्या० २८, श्लो० ५

५—अवध्यो व ब्राह्मण सर्षांपराधेषु ।

बोधायन धर्मसूत्र—१ १० १८, १९

६—न च ते ब्राह्मण हतु कार्या बुद्धि क्षयचन ।

अवध्य सबभूताना ब्राह्मणो ह्यनलोपम ॥

आदिपर्ष—अध्या० २८ श्लो० ३

७—अपेक्षराधेऽपि महान् ममदण्डत्वया हृत ।

गरीयाद् ब्राह्मणवध सर्षभूतवधादपि ॥

आदिपर्ष—अध्या० १०७ श्लो० १५

संस्कृति का रक्षक होने के कारण ब्राह्मण को जन्म माना गया है। ब्रह्म हत्या को महापाप माना जाता है। यह ब्राह्मणों के साथ पक्षपात है। किन्तु इस पक्षपात में धर्म और संस्कृति की रक्षा का ध्येय निहित है। सात्त्विक वृत्ति के कारण अन्वतर दण्ड भी ब्राह्मण का सुधारक हो सकता है।

३ वारह व्रत—

अव्ययता का मातृ और प्रतिग्रह का अधिकार ब्राह्मणों को दिसा पक्षपात के कारण नहीं वरन् धर्म और संस्कृति की रक्षा के उद्देश्य से दिया गया था। इसी नियम विद्या की साधना और यजन को उनका मुख्य कर्तव्य माना था। वे ऐसे धार्मिक एवं सांस्कृतिक कर्तव्य हैं कि जिनमें कोई लाभ नहीं है, वरन् उलटा इनमें कष्ट है। इसीलिए अथ वर्णों ने इनकी ओर इतना ध्यान नहीं दिया, यद्यपि वे उनके लिये व्रजित नहीं थे। विद्या, धर्म और संस्कृति की साधना एक प्रकार की तपस्या है। इसके लिये सात्त्विक और व्रत गौण जीवन अपेक्षित है। 'व्रत' आचार और भावना के कुछ नियम हैं जो साधना को सम्भव बनाते हैं। महाभारत में ब्राह्मणों के लिये वारह व्रत बताये गये हैं। व्रतों के पालन के द्वारा ही ब्राह्मण तपस्या तथा विद्या आदि की साधना कर सकते हैं।

इसीलिये नियमांश व्रतों का पालन करने वाले ब्राह्मण ही अनेक तपस्याओं को करने वाले पाये गये हैं। धृतराष्ट्र ने मत्स्यजाल से ब्राह्मणों के व्रतों के विषय में पूछा कि ब्राह्मणों के व्रत कितने प्रकार के हैं? तब मत्स्यकुमार ने धृतराष्ट्र से कहा कि "धर्म, सत्य, इन्द्रियनिग्रह तप मत्सरता का अभाव, लज्जा, सहनशीलता, किसी के दोष को न देखना, यत्न करना, दान देना धर्म और शास्त्र ज्ञान—य ब्राह्मणों के वारह व्रत हैं।"

८—धर्मश्च सत्यं च दमस्तपश्च

अमात्स्यं ह्रींस्मिन्तिक्षानमुया ।

यत्तश्च दानं च धुनि श्रुतं च

व्रतानि च द्वादश ब्राह्मणस्य ॥

उद्योपपर्व—अध्या० ४३ श्लो० २०

इन व्रतों के पालन के द्वारा ही ब्राह्मण समाज में विद्या धर्म आदि का रक्षण बन सकता है।

४ स्वाध्याय ब्राह्मण का देवत्व है—

अध्यापन और अध्ययन ब्राह्मण के मुख्य कर्तव्य हैं। अध्यापन का आधार भी अध्ययन ही है। अध्यापन विद्या-दान का सामाजिक कर्तव्य है। अध्ययन विद्या की व्यक्तिगत साधना है। प्राचीन काल में वेद ही अध्ययन का मुख्य विषय था। वेद के अध्ययन को ही स्वाध्याय कहते थे। 'स्वाध्यायोऽध्यय' की श्रुति में स्वाध्याय का अर्थ अपनी शाखा का वेद है। स्वाध्याय के द्वारा ही वेद की रक्षा हो सकती थी। इसीलिये स्वाध्याय अर्थात् वेद का अध्ययन ब्राह्मण का मुख्य कर्तव्य है।*

महाभारत में युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों के कर्मों के विषय में भीष्म से पूछा कि सबके विषय में तो मुझ को जान हो गया कि समस्त प्राणियों में क्या क्या धर्म हैं। अब आप मुझे केवल ब्राह्मणों के धर्म बताने की कृपा कर। तब भीष्मजी बोल कि इन्द्रिय समय ब्राह्मणों का प्राचीन धर्म है किंतु वेदशास्त्रों का स्वाध्याय भी उनका मुख्य कर्म है इससे उनके सब कर्मों की पूर्ति होती है।**

स्वाध्याय ही ब्राह्मणों के देवत्व का मुख्य आधार है। विद्याध्ययन में रत रहने का कारण ही ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ है। यद्यपि युधिष्ठिर से पूछा कि ब्राह्मणों में देवत्व क्या है तथा पुरुषों का सा धर्म क्या है? तब युधिष्ठिर ने कहा कि वेदों का अध्याय ही ब्राह्मणों में देवत्व है तप सत्पुरुषों का सा धर्म

६—ब्राह्मणों निष्कारणों धर्म पंडितों वेदोऽध्येयो ज्ञेय इति ।

महाभाष्य—भाग १, पृष्ठ १५

१०—दममेव महाराज धर्ममाहु पुरातनम् ।
स्वाध्यायस्यैव च तत्र कर्म समाप्यते ।

शांतिपर्व—अध्या० ६०, श्लो० ६

है ।^{११} स्वाध्याय से हो ब्राह्मणों की वृत्ति सात्विक तथा धार्मिक बनती है और वे वेद, विद्या तथा धम एवम् ससृष्टि के रक्षक और समाज के गुण बनते हैं ।

५ ब्राह्मण के लक्षण तथा कर्तव्य—

धमशास्त्रा म ब्राह्मण के लक्षण और कर्तव्य विस्तार से बताया गये हैं । महाभारत में भी ब्राह्मणों के लक्षणों तथा कर्तव्यों का विवरण है । महाभारत म कहा गया है कि 'द्विज श्रेष्ठ और उदार बने, वेदा का अध्ययन कर सतत भावधान रखकर स्वाध्याय में ही लगा रहें देवता लोग उन्हे ब्राह्मण मानने दें ।'^{१२} भरद्वाज ने भृगुजी से ब्राह्मण के कर्मों के विषय में पूछा कि किन कर्मों से ब्राह्मण कहलाना है । सदा स ही ब्राह्मणों के पवित्र विचारा और ऊँच जादगों के कारण लोगों को ब्राह्मण के धम जानने के विषय में अभिलाषा रही है । तब भृगुजी बोले कि 'कर्म आदि सास्कारों से सम्पन्न पवित्र एवम् वेदा के स्वाध्याय में सलग्न ब्राह्मणोचित छ कर्मों में स्थित सदाचार का पालन तथा उत्तम यज्ञ, शिष्ट अन्न का भोजन करने वाला गुरु के प्रति प्रेम रखने वाला मनुष्य ब्राह्मण कहलाता है ।'^{१३} महाभारत में ब्राह्मणों

११—स्वाध्याय एषा देवत्व तप एषा सतामिव ।

मरण मानुषो भाव परिचादोऽस्ततामिव ॥

वनपर्व—अध्या० ३१३, श्लो० ५०

१२—ब्रह्मचारीवदायो योऽधीयीत् द्विज पुङ्गव ।

स्वाध्यायवान् मत्तो ऽत देवः ब्राह्मण विदुः ॥

वनपर्व—अध्या० २०६, श्लो० ३७३

१३—जातकर्मादिभि यस्तु सास्कार सस्कृत शुचि ।

वेदाध्ययनसम्पन्न षट्सु कर्मस्त्ववस्थित ॥

शौचाचारस्थित सम्यन्विघसाशो गृहप्रिय ।

नित्यव्रती मत्यपर स वै ब्राह्मण उच्यते ॥

सातित्वर्ष—अध्या० १८६, श्लो० २३

की दूसरी परिभाषा भी बताई कि ' जो जितेन्द्रिय धर्मपरायण, स्वाध्याय तत्पर और पवित्र ह तथा काम और क्रोध जिनके बस म है देवतानाग ब्राह्मण उसे ही मानते ह' १४ महाभारत में अनेक स्थान पर अनेक लोगो ने ब्राह्मण का परिभाषा अनेक प्रकार से बताई है । ब्राह्मणो के धर्म तथा वृत्त धर्म बताय ह तथा किसी न किन्ही अन्य गुणो को बताया है । इस प्रकार युधिष्ठिर क द्वारा ब्राह्मणा क वर्तव्य पूछ जाने पर भीष्मजी ने कहा कि मन इन्द्रियो का समय रखन वाला सोमयाग कराके सोमरस पीने वाला, सदाचारी दयालु निष्काम मरल मृदु, क्रूरता रहित क्षमाशील हो वही ब्राह्मण कहलान योग्य है । १५ युद्ध म विनय प्राप्त करके जब पाँचो पाँडव बटे थे तब चारो छोटे भाइयो न युधिष्ठिर स पृथ्वी पर राज करने क लिए आग्रह किया किन्तु युधिष्ठिर किमी प्रकार भी राज्य सम्भालन को तयार न हुए । तब द्रौपदी अत मे बोना कि हे राजन् ! आपके विचार तथा भाव दानिया जमे नही ह । जा विचार आप मे है उह दमनर ऐसा लगता है कि आप ब्राह्मण ह । द्रौपदी न ब्राह्मण का धर्म बतात हुए युधिष्ठिर से कहा कि 'समस्त प्राणिया म भद्रा भाव दान लना दान दना अध्ययन और तपस्या करना ये ब्राह्मणा क ही वृत्त धर्म ह' १६ इस प्रकार द्रौपदी न भी युधिष्ठिर का बहुत प्रकार से राज्य सम्भालन क विषय प्रेरित किया किन्तु वह किमी प्रकार राजी न हुए ।

१४—जितेन्द्रियो धर्मपरः स्वाध्याय निरत शुचि ।

कामक्रोपो वगो यस्य त देवा ब्राह्मण विदु ॥

धर्मपर्व—अध्याय २०७, श्लो० ३४३

१५—य स्मार् हान्त साधपश्रायणात्

सानुक्रोण सर्गसरो निरागी ।

अनुमृदुरनुगत क्षमावान्

स यो विप्रो मेव न पापधर्मा ॥

शांतिपर्व—अध्याय ६३, श्लो० ८

१६—विप्रता मन्मथु हानपप्यपरां तप ।

ब्राह्मण्यस्य धर्म स्थाप्य राजा राजसत्तम ॥

शांतिपर्व—अध्याय १४, श्लो० १५

कौणिक ब्राह्मण स चार्तालाप करती हुई पतिव्रता स्त्री ने ब्राह्मण के सनातन धम बताय कि 'स्वाध्याय, मनाविग्रह, मरलता और इन्द्रिय निग्रह - य ब्राह्मण के मनातन धम कहे जान हैं ।'^{१७} ब्राह्मण का इम लाक म मधुर भाषी तथा सौम्य स्वभाव का होना चाहिये ऐमा श्रुति का उत्तम वचन है । दुण्डुभ ने रुक को अहिंसा का उपदेश देन समय ब्राह्मण क धम के विषय म कहा कि "अहिंसा, सत्य, क्षमा और वेदा का स्वाध्याय निभ्रय ही य ब्राह्मण के उत्तम धम हैं ।'^{१८} जब परागर अपन पिता के वध से बटे दु खी हुए तब उन्होंने सम्पूर्ण राक्षस कुला को नष्ट करन क विचार स यन आरम्भ कर दिया । उस समय उन्होंने तीस अग्निया प्रज्वलित करली थी और चानक तथा बूढे सभी का विनाश करने का विचार कर लिया था । उस समय किमी अन्य ऋषि की उनके पास जाने की हिम्मत नहीं हुई । तब पुनस्त्य स्वय परागर के समक्ष उपस्थित हुए और बोले कि आपके पिता की हत्या क विषय म कुछ न जानने वाले सभी निर्दोष राक्षसों का वध करके आपका क्या प्रसन्नता होगी । पराशर से अनेक प्रकार की विनय करते हुए पुलस्त्य बोले कि "गात रहना ही (ब्राह्मणों का) श्रेष्ठ धम है ।'^{१९} इम प्रकार ब्राह्मणा का धम बता कर पुलस्त्य ने पराशर का शांत कर लिया तथा महर्षिया के समभान पर पराशर न उस राक्षस यन को समाप्त कर दिया और स्वय क्रोध को शांत करके अपना काय करने लगे ।

१७—धम तु ब्राह्मणस्याहु स्वाध्याय दममाजवम् ।

इन्द्रियाणा निग्रह च शाश्वत द्विजसत्तम ॥

वनपव-अध्याय-२०६, श्लोक ३६३

१८—अहिंसा सत्यवचन क्षमा चेति विनिश्चितम् ।

ब्राह्मणस्य परो धर्मो वेदानां धारणापि च ।

आदिपव-अध्याय-११, श्लोक १५-१५३

१९—गम एव परो धमस्तमाचर पराशर ।

अर्धमिच्छ वरिष्ठ सन् क्रुह्ये त्व पराशर ॥

आदिपव—अध्याय १८०, श्लोक १३

६—पंडित के लक्षण—

वेद का अध्ययन और अध्यापन ब्राह्मण का मुख्य कर्तव्य है। विद्या स युक्त मनुष्य विद्वान् कहलाता है। विद्वान् को पंडित भी कहने हैं। आज कल पंडित एक प्रकार से ब्राह्मणों की उपाधि बन गई है। किन्तु वास्तव में जानवान को ही पंडित कहना चाहिये। महाभारत में विदुर ने धृतराष्ट्र को पंडित के लक्षण बताते हुये कहा है कि अपने स्वरूप का ज्ञान उद्याग दुख सहने की शक्ति और धर्म में स्थिरता ये गुण जिस मनुष्य को पुरुषार्थ में च्युत नहीं करते वही पण्डित कहलाता है। २ महाभारत में यासजी ने गुरुदेवजी को ब्राह्मण के कर्तव्य बताते हुए कहा कि ब्राह्मण को बेलों में बताई हुई नयी विद्या—'ओइम् इन तीन अक्षरों से सम्बन्ध रखने वाली प्रणव विद्या का चिन्तन एवं विचार करना चाहिये। वेद को छोटो अंग सहित ऋक् साम यजुष एव अथर्व वेदों का स्वर-व्यंजन के सहित अध्ययन करे। ब्राह्मण सत्ता सदाचार का वर्तन करे। किसी जीव को कष्ट न दे। सत्य प्रतिष्ठा बने। सत्ता की सेवा में रह कर तत्त्वज्ञान प्राप्त करे। सत्पुरुष बने और शास्त्रों की पाठ्या करने में कुशल बने। ब्राह्मण को अपने तेज की वृद्धि करने के लिये क्या करना चाहिये ऐसा पूछा जाने पर यासजी बोल कि तप मय और क्रोध से रहित जो ब्राह्मण है वह दुःख से दूर रहता है। दान व दाय्यायन यत्न, तप लज्जा सरलता और इन्द्रिय संयम—इन सद्गुणों से ब्राह्मण अपने तेज की वृद्धि और पाप का नाश करता है।' २१ संसार रूपी दुःख से उद्धार करने वाला भी केवल मात्र साधन सत्य और ज्ञान है। इस ज्ञान को ब्राह्मणों से ही प्राप्त

२०—आत्मज्ञान समारम्भस्ति तिसा धमनित्यता ।

यमर्थाप्रापक्यति स व पंडित उच्यते ॥

उद्योग पर्व—अध्याय ३३ श्लोक १५ से आगे

२१—वीतहृत्पमदक्रोधो ब्राह्मणो नावसीति ।

दानमध्ययन यज्ञस्तपो ह्यीराजव दम ॥

ऐतवधयते तेज पाप्मानं चापक्यति ॥

प्राति पर्व—अध्याय २३५, श्लोक ७३

जा सक्ता है । इसलिये दु खी मनुष्य को गार्ति का भाग बताने वाला ब्राह्मण ही है । उस नानी ब्राह्मण के धम बताते हुए भीष्मजी ने युधिष्ठिर से कहा कि बिना पुत्रप्राप्ति के प्राचीन इतिहास का एक उदाहरण पिता पुत्र रूप में दिया करते हैं कि पिता एक ब्राह्मण था, वह स्वाध्याय में ही निपुण किन्तु उसका मेधावी नामक लड़का मोक्ष धम के ज्ञान में कुशल था । पुत्र ने पिता से कहा कि 'ब्रह्म में एकीभाव, समता, सत्यपरायणता सदा सदा दण्ड का त्याग (अहिंसा) सरलता तथा सब प्रकार के सत्काम से निवृत्ति इनके समान ब्राह्मण का दूसरा कोई धम नहीं है । २२ कृष्ण अर्जुन को समझाया कि तुम कौरवों की स्वाथ सिद्धि के लिये क्यों वाग्जाल रहे हो ? सजय पहले तुम चारों वर्णों के विभाग तथा कर्म का देख ला ब्राह्मण के कर्म बताते हुए कृष्ण ने सजय से कहा कि ब्राह्मण अययन एक दान कर तथा प्रधान प्रधान तीर्थों की यात्रा कर गिण्ड्यो को और यजमाना का यज्ञ कराने अथवा गार्तव्यविहित प्रतिग्रह (दान) कर कर । २३ धृतराष्ट्र को विदुर ने पाण्डवों के साथ उचित याच्य करन लिये उपदेश दिया । उस उपदेश में विदुरजी ने अनेक प्रकार की लोक लोक की बातें धृतराष्ट्रजी से कही किन्तु उनकी उचित तथा याच्यसंगत का धृतराष्ट्र पर कोई असर नहीं हुआ और उन्होंने प्रारब्ध पर ही भव छोड़ दिया । फिर भी विदुरजी ने चारों वर्णों के धम बताते हुए ब्राह्मण

—नताह १ ब्राह्मणस्याति वित्त

ययक्त्वा समता सत्यता च ।

क्षीले स्थितिदण्डनिधानमाजय

सतस्ततश्चोपरम क्रियाम्य ॥

शांतिपर्व-अध्याय २७७, श्लोक ३७

—अधीयीत ब्राह्मणो धी यजेत

दद्यादीयात् तीर्थ मुह्यानि चव ।

अध्यापयेद् याजयेच्चापि याज्यान्

प्रतिग्रहान् वा विहितान् प्रतीच्छेत् ॥

उद्योग पर्व-अध्याय २६, श्लोक २३

धर्म का उद्देश्य धर्म इस प्रकार कहें कि ' जो निरस्य जाय म ग्नान गच्छ्या तदाय यज्ञागवीग धारण तस्य स्वाध्याय कर्या है तथा पतिता का अन्त रक्षण भेदा है तस्य यज्ञाग है गुरु की सेवा करता है यह ब्राह्मण कभी ब्रह्मलोकाय न पतिता नहीं होता । २४ मनस्सुजाय न भूतगण को मातृभाविन कनध्याय विषय म आश्रय दाने यत्ताई । मनुष्य क विषय शास्त्र, ऋषि मोक्ष काम मातृ ईर्ष्या, मोह, कृष्णा, कामरता आदि ब्यरह महान् शोच मनुष्या क प्राणनाशक है । मनुष्या क अनेक दोष यत्ताये के बाद मनस्सुजाय जीन ब्राह्मणा क ब्यरह ब्रह्म तथा छद यम भी यत्ताय । उमक ब्यर ब्राह्मणा क मुख्य धर्म यत्ताय ह्यै धृतराष्ट्र से कहा कि ' इन्द्रियनिग्रह त्याग और अत्रमा—इनम अमृत की स्थिति है । ब्रह्म ही जिनका प्रधान लक्ष्य है, उन बुद्धिमान ब्राह्मणा क य हा मुख्य साधन है ।' २५ श्रेष्ठ ब्राह्मण दूगरो की पिता कभी नहीं बनत हैं ।

श्री कृष्ण ने अजु न को तीन प्रकार क गुणा को याने क ब्यर चारा वर्णों के गुणा को अलग-अलग यत्ताया । श्री कृष्ण न ब्राह्मण क स्वाभाविक गुण इस प्रकार यत्ताय कि ' अन्त करण का निग्रह करना धर्मपालन क विषय कष्ट सहना, दूसरा क अपराधा को क्षमा करना इन्द्रिय और मन को मरत रखना वेद शास्त्र और ईश्वर, परलोक आदि म श्रद्धा रखना वेद शास्त्रा का अध्ययन, अध्यापन करना और परमात्मा क तत्त्व का अनुभव करना—य सबके

२४— नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती

नित्यस्वाध्यायी पतिताप्रयजो ।

सत्य ब्रह्मन् गुरुवे कम कुर्वन् ।

न ब्राह्मणरक्ष्यत ब्रह्मलोकात् ॥

उद्योगपर्व—अध्याय ४० श्लोक २५

२५— दमस्त्यागोऽयाप्रमाद इत्येतोऽवमृता स्थितम् ।

एतानि ब्रह्ममुख्याना ब्राह्मणानां मनीषिणाम् ॥

उद्योग पर्व—अध्याय ४५, श्लोक ७

सब ही ब्राह्मण के स्वाभाविक धर्म हैं। २^१ ब्राह्मण और क्षत्रिय के मत एक ही जाने पर दुष्टों का, शत्रुओं का विनाश हो जाता है और सतपुत्रों को सुख मिलता है तथा दश म सुख गति रहती है।

७—क्षत्रिय बल से ब्रह्म तेज वास्तविक है—

जिन क्षत्रिय राजाओं ने अपने बाहुबल का अहंकार ब्राह्मण ऋषियों को दिखाया था वे भी अंत में अपने बाहुबल में परास्त हुए और ऋषियों के तेज बल को ही श्रेष्ठ माना। राजा विश्वामित्र अपनी मना लेकर वशिष्ठ मुनि के आश्रम पर अपनी गाय लेने आये तो वशिष्ठजी ने बड़े प्रेम सद्भाव से उनसे कह दिया कि गाय का ले जाइय। किंतु जब अश्वत्थामा के प्रयत्नों के बाद भी वह गाय जब विश्वामित्र के साथ नहीं गई, तो वह वशिष्ठ मुनि पर रोष करने लगे। नदिनी गाय भी मुनि से कहा कि इस समय आप भी मेरी रक्षा क्या नहीं कर रहे हैं। ये राजा के सैनिक मुझे डटो से मार रहे हैं। तब मुनि वशिष्ठ बाल कि नदिनी। ब्राह्मणों का धर्म भ्रमा है। तब नदिनी ने रोष प्रकट करके विश्वामित्र की ममस्त सेना को भगा दिया और स्वयं उनके साथ नहीं गई। इस गाय के व्यवहार से क्रोधित होकर राजा विश्वामित्र ने वशिष्ठ मुनि पर अनेक प्रकार के शर्कों की वर्षा की। किंतु धैर्यवान भ्रमागील ब्राह्मण पर जब वाणा का कोई अमर नहीं हुआ, तब निराश होकर अहंकारी राजा अपने मन में सोचने लगे कि इसका क्या कारण है कि क्षत्रिय का बाहुबल ब्राह्मण के तपस्यापूरण जीवन पर कुछ सफल ही नहीं होता। तब उन्हें पान हुआ और उन्होंने कहा कि 'क्षत्रिय बल तो नाम मात्र का ही बल है उसे धिक्कार है। ब्रह्मतेज जनित बल ही वास्तविक बल है।' २७

२६—गमो दमस्तप शौच, क्षातिराजचमेव च ।

ज्ञान विज्ञानमास्तिक्य ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ॥

भीष्मपर्व—अध्याय ४२, श्लोक ४२

२७—विश्वामित्र क्षत्रभावान्निविष्णो वाक्यमद्वधीत् ।

धिग बल क्षत्रियबल ब्रह्मतेजोबल बलम् ॥

आदि पर्व—अध्याय १७४, श्लोक ४५

जब सजय ने धुनराज को श्रीकृष्ण का विषय में बताया तो वह बहुत लगे कि सजय । मुझे यह मांग यनाओ जिगस चरनर मैं मन्मूग इन्द्रिया का स्वामी परममोक्ष स्वस्व भगवान श्री कृष्ण का प्राप्त कर गूँ । सब मजय न कहा कि विषयो की ओर दोड़न वानी इन्द्रिया का भोग कामनाओ का पूग सावधानी के साथ त्याग करना प्रमात् से दूर रहना तथा किमी प्राणा की हिसा न करना—य तीन निश्चय ही तत्व ज्ञान का उत्पत्ति म कारण है २८ जिस तत्व ज्ञान का बोध हा जाता है वहा मनुष्य श्रीकृष्ण स्वस्व परमात्मा का प्राप्त करने म वृत्तवृत्त्य हो जाता है । ब्रह्मभाव की प्राप्ति क्षमा म हा प्राप्त होती है ऐसा युधिष्ठिर ने द्रौपदी से कहा । जब द्रौपदी न युधिष्ठिर म कहा कि आपको अपन शत्रु दुर्योधन का प्रति रोष क्या नहीं होता आप उमका मय अनीतियो को सहन करते जात हैं । इससे आप भी दु ख उठा रू है तथा आपका कारण ही आपका य चारो भाई भी दु ग्वा को सहन कर रहे हैं । आप स्वय बुद्ध न करें किन्तु इन अपने छाटे भाइया को ता आना दें । जिमम ये लोग उस दुरात्मा पापी दुर्योधन का उसका न करन योग्य कार्यों का बन्ता दे सके । द्रौपदी की एसी बातें सुन कर युधिष्ठिर बोन कि विद्वान पुष्प का सदा क्षमा का ही आध्य लेना चाहिये । मनुष्य जब सब बुद्ध सहन कर लता है तब वह ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है २९ ब्रह्मभाव प्राप्त होना ही भगवान श्रीकृष्ण की प्राप्ति होना समझना चाहिये । ब्रह्मज्ञानी के लक्षण बतलात हुए यासजी न युवदेवजी से कहा कि जो जनसमुदाय का सप सा ममभ कर उमके निकट जान से डरता है स्वादिष्ट भोजन जनित तृप्ति को नरक मा मान कर उससे दूर रहता है और स्त्रिया को मुर्दों के समान मान कर उनकी जार से विरक्त रहता है उस देवता ब्रह्मज्ञानी मानते है । ३ जा मनुष्य

२८—इन्द्रियाणामुदीर्णानां कामत्यागोऽप्रमादत

अप्रमादोऽर्षिर्बहिसा च ज्ञानयोनिरसशयम् ॥

उद्योग पर्वा—अध्याय ६८, श्लोक १८

२९—क्षतव्यमेव सततं पुरुषेण विजानता ।

यदा हि क्षयते स ई ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥

वनपर्व—अ० २९ श्लोक ४२

३०—अत्रैरिव गणाद् भीत सौहित्यान्नरकादिव ।

कुणपादिव च स्त्रीभ्यस्त देवा ब्राह्मण विदु ॥

शांतिपर्वा—अध्याय २४५ श्लोक १३

सम्मान प्राप्त होने पर भी हर्षित नहीं होता, अपमानित हान पर क्रुधित नहीं होता तथा जिमन सम्पूर्ण प्राणियों को अभय दान कर दिया है उमी को लोग ब्रह्मपानी मानत हैं । व्यासजी ने गुरुदवजी से कहा कि ' जिसका जीवन धर्मके लिये और धर्म भगवान् श्री हरि के लिये होता है । जिमके दिन और रात धर्म पालन मे ही व्यतान होने हैं उमे धर्मज्ञ मानत हैं । ३१

येप तीन कर्म केवल ब्राह्मण के लिये ही होने हैं । दान देना यज्ञ करना तथा न्यायपन ये तीन कर्म केवल ब्राह्मण के लिये हैं ऐसा धर्म शास्त्रा म लिखा है । राजा श्वेताक बल और पराक्रम म इन्द्र के समान थे उनके समय म यज्ञ करने वाला दाता और बुद्धिमान दूसरा कोई नहीं था । उनके मन मे प्रतिदिन यज्ञ और दान के सिवा दूसरा कोई विचार नहीं उठता था । इस बुद्धिमान नरेश के साथ लगातार वर्षों तक यज्ञ करने करते ऋत्विजा की आँखें धूये से व्याकुल हो उठी थी । इस कारण खिन्न मन हाकर वह ऋत्विज राजा का छोड़कर चले गये, फिर उनकी इच्छा म ही राजा ने दूसरे ऋत्विजा को बुनाकर अपने यज्ञ कर्म पूरा कराये । किन्तु कुछ समय के बाद वह दूसरे ऋत्विज भी राजा का साथ छोड़ गये । तब दुःखी होकर राजा श्वेताक ने शिव को प्राप्त करने के लिये कठोर तपस्या की । उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने उन्हें दान भी दिये किन्तु उनकी इच्छा पूरा करने के विषय म स्वयं शिव ने राजा म कहा कि शास्त्रीय विधि के अनुसार यज्ञ कराने का अधिकार ब्राह्मणों का ही है । ३२ शिव ने कहा कि मैं ब्राह्मणों का काम कोई नहीं कर सकता हूँ । यज्ञ कराने का काम केवल ब्राह्मण ही कर सकता है । इससे प्रतीत हाना है कि ब्राह्मण का काम शास्त्रा ज्ञानपूरा तथा तपस्या से पूरा होता था इसी कारण उमके काम का कराना दूसरों के लिये बड़ा कठिन तथा अमम्भव था ।

३१ - जीवितं यस्य धर्माय धर्मोहययमेव च ।

अहोरात्राश्च पुण्याय त देवा ब्राह्मण विदुः ॥

गातिपर्वा-अध्याय २४५, श्लोक २३

३२-तोषितोऽह नृपश्चेह स्वमेहाद्येन कर्मणा ।

याजन ब्राह्मणाना तु विधिदृष्ट परतप ॥

आदिपर्व-अ० २२२, श्लोक ५१

६ दान लेना ब्राह्मणधर्म—

दान लेना भी केवल ब्राह्मणों का धर्म है। अथ द्विजा का दान लेना का अधिकार नहीं है। दान देने का अधिकार तो सब द्विजा को है किन्तु दान लेना केवल ब्राह्मणों को बताया है। ययानि और अष्टक म जय नवाद हुआ तो अष्टक न ययानि से कहा कि स्वर्ग और म जो लाभ विद्यमान है व सब आपको लेना है तथा अन्तरिक्ष या द्युलोक म मरे लिये जो स्थान हैं, उनमें आप गांधी ही मोह रहित चल जायें। तत्र ययानि न कहा कि 'ब्रह्मवत्ता ब्राह्मण ही प्रतिग्रह लेता है। मेरे जसा क्षत्रिय कल्पि नहीं। क्षत्रिया का दान करना चाहिये, लेना नहीं।'^{३३} ययानि न अष्टक से कहा कि जो ब्राह्मण नहीं है उस दीन याचक बनकर कभी जीवन नहीं बिताना चाहिये। याचना तो विद्या में दिग्विजय करने वाले विद्वान ब्राह्मण की पत्नी है। अर्थात् ब्रह्म वेत्ता ब्राह्मण को ही याचना करने का अधिकार है।^{३४}

वत्सव्यायन जी ने माकण्डेय जी से दान देने से प्राप्त सुख तथा स्वर्ग के विषय म पूछा कि किन अवस्थाओं म दान देकर मनुष्य इन्द्रलोक का सुख भोगता है। माकण्डेय जी न कहा कि सोलह प्रकार के दान 'यय' हैं। (१) सन्यास आश्रम में फिर गृहस्थ आश्रम आय हुए पवित्र को दिया हुआ दान

३३—नास्मद्विषो ब्राह्मणो ब्रह्मविच्च

प्रतिग्रहे घतते राजमुख्य ।

यथा प्रदेय सन्त द्विजेभ्य—

स्तयादद पूवमह नरेन्द्र ॥

आदिपर्व—अध्याय ६२, श्लो० १२

३४—ना ब्राह्मणं कृपणो जातु जीवेद्

यान्वापि स्याद् ब्राह्मणी वीरपरानी ।

सोऽहं नवाकृतपूव चरेय

विधित्तमानं त्रिभु तत्र साधु ॥

आदिपर्व—अध्याय ६२, श्लो० १२

व्यथ है । (२) अयाय से कमाय हुए धन का दान व्यथ है । (३) पतित ब्राह्मण । (४) चोर को दिया हुआ दान व्यथ है । (५) आदि गुरुजना को दिया हुआ दान व्यथ है क्योंकि इनकी सेवा करना मनुष्य का कर्तव्य है । (६) मिथ्यावादी । (७) पापी । (८) कृतघ्न । (९) ग्राम पुरोहित (१०) वेद विक्रय करने वाल । (११) शूद्र से मन कराने वाल । (१२) तीव्र ब्राह्मण । (१३) शूद्रा के पति ब्राह्मण । (१४) माप को पकड़ कर व्यवसाय करने वाल । (१५) सेवका को । (१६) स्त्री समूह को दिया हुआ दान व्यथ है । इस प्रकार ये सोलह दान निष्फल बताये हैं । सेवका और स्त्रियों का पालन पोषण करना तो मनुष्य का कर्तव्य है ही । इसलिये वह उनको देना दान की श्रेणी में नहीं है ।

१० सबका उद्धारक ब्राह्मण—

माकण्डेय जी ने युधिष्ठिर से कहा कि “ब्राह्मण जप, मन्त्र, पाठ होम स्वाध्याय और वेदाध्ययन के द्वारा ही वेदमयी नौका का निमाण करके दूसरो का भी तारते है और स्वयं भी तरते हैं ।”^{३५} अतः दान श्रेष्ठ ब्राह्मण का ही दान चाहिये । युधिष्ठिर के पूछने पर माकण्डेय जी ने दान किस दान चाहिये के विषय में कहा कि सम्पूर्ण शास्त्रा का ताता मानव उसी ब्राह्मण को दान दे, जो दाता का तथा अपना भी मसार सागर से उद्धार कर सके । वहाँ शक्तिशाली ब्राह्मण दान देन योग्य है ।^{३६} विद्वान तथा श्रेष्ठ ब्राह्मणों की जूठन साफ करना चन्दन, माला आदि से उन्हें अलाकृत करना उनकी सेवा

३५—जपमंत्रश्च होमश्च स्वाध्यायाध्ययनेन च ।

नाय वेदमयीं कृत्वा तारयति तरन्ति च ।

वनपर्व—अध्याय २००, श्लो० १३

३६—तस्मिन् देयं द्विजे दानं सर्वांगमविजानता ।

प्रदातारं यथाऽऽमानं तारयेद् यः स शक्तिमान् ॥

वनपर्व—अध्या० २००, श्लो० २१

पूजा करना और उनके पर आदि अङ्गों को दवाना, इनम से एक एक काय गो दान से भी अधिक महत्त्व रखता है ।

माकण्डेयजी ने दान का महत्त्व बताते हुए युधिष्ठिर से कपिला गौ का दान बनाते हुए कहा कि कपिला गौ का दान करने से मनुष्य निस्सन्देह सब पापा से मुक्त हो जाता है । इसलिये कपिला गौ को अलङ्कृत करके श्रेष्ठ ब्राह्मण को दान देना चाहिये । '३० गौ का दान एक हा ब्राह्मण का देना चाहिये । यदि अनेक ब्राह्मणों को एक गौ दी जायेगी तो वह उस वचन पर उसका रुपया को आपस में बांट लेंगे और दाता को दान का कोई पुण्य नहीं मिलेगा । श्रेष्ठ और विद्वान ब्राह्मण को स्वर्णदान देने से स्वर्ण मुद्राओं का दान का फल प्राप्त होता है और भूमि का दान देने से दाता के सभी मनो वाञ्छित भोग स्वतः जा जाते हैं । सब दानों से बढ़कर अन्न का दान है । वेदों में अन्न को प्रजापति कहा गया है । ससार में सब प्राणियों के लिये अन्न ही सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु है । इसलिये स्वयं तयार किया हुआ भोजन ब्राह्मणों का अर्पित करे तो उस पुण्यकर्म के प्रभाव से प्रजापति के समान माना जाता है । अन्न का दान सत्य से भी बढ़कर है ।

११ ब्राह्मण धर्म का सेतु है -

अध्ययन अध्यापन और यजन याजन के द्वारा ब्राह्मण विद्या एवं धर्म की रक्षा करते रहे हैं । महाभारत में उनका धर्म का सेतु कहा गया है ।

युधिष्ठिर ने जब भाष्म से पूछा कि ससार में कौन मनुष्य पूज्य है । तब भीष्म ने कहा कि ब्राह्मणों की पूजा करे । ब्राह्मणों को नमस्कार करे । उनका प्रति सुयोग्य पुत्र जपन विद्या के प्रति जसा बनाव करता है वसा बताव

३७—कपिलाया प्रदानात् तु मुच्यते नात्र सगय ।

तस्माद्भूतवृत्ता दद्यात् कपिला तु द्विजायते ॥

वनपर्व—अ० २००, श्लो० २६

कर । क्योंकि मनीषी ब्राह्मण इन सब लोको को धारण करत हैं ।”^{३८} ब्राह्मण समस्त जगत की धर्ममयादा का संरक्षण करने वाले सेतु के समान हैं । वे धर्म का त्याग कर प्रसन्न होत हैं । वाणी का सयम रखत हैं । ब्राह्मण ही ससार म कवन एसा प्राणी है जो दृढतापूर्वक और शरीर को दुःख दकर व्रत का पालन करने वाला है । ब्राह्मण शास्त्रो का निमाता और परम गणस्त्री है । तपस्या ही जिनका धर्म है और वाणी ही जिनका बल है । तपस्वी ब्राह्मण सबके पथ प्रदर्शक धर्मों की उत्पत्ति के कारण सूक्ष्मदर्शी होते हैं । भीष्मजा न युधिष्ठिर से कहा कि ब्राह्मण धर्म की ही इच्छा रखने वाला पुण्य कर्मों द्वारा धर्म ही स्थित रहने वाला धर्म के सेतु हैं । उन्हीं का आश्रय लेकर चारों प्रकार का सारी प्रजा जीवन धारण करती है ।^{३९} ब्राह्मणा न सवदा धर्म का भार वहन किया है । वे धर्म के भार से कभी कष्ट का अनुभव नहीं करत हैं । वे अध्यात्म-तत्त्व का चिन्तन करने वाले हैं । ब्राह्मण बूढ़ा ही या बालक सभी सम्मान के योग्य हैं । ब्राह्मण भूतल का देवता हाता है ब्रह्माजी न ब्राह्मणों का सम्मान करना क्षत्रिय धर्म है, बताते हुए महर्षिया से इस प्रकार कहा कि राजा धर्म पालन के इच्छुक होत है और ब्राह्मण धर्म के सेतु ह । अतः राजा का सदा ब्राह्मणा की रक्षा करनी चाहिये ।^४

गणुपाल न जब श्रीकृष्ण की बुराई की तो युधिष्ठिर तथा भीष्म का मन बहुत दुःखा हुआ । पहले युधिष्ठिर ने ही कृष्ण के स्वरूप को बताते हुए

३८—ते पूज्यास्ते नमस्कार्या वर्तेयास्तेषु पुत्रवत् ।

ते हि लोकानिमान् सर्वान् धारयन्ति मनीषिणः ॥

३९—धर्मकामा म्रियता धर्मं सुकृतीधर्मसेतव ।

यान् समाश्रित्य जीवन्ति प्रजा सर्वश्रनुविधा ॥

अनुशासनपर्व—अध्या० १५१, श्लो० ३-७

४०—धर्मकामाश्च राजानो ब्राह्मणाधर्मसेतव ।

तस्माद् राजा द्विजालीना प्रयतेत स्म रक्षणे ॥

आश्रवमेधिकर्षा—अध्या० ४३, श्लो० १७

उह सब जात का पूजनीय बताया किंतु जब विष्णुपाल न इस नी न माना । तब भीष्म ने कहा कि 'ब्राह्मणों म अधिक नानी पुरुष ही पूजनीय समझा जाता है और शत्रिया म अधिक बल रगन वाला पूजनीय समझा जाता है।'^{४१}

१२ धर्मपालन और सात्विक जीवन—

प्राचीनकाल म ब्राह्मणों का जीवन बड़ा मरल और सात्विक था । वह लोग अपने ब्रतों क पालन म कठोर स कठोर कष्ट गरीर स उठात थ । उनका भोजन बहुत कम तथा सात्विक होता था, वे भोजन म स्वाद नहीं देखते थे । भूल बुझान मात्र क लिय ही भोजन करते थ । कुछ तपस्वी ता फलाहार करके ही अपना जीवन धारण करते थे । इस प्रकार प्राचीनकाल म ब्राह्मणों का जीवन बड़ा मरल तथा कठोर ब्रतों से पूरा था । द्रौपदी क स्वयंवर म जब सब बड़े-बड़े राजा निगाना लगाने म असमर्थ हो गये, तब ब्राह्मणों म बड़े ब्राह्मण वेपधारी अजु न उम निगान को लगान के लिय गये । तब ब्राह्मण लोग आपस म इस प्रकार कहने लगे कि 'सम्पूर्ण ताका म त्वना असुर आदि क रूप मे विचरने वाले पुरुषों का ऐसा कौनसा काम नहीं है जो ब्राह्मणों के लिये असाम्य हो । ब्राह्मण लोग जल पीकर हवा खाकर अथवा फलाहार करके (भी) दृढतापूर्वक ब्रत का पालन करते हैं ।'^{४२} ब्राह्मणलोग आपस म उस दुबल ब्राह्मण वेपधारी अजु न को दस कर कहने लगे कि इस क रूप का देखकर हम योगा को चिंतित नहीं होना चाहिये क्योंकि ब्राह्मण मय बल योग बल अथवा आत्म बल से इस सम्पूर्ण जगत को स्तब्ध कर सकते हैं । अत उत्सव प्रति किसी को तुच्छ बुद्धि नहीं रखनी चाहिये । अजु न को

४१—पानवृद्धो द्विजातीनां क्षत्रियाणां बलाधिक ॥

सभापर्या—अध्याय ३८, श्लो० १७

४२—ब्राह्मणानाममाद्य च नृषु सस्यानचारिषु ।

अभ्यासा वायुभक्षाश्च फलाहारा दृढवता ।

आदिपर्ण—अध्या० १८७ श्लो० १२

देखकर ब्राह्मणा ने आपस में इस प्रकार कहा कि 'शरीर से दुबल होने पर भी ब्राह्मण अपने तज के कारण अत्यन्त बलवान होते हैं। ब्राह्मण भला बुरा सुखद दुःखद और छोटा-बड़ा-जो भी कम प्राप्त होता है, कर लेता है।' *३* ब्राह्मण का किसी को अपमान नहीं करना चाहिये।

१३ वचन में निर्भोक्ता—

ब्राह्मणों की वाणी और विचार में निर्भोक्ता होती है। वह सब बात कहने में कभी नहीं डरता तथा अपने विचारों को गलत बताने वाले में भी विवाद करने में कभी नहीं हिचकता। वह जानी होता है, इसलिये दूसरा क्व द्वारा गलत विचार बताने पर वह उनके ज्ञान को भी देखना चाहता है और नम्रतापूर्वक उनके ज्ञान को समझने का यत्न करता है। मगध की राजधानी में जब भीम अजुन और श्रीकृष्ण पर्वत तोड़कर जरासंध के महल में पहुँच गये तब भीम अजुन तथा श्रीकृष्ण का वेग उस समय स्नातक ब्राह्मण जमा था, हाथा में माला थी, चन्दन धारण किया हुआ था। उनका ऐसा वेप देख कर जरासंध ने उनसे पूछा कि आप कौन हैं? तब बोलने में चतुर श्रीकृष्ण ने कहा कि वेप के अनुसार स्नातक ब्राह्मण समझ सकते हैं। स्नातक व्रत का पालन करने वाले ब्राह्मण क्षत्रिय, वश्य, तीना वर्णों के लोग हो सकते हैं। किंतु जरासंध को उनके वेप के अनुसार पर्वत को तोड़ने का कर्तव्य म कुछ समझ में नहीं आया। तब उसने कहा कि "ब्राह्मण के तो प्राय वचन में ही वीरता होती है, उसकी क्रिया में नहीं। आपने जो पर्वत गिरा तोड़ने का कर्तव्य किया है वह वेप तथा वरुण के सबया विपरीत है" *४* ब्राह्मणों के

४३—दुबला अपि विप्रा हि वनीयास स्वतेजसा ।

ब्राह्मणो नावमन्तव्य सदसद् धा समाचरन् ॥

आदिपर्ग—अध्या० १८७ श्लो० १३

४४—वदन् वाचि वीर्य च ब्राह्मणस्य विनेयत ।

कर्म चतद् विलिङ्गस्य किं धोऽद्य प्रसमीक्षितम् ॥

सभापर्ग—अध्याय २१, श्लो० ४६

तेज और तप को प्रशंसा करते हुए राजा कृतिभोज ने अपनी कन्या पृथा से कहा कि ' ब्राह्मण ही उत्कृष्ट तेज है, ब्राह्मण ही परम तप है ब्राह्मणों के नमस्कार से ही सूर्य अब आकाश में प्रकाशित हो रहा है ।''^{४५} इस प्रकार प्राचीनकाल में ब्राह्मणों का तेज तथा तप बहुत पूजनीय था । इस तेज के प्रभाव को देखकर ही कृतिभोज राजा ने अपनी कन्या ब्रह्मर्षि दुषासा का सौप दी थी । ब्राह्मणों का तेज अलगनाय था । जहाँ तप के मन्त्र, अपनी धृत लोग टिक नहीं सकते थे, उनमें कुछ ऐसा प्रभाव था कि आँधे आँधे माना धमारमा राजा ब्राह्मणों का बड़ा सम्मान तथा आदर करते थे ।



४५ - ब्राह्मणो हि पर तजो ब्राह्मणो हि पर तप ।
 ब्राह्मणानां नमस्कार सूर्यो दिवि विराजते ॥

वनपर्व—अध्याय ३०३, श्लोक १६

महाभारत में क्षत्रिय-धर्म

१—क्षत्रिय धर्म की श्रेष्ठता—

वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था में ब्राह्मणा और क्षत्रियों की महिमा सबसे अधिक है। धर्म और विद्या की श्रेष्ठता के कारण ब्राह्मणा को सर्वश्रेष्ठ माना गया है तथा उन्हें पृथ्वी के देवता की पदवी दी गई है और उनके लिए अध्यापन, याजन आदि के कतव्या का विधान किया गया है। धार्मिक और आध्यात्मिक दृष्टि से ब्राह्मणा की यह श्रेष्ठता प्राचीन भारतीय समाज में प्रतिष्ठित आध्यात्मिक मूल्यों की श्रेष्ठता का फल है। इसी श्रेष्ठता की धारणा से पुरुष सूक्त की कल्पना में ब्राह्मणा को विराट पुरुष का मुख बताया गया है। किन्तु लौकिक और व्यावहारिक रूप की दृष्टि से क्षत्रिय धर्म की श्रेष्ठता भी असंनिग्ध है। जिस प्रकार ब्राह्मणों का मुख्य काम धर्म और विद्या की साधना है, उसी प्रकार क्षत्रियों का मुख्य काम समाज की रक्षा है। सुरक्षा की स्थिति में धर्म और विद्या की साधना के लिए आवश्यक है। अरक्षा की स्थिति में इनकी साधना भंग हो जाती है। रक्षा सभी श्रेष्ठ मूल्यों की साधना का मूल आधार है। रक्षा की दृष्टि से क्षत्रिय धर्म का सबसे अधिक मूल्य है। इसी दृष्टि से महाभारतकार ने भी क्षत्रिय धर्म की श्रेष्ठता को स्वीकार किया है। महाभारत की क्या मुख्य रूप से क्षत्रिया का ही चरित है। युद्ध क्षत्रिय का मुख्य धर्म है। महाभारत भी वीरव पाण्डवों के युद्ध की कथा है। क्षत्रिय धर्म की यह श्रेष्ठता धर्मात्मा के अनुकूल है। मनु याज्ञवल्क्य आदि धर्माचार्यों ने भी इसे स्वीकृत किया है। जब क्षत्रिय अथ वर्णों की रक्षा करते हैं, तभी सब वर्ण अपने धर्म का समुचित पालन कर सकते हैं। इस प्रकार क्षत्रिय धर्म समाज के धर्म प्रासाद का स्तम्भ है। रक्षा के धर्म का पालन पराक्रम से होता है। मनुष्य के बाहु इस पराक्रम के पीठ हैं। इसीलिए पुरुष सूक्त की कल्पना में क्षत्रिया का विराट पुरुष का बाहु माना गया है (बाहु राजस्य स्मृत)। यदि ब्राह्मण समाज के मुख हैं तो क्षत्रिय समाज के बाहु हैं। ब्राह्मण धर्म और विद्या की साधना तथा इनका प्रचार करते हैं। क्षत्रिय अपने पराक्रम और बाहुबल से समाज

की रक्षा करके उसके लिए साधना और प्रचार व लिए यादित परिस्थितन का निर्माण करत हैं तथा इह सम्भव यनात हैं ।

महाभारत म क्षत्रिया की श्रेष्ठता और उनके धम का विगपता स वणन किया गया है । क्षात्र धम की श्रेष्ठता बतात हुए इन्द्र रूप घारी विष्णु भगवान ने राजा माघाता से कहा कि ससार म क्षात्र धम ही सब धमों म श्रेष्ठ सनातन नित्य अविनाशी, मोक्ष तक पहुचान वाला सबनामुखी है ।^१ क्षात्र धम क पालन करने वाल श्रेष्ठ राजा क भय स उच्छ्रमल कामी, कापी, लोग पाप नही कर पाते और धमों का पालन करने वाल श्रेष्ठ पुग्प राजा म सुरक्षित होकर सदाचार पूवक अपने धम का सदुपदेग करत हैं । युधिष्ठिर का क्षान धम की श्रेष्ठता बताते हुए भीष्मजी ने कहा है कि 'धमग पुग्पा का कथन है कि अय समस्त धमों का आश्रय तो अल्प है ही, फल भी अल्प ही है । परन्तु क्षात्र धम का आश्रय भी महान है और उसके फल भी बहुसम्बक एव परमकल्याण रूप है अत क्षान धम के समान दूसरा कोई धम नही है'^२

क्षत्रिय धम की श्रेष्ठता बतात हुए इन्द्र ने माघाता स इस प्रकार कहा कि शेष धम असरय है और उनका फल भी विनाशशील है । इस क्षात्र धम मे सभी धमों का समावेश हा जाता है, इसलिए क्षान धम ही सबसे श्रेष्ठ है ।^३ इन्द्र न माघाता स कहा कि विष्णु से पहले राजधम ही प्रवृत्त हुआ

१—सवधमपर क्षात्र लोकश्रेष्ठ सनातनम् ।

गश्वदक्षरपयत्तमक्षर सर्तितोमुखम् ॥

शातिपर्ति—अध्याय—६४, श्लोक ३०

२—अल्पाश्रयानल्पफलान् वदति धर्मान्यान् धमविदो मनुष्या ,
महाश्रय बहुकल्याणरूप, क्षात्र धर्मा नेतर प्राहुरार्या ।

शातिपर्ति—अध्याय ६३, श्लोक २६

३—नेपा सृष्टा ह्यन्तवतो ह्यनन्ता

सप्रस्थाना क्षात्रधर्मा विशिष्टा ।

अस्मिन् धर्मे सवधमा प्रविष्टा—

स्तस्माद् धर्मा श्रेष्ठमिम वदति ।

शातिपर्ति—अध्याय ६४, श्लोक २२

है। अथ सभी धर्म उसी के अग है अर्थात् उसी मे प्रकट हुए हैं। पूर्वकाल मे विष्णुभगवान न क्षान धर्म के द्वारा ही शत्रुजा का दमन करके दवताआ तथा तेजस्वी समस्त ऋषिया की रक्षा की थी। धर्मशास्त्रो के अनुमार क्षान धर्म ही मवसे उत्तम तथा सब धर्मों का आधय है। ससार के सम्पूर्ण कम क्षान धर्म पर ही अवलम्बित हैं। यदि क्षान्र वम प्रतिष्ठित न हा तो जगत के सभी जीव अपनी मनोवाछित वस्तु पाने मे निराश हो जाय। क्षान्र धर्म की उत्कृष्टता बतात हुए भीष्मजी न युधिष्ठिर से कठा कि 'चारो आधमो के धर्म यतिधर्म तथा लौकिक और बढिक उत्कृष्ट धर्म सभी क्षान्र धर्म मे प्रतिष्ठित ह।' ४

२—क्षत्रिय की परिभाषा—

वैसे तीनों द्विजातियो के कुछ कम ऐसे हैं, जो तीना क लिए अनिवाय है। किन्तु कुछ विशेष काय ऐम है जो केवल एन ही द्विज क करने योग्य है। जस अयापन, याजन, तथा प्रतिग्रह केवल ऐसे काय है, जो केवल ब्राह्मण के ही करने योग्य हैं। उसी प्रकार कुछ ऐमे भी काय हैं जो क्षत्रिय तथा वय के लिए पथक पथक अनिवाय हैं। क्षत्रिय के लिए रक्षा करना युद्ध करना आदि काय ऐसे है जिवा भार केवल क्षत्रिय पर ही है। भरद्वाज न भृगुजी से चारा वर्णों के कम के विषय मे पूछा कि आप मुझे बताइय कि कौन सा धर्म करने से ब्राह्मण क्षत्रिय, वश्य तथा सूद्र कहलाने है। भृगुजी न उह क्षत्रिय के कम इस प्रकार बताय कि "जो मनुष्य क्षत्रियोचित युद्ध आदि कम का सवन करता है वेदा के अध्ययन मे लगा रहता है ब्राह्मणा को दान देता है प्रजा मे कर लेकर उसको रक्षा करता है, वह क्षत्रिय कहलाता है।" ५ क्षत्रिय की परिभाषा बताते हुए भीमसन ने अजु न से कहा कि 'जा क्षनि

४—चातुराश्रम्यधर्माश्च यति धर्माश्च पाण्डव ।

लोके वेदोत्तरारचव क्षान्रधर्म समाहितः ॥

शांतिपव—अध्याय—६४, श्लोक १

५—क्षत्रज सेवते कम वेदाध्ययनसगत ।

दानादारतियस्तु सौ क्षत्रिय उच्यत ।

शांतिपव — अध्याय—१८६, श्लोक ५

पहुचाना ही जिसकी जीविका है तथा जो स्त्रियो और साधु पुरपो पर क्षमा भाव रखता है वही क्षत्रिय है और उसे ही शीघ्र इस पथ्वी के राज्य धम (सकट) से अपना तथा दूसरा का त्राण करना है युद्ध म क्षत्रियो को क्षति यग और लक्ष्मी की प्राप्ति होती है । १ क्षत्रियो के समक्ष उनका धम ही सबसे प्रथम रहता है अय सारे सुख दुख भाई-बधु परिवार आदि दूसरे स्थान पर रहते है । व धम के आगे सदव मुक्त है तथा उसी स यश प्राप्त करते है ।

माघाता ने क्षत्रियाके कतव्य इस प्रकार बताये है कि ' युद्ध म आने परीर की आहुति देना समस्त प्राणिया पर दया करना लोक व्यवहार का पान प्राप्त करना प्रजा की रक्षा करना विपाद प्रस्त एव पीन्ति मनुष्या को कष्ट और दुख स छुडाना—ये सब बातें राजाआ के क्षाय धम म ही विद्यमान है । ' २ क्षत्रिय के कतव्य बताते हुए शुण्डभ ने ररू से कहा कि दण्डधारण उप्रता और प्रजा-पालन ये सब क्षत्रिया के कर्म है । ३ क्षत्रिय को सदव अपने हाथ म दण्ड को धारण करना चाहिय, ऐसा धम शस्त्रो का कथन है । क्षत्रिय का स्वभाव भी उप्र होना चाहिय । क्यार्कि जब तक क्षत्रिय म उप्रता नही होगी तब तब वह युद्ध के लिये उद्यत नही होगा । उप्र स्वभाव वाला क्षत्रिय

६—क्षतप्राता क्षताजीवन् क्षता स्त्रीष्वपि साधुषु ।
क्षत्रिय क्षितिमाप्नोति क्षिप्र धर्म यश धिय ।
गातिपय —अध्याय-१६७ श्लोक ४

७—आत्मत्याग सर्गभूतानुबन्धा,
लोकज्ञान पालन मोक्षण च ।
विपणानां मोक्षण पीडितानां
क्षत्रे धर्मं विद्यते पापिवानाम् ॥
गातिपर्वा—अध्याय-६५, श्लोक २७

८—दण्डपारणमुप्राय प्रजानां परिपालनम् ।
तद्वि क्षत्रियस्यातोन् कर्म च शृणु मे दरो ॥
आदिपय —अध्याय-११, श्लोक १७

ही अनुचित दाता को देखकर क्रोध दिखा सकेगा । अथवा शांत रहने वाला क्षत्रिय बिना क्रोध के दुष्टा का हनन नहीं कर सकता । दुष्टा का सहार क्रोध से ही किया जा सकता है । प्रजा का सब प्रकार से पालन क्षत्रिय ही करते हैं । इसीलिये राजा का प्रजापालक भी कहते हैं । श्रेष्ठ क्षत्रिय राजा अपना प्रजा को पुन के समान प्रेम देकर उन्हें सब प्रकार से सन्तुष्ट रखता है । अजुन को क्षत्रियो के कर्तव्य बताते हुए श्रीकृष्ण इस प्रकार बोले कि “धूर्त्वीरता तज धय, चतुरता और युद्ध म न भागना, दान दना और स्वामिभाव—य सब के सब काय क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं ।”^१ बड़े से बड़े बलवान शत्रु का सामना करने में भय न करना तथा उत्साह पूर्वक युद्ध करते रहना, गुर वीरता है । जिस शक्ति के प्रभाव में रह कर लोग दूसरे का प्रभाव नहीं मानते तथा उसके प्रतिकूल व्यवहार नहीं करते उसी शक्ति का नाम तज है । बड़े में बड़ा सकट उपस्थित हो जाने पर भारी चोट लग जाने पर पुन-पीनिक के मर जाने पर सबस्व का नाश हो जान पर या अथ भारी विपत्ति आ जान पर भी जा दुःख से व्याकुल नहीं होते तथा अपने कर्तव्यपालन से कभी विचलित नहीं होने, उसी का नाम ‘धय’ है । परस्पर झगडा करने वाला का त्याग करने में, युद्ध करने में तथा मित्र, वरी और मध्यस्था के साथ यथायोग्य व्यवहार करने आदि में कुशलता है, उसी का नाम ‘चतुरता’ है । युद्ध स्थल में युद्ध करते समय भारी से भारी चोट आ जान पर तथा अथ कोई भी विपत्ति आ जान पर भी क्षत्रिय को युद्ध से पीठ नहीं दिखानी चाहिये अथान् युद्ध स्थल छोड़कर न भागना चाहिये । अपने प्राणा तक की परवा न करके युद्ध में डटे रहना चाहिये । ब्राह्मणा को यथाशक्ति दान दना चाहिए । शासन के द्वारा लोगो को अत्याय के आचरण से रोक कर सदाचार में प्रवृत्ति कर दुराचारियों का उचित दण्ड दे, लोगो से अत्याय युक्त अपनी आना का पालन कराये ममस्त प्रजा का हित सोचकर प्रेम पूर्वक उसका पालन पोषण तथा रक्षा करे यह स्वामिभाव है ।

मनुस्मृति में प्रजा की रक्षा को क्षत्रिय का प्रथम धर्म बताया है । दान

६—गोय तजो धृतिर्दाइय युद्धे चाप्यपलायनम् ।

दानमीश्ररभावश्च क्षात्र कर्म स्वभावजम् ॥

भीष्मपर्व—अध्याय ४२, श्लोक ४३

यन और अध्ययन भी क्षत्रिय व धर्म हैं। य सत्तचार व विधायक हैं। सत्ता म अतिचार की आशवा रहनी है इगोलिए मनुस्मृति म क्षत्रिया व लिए विषया म अनासक्ति वा आश्र दिया है।^१ महाभारत म भी क्षत्रिय वा धर्म बताते हुए श्री कृष्ण ने सजय स कहा कि क्षत्रिय स्वाध्याय यन और दान करे। किसी स किसी वस्तु की याचना न करे। वह न ता दूसरा को यन कराय और न अध्यापन वा ही काय कर यहा धर्मशास्त्रा म क्षत्रिया वा प्राचीन धर्म बताया है।^२ ब्राह्मण की भांति क्षत्रिय वा अध्ययन यन करान तथा प्रतिग्रह लेने वा अधिकार नहीं है। क्षत्रिय व लिय वत् वा स्वाध्याय यन करना तथा दान देना ही मुख्य वम बताया है। इमव अनतर श्रीकृष्ण न यन करना तथा दान देना ही मुख्य वम बताया है। इमव अनतर श्रीकृष्ण न सजय स क्षत्रियो के रोप वमों के विषय म इस प्रकार बताया कि क्षत्रिय धर्म के अनुसार सावधान रह कर प्रजाजना की रक्षा कर दान द यन कर मम्पूण वेदा वा अध्ययन करव विवाह करे और पुण्य वमों वा अनुग्रान करता हुआ गृहस्थाश्रम म रहे। इस प्रकार धर्मात्मा क्षत्रिय धर्म एव पुण्य वा सम्पादन करके अपनी इच्छा के अनुसार ब्रह्मलोक जाता है।^३ गृहस्थाय म प्रवेग

१०—प्रजाना रक्षण दाननि-याध्ययनमेव च ।
विषयेह प्रसत्तिश्च क्षत्रियस्य समासत ॥
मनुस्मृति—अध्याय—१ श्लोक ६०

११—अधीयोत क्षत्रियोऽथो यजेत,
दद्याद दान न तु याचेत् किञ्चित् ।
न याजयेन्नापि चाध्यापयौत,
एष स्मृता क्षत्रधर्म पुराण ॥
उद्योग पर्व—अध्याय—२८, श्लोक २३ के आग ।

१२ - तथा राजयो रक्षण व प्रजाना,
कृत्वा धर्मणाऽप्रमत्तोऽय दत्त्वा ।
यत्परिष्ठा सर्वविदानधीत्य
दारान् कृत्वा पुण्य कृवावसेद् गृहाद् ॥
स धर्मात्मा धर्ममधीत्य पुण्य,
यदिच्छया व्रजति ब्रह्मलोकम् ॥
उद्योगपर्व—अध्याय—२६, श्लोक २४, २५३

प्राप्त करन के बाद क्षत्रिय को प्रजा की रक्षा का भार उचित नियम से पालन करते रहना चाहिये । हनुमानजी ने प्रकट हावर भीमसेन को चारों वर्णों के धर्मों के विषय म बताया ।

भीमसेन से क्षत्रिय धम का वर्णन करते हुए व बोले कि यही सब धम तुम्हारे भी हैं । अत इन सबका पालन करना तुम्हारा भी धम है । तब क्षत्रिय का धम हनुमानजी ने भीमसेन से इस प्रकार कहा कि 'सबका रक्षा करना क्षत्रिय धम है । विनयशील बनो तथा इन्द्रिया को बश म रखो यही क्षत्रिय धम हैं ।' १३

४—अन्य वर्णों की रक्षा तथा सहायता करना क्षत्रिय धर्म है—

जिस प्रकार ब्राह्मणों का मुख्य कर्म अध्यापन याजन तथा प्रतिग्रह है । उसी प्रकार क्षत्रियों का मुख्य कर्म प्रजा की तथा अन्य वर्णों की रक्षा और सहायता करना है । प्रजा का सुख राजा के ऊपर ही निर्भर रहता है । यदि धार्मिक और पुण्यात्मा राजा होगा तो उसकी प्रजा भी बनी ही धार्मिक तथा पुण्यात्मा होगी । प्राचीन काल मे राजा को लोग ईश्वर के सदृश ही पूजत थे और उसक आचरण के समान ही अपना आचरण भी बनान का प्रयत्न करते थे । प्राचीन काल म वीर तेजस्वी राजा व सैनिक भी वीर और तेजस्वी हाने थे । यथा राजा तथा प्रजा' की कहायन इसी उद्देश्य स प्रचलित हुई है ।

ब्राह्मणा की रक्षा तथा तथा सहायता के विषय म मुषिष्ठिर से कहती हुई कु ती ने कहा कि "जो क्षत्रिय कभी ब्राह्मण क कर्मों म सहायता करता

१३—क्षत्रधर्मोत्र कौतेय तत्र धर्मोऽत्र रक्षणम् ।

स्वधम प्रतिपद्यस्व विनीतो नियतेन्द्रिय ॥

वनपर्णी-अध्याय-१५०, श्लोक ३७

है वह उत्तम लोका को प्राप्त होना है।' १४ ब्राह्मणों का कार्य विद्या का पढ़ाना, यज्ञ करना आदि हैं जिसको वह शक्ति से हा कर मरन हैं। जब तक उनके मन में शक्ति नहीं होगी तब तक वह विद्या तथा यज्ञ का कार्य नहीं कर सकेंगे। इसलिये क्षत्रिय लोग ब्राह्मणों की रक्षा का भार लेकर उठ विद्या की उन्नति करने में प्रोत्साहन देते थे। विद्या के ज्ञानी ऋषि मुनि जगल में कुटिया बना कर शास्त्रों की रचना करत थे और भनक सिप्या को विद्या में पारगत बना देते थे। यदि जगल में उनकी रक्षा का प्रबन्ध न होता तो उनका सारा समय अपनी रक्षा की व्यवस्था में ही निकल जाता और वे देग व लिय आध्यात्मिक ज्ञान का सचय नहीं छोड सकत थे। आज हमारे दस में जो प्राचीन ग्रन्थों का भाण्डार भरा हुआ है वह सब प्राचीन आचार्यों की ही दन है। ज्ञान विज्ञान ज्योतिष व्याकरण कला आदि अनन दोत्रों में जितना हमारा प्राचीन साहित्य आज उपलब्ध है उतना ससार में किसी भी दग में उनकी सुरक्षा की सुयवस्था ही थी। राजाओं के राज्य में ब्राह्मणों का बडा सम्मान था तथा उनकी राय लेकर ही राजा बडे-बडे यज्ञ और धार्मिक कार्य किया करते थे। राजाओं द्वारा सम्मान प्राप्त होने के कारण ही ब्राह्मणों का इतना उत्साह था कि वे दिन रात एक करके कठिन परिश्रम द्वारा बडे-बडे ग्रन्थ रचा करते थे और आज हमारे देश का मस्तक उन आचार्यों के ग्रन्थों के कारण ही सब देशों से ऊँचा है।

क्षत्रियों को भी सकट से बचाने का कार्य भी क्षत्रियों का ही था। युधिष्ठिर से क्षत्रिय की रक्षा का विषय में बताते हुए कुली ने इस प्रकार कहा कि 'जो क्षत्रिय किसी प्राण सकट में तँसे हुए क्षत्रिय को मुक्त करता है वह इस लोक और परलोक में भी महान यज्ञ का भागी होता है।' १५ क्षत्रिय

१४—यो ब्राह्मणस्य साहाय्यं कुर्यादर्थेषु कर्हिचित् ।
क्षत्रियं स शुभाह्लो कानाप्युयादिति मे मति ॥
आदिपर्व — अध्याय १६, श्लोक २२

१५—क्षत्रियस्यैव कुर्याण क्षत्रियोवधमोक्षणम् ।
विपुला कीर्तिमान्नोति लोकैर्जस्मिन्वच परत्र च ॥
आदिपर्व — अध्याय १६, श्लोक २३

राजा को तो चारों वर्णों की रक्षा का भार अपने ऊपर ही लेना पड़ता था । तभी चारों वर्ण अपने अपने कर्तव्य पूरा रूप से निभा सकते थे । क्षत्रिय भी वेदा का अध्ययन करते थे नित्य यज्ञ करते थे तथा दान देने थे, य तीना काय थे भी सुरक्षा द्वारा ही शान्ति में कर सकते थे । क्षत्रिया के युद्ध सम्बन्धी काय भी ऐसे होते थे, जो सुरक्षा से ही मफल हो पाते थे । जस गुप्तचरों का दूसरे देग म जाकर उनके यहा की सारी बाता का पता लगाना आदि । इम काय के करने के लिये अनेक क्षत्रिय साथ रहते थे और नित्य प्रति उनकी सारी खबरें इम देश से दूसरे देग तक क्षत्रिया द्वारा ही पहुँचाई जाती थी । उन गुप्तचरों के मन म यह शान्ति रहनी थी कि यदि मरा कुछ अनिष्ट हो जायेगा तो उसकी खबर देन वाले लोग भी मेरे साथ हैं । इमी आशा को लेकर वह कठिन से कठिन कार्यों को अपन जीवन की भी पवाह न करके पूरा करके लौटत थे । बीच मे अनेक स्थाना पर उनक प्राण सकट म पड जाते थे किन्तु उनकी रक्षा करने वाले उह बचाकर उनकी सम्पूर्ण काम नाआ को पूरा कराके लाते थे । इम प्रकार क्षत्रिया को भी अनेक स्थाना पर सुरक्षा की आवश्यकता थी ।

क्षत्रिय के बाद वश्य भी सुरक्षा चाहते थे । बयोकि उनका काय रुपये-पैसे का तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर जान का था । इसलिय उह भी सुरक्षा की बडी आवश्यकता थी । कुन्ती ने वश्या की रक्षा करना भी क्षत्रिय का धर्म है । इस विषय म युधिष्ठिर से इम प्रकार कहा कि 'जो क्षत्रिय इम भूतन पर वश्य के काय मे सहायता पहुँचाता है वह निश्चय ही सम्पूर्ण लोका म प्रजा को प्रसन्न करने वाला राजा होता है ।'^{१९} वश्या का काय कृषि वाणिज्य तथा गो रखा मुग्य बताया गया है । इन तीना कार्यों म सुरक्षा की आवश्यकता होती है । कृषि का काय भी जगल म होता है यदि रक्षा का प्रबन्ध न हो तो मनुष्य कृषि भी जगल म शान्ति स नही कर सकना है । बीज

१६—वश्यस्यायं च साहाय्यं कुर्वाणः क्षत्रियो भुवि ।

स सर्वेष्वपि लोकेषु प्रजा रक्षयते ध्रुवम् ॥

आदिपर्वा-अष्टाध्याय-१६१, श्लोक २४

बोने के बाद पक्षियों से उनकी रक्षा करने के नियम कृपक की स्त्रिय और राजा खत पर ही रहना पडता है । तब वह खेता सफरना म हा पाती है । राजा की ओर से सुगंधा का प्रबंध ठीक हान पर हा कृपक गतो पर जगन म अकल पडे रहते ह । इसी प्रकार वाणिज्य का काय भी एक दग स दूमर दग म जाकर तभी हो सकता है, जब उनका रक्षा का भार राजा क ऊपर निभार हो । उनका रास्ता म जो भी बडिनार्द आती है उह राजा के सनिन दूर करते है । जैसे राह म चोर, लुटेरा का प्रडा डर रहना है और जगन म अवसर देखकर प्राय कुत्ते व्यापारी को लूट भी लत थ । किन्तु राजा का मुख्यवस्था क हान स दश क लुटेरे सज दडित होने से और जीवन भर उह कारावास म ही पडा रहना पडता था या किसी को फाँसी की सजा हो जाती था जिमसे सम्पूर्ण दुष्ट कम करने वाल समाप्त हो जाते थ और राजा क क्षत्रिय सनिन जगलो म घूम घूमकर थ या की रक्षा का पूरा प्रबंध करते थे । इमा सुरक्षा क कारण हमारे दग म व्यापार बहुत ऊँचा था । तीमरा काय वन्य का गो रक्षा था । प्राचीन काल म गाया की भी चोरिया हो जाती थी वमोंकि पहल पक्क मकान तो थे नही, जो लाने लगाकर गाया को अन्तर प्राँध लेते । उम समय जगल अधिक था इस कारण सम्पूर्ण पशु खुले मदानो मे ही रहते थे । उनकी रक्षा भी राजा के द्वारा हो जाना थी, तभी गाया का प्रब थ ठीक रहता था । गूढ़ प्राचीन काल म तीनो वर्णों के सबक थे । इस लिय उनका जीवन भी सुरक्षा चाहता था । मेवक होने के कारण उह नी कोई पीट सकता था तथा उहे कठोर सजा भी द सकता था । इसीलिये उनकी रक्षा का भार भी राजा पर ही होता था । राजा हा उनक सब कार्यों की देख भाल करता था तथा वही उनके नामा का समय निर्धारित करता था । वही सब द्विजा का वह दता था कि इस काय का मह इस सबक को तथा लने समय तक यह काम करेगा आदि सम्पूर्ण मेवका क कार्यों की भी सूचा राजा के पास रहती थी । यदि कोई सेवक ठीक काम नही करता था, तो राजा उसका पना लगवाता था और उसका गलती पर उसे दण्ड देता था । इसी प्रकार जो कोई भी उच्चवर्ग किमी मवक को दु ख देता था तो उसकी सुनवाई राजा करता था और उसका उचिन याय करता था । इस प्रकार राजा का चारा वर्णों की रक्षा का भार स्वय लेना पडता था और इसस दग म मुख गान्ति बना रहती था । कुत्ता न घूना का रक्षा के विषय म युधिष्ठिर से इस प्रकार कहा कि जा क्षत्रिय राजा अपना णरण म आय हुए गूढ़ का प्राण

सकत मे वचाता है वह इम ससार म उत्तम धन धान्य स मम्पन्न एव राजाओ
द्वारा सम्मानित श्रेष्ठ कुल म जन्म लेता है ।" १०

इस प्रकार चारो वर्णों की रक्षा का भार लेकर क्षत्रिय राजा दंग म
यश और शान्ति स्थापित करता था । धर्मशास्त्रों के कथन के अनुसार सब
वर्णों की रक्षा के बदन म जो भिन्न भिन्न प्रकार के यज्ञ उत्तम लोको की
प्राप्ति तथा देश धनधान्य से पूर्ण होता था वह सब श्रेष्ठ राजा का ही प्राप्त
होत थे । कुछ न करन वाले राजा का कुछ भी प्राप्त नहीं होता था तथा उसक
राज्य म प्रजा दुःखा और भूखी रहती थी । अनेक स्थाना पर अकाल पड जात
थे अनेक स्थाना पर बाढ़ें आ जाती थी जिससे सम्पूर्ण दंग की प्रजा नाहि
प्राहि करन लग जाता थी और श्रेष्ठ धर्मात्मा तथा पराक्रमी राजा क लिय
भगवान से प्रार्थना करता थी । रक्षा-रुम क्षत्रिया का सब धर्मों स बढ कर है
बढ कर है तथा रक्षा धर्म ही सब धर्मों म श्रेष्ठ है । क्षत्रिया की रक्षा क द्वारा
ही इस पृथ्वी पर सबका सुख शान्ति प्राप्त होती है । सुरक्षा के ही द्वारा
ब्राह्मणा, वदया तथा क्षत्रियो के बड़े-बड़े काम निर्विघ्नता पूर्वक सफन और
पूर्ण होने हैं । क्षत्रिया के पराक्रम से दुर्भों का दलन होता है और सत्पुरुषा
का साहस मिलता है । क्षत्रिया के बल और पराक्रम से ही यह पृथ्वी हरी
भरी है । उनके ही बल से आज प्राचीन अथ हमार समक्ष बचे हुए हैं ।
क्षत्रिया के सम्पूर्ण दंग म शान्ति रहती थी और सम्पूर्ण प्रजा सुखी थी ।
अपना तन, मन धन देकर ही क्षत्रिय राजा अपने देश की रक्षा करते आये
हैं और अपन देश का मस्तक ऊँचा किए हुए हैं । आज भी विश्व भर म
क्षत्रिया जसा पराक्रम किसी अन्य जाति म दिखाई न दिया और न दगा ।
भारत ही एक ऐसा देश है जिसके क्षत्रिय राजाआ न अपन देश की रक्षा के
लिये अपन प्राण तक द लिये किन्तु युद्ध से हार कर पीछे न लौटे । या ता
विजय प्राप्त करके ही लौट, नही तो युद्ध म ही प्राण गँवा लिये और अपनी
यागकीर्ति सबके सामने धौंड गये ।

१७—सुद सु मोचयेद् राजा गरुणाद्यनमागतम ।

प्राप्नोतीह कुले जन्म सद्द्रव्ये राजपूजिते ॥

आदिपर्वा—अध्याय १६१, श्लोक २५

५—युद्ध क्षत्रियो का मुख्य धर्म है—

प्राचीन काल मे युद्ध करना क्षत्रियो का प्रधान काम था । वे धर्म युद्ध मे ही विश्वास रखते थे । अतः क्षत्रिय सदैव ही धर्म युद्ध किया करते थे । युद्ध करते समय भी क्षत्रियो के समक्ष सदैव धर्म रहता था । वे किसी का धनुष टूटने पर युद्ध बंद कर देते थे और दूसरा धनुष उसे प्राप्त न हा जाना था तब तक उस पर बाणो की वर्षा नहीं करते थे । शत्रु का रथ टूट जाता था तो उस समय भी युद्ध बंद कर देते थे । इसी युद्ध को धर्मयुद्ध कहा जाता है । क्षत्रियो का लक्ष्य केवल शत्रु का मारना नहीं रहता, वरन् धर्म पूर्वक युद्ध करके मारना उह उचित लगता था । छोखे से या कोई अस्त्र शस्त्र न होने पर मारना तो बहुत सरल है परन्तु समानता के अस्त्र से युद्ध करके विजय प्राप्त करने मे ही सच्ची सफलता है । इसी को धर्मयुद्ध की विजय की सजा दी जाती है । जो क्षत्रिय धर्मपूर्वक लड़ कर विजय प्राप्त करता है विश्व मे उसी की यश कीर्ति की ध्वजा सदैव के लिये अमर हो जाती है ।

दुर्योधन क मामा गुरुनि ने जब युधिष्ठिर को सभा मे बुलाकर उनक गाय जुआ खेलन का प्रस्ताव रखा तब युधिष्ठिर ने शकुनि से कहा कि शठता पूर्वक जुआ खेलना पाप है । धर्मानुकूल विजय तो युद्ध मे हा प्राप्त होता है, अतः क्षत्रियो क नियम युद्ध ही उत्तम धर्म है जुआ खेलना नष्ट, १ धर्मात्मा युधिष्ठिर गुरुनि की बाता मे जुआ खेलने की अनिच्छा होत हुए भी राजी हो गय । दुर्योधन यह जानता था कि पाण्डवा का युद्ध मे नहा हरा सकत इमनिय उह जुआ क द्वारा बग मे करने का सरल उपाय यही मूभा जा अन्न मे कौरवो क बिनाग का कारण बना ।

महाभारत मे जरासंध और श्रीकृष्ण क संवाद मे श्रीकृष्ण ने जरासंध मे कारावास मे बन्नी बनाय हुए दूमर राजाआ का मुक्त करने क लिय कदा तस्मिन् अभिमानी राजा जरासंध ने श्रीकृष्ण से कहा कि दकनाआ का

१८—इह मे देवन पाप निहृत्या क्तिव सह ।

धर्मोऽनु जयो युद्धे तत्पर न तु देवनम् ॥

सभापर्वा-अध्याय-५८ श्लोक १०

चलि देने के लिये उपहार रूप म विजय प्राप्त कर्के लाये हुए इन राजाओ को आपके भय स नही छोड सकता हू । श्रीकृष्ण ने जरासंध स कहा कि वेदा ध्ययन स्वर्ग प्राप्ति का कारण है, परोपकार रूप महान यश भी स्वर्ग का हतु है तपस्या को भी स्वर्ग लोक का साधन बताया गया है परन्तु क्षत्रिय के लिये इन तीना की अपेक्षा युद्ध मे मृत्यु का कारण ही स्वर्ग प्राप्ति का अमोघ साधन है' १० क्षत्रिय का युद्ध म मरण सर्वश्रेष्ठ धम माना जाता है । युद्ध म तत्पर रहने वाला राजा क्षत्रिय यदि सग्राम भूमि म शत्रु के सम्मुख जूमने हुए प्राणो का परित्याग कर ३ तो वह इहलोक और परलोक म निमल कीर्ति का भागी होता है ।

भीमसेन के द्वारा जब कण मारा गया तब युद्ध क भय से दुर्योधन क मनिक युद्ध भूमि छोड कर भागने लग, तब दुर्योधन न उहे क्षत्रिय धम का उपदेश देने हुए ललकार कर ठहरने को कहा कि ' युद्ध धम से बड कर क्षत्रिय के लिये काई स्वर्ग का श्रेष्ठ माग नही है । दीघकाल तक पुण्यकर्म करने स प्राप्त होने वाले पुण्य लाका को घीर क्षत्रिय युद्ध से तत्काल प्राप्त कर लता है ।' २० क्षत्रिया के लिये युद्ध छोड कर भागन से बडकर दूसरा कोई अत्यन्त पापपूर्ण कर्म नही है । युद्ध से भाग कर आये हुए क्षत्रिय का माना तथा स्त्री भी सम्मान नही करती थी । माता पुत्र को भाग कर आया हुआ जान कर उसस यही अपमानजनक शब्द कहती है कि बटा तूने मेरा दूध नही पिया है यदि मेरा दूध पिया होता तो आज इस प्रकार अपन धम को छोड कर नही भागता । सत्तर म उसी क्षत्राणी माता को आनन्द मिलता है जिसका पुत्र या

१६—स्वर्गयोनिमहद् ब्रह्म स्वर्गयोनिमहद् यता ।

स्वर्गयोनिस्तपो युद्धे मृत्यु सोऽप्यभिचारवान् ।

सभाषर्ष-अध्याय २२, श्लोक १८

२०—न युद्धधर्माच्छ्रेयान् हि पाया स्वर्गस्य कौरवा ।

मुचिरेणाजिताः श्लोकान् सद्यो युद्धात् समरनुते ॥

शारदाषर्ष—अध्याय ३, श्लोक ५७३

तो युद्ध म लड़ने लड़ते अपने प्राण भी द दे या युद्ध म अपना पराक्रम नियाकर
 त्रमम विजय प्राप्त करके घर लौटे । युद्ध से भाग हुए पुत्र का कायर क ममान
 समझ कर थोड़ा माता उसका मुख दखना भी पाप समझती है । इन्हीं प्रकार
 क्षत्राणी स्त्रियाँ अपने पति का युद्ध म जान क लिय प्रोत्साहित करती हैं उन्हें
 बड़े हृष क साथ सजाती है और चलते समय उनका आरती उतार कर कहना
 है कि अब या तो आप विजय प्राप्त करके सबुगत घर आकर हम दसन दोसे
 आयया यदि आप युद्ध म पुण्यगति का प्राप्त हुए तो हम भी आपके पाछ पाछ
 सती होकर जायेंगी और स्वर्ग म ही फिर हम लोगो का मिलना हो सकेगा
 क्षत्राणी स्त्रियाँ युद्ध म अपने पतियो को भोजन से नहीं डरती या बल्कि उन्हें
 भजन क लिये प्रोत्साहित करती थी ।

जब कौरव और पाण्डवो की सनाएँ युद्ध-स्थल म इकट्ठी हो गई और
 युद्ध आरम्भ हो गया, तब अर्धे घुतराष्ट्र न सजय से कहा कि एसी दगा म
 अब जो कुछ हान वाला है, वह होकर हा रहगा । कहते हैं युद्ध म शरार
 त्याग करना निश्चय ही सबके द्वारा सम्मानित क्षत्रिय धम है ।^{२१} सजय न
 घुतराष्ट्र का समझात हुए कहा कि मनुष्य तीन प्रकार क कर्मों से प्रेरित होकर
 काय करते हैं (१) ईश्वर की प्रेरणा से से काय करते हैं (२) आकस्मिक
 सयोगज कर्मों म प्रवृत्त होते हैं तथा (३) अपने पूर्व कर्मों की प्रेरणा न काय
 करते है । इसलिय मनुष्य को सकट देखकर घबराना नहीं चाहिये । धय पूर्वक
 उस सकट का सामना करने को उद्यत रहना चाहिये । कौरवो का नाश होत
 देखकर घुतराष्ट्र बड़े दुःखी होने लग तब विदुरजी ने उनसे कहा कि क्षत्रिय
 के लिए इम जगत म धमयुद्ध म बढ कर दूसरा कोई स्वय प्राप्ति का उत्तम
 माग नहीं है ।^{२२} ससार म समस्त प्राणी मृत्यु के बाहुपास म फसे हुए है,

२१—एग गत व तद् भावि तद् भविष्यति सजय ।

क्षत्रधम किल रणे तनुत्यागो हि पूजित ॥

उद्योगपर्व—अध्याय १८, श्लोक ७

२२—एव राजस्तथाचसे स्वयं पथानपुत्तमम् ।

न युद्धादधिकं किञ्चित् क्षत्रियस्यह विद्यत ॥

श्री पर्व—अध्याय ७ श्लोक १८

इसलिए किसी न किसी दिन मृत्यु सबको अपना शिकार बनायेगी। मसार म भौतिक वस्तुआ की भौतिक उप्रतियो का अत पतन म है। सारे सयोग का अन्त वियोग मे ही है। इस प्रकार सम्पूर्ण जीवन का अत मृत्यु म ही होने वाला है। जब सबको ही मृत्यु के पास जाना है तो फिर वीर क्षत्रिय लोग युद्ध क्या न करें और फिर युद्ध म ही मृत्यु प्राप्त करके अपना नाम अमर क्यों न करें अवश्य करें। क्षत्रियो का यश और कीर्ति युद्ध मे स्वय प्राप्ति स होता है।

युद्ध क्षेत्र म सना को भागते हुए देखकर क्षत्रिया क लिये युद्ध म मृत्यु श्रेष्ठ है एसा कह कर सनिको का रोकत हुए दुर्योधन ने कहा कि "क्षत्रिय धम के अनुसार युद्ध करने घाने वीरों के लिय सधाम भूमि म होने वाली मृत्यु ही सुखद है, क्योंकि वही मरा हुआ मनुष्य मृत्यु के दुख को नही जानता और मृत्यु के पश्चात अभय सुख का भागी हाना है।" २३ दुर्योधन की उस बात का आदर करके वे महारथी क्षत्रिय पुन युद्धस्थल मे लौट आये और अपना पराक्रम दिखान लगे। क्षत्रिय सैनिक अपन क्षत्रिय धम को स्मरण करके अपने धम के वाम मे मग्न हो गये। क्षत्रियो का धम बताने हुए श्रीकृष्ण ने अपनी वहिन मुभद्रा को धीरज बधाया जो अपने पुत्र अभिमयु की मृत्यु से परम दुःखी हो रही थी। श्रीकृष्ण ने कहा कि "पूरवीर अभिमयु न क्षत्रिय धम को आगे ख कर सत्पुरुषो की गति पाई है। जिसे हम लाग इस सनार के दूमरे गन्धारी क्षत्रिय नी पाना चाहत हैं।" २४ क्षत्रिय के लिय युद्धस्थल की मृत्यु

२३—सुख सांप्राप्तिको मृत्यु क्षत्रधर्मेण युध्यताम् ।

मृतो दुःख न जानीत प्रेत्य चानत्यमश्नुते ॥

गल्पवर्ष—अध्याय ३, श्लोक ५४१

२४—क्षत्रधर्मं पुरस्त्वत्य गत शूर सतां गतिम् ।

यां गति प्राप्नुयामेह ये चाये गच्छजीविन ॥

द्रोणपर्ष—अध्याय ७७, श्लोक २१

म यद्वक्त्र दूगम कोर्द सद्गति नही है । क्षत्रिया के धर्म बगाने हुए मुनिविर
न मग म कहा कि 'वाण विद्या क्षत्रिया का अक्षर है यज्ञ उक्त गन्तुगता
का साधन है, भय मानयोय भाव है शरण म आये हुए का त्याग कराना
असत्पुत्रता का-भा आपरण है । २९ वाण विद्या क्षत्रिया का प्रमुख कर्म है ।
प्राचीन काल म क्षत्रिया का मुख्य मार्ग स ही होता था । इगणिय प्रवेश
क्षत्रिय को यक्षपत म ही वाण विद्या का ज्ञान गुरु क यही रह कर गिगाया
जाता था । विद्या अध्ययन क गाय-गाय क्षत्रिय पुत्र मुख्य की गिगा भी
ग्रहण करत थे । मुख्य क्षत्रिया का प्रमुख एवं मरुत्वपूर्ण कार्य था । मुख्य्यन
म क्षत्रिया का गाय वाण विद्या ही दता थी । जा जिनना जिगुन हाता था
वह उतना ही अधिक मुख्य्यन म ठहर सकता था । बाणा म दूगरा का
मारना तथा दूगरे क बाणा स अपनी रक्षा करना यह बड़े कला-बौद्धम का
काम था । महाभारत काल म उम समय वाण विद्या म जिनन जिगुन अजुन
और कण थे, गायद ही उम समय इग पृथ्वी पर कोई तीगरा मनुष्य है ।
कण की मृत्यु क बाद तो अजुन एनमात्र धनुषर वार थे जिहाने अपन
धनुष बौगल से समस्त पृथ्वी क राजाआ को स्तम्भित कर दिया था । इग
प्रकार वाण विद्या सचमुच ही क्षत्रिया का अक्षर था ।

६—सत्य से विचलित न होना क्षत्रिय धर्म—

या तो क्षत्रिया के लिये बहुत स प्रधान कर्म हैं किन्तु सत्य उन मय
कर्मों से ऊपर है । क्षत्रिय राजा सबदा सत्य बोलते हैं । राजा दशरथ म
धनजाने म श्रवणकुमार की मृत्यु हो गई । तब उनके अध माता पिता का
पानी लेकर आये हुए दशरथ न अपना सम्पूर्ण अपराध उह सत्य-मत्य बता
दिया और उनके पूछने पर उह अपना नाम भी बता दिया । यदि कोई
असत्यवादी पुरष होता तो उन अधे माता पिता को कोई भी बहाना बता कर
उसकी मृत्यु का कारण बता देता और स्वयं उनके गाय से बच जाता । किन्तु
क्षत्रिय सत्य को कभी नहीं त्यागते चाहे स्वयं अपने प्राण ही क्यों न चले जाय ।

२५—इष्टस्त्रमेयां देवत्व यज्ञ एयां सतामिव ।

भय व मानुषो भावः परित्यागोऽसतामिव ॥

धनपर्वा—अध्याय—३१३, श्लोक ५२

इसी प्रकार सत्य का पालन करने वाले अनेक क्षत्रिय राजा हमारे प्राचीन इतिहास में हो गये हैं जिन्होंने अपने सत्य की रक्षा के लिए अपना धन राजसवस्व दे दिया तथा अपने पुत्र का जीवन भी अपने हाथों से समाप्त किया। सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र का वृत्तांत तो घर-घर में विख्यात है कि उन्होंने अपने सत्य की रक्षा के लिए अपना राजपाट, धन दीनत तो दिये ही थे, अपना स्त्रियाँ और पुत्र को भी बेचा था तथा सपत्नी की कमी के कारण स्वयं भी बिक गये थे, और सत्य की रक्षा के लिए ही उन्होंने शमशान की नीकरी की थी। इसी प्रकार सत्य का दूसरा उदाहरण राजा मोरघ्वज का है जिन्होंने अपने सत्य के लिए अपने पुत्र को आरे से काटा था। ऐसे कृष्ण और हृदयस्पर्शी उदाहरण भारत के ही इतिहास में मिलेंगे, जहाँ क्षत्रियों को अपनी स्त्रीसन्तान तथा राजपाट से भी बढकर सत्य का पालन करना धर्म था। अब किसी दंग में सत्य के ऐसे उदाहरण नहीं मिलेंगे।

सत्यवादी भरतवर्गी भीष्म न बचपन में ही अपने विवाह न करने की प्रतिज्ञा करली थी और आधी उम्र के बिन जाने पर भी उन्होंने विवाह नहीं किया। जब काशिराज की तीन कन्याओं का स्वयंवर हो रहा था, उस समय भीष्मजी अंत में अकेले उस स्वयंवर में पहुँचे, तो लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह तो आज्ञा-ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं, फिर भी इस स्वयंवर में कैसे आये हैं। उन कन्याओं ने भी श्वेतवस्त्र देखकर जयमाला उनके नहीं डाली और भीष्मता से आगे बढ गई। इस अपमान से उन्हें बड़ा क्रोध आया और सब राजाओं को ललकार कर तीनों कन्याओं का हठपूर्वक रूप पर बठा कर चल दिये। अनेक राजाओं ने उनका पीडा किया किंतु भीष्म से कोई भी नहीं जीत सका अंत में सब हारकर लौट गये और शांतनु के पुत्र उन तीनों कन्याओं को साथ लेकर अपने छोटे भाई के राज्य में आ पहुँचे। उन्होंने आकर तीनों कन्याओं का विवाह विधिपूर्वक अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य से करने के विषय में माता से सलाह ली और श्रेष्ठ ब्राह्मणों को बुला लिया। सबसे बड़ी लडकी ने जो उम्र में भी विचित्रवीर्य से बड़ी थी। भीष्म तथा ब्राह्मणों से कहा कि मैं पहले शाल्व नरेश को अपना पति मान चुकी हूँ तथा स्वयंवर में मैं उन्हीं का धरण करती। यह सुनकर भीष्म न तथा ब्राह्मणों ने उस बड़ी लडकी को शाल्व नरेश के यहाँ पहुँचा दिया और छोटी दोना बहिना का विवाह विधिपूर्वक छोटे भाई विचित्रवीर्य से कर दिया। किंतु दुर्भाग्य से सात वर्ष के बाद यह यक्ष्मा रोग से पीडित होकर स्वर्गवासी

हो गया । उनका कोई सन्तान नहीं थी । यह सोचकर भीष्म की माता सत्यवती ने भीष्म से कहा कि अब कुल की लाज तुम्हारे हाथ है । अब तुम राज्य का भार ग्रहण करो और इन सुन्दर युवावस्था को प्राप्त हुई विचित्रवीर्य की स्त्रियों को अपनी पत्नी स्वीकार करके कुल परम्परा का बढ़ाने वाला पुण्यकाय करो । यह सुनकर भीष्म ने माता से कहा कि मैं तीनों लोकों का राज्य, देवताओं का साम्राज्य अथवा इन दोनों से भी अधिक महत्त्व को वस्तु का भी एक दम त्याग सकता हूँ परन्तु सत्य को किसी प्रकार नहीं छोड़ सकता ।^{२६} इस प्रकार भीष्म भी राज्य तथा कुल की परम्परा की वृद्धि से भी सत्य को ही अधिक मानते थे । क्षत्रियों के लिए सत्य को ही अधिक मानते थे । क्षत्रियों के लिए सत्य सब धर्मों में बढ़कर श्रेष्ठ धर्म है । हिन्दी में सत्यव्रत हरिश्चन्द्र का उनका सत्यता के प्रति यह दोहा लोक प्रसिद्ध हो गया है—

‘चन्द टर सूरज टरे टरे जगत व्यवहार ।

प दृढव्रत हरिचन्द को मिटे न सत्य विचार ॥

क्षत्रिय अपने सत्य को पूरा करना सबसे बड़ा धर्म मानते थे । भीष्म की माता ने फिर भीष्म से आग्रह किया तो भीष्म ने उनसे कहा कि आप जो कह रही हैं वह भी उचित ही है किन्तु क्षत्रियों के धर्म को भी तो देखो राजमाता धर्म की ओर दृष्टि डालो क्षत्रिय का सत्य से विचलित होना किता भी धर्म में अच्छा नहीं माना गया है ।^{२७} क्षत्रिय के लिए जो सनातन धर्म है उसे आप कर सकती हैं ।

२६—परित्यजेय त्रसोषय राज्य देवेषु वा पुन ।

यद् वाप्यधिकमेताभ्यां न तु सत्यं क्यचन ॥

आदिपर्व—अध्याय—१०३, श्लोक १५

२७—राज्ञि धर्मनिवेशस्व मा न सर्वान् व्यनोत्तम ।

सत्यायुति क्षत्रियस्य न धर्मेषु प्रगस्यते ।

आदिपर्व—अध्याय—१०३, श्लोक २४

७— यज्ञ करना तथा याचना न करना क्षत्रिय धर्म है—

प्राचीनकाल म क्षत्रिया का मुख्य धम यज्ञ करना तो था ही, ब्राह्मणा को दक्षिणा दवर वटे-वडे यन कराना भी उनका धम था। सुय वगी अनेक राजाआ न बहुत-सा दान दिया था। प्राचीनकाल के प्रत्येक राजा अपने समय म यन अवश्य करावा करते थे। यन कराने मे वर्षा अत्रिक होती थी, जिससे प्रजा वनघा य से सुखी रहती थी। यन स वायु शुद्धि होती थी, अनेक व्याधिया दूर भागती थी। यन करन से मन तथा भाव भी शुद्ध हो जाते थे जिसस लागी का मन पुण्यकार्यों की ओर भुक्ता था। यन कराने से राजा के अनेक मनारथ पूरा होत थे। अनेक राजाआ को यन के द्वारा सत्तान तक प्राप्त हुई थी। यन कराने से राजा तथा प्रजा सभी सुखी रहते थे। सबके मन प्रमत्तता से हर समय खिने रहते थे। वसम्पायन न क्षत्रिय के लिय यन करना धम के विषय म कहा है कि 'क्षत्रिय लोग बहुत-सी दक्षिणा वाल वडे-वडे यना द्वारा यजन करत थे। ब्राह्मण अगा और उपनिषत् संहित सम्पूरा वदा का अध्ययन करते थे।^{२८} यन कराना क्षत्रियों का सनातन धम है। धमशास्त्रा म यन करना और कराना क्षत्रियो का प्रधान कम माना गया है।

याचना करना धमशास्त्रा म केवल ब्राह्मणा का ही धम बताया है और किसी वण के लिए याचना करना अधम है। याचना करना ब्राह्मणा का धम इमलिय बताया है कि वह अध्यापन तथा वदा के अध्ययन म इतने लीन रहत हैं कि वह अपन लिए धन इकट्ठा नहीं कर सकते। उसकी दीनता तथा गुरीबी के कारण ही धमशास्त्रा म याचना करना केवल ब्राह्मणा क लिए ही लिखा है। क्षत्रिय और वश्य धन स समय तथा सम्पन्न हाते हैं तथा उन दोनों का धम ही धन का सग्रह करना है। केवल ब्राह्मण ही धन के सग्रह से वचित रहता है। इमलिय वह ही याचना का अधिकारी है। द्रौपदी के लिए कमल लान के लिए जब भीमसेन कुवर क जलागय पर पहुच तो वहाँ क रक्षक राक्षसा न भीमसेन को वमन ताडने स रोका और उनसे कहा कि आप कुवर मे आना लकर आइय तभी इन कमला का स्पश करो। तब भीमसेन न कहा कि

२८— ईजिरे ध महायज्ञ क्षत्रिया बहुदक्षिण ।

साङ्गोपनिषदान् वेदान् विप्राश्रयोयते तदा ।

आदिपव - अध्याय-६४, श्लोक १६

क्षत्रिय किसी में कुछ माँगते नहीं हैं। यही इतरा मनाने धर्म है। मैं किसी तरह क्षत्रिय धर्म को छोड़ना नहीं चाहता।^{२९} भामिनी ने अपना पराक्रम मगध पहरेदार राक्षसा को हराकर भगा दिया और बमन मरता ही नहीं। उनके पराक्रम को देखकर कुन्दर भी प्रसन्न हो गये और अपना पहरेदारी का यह कर्तव्य सौंप दिया कि उन्हें बमन से जान दो। क्षत्रियों का धर्म मगध बढ़कर है तथा उनका पराक्रम अद्भुत है।



२६—न हि याचन्ति राजान एष धर्म सनातन ।

न चाहं हानुमिरुद्रामि क्षत्रधर्मं धयन्त ॥

वनपर्व—अध्याय—१५४, श्लोक १०

महाभारत में राजधर्म

१--राजधर्म की श्रेष्ठता--

राजधर्म का अर्थ राजा का धर्म है। धार्मिक मान्यता के अनुसार क्षत्रिय को ही राजा होना उचित है। प्रजा की रक्षा और प्रजा का पालन राजा का मुख्य धर्म है। य क्षत्रियो के ही वत्तव्य है। पुरूप सूक्त मे क्षत्रियो के लिए 'राजय' शब्द का प्रयोग किया गया है। क्षत्रिया का वग एक प्रकार स राजाओ का समूह (राजय) ही है। पराक्रम और रक्षा के द्वारा प्रत्येक क्षत्रिय राजधर्म का ही पालन करता है और वह 'राजय' पद का अधिकारी है। अत व्यापक और सामान्य अर्थ मे क्षत्रिय और राजा एक दूसरे के पर्याय व समान हैं। किंतु विशेष अर्थ मे दोनो मे कुछ भेद किया जा सकता है। राजा क्षत्रिया व सम्पूर्ण वग का प्रतिनिधि होता है और वह एक भूखण्ड का शासक होता है। सामान्य क्षत्रिय धर्म के अतिरिक्त उसके कुछ विशेष धर्म हाते हैं। रक्षा और युद्ध की व्यवस्था एक उनका नेतृत्व राजा का प्रमुख धर्म है। राजपद और राजधर्म का इसी विशेषता की दृष्टि से राजधर्म का पृथक् वर्णन किया गया है। शासन याय दण्ड, युद्ध प्रजापालन आदि राजा के मुख्य धर्म हैं। महाभारत राजाओ का चरित है। अत उसमे राजधर्म और राज नीति का विशद् वर्णन मिलता है। राजधर्म को क्षत्रिय धर्म का ही विशेष रूप मान सकते हैं। राजा के द्वारा राजधर्म के पालन के ऊपर ही प्रजा के सभी वर्णों का धर्मपालन निर्भर करता है। क्षत्रिया का सामान्य धर्मपालन भी राजधर्म पर ही अवलम्बित है। अत राजधर्म सभी धर्मों मे श्रेष्ठ है। वह समाज के धर्म प्रासाद की नीव है। प्रजातंत्र के शासन मे भी राजधर्म का महत्व अधुण्य रहता है। प्रजा के प्रतिनिधि होत हुए भी शासका मे प्रजा पालन, धर्माचरण राजनीति आदि के गुण अपक्षित होते है। शासन का

संचालन राजधर्म के अनुसार ही होना है। अन्तर् केवल इतना ही है कि राजतंत्र की परम्परा मे राजा वगैरपरम्परा से शासन का अधिकारी होता था और प्रजातंत्र मे वह जनमत से चुना जाता है।

महाभारत राजाओं का चरित्र है। अतः राजधर्म की श्रेष्ठता और राजाओं के कर्त्तव्य का उत्तम विनाश वगैरान मिलना स्वाभाविक है। उत्तम न राजा भाषाता से कहा कि 'राजा का उपमा सब प्रकार से हजार नन्दा वाले इन्द्र से दी जाती है। अतः राजा जिस धर्म को भली भाँति समझ कर निश्चित कर देता है वही श्रेष्ठ धर्म माना गया है।' राजा को इन्द्र के समान हजार नन्दा वाला इसलिए कहा गया है कि वह भी अपने देव के समस्त हजारों कार्यों को स्वयं देखता है तथा स्वयं कराता है। श्रेष्ठ राजा वही कहलाता है जो प्रजा तथा देव के समस्त सुखा दुःखा को देखता रहे। राजधर्म ही सब धर्मों मे श्रेष्ठ है। क्योंकि अथ सब धर्म इसी धर्म के आश्रय मे पलते तथा बढ़ते हैं। यदि राजधर्म हमारा उचित धर्म का पालन न करे और देव के अथ सब धर्म भी गिरिधिल पड जायेंगे और अपने धर्म से विचलित होने लगेंगे। राजधर्म की श्रेष्ठता बताते हुए भीष्म न युधिष्ठिर से कहा कि "यदि दण्डनीति नष्ट हो जाय तो तीना वेद रसातल को चले जायें और वेदा के नष्ट होने से समाज मे प्रचलित हुए सारे धर्मों का नाश हो जाय। पुरातन राजधर्म जिस क्षात्रधर्म की कहत है यदि लुप्त हो जाय तो आश्रमा के सम्पूर्ण धर्मों का ही नाश हो जायगा।"^२ चारों आश्रमा के धर्म तथा चारों वर्णों के धर्म सब राजधर्म पर

१—सहस्राग्नेन राजा हि सवयवोपधीयते ।

स परयति च य धर्म स धर्म पुरुषयभ ॥

गीतिकाव—अध्याय ८१ श्लो० ४५

२—मग्नेन त्रयी दण्डनीतो हतायां

सर्वे धर्मा प्रण्येपुविबुद्धा ।

सर्वे धर्माभ्राधमाणा हताः स्युः

क्षात्र स्वशने राजधर्मे पुराणे ॥

गीतिकाव—अध्याय ६३, श्लो० २८

ही आश्रित रहते हैं। ब्रह्मचर्य जाश्रम राजा की नीति के ऊपर ही रहता है क्योंकि ब्रह्मचारी बालक ब्राह्मण के यहां आकर पढ़ते हैं तथा गहर से भिक्षा प्राप्त करके अपना उदर पालन करते हैं। यदि राजा धर्मात्मा होगा तब तो सम्पूर्ण प्रजा भी धर्मात्मा होगी और इन ब्रह्मचारियों को भिक्षा देकर उनका ब्रह्मचर्याश्रम सफर करगी। ब्राह्मण भी उन ब्रह्मचारियों को ज्ञान की तथा विद्या की शिक्षा तभी द सकगा जब राजा की ओर से उत्सुक मन में श्रद्धा आकर तथा धर्मपरायणता का भाव होगा। जंगल में हिसक पशुआ से रक्षा का भार भी राजा पर हा होता है। यदि राजा ब्राह्मणों की रक्षा की सुविधा का ध्यान रखेगा, तभी ब्राह्मण निष्पयो को उचित शिक्षा का ज्ञान करा सकता था। इसी प्रकार गृहस्थाश्रम में रहने वाला मनुष्य को अथ तीनों आश्रमों के लोगों का ध्यान रखना पड़ता है। अथ तीनों आश्रम ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ तथा संन्यास गृहस्थाश्रम के आश्रम में ही अपना जीवन निवाह करते हैं। यदि राजा धर्मात्मा तथा दयावान होगा, तभी गृहस्थाश्रम में रहनेवाली प्रजा भी धर्मात्मा और दयावान होगी और अथ तीनों आश्रमों के जीवन निवाह का ध्यान रखेगी। इसलिए राजधर्म ही सब धर्मों में श्रेष्ठ है।

राजा के धर्म में सम्पूर्ण त्याग का दर्शन बताने हुए भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि 'राजा के धर्मों में सारे त्याग का दर्शन होना है, राजधर्मों में सारी दीक्षाओं का प्रतिपादन हो जाता है। राजधर्म में सम्पूर्ण विद्याओं का अयोग सुलभ है तथा राजधर्म में सम्पूर्ण लोकों का समावेश हो जाता है।'^३ राजा का जीवन दूसरा का सुख पहुचाने के लिए होता है। जब तक राजा त्यागी नहीं होगा तब तक उसे दूसरों के सुख-दुख का भान भी नहीं होगा। इसलिए राजा का जीवन त्यागपूर्ण होता था। राजा सम्पूर्ण विद्याओं का ज्ञान होता था और इसी ज्ञान के कारण वह सम्पूर्ण विद्याओं जैसे वाग्-विद्या, संगात विद्या, नृप्य विद्या, कला की विद्या आदि का आदर-सम्मान

३—सर्वे त्यागा राजधर्मेषु दृष्टा

सर्वा दीक्षा राजधर्मेषु चोक्ता ।

सर्वा विद्या राजधर्मेषु युक्ता

सर्वे लोका राजधर्मेषु प्रविष्टा ॥

की रक्षा करने से राजा को नाना प्रकार के यज्ञों की लीला लेने का पुण्य प्राप्त होता है। जो प्रतिदिन ब्रह्मा का स्वाध्याय करता है, धर्माभाव रखता है, आचार्य की पूजा करता है, इष्ट मन्त्र का जप और देवताओं का सत्पूजन करता है, जो राजा युद्ध में प्राणा की बाजी लगाकर निश्चय के साथ शत्रुओं का सामना करने पर मर जाता है, जो सदा समस्त प्राणियों के प्रति माया और कृपिलता से रहित यथायथ व्यवहार करता है उसे सत्यस-आश्रम से प्राप्त ज्ञान वाला पुण्य फल प्राप्त होता है।

युग का प्रवर्तक भी राजा ही होता है, ऐसा धर्मशास्त्रा का कथन है। महाभारत में भी कुन्ती ने श्रीकृष्ण से कहा है कि 'अपने सत्कर्मों द्वारा सत्ययुग उपस्थित करने के कारण राजा को अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होती है। मेरा भी प्रवृत्ति करने में भी उस स्वर्ग प्राप्ति हानो है किन्तु वह अक्षय नहीं होता।' इसका मतलब यही है कि राजा जमी नीतिवाला होगा उसकी प्रजा भी बसे ही आचरण वाली हो जाती है। इसीलिए राजा को युग का प्रवर्तक कहते हैं। यदि राजा सद्गुणा वाला होगा तो उसकी प्रजा भी सद्गुणा वाली होगी और उस राजा का समय सत्ययुग जमा कहना पड़ेगा। सद्गुणा में राजा दण्ड में एगो नीति रखेगा जिगम शहर में चोर डाकू आदि दुष्ट लोगों की बठार दण्ड से समाप्त हो जाय तो सत्ययुग सद्गुणा वाला ही रहेंगे और दण्ड में सुख प्राप्त रहेंगे। कहते हैं कि सद्गुणों के राज्य में सत्ययुग में ताल भी नहीं लगते थे और सब निरिन्ध तथा निभय होकर मोन धर्मियों का चोरी का डर नहीं था। उस राज्य में सबका मनसुग ही लगना होगा। धर्म एगो बठोर नीति वाला राजा हुए हैं जिन्होंने चार डाकूओं को तथा एगो ही पुर आचरण वाला मनुष्या का पीला कमर में न देखकर मन्त्र पर गडा पर सत्का कर तिनवाँ धर्म जिगम उनही शक्ति को समस्त राज्यारण्य में जोर उमग समझे कि बुर काम करने में क्या होगा। इन डर के कारण बुरों में जाग तो स्वयं ही सुधर जायेंगे और दण्ड में शांति बना लेंगी। राजा का युग का रक्षा बटुना उचित ही है—

८—दुर्लभ करणार् राजा स्वर्गमाप्त्यन्मनुते ।

प्रताप करणार् राजा स्वर्ग माप्त्यन्मनुते ।

उदित्यत्र—भाष्य—१३२ अर्थात् १८

“यथा राजा तथा प्रजा वाली क्हावत सही ही लगती है । जिम जिस दंग म अवनति हुई है उस देग का इतिहास जानने से नात होता कि उस दंग का राजा स्वय एमा ही था, जो कुछ न तो देग की उन्नति कर सका और न प्रजा को सुख गान्ति दे सका ।

सब देवनाजा की भाति राजा भी पूजनीय होता है । युधिष्ठिर के यहा अश्वमेध के सहसा राजा इक्ठ्ठे हुए थे, उम समय भीष्म ने युधिष्ठिर से क्हा था कि यदि राजा एक बप विताकर अपन यहा आवें, तो उनके लिए अच्छा निवेदन करके उनकी पूजा करती चाहिए ऐसा गार्ह्यन पुरुषा का कथन है ये सभा नरेग दीघकाल के बाद आय हैं ।

२—राजा के कर्तव्य—

क्षत्रिय राजा का सबसे पहला धम है प्रजा का पालन करना । प्रजा का आय क छठ भाग का उपभोग करने वाला राजा धम का फल राता है । राजा के प्रधान कर्त्तव्य धताने हुए शिवजी ने पावती को बताया कि ‘ इन्द्रिय समय, स्वाध्याय, अग्निहोत्र कम दान अध्ययन, यनापवीत धारण यनानुष्ठान, धार्मिक काय का सम्पादन, पोष्यवग का भरण पापण, आरम्भ किये हुए कम को सफल बनाना अपराध क अनुमार उचित दण्ड देना, वदिक यज्ञादि कर्मों का अनुष्ठान करना, व्यवहार म यय की रक्षा करना और सत्यभाषण म अनुरक्त होना, य सभी राजा क लिए धार्मिक कम हैं । ’ राजा को इन्द्रिय-मयम

६—एतान्धर्मनिभिगतानाहु सवत्सरोपितान् ।

त इमे कात्तपूगस्य महतोऽस्मानुपागता ।

सभापर्णि—अध्याय—३६, श्लोक २४

१०—तस्य राज्ञ परो धर्मो दम स्वाध्याय एव च ।

अग्निहोत्रपरिस्पदा दानाभ्ययनमेव च ॥

यज्ञोपवीतधरण यज्ञो धम क्रियास्तथा ।

भत्याना भरण धम कृते कमप्यमोघता ॥

सम्यग्दण्डे स्थितिधर्मो धर्मो वेदत्रतुक्रिया ।

व्यवहारस्थितिधम सत्यवाक्यरतिस्तथा ॥

अनुशासन पत्र—अध्याय १४१, ४६ ५० ५१

होना चाहिए जिससे उसकी बुद्धि उचित ढंग से सब के अपराधों को दख सके और दूमरों की खिया के साथ सद्व्यवहार कर सके। स्वाध्याय राजा के लिए नित्य काम है जिससे उसका मन नियमी म बँधा रहें और अनुचित बातों की चार राजा का मन न जाये। जो राजा नित्य काम, स्वाध्याय तथा धार्मिक कार्यों म नित्य लगा रहता है उसकी प्रजा सुखी तथा धर्माचरण करने वाली रहनी है। श्रेष्ठ राजा का राज्य सदैव सबको सुख देने वाला हाता है। सजय मे पाण्डवों को बातें करते समय श्रीकृष्ण न श्रेष्ठ राजा के कर्त्तव्य इस प्रकार बताये कि राजा सावधानी के साथ इन सब वर्णों का पालन करत हुए इहे अपने अपने धर्म म लगाव। वह कामभोग म आसक्त न होकर समस्त प्रजाओं के साथ समान भाव से वर्ताव करे और पापपूर्ण इच्छाओं का कदापि अनुमरण न करे।^{११} चारों वर्णों की रक्षा करता तथा उहे अपने धर्मों म प्रवृत्त बनाय रखना राजा का ही कर्त्तव्य है। यदि राजा स्वयं अपने धर्म म आसक्त रहेगा तो आधे लोग तो स्वयं ही अपन अपन धर्मों के अनुसार आचरण करेंगे और शेष आधे लोग राजा के भय से उचित माग पर चर्नेंगे। यदि राजा का भाव प्रजा की ओर समानता का रहेगा तो प्रजा भी राजा के बताय हुए माग पर हा चलगी क्योंकि जो राजा मारी प्रजा को समान दृष्टि से देखता है उस प्रजा ईश्वर के समान पूजनीय मानती है। इमनिष्ठ राजा को अपनी प्रजा म एसा व्यवहार रखना चाहिए जिससे प्रजा किसी भी प्रकार असंतुष्ट होकर राजा की जानोचना न करे और राजा को श्रेष्ठ एव दय पुण्य समझे। श्रीकृष्ण न सजय से कहा कि यदि राजा को पान हा जाय कि उसके राज्य म कोई सबधर्म मन्थन श्रेष्ठ पुरुष निवाम करता है तो वह उगी का प्रजा के गुण दाप का निरीक्षण करने के लिए नियुक्त कर तथा उगी द्वारा पता लगवाव कि मरे राज्य म कोई पाप काम

११ एतान् राजा पातयप्रथमतो ।

नियोजयन् सर्वधर्मान् स्वधर्मैः ।

अज्ञामाग्ना समवृत्तिं प्रजायु

नापाधिज्ञानत्रुष्टयेन क्षामान् ।

उद्योग्यत्र - अध्याय-२६ श्लोक २७

करने वाला तो नहीं है ।' १२ राजा यदि श्रेष्ठ पुरुषा को आदर दगा, तो व श्रेष्ठ पुण्य भी राजा के लिए अपना तन मन, सब कुद्ध प्रसन्नता स दगे । श्रेष्ठ पुरुषो क आधिक्य से राजा के सम्पूर्ण काय विश्वास और अपनपन से पूरा हांग । प्रत्येक काय करने वाला राजा के काम को अपना समझ कर ही करेगा और इससे राजा के देश की उन्नति होगी और वह राजा दूर दूर तक प्रसिद्धि पायेगा ।

३ — राजा के आचरण मे धम की प्रधानता—

राजा का आचरण सदा धम से युक्त होना चाहिए । धम का आचरण करने वाले राजा को ही सद्बुद्धि प्राप्त होती है और सद्बुद्धि से सब सकट दूर होते है । जा राजा धम का आचरण नहीं करता है उनके सब कम व्यथ होत है तथा सदा सकटा म फँसा रहता है । धम से विमुख राजा का कभी उद्वार नहीं होता और न वह राजा अपना जीवन क्षाति से व्यतीत कर सकता है । उसक राज्य म प्रजा अशांत रहती है तथा चोर डाकुआ आदि दुष्ट लोगा का आतंक बढ जाता है और प्रजा म त्राहि त्राहि मची रहती है । धम स विमुख राजा की प्रजा विद्रोह करने को उद्यत रहती है और समय देखकर विद्रोह हो भी जाता है । इसलिए राजा को सदा धम का आचरण करना चाहिए । राजा घृतराष्ट्र से कणिक न कहा कि 'राजा यदि सकट म हो तो कोमल या भयकर—जिस किसी भी कम के द्वारा उम दुरवस्था से अपना

१२—श्र पांस्तस्माद् यदि विद्योत कश्चि

दभिजात सब धर्मोपपन्न ।

स त द्रष्टुमनुशिष्यात् प्रजानां

न क्षतद् बुध्पेदिति तस्मिन्नज्ञाधु ॥

उद्योगपत्र—अध्याय २६ श्लोक २८

उद्धार करे फिर समर्थ होने पर धर्म का आचरण करे।"१३ धर्म से विमुख राजा भी जब संकट में पड़ जाता है, तभी उसे धर्म का ज्ञान होता है और संकट में छूट जाने पर यदि वह सद्बुद्धि रखे और धर्म का आचरण करना आरम्भ करे, तो वह संकट भी उसका माग दशन कराने वाला सिद्ध होता है। मनुष्य का प्रायः स्वभाव ऐसा ही दखा जाता है कि जब तक उस पर संकट नहीं पड़ता, तब तक वह बुद्धि को काम में नहीं लाता और आलस्य में रहकर अनुचित कार्य करता रहता है। किन्तु यदि किसी को संकट से ज्ञान हो जय तो यह सबसे उत्तम माग है। संकट से ज्ञान होने वाले को भी सद्बुद्धि वाला ही समझना चाहिए। धर्म की प्रशंसा करते हुए द्रौपदी ने युधिष्ठिर से कहा कि 'यदि धर्म की रक्षा की जाय, तो वह धर्म भी स्वयं राजा की रक्षा करता है। किन्तु वह आपकी रक्षा नहीं कर रहा है।'१४ यदि राजा धर्म का आचरण करने वाला होता है, तो उस पर संकट आत ही नहीं और यदि आत भा है, तो धर्म में वह सब टल जात है अर्थात् धर्म ही उह नष्ट कर दता है। धर्मात्मा राजा की सुरक्षित प्रजा यहाँ जिस धर्म का अनुष्ठान करने है उसका चौथाई भाग उस राजा को मिल जाता है। कुन्ती ने श्राष्ट्रपण से कहा कि तुम युधिष्ठिर से यह सदन कहना कि 'यदि राजा धर्म का पालन करता है तो उस दबत्व की प्राप्ति होती है और यदि अधर्म करता है तो नरक में ही पड़ना है।'१५ इसका मतलब यही है कि यदि राजा धर्मात्मा

१३—धर्मणा येन केनच मृत्ना दान्तेन च ।

उद्धरेद् धीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरत् ॥

भाषित्य—अध्या० १३६, श्लो० ७२

१४—रात्रान् धर्मगोक्षारं धर्मो रक्षति रक्षितः ।

इति मे धृत्तमार्याणां त्वां तु माये न रक्षति ॥

धर्मगव—अध्या० ३०, श्लो० ८

१५—रात्रां धरति धेः धर्म देववायव धरति ।

न धेरधम धरति नरकायव गच्छति ॥

उद्योगव—अध्या० १३२ श्लो० १३

होगा, तो उसकी प्रजा उसे ईश्वर तुल्य मानने लगेगी और वह इहलोक तथा परलोक मे देवत्व को प्राप्त करता है। अधम करने वाला राजा इहलोक मे भी अशान्ति तथा असन्तोष प्राप्त करता है तथा प्रजा द्वारा अपमानित होता है और परलोक भी विगाड लता है अर्थात् नरक मे नाना प्रकार के दुख उठाता है। युधिष्ठिर के धममय स्वभाव को देखकर श्रीकृष्ण ने उनसे कहा कि 'राज्यलाभ की अपेक्षा धम महान् है। धम की वृद्धि के लिए तप को ही प्रधान साधन बताया है। आप सत्य और सरलता आदि सद्गुणा क साथ साथ स्वधम का पालन करते हैं, अत आपन इहलोक और परलोक दोनों को जीत लिया है।' ११ आप जैसे जो राजा भी कामना से प्रेरित होकर कुछ नहीं करते है तथा धा के लोभ से धम का त्याग नहीं करते हैं वे धम के प्रभाव से ही धमराज कहलाते हैं कृष्ण ने युधिष्ठिर से ऐसा कहा। राजा के लिए राज्य की अपेक्षा धम महान् होता है, इसलिए राजा को धम मे रत रहना चाहिए।

अष्टक-ययाति सवाद मे अष्टक न अपने सम्पूर्ण लोक राजा ययाति को देते हुए कहा कि तुम मरे ही लोको मे घूमते रहना और नीचे न उतरना, मैं तुम्ह अपने लोकों को देता हू। इस पर ययाति ने कहा कि दान लेना केवल ब्राह्मण का ही कर्त्तव्य है, धमशास्त्रोम अय और किसी को दान का अधिकारी नहीं बताया है। इसलिए आपके द्वारा दिये जाने वाले लोकों को मैं ग्रहण नहीं करता हू क्योंकि य भरे लिए उचित काय नहीं है। ययाति ने अष्टक से कहा कि "कोई भी राजा समान तेजस्वी होकर दूसरे से पुण्य तथा योग क्षेत्र की इच्छा न करे। विद्वान् राजा दबवग भारी विपत्ति मे पड जाने पर भी कोई

१६—धम पर पाण्डव राज्यलाभात्

तस्यायमाहुस्तप एव राजन् ।

सत्याजवाभ्यां चरता स्वधर्मं

जितस्त्वयाय च परञ्च लोक ॥

उद्धार करे, फिर समथ होने पर धर्म का आचरण करे ।^{१३} धर्म से त्रिभुग राजा भी जब सक्कट म पड जाता है, तभी उस धर्म का ज्ञान होता है और सक्कट के छूट जाने पर यदि वह सद्बुद्धि रस और धर्म का आचरण करना आरम्भ कर दे, तो वह सक्कट भी उसके भाग दान कराने वाला सिद्ध होता है। मनुष्य का प्राय स्वभाव ऐसा ही दया जाता है कि जब तक उस पर सक्कट नहीं पडता तब तक वह बुद्धि को काम म नहीं लाता और आलस्य म रदकर अनुचित काय करता रहता है । किन्तु यदि किसी को सक्कट से जान हो जय तो यह सबसे उत्तम भाग है । सक्कट से जान होन वाल को भी सद्बुद्धि वाला हा समझना चाहिए । धर्म की प्रशंसा करते हुए द्रौपदी ने युधिष्ठिर से कहा कि 'यदि धर्म की रक्षा की जाय, तो वह धर्म भी स्वयं राजा की रक्षा करता है । किन्तु वह आपकी रक्षा नहीं कर रहा है ।'^{१४} यदि राजा धर्म का आचरण करने वाला हाता है, तो या तो उस पर सक्कट आत ही नहीं और यदि आत भी है, तो धर्म से वह सब टल जाते है अर्थात् धर्म ही उह नष्ट कर देता है । धर्मात्मा राजा की सुरक्षित प्रजा यहा जिस धर्म का अनुष्ठान करता है, उसका चौथाई भाग उस राजा को मिल जाता है । कुन्ती न श्राकृष्ण से कहा कि तुम युधिष्ठिर से यह सन्देश कहना कि 'यदि राजा धर्म का पालन करता है तो उसे देवत्व की प्राप्ति होती है और यदि अधर्म करता है तो नरक म ही पडता है ।'^{१५} इसका मतलब यही है कि यदि राजा धर्मात्मा

१३—श्रमणा येन केनच मृदुना दारुणेन च ।

उद्धरेद् दीनमात्मान समर्थो धर्ममाचरत् ॥

आदिपव—अध्या० १३६, श्लो० ७२

१४—राजान धर्मगोप्तार धर्मो रक्षति रक्षित ।

इति म धृतमार्याणा त्वा तु ममे न रक्षति ॥

वनपव—अध्या० ३०, श्लो० ८

१५—राजा धरित चेद् धर्म देवत्वापव कल्पते ।

स चेदधर्म धरति नरकापव गच्छति ॥

उद्योगपव—अ या० १३२, श्लो० १३

योगा, तो उसकी प्रजा उसे ईश्वर तुल्य मानने लगेगी और वह इहलोक तथा परलोक म देवत्व का प्राप्त करता है । अघम करने वाला राजा इहलोक म भी अज्ञाति तथा असन्तोष प्राप्त करता है तथा प्रजा द्वारा अपमानित होता है और परलोक भी चिगाड लेता है अर्थात् नरक म जाना प्रकार के दुःख उठाता है । युधिष्ठिर के घममय स्वभाव को देखकर श्रीकृष्ण न उनसे कहा कि 'राज्यलाभ की अपेक्षा घम महान् है । घम की वृद्धि के लिए तर को ही प्रधान साधन बताया है । आप सत्य और सरनता आदि सद्गुणा के साथ साथ स्वघम का पालन करते हैं अत आपने इहलोक और परलोक दोनों को जीत लिया है ।' आप जैसे जो राजा भी कामना से प्रेरित होकर कुछ नहीं करते हैं तथा घन के लोभ से घम का त्याग नहीं करते हैं, वे घम के प्रभाव से ही घमराज कहलाते हैं कृष्ण ने युधिष्ठिर से ऐसा कहा । राजा के लिए राज्य की अपेक्षा घम महान् होता है, इसलिए राजा को घम म रत रहना चाहिए ।

अष्टक-ययाति सवाद मे अष्टक न अपने सम्पूर्ण लोक राजा ययाति को देने हुए कहा कि तुम मेरे ही लोका म घूमते रहना और नीचे न उतरना, मैं तुम्ह अपने लोका को देता हू । इस पर ययाति ने कहा कि दान लेना केवल ब्राह्मण का ही कर्त्तव्य है घमनास्त्राम अय और किसी को दान का अधिकारी नहीं बताया है । इसलिए आपको द्वारा दिये जाने वाले लोका को मैं ग्रहण नहीं करता हू क्योंकि य मेरे लिए उचित काय नहीं है । ययाति ने अष्टक से कहा कि 'कोई भी राजा समान तजस्वा होकर दूसरे से पुण्य तथा योग क्षेम की इच्छा न करे । विद्वान् राजा देववर्ग भारी विपत्ति मे पड जाने पर भी कोई

१६—घम पर पाण्डव राज्यलाभात्

तस्यायमाहृस्तप एव राजन् ।

सत्याजवाभ्या चरता स्वघम

जितस्त्वयाप च परश्र लोक ॥

पापमय काय न करे ।^{१७} राजा को महान् सबट पडन पर भी अपना नहीं छोड़ना चाहिए । राजा को धर्म की रक्षा राज्य से भी बढ़कर कर चाहिए । राज्य का सुख तो थोड़े से समय का ही होता है, वृद्धावस्था आन उसे पुत्र को सौंपना पड़ता है, किन्तु धर्म ही एक एसी वस्तु है जो इतने में तो अन्त समय तक काम आती ही है, मृत्यु के बाद परलोक में भी धर्म सहायक बनता है ऐसा धर्मशास्त्रा का मत है । इसलिए राजा को धर्म का पालन बचन से बचन समय पड़ने पर भी करते रहना चाहिए । मृत्यु समय न पुत्र साथ जाता है न वधु-बाधक और न स्त्री ही बस धर्म साथ रहता है और उसी से सद्गति मिलती है । धनशैलत, मजान जायदा ठाट वाट सब क्षणिक और ससार में रहने तक बही साथी हैं । धर्म अमर वस्तु है जो मृत्युपर्यन्त तक साथ जाती है । युधिष्ठिर ने भीष्मजी से धर्मों राजा के आचरण के विषय में पूछा तब भीष्मजी ने वसुमना नामक राजा वामदेवजी ने जसा आचरण बतलाया था उसका उदाहरण देकर इस प्रकार कहा कि वसुमना राजा को वामदेवजी ने यह व्यवहार बतलाया कि 'जो भूषण धर्म को अथसिद्धि की अपक्षा भी बड़ा मानता है और उसी को (धर्म को बढान में अपने मन और बुद्धि का उपयोग करता है वह धर्म का कारण ब सोभा पाता है ।'^{१८} इसके विपरीत जो राजा अधर्म का व्यवहार या आचरण करना है उसे धर्म और अथ दोनों पुरपाय शीघ्र छोड़कर चल जाना है

१७—धर्म्य माग यतमानो यगस्य

कुर्यान्नृपो धर्ममवेक्षमाण ।

न मद्विधो धमबुद्धि प्रजानन्

कुर्यादिय कृपण मां यथाऽऽथ ॥

आदिपर्ध—अध्या० ८२, श्लो० १८

१८—अथसिद्धे पर धर्म मयते धो महोपति ।

वृद्धया च कुरुते बुद्धि से धर्मण विराजने ॥

गान्तिपव—अध्या० ६२ श्लो० ७

अधम का आचरण करने वाले राजा की शक्ति भी क्षीण हो जाती है और उमका पराक्रम भी लुप्त हो जाता है । अधर्मी राजा के राज्य म मत्पुरुषा का लोप हो जाता है या तो मत्पुरुष स्वय ही धर्मात्मा राजा के राज्य म चले जात हैं या एकान्तवास करके अपन मत्वम म लगे रहते हैं और ईश्वर से मवदा राजा को सद्बुद्धि प्रदान करने की प्राथना करते रहते हैं । भीष्मजी ने युधिष्ठिर स कहा कि अगिरापुत्र उतथ्य ने राजा माघाता को क्षत्रियो के धम के विषय म जो बातें बताई थी वह तुम्ह बताता हूँ । भीष्मजी न कहा कि उतथ्य ने इम प्रकार कहा कि 'जव राजा व्यापारियो की पुत्र के समान रक्षा करता है और धम की मर्यादा को भंग नहीं करता वही राजा का धम कह जाता है ।' १९ इसी प्रकार जो राजा पर्याप्त दक्षिणा वाले यज्ञों द्वारा श्रद्धा पूर्वक यजन करता है, वह धर्मात्मा राजा कहनाता है । जो भूखे गरीबो को भोजन देकर स्वय भोजन करता है वह राजा धर्मात्मा समझा जाता है । जो गरीबो को धन की सहायता देकर बलवान बनाता है, वह राजा भी धर्मात्मा कहलाता है । दशम्पायन जी न भीष्मजी स राजा क धम के विषय म बताने को कहा तव भीष्मजी न कहा कि "राजा समस्त प्रजाओ को अपने अपने धर्मों म स्थापित करके उनके द्वारा शांतिपूरण समस्त कर्मों का धम के अनुसार अनुष्ठान कराव ।" २० राजा स्वय तो धम का आचरण करे ही किंतु अपनी चारों दलों की प्रजा को भी उनके धम के अनुकूल आचरण करने के लिए प्रात्साहित करे और समय समय पर उहे धम का महत्व बतात हुए

१९—यदा शारणिकान् राजा पुत्रवत् परिरक्षति ।

भिनत्ति च न मर्यादा स राज्ञो धम उच्यते

शांतिपर्व—अ० पा० ६१ श्लो० ३६

२०—स्वेषु धर्मेष्ववस्थाप्य प्रजा सर्वा महोपति ।

धर्मण सर्गृह्णति गमनिष्ठानि कारयेत् ॥

शांतिपर्व—अध्या० ६०, श्लो० १६

उह धम के आचरण की धार ही सचेत रखे । उतथ्य ने राजा माघाता को राजा के धर्माचरण के विषय म इस प्रकार कहा कि 'सम्पूर्णप्राणी धम क ही आधार पर स्थित है और धम राजा क उपर प्रतिष्ठित है । जो राजा अच्छी तरह धम का पालन और उसके अनुकूल शासन करता है वही दीधवाल तक पृथ्वी का स्वामी बना रहता है ।'^{२१} सारी प्रजा राजा के व्यवहार पर ही दृष्टि लगाय रहती है । यदि राजा धमात्मा होता है तो उसकी प्रजा भी धम का आचरण करने वाली होती है । राजा को ससार समुद्र से पार करने वाली नौका के समान बताते हुए भीष्म जी ने युधिष्ठिर से कहा कि 'राजधम एक नौका के समान है । वह नौका धम रूपी समुद्र म स्थित है । सत्त्वगुण ही उम नौका का सञ्चालन करने वाला बल (बलघार) है, धमशास्त्र ही उसे बांधने वाली रस्सी है । त्यागरूपी वायु का सहारा पाकर वह माग पर गीघनापूर्वक चलती है वह नाव ही राजा को ससार समुद्र से पार कर देगी ।'^{२२} इस ससार रूपी समुद्र को राजा ही अपन आचरण द्वारा प्रजा से पार कराता है । यहाँ राजा रूपी नौका धमशास्त्र रूपी रस्सी से बाँधती है अर्थात् राजा धम शास्त्र के नियमों स बधा रहता है और उही नियमों के आधार पर अपना जीवन श्रेष्ठ बनाता है । राजा म धम का पालने करने से जिस सत्त्वगुण का उदय हाता है वही उसका बल अथवा पराक्रम होता है । त्याग से राजा का जीवन आनन्दपूर्वक व्यतीत होता है और त्याग स ही वह अपने सम्मान का ध्यान न रखकर ज्ञानी विद्वानों का सम्मान करता है वही राजा श्रेष्ठ होता है । उत्तम धम का उपदेश देते हुए देवस्यान मुनि न युधिष्ठिर

२१—धर्मो निष्ठां च भूतानि धर्मो राजनि तिष्ठति ।

त राजा साधु य गास्ति स राजा पृथिवीपति

गातिपर्यं—अध्या० ६०, श्लो० ५

२२—धर्मो ह्यिष्यता सत्त्वदीर्या धमसेतुवटारका ।

त्यागवानाप्यगा गात्रा नोस्त सतारयिष्यति ॥

गातिपर्यं—अध्या० ६६, श्लो० ३७

से कहा कि "धम का अनुसरण करने वाल, सत्य दान और तप म सलग्न रहन वाले, दया आदि गुणा से युक्त, काम-क्रोध आदि दोषा स रहित प्रजा पालन परायण, उत्तम धम सेवी तथा गौआ जीर ब्राह्मणा की रक्षा क लिए युद्ध करन वाल नरेशा न परम उत्तम गति प्राप्त की है।" १२३ सत्य तथा दया आदि गुणा मे प्रेम करने वाल राजा के राज्य म मदव प्रजा सुखी जीर प्रसन्न रहती है। गौआ और ब्राह्मणो की रक्षा करन वाल तथा धम का सेवन करने वाल राजा को उत्तम गति मिलती है ऐसा धमशास्त्रों का कथन है।

राज धम क पालन स राजा को चारा आश्रमा के धम का फल मिलता है। भीष्मजी ने युधिष्ठिर स राजा के धम पालन क विषय म इस प्रवार कहा कि दण धम और कुल धम का पालन करन वाला राजा सभी आश्रमा क पुण्य फल का भागी होता है। १२४ राजा को धम का पालन करते समय अपन कुल तथा देण के धम का भी ध्यान रखना चाहिए। कुल परम्परा क अनुसार धम का आचरण करन वाल राजा के राज्य की पथवी धन धान्य से पूरा होकर उत्तति का प्राप्त होता है तथा राजा के ऐश्वर्य को बढ़ाती है। जो राजा अधम का अनुष्ठान करता है, उसकी राज्यभूमि अस्थिर तथा विनाश की ओर जान लगती है। अधम स युक्त राजा का राज्य अधिन समय तक नहीं ठहरता। उमका राज्य सबदा डँबाडोल रहना है और शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। राजलक्ष्मी भी धर्मात्मा राजा के साथ ही ठहरती है। विदुरजी ने धर्मात्मा राजा के गुण

२३—एव धममनुश्रान्ता सत्यदानतप परा ।

आनृ तस्यगुणयुक्ता कामक्रोधविवजिता ॥

प्रजाना पालने युक्ता धममुत्तममाम्बिता ।

गौब्राह्मणार्थे युध्यन्त प्राप्ता गतिमनुत्तमाम् ॥

शांतिपर्व—अध्याय २१, श्लोक १८-१९

२४—वेणुधर्माश्च कौन्तेय कुलधर्मास्तथ च ।

पालयन् पुरण्ययात्र राजा सर्वार्थमी भवेत् ॥

शांतिपर्व—अध्याय ६६, श्लोक २६

बताते हुए घृतराष्ट्र से कहा कि "धम से ही राज्य प्राप्त करे और धम से ही उसकी रक्षा करें क्योंकि धममूलक राज्यलक्ष्मी को पाकर न तो राजा उसे छाड़ता है और न वही राजा को छोड़ती है।" २५ अधिक समय तक राज्य लक्ष्मी का उपभोग करने वाले राजा को धम पूर्वक आचरण करना चाहिए तभी उसकी कामना पूरा हो सकती है। युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा कि राजा को युद्ध करने में धम के अनुरूप किन बातों का ध्यान रखना चाहिए, यह बताने की कृपा करें। तब भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि 'जिसके कोई घाव न हो, उस युद्ध में न छोड़े, यह क्षत्रिय का सनातन धम है। अतः धम के अनुसार युद्ध करना चाहिए, यह स्वायम्भुव मनु का कथन है। २६ धम युद्ध में तत्पर हुआ जो क्षत्रिय अधम से विजय पाता है छल कपट को जीविका का साधन बनाता है, वह पापी स्वयं ही अपना नाश करता है। क्षत्रिय के लिए धमपूर्वक युद्ध करके मर जाना ही श्रेष्ठ धम है, किन्तु छल कपट से विजय प्राप्त करना अधम है।

४—राजा के गुण—

जिस प्रकार स ब्राह्मणा में त्याग तप तथा सात्त्विक जीवन का होना आवश्यक है, उसी प्रकार से क्षत्रिया में भी कुछ विशेष गुणों का होना परमावश्यक है। वे विशेष गुण अहंकार त्यागना अर्थात् अगव उद्यमशील होना, ईर्ष्या रहित होना मधुरवाणी का प्रयोग दान देना आदि क्षत्रिय राजा के लिए विशेष गुण हैं। जिस प्रकार स ब्राह्मणा का काय अध्यापन पान की राज तथा बड़ी-बड़ी रचनाएँ करना आदि हैं उसी प्रकार स राजा को अपन

२५—धर्मेण राज्यं विन्देत् धर्मेण परिपालयेत् ।

धमधूर्ता श्रियं प्राप्य न जहानि न हीयते ॥

उद्योग पथ—अध्याय ३४, श्लोक ३१

२६—निश्चयं न भोक्तव्य एव धम सनातन

तस्माद् धर्मेण योद्धव्यमिति स्वायम्भुवो व्रतन्ते ॥

गान्धिपर्व—अध्याय ६१, श्लोक १४

विभाग करके हा मंगलुवक उगलत लवं उदम करणा वरिण । इगा प्रवण
 दग वात के विभाणुवक हा प्रारणा कम लवा धर्म भव और क म वा मवन
 करणा वरिण । मग और वात को हा मग क प्रवण हेतु लमभ्य वरिण ।
 मही मीतिगाळ का मिडाण है । २७ मध्या भी उदमगीत रात्रा क हा
 करण करणी है और उगल गाव लीपेकात तक रहणा ? । उदम क वि
 मिने भी भूगा बडा रहणा है विना उदम क भाव लु उगल गग मही
 पहूषा । अब बह उदम करक उगा विचार करणा है मभी मानी भूग को
 मिटागा है । बह म बह मनुष्य को उदम करणा रहणा है । विना उदम क
 मनुष्य भ्रममर रह कर मयव का ध्यात करक विगी प्रचार मगाा जीवन का
 ध्यात कर मगा है विनु उगलर जीव भगवत हा रहणा है और मूणु क
 मयव उग बहूत लभागात होत है वि मी बुग मही विना । मरिण रात्र
 का मया मयव उदमगीत हात वरिण और मगाा प्रावत मगत वता क
 प्रमप्रता म परसाक जाता वरिण । भीमत्रा न रात्रा मुपिद्धि के उदमगात
 रात्रा क लिए दग प्रचार बहा वि रात्रा का मगा ही उदमगीत होत
 वरिण । आ उद्योग लोचकर स्त्री की भाति बहार बडा रहणा है उम रात्रा
 का प्रमता र्ही होती है । २८ भीम न भी उदमगात रात्रा का ही प्रमता
 की है और विना उदमगीत रात्रा की उगमा पर म मगी विना म की है ।
 विना प्रकार स्त्रिया का जाया पर क नाम काज करक और यद्य का पावन
 पोषण करक ध्यय ही पूणु हा जाता है उगी प्रचार आमगी रात्रा का जीवन

२८—उरसाहृत्वापि धत्नेन कर्त्तव्यो मूर्तिमिच्छता ।

विभक्त्य देगजालो ध वध धर्मायच्छय ॥

न ध्येयसो सु तो श्रेयो देगकसाविधि स्थिति ॥

आदि पर्व—अध्याय १३६, श्लोक ८३

२९—नित्योद्युक्तैर्न ध राजा भवितव्य मुपिद्धिर ।

प्रशस्यते न राजा हि तारीवोद्यमवजित ॥

प्रातिपर्व—अध्याय ५७, श्लोक १

भी ध्यय हो घीत जाता है और वह राज्य की या ऽश की बुद्ध भी उन्नति नहीं कर पाता । उन्नति चाहने वाले राजा को उद्यमशील होना चाहिए ।

राजा का तीसरा गुण ईर्ष्या का त्याग है । ईर्ष्या ने रहित राजा ही निम्न बुद्धि वाला होगा । उसकी बुद्धि सबकी समान रूप म दमगी और उबिन न्याय करेगी । ईर्ष्या म सबके मन और बुद्धि क्लुप्त हो जात हैं तथा विवक नष्ट हो जाता है । इसलिए ईर्ष्या का त्यागना ही श्रेष्ठ राजा तथा विद्वाना के लिए हितकर है । ईर्ष्या के त्याग के लिए भीष्म न युधिष्ठिर से कहा कि "जिम भूपाल के राज्य म कूटनीति, कपट, माया तथा ईर्ष्या का मवया अभाव हा, उमी के द्वारा सनातन धम का पालन होना है ।" ३०

चौथा गुण राजा को मधुर भाषी होना चाहिए । जा अपन मधुर भाषण म सबको बग म कर लता है, उस राजा की मव प्रकार म मव जगह प्रणामा होती है और राजा को बग कीर्ति मिलनी है । पाँचवा गुण राजा की ज्ञानशीलता है । दान करना राजा के लिए सबसे बड़ा धम है । दान का महस्व बनाते हुए भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि 'स्वय दुःखा पर प्रहार कर दानशील बन, मन को बग म रखे, सुरम्य माधन स युक्त रहे, ममय-ममय पर धन का दान और उपयोग भी करे तथा निरन्तर गुद्ध एवं सशकारी बना रहे ।' ३१ दानशील राजा से सज प्रजा प्रमन्न रहनी है । गरीबा का धन की सहायता मिलती है और वह उन्नति की ओर अग्रसर होते हैं । दान से ब्राह्मणा की तो जीविका ही चलती है और ब्राह्मण लोग बन म कुटिया बनाकर शान्त चित्त मे गात्रा की रचना इमी दान के आश्रय से करते हैं । राजा का दान

३०—न यस्य कूट कपट न माया न च मत्सर ।

विषये भूमिपालस्य तस्य धम सनातन ॥

शांतिपर्व—अध्याय ५७, श्लोक ३७

३१—स्वय प्रहर्ता दाता च बस्यत्मा रम्यसाधन ।

काले दाता च भोक्ता च शुद्धाचारस्तथ च ॥

शांति पर्व—अध्याय ५७, श्लोक २२

भरने से अनेक सुख-सम्पत्ति प्राप्त होती है तथा इहलोक और परलोक भी उत्तम रहता है। राजा को उत्तम दान से उत्तम पुण्य मिलता है और बड़े धैर्यगो म दक्षिणाया से भी उत्तम गति प्राप्त होनी है। इसलिए उत्तम पुण्य प्राप्त करने वाले राजा का उत्तम दान दाना चाहिये।

५. प्रजा-पालन राजा का मुख्य धर्म है—

राजा के लिए जिस प्रकार यत्न करना, अध्ययन करना तथा दान देना धर्म है उसी प्रकार प्रजा का पालन करना भी राजा का धर्म है। भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि 'इम लोके म प्रजावग को प्रमत्न रखना ही राजा का सनातन धर्म है। सत्य की रक्षा और व्यवहार की सरलता ही राजोचित वर्तनी है।' ११२ राजा को चाहिए कि धर्मानुकूल वर्तव करते हुए प्रजाजन का पालन करते रहना चाहिए। इससे राजा को सुख पुण्य और विरस्यापी व्यसा प्राप्त होगा। सद्भाव और सदाचार से प्रजा का पालन करने वाले राजा को सम्पूर्ण प्रजा ईश्वरतुल्य मानती तथा पूजती है। यदि राजा प्रजा को सुखी नहीं रख पाता है तो उसका राज्य भी अस्थायी ही रहता है। भीष्म जी ने राजा के सनातनधर्म को बताते हुए युधिष्ठिर से कहा कि 'राजा जो प्रजा का रक्षा करता है, मही उसका सबसे बड़ा धर्म है। समस्त प्राणियां को रक्षा तथा उनके प्रति दया ही महान् धर्म है।' ११३ जो राजा प्रजा के ससथ धर्मानुकूल वर्तव करता है उस राजा को चिता तथा पश्चाताप कभी नहीं होता है। धर्मा अनुकूल व्यवहार करने से राजा कभी अनुचित काम करेगा ही नहीं इसलिए उस पश्चाताप भी नहीं होगा। सब प्रजा को समान

३३२—लोकैरमनमेवात्र राजां धर्मसनातन ।।

रसधर्म्य रक्षणं च व्यवहारस्य चाजवम् ॥

शान्तिपर्व—अध्या० ५७, श्लो० ११

३३—एव एव परोधर्मो यद् राजा रक्षति प्रजा ।

भूतानां हि यथा धर्मो रक्षणं मरमा दया ॥

शान्तिपर्व—अध्या० ७१, श्लो० २६

दृष्टि से देखेगा तथा सब पर सबदा दया का भाव रखेगा, उस राजा को कभी चिन्ता नहीं होगी । सदैववहार से राजा स्वयं प्रसन्नचित्त रहेगा और प्रजा को भी प्रसन्न रख सकेगा । भीष्म जी ने युधिष्ठिर से कहा कि अगिरापुर उतथ्य ने माघाता राजा को जो क्षत्रिय धर्म का उपदेश दिया था उसमें उन्होंने प्रजा के लिए राजा के कर्त्तव्य बताया वह सुनो "ब्रह्माजी ने प्राणिया के कल्याणाय ही धर्म की सृष्टि की है, इसलिए राजा का चाहिए कि अपने दण्ड पर प्रजाजनो पर अनुग्रह करने के लिए धर्म का प्रचार करे ।" ३४ ब्रह्मा जी ने धर्म की सृष्टि करके धर्म के प्रचार के लिए ही राजा की नियुक्ति की । जिसमें धर्म का भाव विद्यमान है, उसी को राजा कहते हैं । धर्म की वृद्धि होने पर सदा समस्त प्राणिया का अम्युदय होता है, धर्म का ह्रास होने पर सबका ह्रास ही जाता है । अतः धर्म का लोप नहीं होना चाहिए । जो राजा मत्कम के पालनपूर्वक प्रजा का शासन करता है, वही श्रेष्ठ राजा है । धृतराष्ट्र के पूछने पर कणिक ने राजा के लिए धर्म बताया हुए कहा कि 'जो राजा सदा दण्ड देने के लिए उद्यत रहना है उसने प्रजाजन बहुत डरते हैं, इसलिए सब काय दण्ड के द्वारा ही सिद्ध करे ।" ३५ राजा को दण्ड देने वाला भी होना चाहिए, क्योंकि दुष्मजन दण्ड से ही मानते हैं । राजा के दण्ड की नीति कठोर देख कर आधे लोग तो भय से अनुचित कर्मों को स्वयं ही छोड़ देते हैं किन्तु कुछ लोग इतने पक्के होते हैं कि बिना कठोर दण्ड के अपने कार्यों का टोड़ने ही नहीं । ऐसे दुष्ट लोग या तो मरकर ही छोड़ते हैं या कठोर दण्ड से डरे कर अनुचित कर्म बन्द करते हैं ।

३४—प्रभवाय हि भूतानां धर्मं सृष्टं स्वयम्भुवा ॥
तस्मात् प्रथमयेद् धर्मं प्रजानुग्रहकारणम् ॥

शान्तिपर्व—अध्या० ६०, श्लो० १६

३५—नित्यमुद्यतदण्डादिं नृशमुद्विजते जन ।
तस्मात् सर्वाणि कार्याणि दण्डेनैव विधारयेत् ॥

आदिपर्व—अध्याय १३६, श्लो० ७

६ चारो वर्णों की रक्षा करना राजा का धर्म —

राजा का चारों वर्णों की रक्षा करना भी धर्म बताया है । चारा वर्ण अपने अपने कर्त्तव्यों का पालन तभी उचित ढंग से कर सकेंगे, जब उन्हें यह विश्वास होगा कि राजा हमारी रक्षा का ध्यान रखता है । रक्षा का विश्वास हो जाने पर ही ब्राह्मण धर्म कम म लग रहेंगे, गिप्या को गिधा दकर अध्यापन का काय सफल करेंगे तथा राजाओं के बड़-बड़े यत्न मन्त्रों सहित पूरा करायेंगे और श्रेष्ठ साहित्य का सृजन करेंगे । क्षत्रिय लोग युद्ध म जाने की हिम्मत तभी करेंगे जब उन्हें भी यह विश्वास होगा कि हमारे पीछे हमारा परिवार की चिन्ता राजा कर लेगा और उन्हें किसी प्रकार के बर्ष न हाग । इस आशा को लेकर ही क्षत्रिय युद्ध म अपना जीवन समर्पण कर देते हैं और अपने पराक्रम के द्वारा अमर हो जाते हैं । इसी प्रकार अन्य भी अपना वाणिज्य, गोरक्षा कृषि सब निश्चितता से करते हैं कि राजा हमारी रक्षा कर रहा है, और शूद्र भी अपना सेवा पूरा रूप से करते हैं कि राजा की कृपा दृष्टि हम पर है । रक्षा के विषय म बताते हुए भीष्मजी ने युधिष्ठिर से कहा कि राज्य चाहने वाले राजाओं के लिए राज्य म प्रजाओं की भली भाँति रक्षा को छोड़कर और कोई सनातन धर्म नहीं है रक्षा ही जगत् को धारण करने वाली है ।^{३६} जिन श्रेष्ठ राजाओं को राज्य चाहने की कामना हो उन्हें सबप्रथम प्रजा की रक्षा का भार उठाना चाहिए और धर्मपूर्वक प्रजा की रक्षा करनी चाहिये । प्रजा की रक्षा करने वाला राजा ही सदैव सुखी, उन्नतिशील तथा अधिक समय तक राज्य करने वाला होता है । माकण्डेयजी जनक के राज्य मे पहुँच तो उ हे एक व्याध मिला वह उन्हें अपने घर ले गया । उसका घर म मास देख कर ब्राह्मणदेवता क्रोधित होने लग तब व्याध ने कुत्रजाम से अपने बाप दादो का काय करने म कोई दोष नहीं होता बताते हुए कहा कि राजा लोग अपने धर्म का पालन करते हुए ही प्रचुर सम्पत्ति पाने की इच्छा

३६—तद्वाग्ये राज्यकामाना नाथो धर्म सनातन ।

श्रुते रक्षा तु विस्पष्टा रक्षा लोकस्य धारिणी ॥

पातिपर्ष—अध्या० ५७, श्लो० ४२

रखते हैं और राजा सभी वर्णों का रक्षक होता है ।^{३७} इसलिए राजा को धन द्वारा दश का और चारों वर्णों की सदा रक्षा करनी चाहिए । राजा के धर्म बताते हुए भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि “जो लोग अपने अन्तरङ्ग ही उनसे बाहरी लोग की रक्षा करो और बाहरी लोग से सदा अन्तरङ्ग व्यक्तियों को बचाओ । इसी प्रकार बाहरी व्यक्तियों की बाहर के लोग स और समस्त आत्मीयजनों की आत्मीयता में सदा रक्षा करते रहना चाहिए ।”^{३८} राजा को चाहिए कि वह अपने साथ रहने वाला की और बाहर से आने वाले लोगों की सब प्रकार से रक्षा करे । राजा के बहुत से गुप्तचर वेप बंदल हुए होते हैं उनका ज्ञान राजा को ही होता है इसलिए राजा को उनकी रक्षा का पूरा-पूरा प्रबंध करना चाहिए और अपन रक्षकों को चेतावनी देनी चाहिए कि प्रत्येक मनुष्य को पहले मेरे पास लाओ तब उसे मेरे वह अनुसार दण्ड दो । रक्षा के विषय में बताते हुए भीष्मजी ने युधिष्ठिर से कहा कि राजा को चारों वर्णों के धर्मों की रक्षा करनी चाहिए, प्रजा का धर्मसंरक्षण में बचाना राजा का सनातन धर्म है ।^{३९} यदि प्रजा धर्म से विमुक्त हो रही हो, तो उसको धर्म में लाना राजा का ही धर्म है । सब वर्णों में श्रेष्ठ ब्राह्मणों की सेवा करना राजा का कर्तव्य है । श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिरसे कहा कि

३७—राजानो हि स्वधर्मैश्च धियमिच्छति भूपसोम् ।
सर्वेषामेव वर्णानां प्राता राजा भवत्युत ॥

धर्मपर्व—अध्याय २०७, श्लो० ३१

३८—आन्तरेभ्य परान् रक्षन् परेभ्य पुनरातरान् ।
परान् परेभ्य स्वान् स्वैभ्य सर्वान् पालयन् सदा

शांतिपर्व—अध्याय ८६, श्लो० १२

३९—चातुर्गण्यस्य धर्माश्च रक्षितव्या महीक्षिता ।
धर्मसंकर च राजा धर्म सनातन ॥

शांतिपर्व—अध्याय, ५७ श्लोक १५

आप दृष्टानुसार पृथ्वी का पालन कीजिए और धर्मपूत्रक पुरी को धारण कीजिए। धर्मोपदेश यही है कि ब्राह्मणा की सेवा कीजिए। ४० ब्राह्मणा क सत्याग से राजाआ की बुद्धि निमत्त रहती है और ज्ञान तथा धर्म में लगी हुई बुद्धि धर्मसंगत ही काय करती है। दानिया का पराक्रम और ब्राह्मणा का पान दोना क सम-वय से दश की उन्नति और यग-यमय बढ़ने हैं। इगनिए राजा को सत्व ही ब्राह्मणा का आत्तर करना चाहिए। गन्ध ने अनु न म कहा कि इस पृथ्वी पर एक अंताधारण तजस्वी राजा कर्मापणा हुए जा वन म भूल प्यास से पीडित एक तंग रास्ते पर आ पहुँचे, जहाँ पर स बकेल एत ही आदमी जा सक्ता था। उगी तग रास्त पर प्रतापी विद्वामिन भी आ रहे थे। विद्वामिन को देखकर राजा न कहा कि हमारे रास्त स हट जाओ। तब मधुरवाणी म राजा को समभाते हुए विद्वामिन मुनि न कहा कि 'मार्ग तो मुझे ही मिलना चाहिए यही सनातन धर्म है। सभी धर्मों म राजा क लिए यही उचित है कि वह ब्राह्मण को मार्ग दे। ४१ अथ राजाआ को चाहिए कि वह ब्राह्मणो को उचित आदर दें तथा उन्हें ही प्रथम माग दें। इसी प्रकार राजा को चागे वणों की रक्षा करके अपने सनातन धर्म का पालन करना चाहिए।

यदि राजा प्रजा की रक्षा न करे तो बलवान दुवला की बहू-बटियों को हर ले जाय और अपने घर-बार की रक्षा के लिए प्रयत्न करने वालो को मार डाल। यदि राजा रक्षा न करे तो जगत म भ्रो पुत्र धन अथवा परवार का ऐसा संग्रह सम्भव नहीं हो सक्ता जिसको वह सब कि यह मरा है और सबकी सारी सम्पत्ति का लोप हो जाय। अरक्षित प्रजा के बल आश्रु

४०—यथेष्टं पालये महीं सदा धर्मपुत्र वेह ।
धर्मोपदेशे सभेषाद् ब्राह्मणान् भज कौरव ॥
आदिपर्व—अध्याय २०६, श्लोक ५१-५२ के मध्ये

४१—मम पत्या महाराजे धर्म एव सनातन ।
राज्ञा सर्वेषु धर्मेषु देय पत्या द्विजातये ॥

आदिपर्व—अध्याय १७५, श्लोक ८

पण बाहन और नाना प्रकार के रत्ना को पापाचारी लुटेरे-सूत ल जायेंगे । अरक्षित घमर्त्ता पुरपा पर भी अस्त्र गस्त्रो की मार पडे और विवग होकर उह अघम का भाग ग्रहण करना पडे । यदि राजा रक्षा न कर तो दुर्गचारी मनुष्य माता पिता, वृद्ध आचार्य, अतिथि और गुरु को क्लेश पहुचायें और मार डारें । धनवानो को रक्षा बिना वध या बन्धन का क्लेश उठाना पडे । दश मे अकाल पड जाय और समस्त जगत डाकुआ के अधीन हो जाय और सारा जगत भयभीत, उद्विग्न वित्त, हाहाकार-परायण तथा अचेत हो क्षण भर म नष्ट हो जाय । इसीलिए प्रजा को राजा की आवश्यकता है । राजा के भय से ही सम्पूर्ण दुष्टात्मा मनुष्य कुछ नहीं कर पाते हैं और सब वर्णों के लोग अपन अपने घमों और वनव्या का शान्ति के साथ पालन करते हैं । अपन समस्त धन को अपना माता कर उसकी रक्षा करते हैं । प्रजा का सुख शान्ति राजा की रक्षा से ही मिलती है ।

७—राजनीति क्षौर दण्ड—

राजा को सबसे पहले सदा अपने मन पर विजय प्राप्त करनी चाहिए । उसक बाद शत्रुआ को जीतने की चेष्टा करनी चाहिए । श्रोत्र आदि पाचा इन्द्रिया को अपन वग म रखना ही मन पर विजय पाना है । जितेन्द्रिय नरग ही अपन शत्रु पर विजय प्राप्त कर सकता है । भीष्मजी ने राजनीति बतात हुए युधिष्ठिर से कहा कि राजा को किला मे, राज्य की सीमा पर तथा नगर और गाँव के बगीचा म सेना रखनी चाहिए ।^{४२} अत पुर तथा राजमहल के आम पास भी रक्षक सनिको की नियुक्ति करनी चाहिए । बुद्धिमान होने पर भी जो गू गे-बहर मे तथा अघे से जान पडें, जो भूख प्यास और परिश्रम सहन की शक्ति रखत हों, ऐस मनुष्या को गुप्तचर बनाकर आवश्यक कार्यों म नियुक्त कर दे । राजा का अपन निजी प्रेमी तथा कूटुम्बो मनुष्या का भी विश्वास नहीं करना चाहिए । उनक लिए भी गुप्तचर नियुक्त कर, भीष्मजी ने युधिष्ठिर से कहा कि "राजा एकाग्रचित्त हो सब मंत्रिया नाना प्रकार के मित्रो तथा

४२—पसेत गुप्तान् दुर्गेषु स धौ, च कुहनन्दन ।

नगरोपवने षष पुरोद्यानेषु षष ह ॥

रातिपर्व-अध्याय ६८, श्लोक ६

पुत्रों पर भी गुप्तचर नियुक्त करे। ४३ कभी-कभी राजा व मंत्री मित्र तथा पुत्र भी विस्वासघात कर देते हैं, इसलिए उनका भावा का भी पता लगाना रहना चाहिए। राजा को अपने गुप्तचरों द्वारा दूसरे राजा व भद्र हुए गुप्तचरों का भी पता लगाते रहना चाहिए इसमें राजा की नीति ठीक रहनी।

राजा को विद्वान् धार्मिक वदय तथा अनेक शास्त्रों के ज्ञान ब्राह्मण यदि दण्डनीति व धान म निपुण हा तो इन्हें मंत्री बनाना चाहिए। बलवान शत्रु के साथ संधि कर लेनी चाहिए। अपकारियों को तथा उनका म दूषण रखने वाला को सवधा नष्ट कर दे। दूसरे राजा को दुजल और अपन को बलवान जानने पर राजा को आक्रमण कर देना चाहिए। जिस समय अपना युद्ध चल रहा हो उस समय अपने देश म हानि पहुचाने वाल भिस्तमगा गाडी वानो हीजडा पागला और नाटक करने वाला को बाहर निनाल द अ यथा युद्ध के समय म ये लोग बडी भारी विपत्ति ला सकते हैं। युद्ध व समय वधाका विगण रूप से सग्रह करना चाहिए। राजा को सात वस्तुओं की रक्षा अवश्य करनी चाहिए। ये सात वस्तुएँ—(१) राजा का अपना शरीर (२) मंत्री (३) कोष (४) दण्ड (सेना) (५) मित्र (६) राष्ट्र (७) नगर। ये सात राज्य के अंग हैं इनका राजा को भली प्रकार पालन करना चाहिए।

धृतराष्ट्र को कणिक ने राजनीति के उपदेश देते हुए कहा कि जा राजा डरपोक को भय दिखाकर फोड ले तथा जो अपने से शूरवीर हो उसे हाथ जोड कर बश मे कर। लोभी को धन देकर तथा बराबर और कमजोर को पराक्रम से धग म करे। इस प्रकार आपसे नीतियुक्त बर्ताव का बरण किया है। ४४ महाबाहु भीमसेन स राजनीति की बात बताने हुए हनुमानजी

४३—अमातयेषु च सर्वेषु मित्रेषु विविधेषु च ।

पुत्रेषु च महाराज प्रणिदध्यात् समाहित ॥

गातिं पर्या-अध्याय ६८, श्लोक ६

४४—भयेन भेदयेद् भोर शूरमजलिकमणा ॥

नुधमयप्रदानेन सम पुन तथौणसा ।

एव ते कथिता राजशृणु चाप्यपर तथा ॥

आदि पर्या-अध्याय १३८ श्लोक ५० ५१

ने कहा कि "साम दाम दण्ड, भेद—ये चार उपाय गुप्तचर, उत्तम बुद्धि सुरक्षित मंत्रणा, पराक्रम, निग्रह अनुग्रह और चतुरता—ये राजाआ के लिए काय मिद्धि क माघन हैं। ४५ साम, दाम, भेद, दण्ड और उपक्षा—इन नीतिया म जे एक-दो के द्वारा या सबक एक साथ प्रयोग द्वारा राजाआ को अपने काय मिद्धि करने चाहिए। ४६ राजा के जो स्तही (सुहृद्) हो, उही के द्वारा नीति न प्रयोग का काम कराना चाहिए। मूर्खों को तो सभी कार्यों मे अलग रखना चाहिए। राजा की नीति का बरण करत हुए हनुमान ने भीम से कहा कि 'राजा को चाहिए कि वह धम के कार्यों म धार्मिक पुरुषा को अथ सम्बन्धी कार्यों म अथ शास्त्र न पण्डिता को, स्त्रिया की दख भाल के लिए नपु सवा को और कठोर कार्यों म क्रूर स्वभाव वाले मनुष्यो का लगाव। ४७ अपनी शरण म आव हुए श्रेष्ठ पुरपा की रक्षा करनी चाहिए और दुष्ट मनुष्या को कठोर दण्ड देना चाहिए। द्रौपदा ने मुधिष्ठिर से कहा कि राजाआ का परम धम तो यही है कि व दुष्टा को दण्ड दें, सत्पुरुषा का पालन करे और युद्ध म कभी पीठ न दिखावें। ४८ राजा को चाय म मवदा उचित चाय ही

४५—राज्ञामुपायस्त्वारश्च बुद्धिमत्रपराक्रमा ।

निग्रहप्रग्रहौ च व दाक्ष्य व काय साधकम् ॥

वनपर्व—अध्याय १५०, श्लोक ४१

४६—साम्ना दामन भेदेन दण्डेनोपेक्षणेन च

साधनीयानि कर्माणि समासयासयोगत ॥

वनपर्व —अध्याय—१५० श्लोक ४२

४७—धार्मिकान् धमकार्येषु अथकार्येषु पण्डितान् ।

स्त्रीषु क्लीवान् निपुञ्जीत क्रूरान क्रूरेषु कममु ॥

वनपर्व —अध्याय १५०, श्लोक ४६

४८—असता प्रतिषेधश्च सता च परिपालनम् ।

एष राज्ञा परो धम समरे चापलापनम् ॥

गातिपर्व—अध्याय—१४, श्लोक १६

करना चाहिए। चाहे अपना पुत्र ही अपराधी क्या न हो, उसे भी दण्ड देना चाहिए। उत्तम ने माघाता से कहा कि "जब राजा मन, वाणी और शरीर के द्वारा सबकी रक्षा करता है और पुत्र के भी अपराध को क्षमा नहीं करता तब उसका बतवि भी राजा का धर्म कहा जाता है ॥ ४९ राजा को स्त्रियां से और मूर्खों से कभी सलाह न लेनी चाहिए। जिनकी बुद्धि द्रव से मारी गई है तथा जो वेदों के ज्ञान से दूर है उनकी बात भी राजा न सुने, क्योंकि उन लोगों की बुद्धि नीति से विमुक्त होती है। यदि राजा दण्डनीति का उत्तम रीति से पालन करे तो वह चारों वर्णों को अपने अपने धर्म में बलपूर्वक लगाती है और उन्हें अधर्म से रोकती है। इस प्रकार दण्डनीति से चारा वर्ण अपने अपने कर्मों में सलग्न रहते हैं। जिस समय राजा दण्डनीति का पूरा पूरा एवं ठीक प्रयोग करता है उस समय पृथ्वी पर सतयुग का आरम्भ हो जाता है। इसीलिए राजा को युगस्रष्टा कहते हैं।

८-गुप्तचर-

राजा की शक्ति को बढ़ाने वाले गुप्तचर ही होते हैं। राज्य की सब अनीतियां और अतिचारों की खोज करके गुप्तचर ही राजा को बताते हैं और उन्हें उचित दण्ड देकर राजा यश को प्राप्त करता है। दूसरे के राज्य का सम्पूर्ण समाचार भी गुप्तचरों से ही ज्ञात करके राजा उस पर आक्रमण करता है तथा विजय प्राप्त करता है। राजनीति में गुप्तचरों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। बिना गुप्तचरों के राजा पशु के समान हैं। गुप्तचर ही राजा के कर्ण हैं। इन्हीं गुप्तचरों की हाथों से राजा अपने राज्य के सम्पूर्ण कर्तव्यों से कठिन काय करता है। धृतराष्ट्र ने गुप्तचरों के विषय में कथित न इस प्रकार कहा कि भलीभांति जांच-परख कर अपने तथा शत्रु के राज्य में

गुप्तचर रखे । शत्रु के राज्य मे ऐसे गुप्तचरों को नियुक्त करे, जो पाखण्ड-बेग धारी अथवा तपस्वी आदि हो ।^{१५} राजा को किसी पर विश्वास नहीं करना चाहिए । विश्वास के विषय मे धृतराष्ट्र से वणिक न कहा कि "जो विश्वासपात्र नहीं है उस पर कभी विश्वास न करे, परन्तु जो विश्वासपात्र है उस पर भी अतिविश्वास न करे, क्योंकि अतिविश्वास से उत्पन्न हानि वाला भय राजा की जड़मूल का नाश कर डालता है ।"^{१६} राजा को सद्व धम का पालन करना चाहिए । कुन्ती न बेशय (श्रीकृष्ण) से कहा कि "यदि राजा धम का पालन करता है, तो उसे देवत्व की प्राप्ति होता है और यदि अधम करता है तो उसे देवत्व की प्राप्ति होती है और यदि अधम करता है तो नरक में ही पड़ता है ।"^{१७} इस प्रकार राजा को अपने गुप्तचरों की नियुक्ति करके, किसी का अधिक विश्वास न करके धम-पूवक प्रजा का पालन करना चाहिए । यही श्रेष्ठ और पराक्रमी राजा के लक्षण हैं ।

६—शत्रु और युद्ध—

राज धम में राजा को शत्रु के साथ उचित व्यवहार करना चाहिए युद्ध कला में निपुणता के लिए बहुत से नियम हैं, जिनका पालन करना श्रेष्ठ राजा का धम है । शत्रु के साथ युद्ध करते समय भी पराक्रमी राजा का

५०—चार सुविहित काय आत्मनश्च परस्व वा ।

पापण्डोस्तापसादींश्च परराष्ट्रेषु योजयेत् ॥

आदिपर्व-अध्याय- १३६, श्लोक ६१

५१—न विश्वसेद्विश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।

विश्वासाद् भयमुत्पन्न मूलायपि निवृत्तति ॥

आदिपर्व अध्याय १३६, श्लोक ६२

५२—राजा चरति चेद् धम देवत्वायव कल्पते ।

स चेदधम चरति नरकायव गच्छति ॥

उद्योगपर्व-अध्याय १३२, श्लोक ६३

मरना भी उत्तम है। पराक्रमी राजा की प्रशंसा करते हुए विदुला ने अपन पुत्र से कहा कि "यदि बड़े हुए तेज और उत्साह वाला गुरवीर एव सिंह के समान पराक्रमी राजा युद्ध में दबवश वीरगति को प्राप्त हो जाय तो भी उसकी प्रजा उसके राज्य में सुखी ही रहती है।" ५३ राजा के पराक्रम के कारण कम से कम प्रजा का मस्तक तो गव से ऊँचा रहता है कि राजा दुभाग्य से युद्ध में मारा गया किन्तु था तो बड़ा पराक्रमी। इसलिए पराक्रमी राजा होना चाहिए। घृतराष्ट्र को राजधम बताते हुए कणिक ने कहा कि राजा को सवदा दण्ड दन के लिए उद्यत रहना चाहिए और सदा ही पुरुषाय प्रकट करना चाहिए। राजा अपन छिद्र, अपनी दुबलता प्रकट न होने दे परन्तु दूसरा के छिद्र या दुबलता पर सदा ही दृष्टि रखे और यदि गत्रुओ को निबलता का पता चल जाय तो उन पर आक्रमण कर दे। ५४ राजा का सावधानी से रहना चाहिए जिससे उसकी कमजोरी गत्रु पक्ष को पता न हो सक। घृतराष्ट्र से कणिक ने कहा कि राजा को अपनी कमजोरी छिपाकर रखनी चाहिए जिससे गत्रु न देख सक और यदि गत्रु का कमजोरी प्रकट हो जाय तो उस पर अवश्य चलाई कर दे। जैसे कछुआ अपने सब अंगों की रक्षा करता है उसी प्रकार राजा अपन सब अंग (राजा अमात्य, राष्ट्र दुग कोप बल और सुहृत्) की रक्षा करे और अपनी कमजोरी को छिपाये रखे। ५५

५३ शूरस्याजितसत्वस्य सिंहविक्रातचारिण ।

दिष्टभाव गतस्यापि विषये मोदते प्रजा ॥

उद्योगपव अध्याय १३३, श्लोक ३६३

५४ - निरपमुद्यतदण्ड स्यान्निय विवृत्तपोरप ।

भविष्यत्सिद्धिदृश्यां स्यात् परेषां विवरानुग ॥

आदिपर्ग-अध्याय १३८, श्लोक ६

५५ - नापयिष्यत् पर परदेष्टिद्रेण परमविर्यात् ।

ग्रेण वृम इवाङ्गानि रभ्रेण विवरमामन ॥

आदिपर्ग-अध्याय १३८ श्लोक ८

शत्रु के वध में नीति का उपदेश देते हुए कणिक ने कहा कि 'अपना अनिष्ट करने वाले शत्रुओं का वध कर दिया जाय, इसी का नीतिगुण पुष्ट्य प्रशंसा करता है। अत्यन्त पराक्रमी शत्रु को भी आपत्ति में पड़ा दख उभे सुगमता पूर्वक नष्ट कर दे। इसी प्रकार जो अच्छी तरह युद्ध करने वाला शत्रु है उसमें भी आपत्ति काल में अनायाम ही मार भगाय।' ५६ कणिक ने शत्रु के वध करने के नियम बताते हुए धृतराष्ट्र से कहा कि 'पहले तो सदा शत्रुपक्ष के मूल का ही उच्छेद कर डाले। तत्पश्चात् उसके सहायकों और शत्रुपक्ष से सम्बन्ध रखने वाले सभी लोगों का सहार कर दे।' ५७ कणिक ने कहा कि 'यह मेरी शरण में आया है यह सोचकर शत्रु के प्रति दया नहीं दिखानी चाहिए। शत्रु को मार देने में राजा निभय हो सकता है। यदि शत्रु मारा नहीं गया तो उससे सदा ही भय बना रहता है।' ५८ शत्रु के वध के नियम बताते हुए कणिक ने धृतराष्ट्र से कहा कि "युद्ध में अपने धनुष को तिनक के समान बना द अर्थात् शत्रु के समक्ष हीन होकर असमर्थ बन जाय, किन्तु सिंह की भाँति भूठा बहाना बना कर सोय और शिकार के सामने आते ही उसे नष्ट कर दे।

५६—वधमेव प्रशंसति शत्रूणांमपकारिणाम् ।
 सुविदीरा सुविक्रान् न सुयुद्धं सुपलायितम् ॥
 आपदापदि काले च कुर्वीत न विचारयेत् ।
 नावज्ञयो रिपुस्तात दुःखलोऽपि क्वचन ॥
 आदिपर्वा-अध्याय १३६, श्लोक १०-११

५७—मूलमेवादितश्चिद्यं द्यात् परपक्षस्य नित्यम् ।
 ततः सहायास्तत्पक्षान् सर्वांश्च तदनन्तरम् ॥
 आदिपर्वा-अध्याय १३६, श्लोक १६

५८—दया न तस्मिन् कर्तव्या शरणागत इत्युत ।
 निरद्विग्नो हि भवति नहताज्जायते भयम् ॥
 आदिपर्व-अध्याय १३६, श्लोक १४

उसी प्रकार शत्रु को मारने का अवसर देखते ही अपने स्वरूप और मनोभाव को छिपाकर जसमय पुरुषा का मा व्यवहार करे । इस प्रकार कपटपूर्ण व्यवहार से बग म आय हुए शत्रु को साम आदि उपाया से विश्वास उत्पन्न करके मार डाले । १५ यही नीतिना का कथन है ।



१६—कुर्वान् मरामयं चार णयोन मृगणादिशाम् ।

मन्त्रवर्हिभिरसायानु ह्य्यावदनु कणे तियनम् ॥

अर्थात्—अप्याय १३६ श्लोक १३

महाभारत मे वैश्य-धर्म

१—वैश्यो का स्थान—

धर्मशास्त्रा की वण-व्यवस्था में वश्या को भी द्विजा के अंतगत माना जाता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वश्य ये तीन द्विज हैं। इनके उपनयन आदि सरकार होते हैं। इन सस्कारों को प्राकृतिक जन्म के बाद दूसरा सांस्कृतिक जन्म माना जाता है। इस द्वितीय जन्म के कारण ये तीनों वण द्विज कहलाते हैं। इनके अतिरिक्त शूद्र द्विजेतर है अर्थात् वह द्विजों से पृथक् है। उनके सस्कार नहीं होते। सस्कार ही दूसरा जन्म है। द्विजों के अन्तगत ब्राह्मणों और क्षत्रियों का अधिक श्रेष्ठता दी गई है। इसका कारण प्राचीन भारतीय समाज में विद्या का मान तथा रक्षा का महत्त्व था। रक्षा का महत्त्व तो सभी समाजों में है और सभी समाजों में वीरो का मान था। भारतीय धर्मशास्त्र में भी क्षत्रियों को विशेष मान दिया गया है, उन्हें समाज का रक्षक और पालक माना गया है। क्षत्रिय कुल में उत्पन्न राम और कृष्ण भगवान के रूप में सबसे अधिक लोकप्रिय हुए। ब्राह्मणों की श्रेष्ठता भारतीय समाज की एक अद्भुत विशेषता है, जो किसी अन्य समाज में नहीं मिलती। इसका कारण भारतीय समाज में विद्या, धर्म, साधना, सस्कृति, आचार, पवित्रता आदि की अतुल्य महिमा है। इनकी ऐसी महिमा भी अन्य किसी समाज में नहीं पाई जाती। ब्राह्मणों का इतना मान होते हुए भी विद्या आदि के लिए सुरक्षा के आवश्यक होने के कारण क्षत्रियों को भी अतिशय मान दिया गया है।

वश्या को धर्मशास्त्रा में ऐसा विशेष मान तो नहीं दिया गया है फिर भी श्रेष्ठ मानकर ही उनकी गणना द्विजों में की गई है। वश्य का धर्म प्रधान रूप से आर्थिक और लौकिक है जिसमें अय-लाभ का सहज आकर्षण है। भारतीय समाज और सस्कृति में प्राकृतिक आकर्षण के विपरीत अनुपात में जीवन के मूल्यों को महत्त्व दिया गया है। वश्या के आर्थिक धर्म में प्राकृतिक

प्रलोभन के प्राकृतिक आकर्षण बहुत हैं। इसीलिए वश्या को विशेष मान नहा दिया गया है। इस प्रलोभना का प्रभाव इतना है कि धर्मशास्त्र व अनुराग के बिना भी व य धन व भव के प्रताप से सहज ही श्रेष्ठ (सठ) बन गया। ब्राह्मणा और क्षत्रिया के धर्मों म ऐसा प्राकृतिक आकर्षण नहीं है, वरन् इसके विपरीत इनम सुख व भव के त्याग और प्राणा के निभय उत्सर्ग की अपेक्षा हाती है। इसी के कारण ब्राह्मणों और क्षत्रियों को अधिक मान दिया गया है।

वश्या का सम्बन्ध मुख्यत आर्थिक जीवन से है। वृषि, गो रक्षा वाणिज्य आदि उनके कर्तव्य माने गये हैं। ये तीनों आर्थिक जीवन के मुख्य आधार हैं। आर्थिक धर्म म लाभ और व भव का आकर्षण अवश्य है फिर भी समाज की आर्थिक व्यवस्था के सञ्चालन व लिए उद्योग भी अपेक्षित है। इस उद्योग व कारण वश्यों को 'द्विज पद का मान दिया गया है। आर्थिक व्यवस्था अपन साधना के द्वारा विद्या और रक्षा की सहायक है। भारतीय धर्म और सृष्टि म अथ का अवयव कुछ अधिक है। इसीलिए वश्यों का द्विजाति और द्विज सृष्टि के अन्तर्गत स्थान दिया गया। अथ साधना म इतनी स्वच्छता और पवित्रता सम्भव हो सकती है जिनकी कि भारतीय आचार के लिए अपेक्षित है। इसीलिए वश्या का उच्चवर्णों के माथ सामंजस्य हो सका। गूढ़ा के सेवा कर्म मे यह स्वच्छता और पवित्रता सम्भव नहीं है। इसीलिए वे द्विजेतर मान गये तथा अभिजात समाज और सृष्टि से बहिष्कृत बने रहे। वश्या की अथ साधना मे उद्योग का अधिक महत्व है। नीति भी यही मानती है कि उद्योगी पुरुष को ही लक्ष्मी प्राप्त होती है (उद्योगिन पुरुषामिहमुपतिलक्ष्मी)। प्राचीन व्यापार म व्यक्तिगत उद्योग का स्थान अधिक था। पूँजीवाद का व्यापक प्रभुत्व प्राचीन अथ—व्यवस्था म सम्भव नहीं था। वृषि और पशुपालन किमी सीमा तक व्यापार से भी अधिक उद्योग के काय हैं। वश्य धर्म म उद्योग का अधिक महत्त्व होने के कारण ही पुरुष भूक्त व रूपक म 'वश्यों का उद्भव विराट पुरुष के उत्सर्ग से माना गया है।' मुख्य विद्या का स्थान है और बाहु पराक्रम के पीठ हैं ता

१—ऊर्ध्व तदस्य यद्वय इय ।

ऋग्वेद १० ६० १२

उह उद्योग के अवलम्ब है। उद्योग की महिमा के कारण ही आधुनिक अर्थ—
“व्यवसाय को ‘उद्योग’ का पद मिला और आधुनिक वश्य उद्योगपति बन
गये। महाभारत म ऊरु’ के स्थान पर विराट पुरुष के ‘उदर से वश्यो की
उत्पत्ति बताई गई है।^२ इस परिवर्तन का कारण वश्य धम और वश्यवृत्ति
के सम्बन्ध म बदलती हुई धारणा है। ऋग्वेद की मौलिक धारणा म ‘उद्योग
ही वश्यो का मुख्य धम है। ब्राह्मणा के विद्या धम और क्षत्रियो के रक्षा धम
के बाद ममाज के आर्थिक अवलम्ब के लिये उद्योग आवश्यक है। यह उद्योग
गूढो के सेवा-कर्म से भिन्न है। वह उद्योग वा सहकारी है। आर्थिक उद्योग
का उद्देश्य उदर पोषण अवश्य है।

आर्थिक उद्योग म लाभ है। अतः यह उद्योग कर्ता के लिये भी उदर
पोषण है। इसीलिये आगे चलकर महाभारत म पुष्प सूक्त के ऊरु के स्थान
पर विराट पुरुष का उदर वश्या का उत्पत्ति स्थान बन गया।

धमशास्त्रा म कृषि वा रक्षा वाणिज्य आदि को वश्या का धम माना
गया है। वश्या के इन धर्मों का क्रम मभी धमशास्त्रो म ममान नहीं है। युग
के प्रभाव के कारण विभिन्न शास्त्रों म विभिन्न क्रम मिलत हैं। मनुस्मृति के
अनुसार पशु रक्षा वश्या का प्रथम धम है। तान यत्र अत्र्यमन आदि के बाद
वाणिज्य की गणना करके कृषि को उनका अन्तिम कर्म माना गया है।^३
वराह पुराण म स्वाध्याय यज्ञ, दान आदि को प्रथम मानकर पशुपालन, कृषि
और वाणिज्य की गणना क्रम से बाद म की गई है।^४ पाराशरस्मृति म

२—उदरादुग्धता वश्यास्तस्मात् धार्तोपजीविनः ।

अनुशासनपत्र—अध्याय १४१, श्लोक २६ से आगे

३—पशूनां रक्षणं दानमिज्याप्ययनमेव च ।

वणिक्पथं कुसीदं च वश्यस्य कृषिरेव च ॥

मनुस्मृति—अध्याय १, श्लोक ६०

४—स्वाध्याय यजनं दानं कुसीदं पशुपालनम् ।

गोरक्षां कृषिवाणिज्यं कुर्यात्कृश्या यथाविधि ॥

वराहपुराण

आकर लाभ कम व या का प्रथम धर्म था गया ।" गीता के क्रम में कृषि प्रथम है तथा पशुपालन द्वितीय है और वाणिज्य का गणना अंत में की गई है ।^१ महाभारत में भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न क्रम से बताया गया है कि उक्त सभी धर्मों की चर्चा की गई है । इससे विदित होगा है कि महाभारत में धर्मशास्त्रों के विभिन्न मत संकलित हैं अथवा कुछ धर्मशास्त्रों में महाभारत के मतों का ग्रहण किया गया है ।

वदयो के उक्त धर्मों में इतिहास और उद्योग की दृष्टि से कृषि को ही प्रथम मानना होगा । लाभ और उद्योग की दृष्टि से वाणिज्य की गणना पशुपालन के भी बाद होगी । इस दृष्टि से गीता का क्रम एतिहासिक और सांस्कृतिक दोनों ही दृष्टियों से सबसे अधिक उचित है । अथ धर्मशास्त्रों में कृषि का महत्त्व कम होता गया है । समाज के इतिहास में यहाँ लिखा है कि वश्य धीरे धीरे अधिक उद्योग और कम लाभ के कृषि गोपालन आदि धर्मों को छोड़ते गये और कम उद्योग, अधिक लाभ के वाणिज्य कुमीन आदि धर्मों का अधिक अपनाते गये । अथ के क्षेत्र में यह स्वाभाविक था । धर्मशास्त्रों की कठिनाई यह थी कि त्याग पर बस दकर अथ साधना को प्रेरणा देना कठिन था । इसीलिए वश्य के व्यवहार और धर्मशास्त्रों के विधानों में प्रवृत्ति के प्रभाव से क्रमों में कुछ परिवर्तन होता गया । यत्न, और दान को महत्त्व दकर धर्मशास्त्रों ने व या की जय साधना को सन्तुलित और श्रेय सम्बन्धित बनाने का प्रयत्न किया । यत्न स्वाध्याय आदि को बढ़ा धर्म में सम्मिलित करके उन्हीं आवश्यक जीवन की धर्म और सत्कृति के साथ सगन बनाने रखने का भी प्रयत्न किया ।

५—लाभकम तथारत्न गवा च परिपालनम् ।

कृषिकम च वाणिज्य वश्यवृत्तिरदाहता ॥

पाराशरस्मृति आचार काण्ड १, श्लोक ६३

६—कृषि गोरक्षवाणिज्य वश्य कम स्वभावजम् ॥

गीता—अध्याय १८, श्लोक ४४

२—वश्य-धर्म—

महाभारत मे वश्य धम का विवरण बहुत कुछ धमशास्त्रा के अनुष्ण ही मिलता है । विभिन्न धमशास्त्रो मे वश्य धर्मो के जो रूप और क्रम मिलते हैं, उन सबका सग्रह महाभारत मे मिलता है । महाभारत के ये मत मौलिक भी हो सकत हैं, किन्तु धमशास्त्रो के अभिमता के साथ इनकी समानता स्पष्ट है । महाभारत मे वश्य की जो परिभाषा मिलती है उसमे वाणिज्य ही वश्य का प्रथम धम है । पशु पालन कृषि और वेदाध्ययन की गणना क्रमश वाणिज्य के बाद की गई है । भृगु ने भरद्वाज मुनि से वश्य धम को बताते हुए कहा कि ' जो वेदाध्ययन से सम्पन्न होकर व्यापार, पशु-पालन और खेती का काम वस्के अन्न सग्रह करने की रचि रखता है और पवित्र रहता है वह वश्य कहलाता है । * वस्या की गणना द्विजो म की गई है इसलिए वेदा का अध्ययन भी नित्य वश्य को करना चाहिए । उसक पश्चान् हा वश्य वाणिज्य, कृषि तथा गोपालन आदि काय करे । युधिष्ठिर न वस्या के धर्मो के विषय मे भीष्म जी से पूछा तब भीष्मजी न कहा कि दान अययन, या और पवित्रतापूर्वक धन का सग्रह य वश्य के धम हैं । ' वश्य क लिए दान देना भी प्रधान धम है । नित्य अध्ययन तथा यन करना भी वश्य के धम है । वश्य के लिए धन का सग्रह करना धम है किन्तु वह धन पवित्र धम द्वारा सग्रह करना बनाया है धोखा देकर या कम तोलकर धन सग्रह वश्य के लिए निषेध है । वश्य को व्यापार मे सत्य का ध्यान रखना चाहिए मत्य मे प्राप्त हुआ धन ही पवित्र होता है । श्रीकृष्ण ने वश्य के धम बताते हुए सजय से कहा कि वश्य अध्ययन करके कृषि, गो रक्षा तथा व्यापार द्वारा धनोपाजन

७—वाणिज्या पशुरक्षा च कृष्यादानरति शुचि ।

वेदाध्ययनसम्पन्न स वश्य इति सजित ॥

शांतिपर्व-अध्याय १८६, श्लोक ६

८—वश्यस्यापि हि यो धमस्त ते वक्ष्यामि शाश्वतम् ।

दानमध्ययन यज्ञ गोचरेण धनसचय ॥

शांतिपर्व-अध्याय ६०, श्लोक २१

करते हुए सावधानी के साथ उनकी (धन की) रक्षा करे । ब्राह्मणों और क्षत्रियों का प्रिय करते हुए धर्मशील एवं पुण्यात्मा होकर वह गृहस्थाश्रम में निवास करे । वय को चाहिए कि वह धर्मपूर्वक धन का संग्रह करे और उसकी रक्षा का ध्यान भी रखे । धन पाकर उसे गव नष्ट करना चाहिए वरन् तत्र रहकर सबसे सद्व्यवहार करे । ब्राह्मणों का सत्पादन दकर उनका प्रिय कार्य कर और सदा की ही चर्चा करता रहे । क्षत्रियों का भी सदैव प्रिय बना रह जिससे क्षत्रिय उसका व्यापार की उत्तति की सोचते रह और उसका रक्षा का सदैव ध्यान रखे । कुमा ने वैश्यों के धर्म की प्रिय में महेश्वर से पूछा कि उनके धर्म क्या-क्या होते हैं व कृपाकर मुझे बताइय, तब महेश्वर बोल कि पशुओं का पालन, खेती व्यापार अग्निहोत्र क्रम दान, अध्ययन समाज का आश्रय लेकर सदाचार का पालन अतिथि सत्कार, धर्म दम ब्राह्मणों का स्वागत और त्याग ये सब वश्या के सनातन धर्म हैं । वैश्यों को व्यापार कृषि, गोपालन के साथ साथ सदैव अच्छे भाग पर चलना चाहिए और सदाचार से जीवन विताना चाहिए । धन के अधिक्य का देखकर वश्य को कुमाग पर नहीं जाना चाहिए और एक पत्नीव्रत रहकर ही सत्पाद पवित्र जीवन विताना चाहिए । धन के मोह में फँस कर अधर्म कभी नहीं करना चाहिए । वश्य का सत्त्व अतिथिया का सत्कार करना चाहिए । जहवार से रहित होना चाहिए, इन्द्रिया पर सदैव नियन्त्रण रखना चाहिए । ब्राह्मणों

८—वश्योधीत्य कृषिगोरक्षपथ—

वित्तं चिधन् पालयन्नप्रमत्त ॥

प्रियं कुर्वन् ब्राह्मणक्षत्रियाणां

धर्मशीलं पुण्यकृदावसेद् गृहान् ॥

उद्योगपर्य-अध्याय २८, श्लोक २५१

१०—वश्यस्य सततं धर्मं पाशुपाल्य कृषिस्तथा ।

अग्निहोत्रपरिस्पन्दो दानाध्ययनमेव च ॥

शालिज्य सत्पयस्थानमातिथ्यं प्रणमो दम ।

विप्रारणं स्वागतं त्यागा वश्यधर्मं सनातन ॥

अनुशासन पर्य अध्याय १४१, श्लोक ५४ ५५

गौओं का एक बध तक पालन कर ता उनमें से एक गाय का दूध वह स्वयं पीय (यही उसका वतन है) । यदि दूसरी की एक गौ गायों का मान भर तक पालन कर ता एक गाय और एक बल मानिक में देतन के रूप में ले ल । यदि उन पशुओं में दूध आदि वचन से घन प्राप्त हो तो उनमें से सातवा भाग अपने वतन के रूप में ग्रहण कर । साँग वचन से जो घन मिल उनमें से भी सातवाँ भाग ही ल । परन्तु पशु विशेष का बहुमूल्य खुर वचन से जो घन मिले उसका सोनहवाँ भाग ही उसे ग्रहण करना चाहिए ।^{१४} हमारे प्राचीन धर्मशास्त्र प्रत्येक बध के लिए अनेक नियम बना दिये थे । उनमें से वैद्य के लिए पशुओं के जो नियम बनाये हैं वे उचित ही थे । जो दूसरों की सेवा करेगा तो उसे कुछ मिलना भी ता चाहिए, इसलिए एक सात तक गायों में से स उनका दूध तथा एक बल तथा गाय को ही उसका वतन बना लिया था । इस प्रकार बध्या ने अपने लाभ का दृष्टि में रखकर ही गाय की सेवा तथा रक्षा का भार अपने ऊपर लेकर दण्ड का बड़ा उपकार किया था । किन्तु आधुनिक युग में गायों को छोड़कर बध्या ने केवल व्यापार का ही ध्यान लिया है । शहरों में रहने वाले बध्या के घर में एक भी गाय आराम से है वे भी अन्य बध्यों की भाँति दूध मखीद कर ही पीते हैं । बध्यों के घरों में आज गाय का सवानाव समाप्त हो गया है और व्यापार में लगे बध्यों के घरों में घन की आकांक्षा में दूध दूए हैं । उनको अपने वतन का नाम ही नहीं है । आज दण्ड में गायों का रक्षक कोई नहीं रहा है मध्व बध्यों के घरों में लग दूए हैं । आज हमारे देश में न जाने कितनी गायें मर चुकी हैं किन्तु उनकी देखने वाला आज कोई नहीं है । अब किन्हीं बध्यों के घरों में है कि वह गायों की रक्षा करके अपने मानवीय ज्ञान का प्रयोग करते हैं । अब हमारे देश में दूध की इतनी कमी इसीलिए दिग्भ्रान्त हो गई है कि जिससे बध्यों गायों जब बारी जायेंगा तब दूध भी कहा से प्राप्त होगा ।

१४—पशुधर्मशास्त्रेण पिबेद्दधेन गताच्च सिधुन हरेत् ।
 तस्याच्च सप्तम भाग तथा शूड मे कना कृतम् ।
 गान्तिपर्व-अध्याय ६०, श्लोक -२

हमारे प्राचीन धर्मशास्त्रों में रक्षिताश्रमों का प्रचार वन्य वृत्तियों के लिए गणालयन वर्तव्य बना दिया था, उमा प्रकार गता भी उही का वर्तव्य था। वन्य वृत्तियों करते थे उसमें से भी उमा गुह्य भाग वन्य रूप में मिलता था। भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि 'दूसरे के आश्रमों की पगला तथा गय प्रकार के बीजा की रक्षा करने पर वश्य को उपज का मातृका भाग वन्य रूप में ग्रहण करना चाहिए। यह उमात्रा का वाचिक वेदन है। वन्य रूप में यह सबकल्प कभी नहा उठना चाहिए कि मैं पशुआ का पानन नहा करूंगा।' १५ वश्य का गती का वता भी वाचिक मिलता था। सातवां भाग ता इसलिए दिया जाता था कि वस्या द्वारा उत्पन्न किए हुए अनाज से हा अय वषों का उदर पोषण होता था। प्राचीनकाल में वश्य बट परोपकारी और धर्मात्मा होते थे। उह धन वभव का अधिक मोह नहा था। किन्तु जाधुनिक युग में वश्य वग धन-वभव के मोह में पड गया है और अपन सब वस्तुओं को छोड़ता जा रहा है। वश्य के वर्तव्यों का वणन करते हुए विदुर जी ने धृतराष्ट्र से कहा कि वश्य यदि बट शास्त्रों का अध्ययन करके ब्राह्मण क्षत्रिय तथा जाश्रितजना को समय-समय पर धन देकर उनकी सहायता कर और यज्ञों द्वारा तीना अग्निओं के पवित्र घृत्त की सुगंध तथा रटे ता वह मरन के पश्चात् स्वर्गलोक में सुख का उपभोग करता है। १६ धन के प्राप्त करने के कारण वन्य को ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा आश्रित जना की धन से सहायता करनी चाहिए। इस पुण्यकर्म से वह सबका आशीर्वाद प्राप्त करता था और परलोक में जाकर भी सुख प्राप्त करता था।

१५—सत्याना सबधीजानामेवा सावत्सरी भति ।

न च वश्यस्य काम स्यान्न रक्षेय पशूनिति ।

शांतिपर्व—अध्या० ६०, श्लो० २६

१६—वश्योऽधीत्य ब्राह्मणान् क्षत्रियांश्च

घा काले सबिभज्याश्रिताश्च ।

त्रेतापूत धूममाघ्राय पुण्य

प्रेत्य स्वर्गे दिव्यमुत्तानि भुङ्क्ते ॥

उद्योगपर्व—अध्या० ४०, श्लो० २७

वश्य के कर्त्तव्या का बरण करते हुए भीष्म न युधिष्ठिर से कहा कि अपन वश्यधम का परिश्रमपूर्वक पालन करके कृतकृत्य हुआ वश्य अधिक अवस्था व्यतीत हो जान पर राजा की आज्ञा लेकर क्षत्रियोचिन वानप्रस्थ आश्रमा का ग्रहण करे ।^{११०} क्षत्रिया के लिए जो वानप्रस्थ आश्रम का विधान है, उसको वश्य भी ग्रहण कर सकत हैं । वानप्रस्थ का अथ घर वार पुत्रा को सौंप कर स्वयं जगल मे जाकर अपना परलोक सुधारना और देश के लिए मत्त्व करना है। अथ क मोह म फँसा हुआ वश्य कठिनता से वानप्रस्थ का ग्रहण करता है किन्तु कुछ सत्सुरूप बन्धा म भी होत हैं, जो अथ का मोह त्यागकर अपनी सम्पूर्ण लक्ष्मी को जीवित ही पुत्र को सौंपकर अपना कर्त्तव्य पूरा करके जगल की राह लेते हैं। गेप जीवन को चिन्तासे मुक्त कर सुखमय बनाकर ईश्वर का ध्यान शांतिपूर्वक करत हैं और स्वर्ग म जाकर सुख-सतोष प्राप्त करते हैं ।

४—वैश्य वर्ण का महत्व—

वर्णों का विभाजन समाज म उनके कर्त्तव्यों के महत्व की दृष्टि से किया गया है । सभी वर्णों के धर्म समाज के लिये आवश्यक और महत्वपूर्ण हैं । विद्या प्रत्येक समाज का शीपस्य मूल्य है । भारतवामिया ने इनका महत्व जितना माना उनना विद्या का महत्व प्राचीनकाल म ग्रीक लागा के अतिरिक्त किसी ने नहा माना । भारतवश्य के समान प्राचीन विद्या का विद्याल नाण्डार भी किसी देश म नहीं है । क्षत्रिय धर्म का महत्व सभी समाज मानते रहे हैं क्योंकि वे प्रनिरक्षा और आक्रमण के लिये उद्यत रहे हैं । किन्तु समाज की विनोपत गौ ब्राह्मण स्त्री आदि समाज के दुबल अगों की रक्षा को क्षत्रिया का विनोप धर्म बनाना भारतीय वण व्यवस्था की विनोपता है । वश्या के आर्थिक धर्म का विधान बर्ण-व्यवस्था को अग्रिक सन्तुलित और यथायवानी बनाना है । अथ व्यवस्था म व्यापार आदि के प्रमग मे लाभ का

१७—कृतकृत्यो बयोऽतीतो रात्र कृतपरिधम ।

शियो गच्छेदनुत्तानो नृपेणाश्रमसधयम् ॥

प्रलोभन स्वाथ को बढा सक्ता है। अत अर्थ व्यवस्था को अधिक हितकारी तथा सतुलित बनाने के लिये धर्मशास्त्रो तथा महाभारत मे धर्म, दान आदि का प्रतिबन्ध लगाया गया है। उद्योग मे धर्म का आधार ही मुख्य है। कृषि और गोरक्षा मे भी धर्म की अपेक्षा होती है। धर्म की तुलना मे लाभ कम होने के कारण आभ चलकर वश्या ने कृषि और गोपालन को छोड दिया। किन्तु धर्म और अर्थ के सन्तुलन के सम्बन्ध मे धर्मशास्त्र की धारणा पूरत सगत है। दान, यज्ञ, अध्ययन आदि को वश्यो का वतव्य बनाकर धर्मशास्त्रान् आर्थिक व्यवस्था को सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अधिक सतुलित बनाने का प्रयत्न किया। वाणिज्य से अर्थ सग्रह होता है। दान और यज्ञ के द्वारा सचय की एकपक्षता सतुलित हाती है। दान और यज्ञ धार्मिक काम है। आर्थिक दृष्टि से ये सग्रह के विपरीत हैं किन्तु इनमे धार्मिकता का भी पुट है। अध्ययन का काम अर्थ की भौतिकता का सन्तुलन करता है। धर्मशास्त्रो मे वश्यो को धर्मशील और सदाचारी होने का आदेश दिया गया है। उनका धन सग्रह मे भी पवित्रता और धार्मिकता का प्रतिबन्ध लगाया है। धनोपाजन मे पवित्रता और धार्मिकता की भावना प्राचीनकाल के और मध्यकाल मे अर्थ के उन जनर्थो से भारतीय समाज का बचाती रही है, जो वतमान समाज मे प्रकट हुय है तथा जिनके कारण समाजवाद तथा राष्ट्रियकरण आदि के आर्थिक अनुशासन आवश्यक हो रहे हैं। धर्मशास्त्रो के उक्त आदेशो के फल स्वरूप ही भारतवर्ष मे इतनी धर्मशान्ताये इतने कुये मंदिर, सदावत आदि उदार धर्मक्षेत्र दिखाई दे रहे हैं। धनोपाजन और धन सग्रह मे पवित्रता की भावना भी आर्थिक अनीति का बहुत कुछ नियन्त्रण करती रही है। धर्मचार और पवित्रता का अनुरोध भोजन आदि के व्यवसाय मे शुद्धता और पवित्रता का संचार करता रहा है। व्यवधम की धार्मिक व्यवस्था एक ओर आर्थिक मूल्यो का रक्षण करती रही है तथा दूसरी ओर धार्मिक आचार तथा सांस्कृतिक मूल्यो के साथ अर्थनीति का समन्वय करती रही है। धर्मशास्त्र का विधान अपने आप मे बहुत सगत और सतुलित है। यदि धर्मशास्त्र के अनुरोध का उल्लघन करके व य वग कृषि, गोरक्षा आदि की ओर मे विमुक्त होकर अनुचित धन सग्रह की ओर लग गया तो इसमे धर्मशास्त्रो का दोष नहीं। यह मनुष्य के स्वभाव का दोष है जिसे मर्यान्तित करने का धर्मशास्त्र न मयासभव प्रयत्न किया है।

महाभारत में शूद्र-धर्म

१—शूद्रों का स्थान—

शूद्रों की स्थिति भारतीय समाज और धर्मशास्त्र की एक गोचनीय विडम्बना है। चारों वर्णों में शूद्र सबसे अधिक हीन और दयनीय है। तीन उच्च वर्णों में कतन्व्य भेद से कुछ अन्तर होते हुए भी वे तीनों श्रेष्ठता के अधिकारी हैं। विद्या, धर्म और मस्कृति के साधक होने के नाते ब्राह्मण पवित्र और पूजनीय हैं। समाज और मस्कृति के रक्षक होने के कारण क्षत्रिया को अनेक स्थानों पर चारों वर्णों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। धन और वैभव की महिमा के कारण वश्य वर्ण सहज ही श्रेष्ठ (सठ) बन गया। चारों वर्णों में एक शूद्र ही ऐसे है, जो धन, मान, वैभव स्वच्छता पवित्रता आदि समस्त मानवीय अधिकारों से वंचित होकर बंदम के कीटा की भाँति मलिन और दलित जीवन बिताते आये हैं। शूद्रों के सभी वर्ण समान रूप में हीन और मलिन नहीं हैं। उनमें माली, नाई, कहार, बन्दे आदि ऐसे अनेक वर्ण हैं जो उच्च वर्णों के समान स्वच्छता से रहते हैं और उनमें मिलन-बठने का अधिकारी है। इनमें बर्दों का हाथ का मोजन और जल भी उच्च वर्णों को ग्राह्य होता है। धर्मशास्त्रों के विधान की अपूर्णता के कारण प्रायः कायस्त, अहीर आदि कुछ ऐसे वर्णों को भी शूद्रों के अन्तर्गत गिना जाता है जिनमें कुछ विद्या की दृष्टि से ब्राह्मणों के समान हैं तथा कुछ पराक्रम की दृष्टि से क्षत्रियों के तुल्य हैं और कुछ व्यवसाय की दृष्टि से वैश्या के निकट हैं। किन्तु शूद्रों के निम्नवर्ग में भगी, चमार आदि जसी अनेक मलिन और दलित जातियाँ हैं जो उच्चवर्णों के द्वारा स्पष्ट के योग्य भी नहीं समझे जाती। इनका काय क्षेत्र भी इतना मलिन है कि उच्चवर्ण उसे दृष्टिपान के योग्य भी नहीं समझते। शूद्रों के इस वर्ग की स्थिति ही सबसे अधिक गोचनीय और दयनीय है। सामाजिक विचारका और सुधारका की प्रतिक्रियाया

का आधार दूद्रो का यही वग है। किमी कारण म दूद्रो का यः वग भाग वग म अय सभी दगा की अगता अधिः उपाग और ऋगि रगा है। धमशास्त्र समाज की द्रग स्थिति की र्णता के लिए उतरगायी न हः। किन्तु धमशास्त्रा व विधाः इस स्थिति व गमर्षः और गेपण व लिए तथा गम स्थिति म गुपार की वःपना एव भःषा व वरः व लिए उतरगाया अयः है।

इगम सःह नही कि भाग्याद गमाज म दूद्रो व कुछ वगों का स्थिति अधिः शाचनीय है तथा द्रग प्रगम म गास्त्रार भी पूगरूप म दाव मुक्त नही है। फिर भी दूद्रो व प्रःन व गम्य म म टीन-टीन विचार करन व लिए सःतुलित दृष्टिकोण अपनाना हागा। इग गम्यःप म गुधारायाः लोग प्रायः उग्र और एवागी दृष्टिकोण अपनात हैं। दूगर दगा म तुलना करन गमम व प्रायः सःसृति आचार आःि की दृष्टि स दः दगा व साय भारतवष का जा अःतर है और इन दोना म भारतवष का जा अनिरजित विगःगावै रही हैं, उनको भूल जाने हैं। जलवायु की परिस्थितिया को भी प्रायः इग प्रसन म ध्यान नही णिया जाता। दूद्रो व वग म जा अनः श्रेष्ठ और स्वःछ जातियाँ सम्मिलित हैं उनको भी प्रायः भुला णिया जाना है तथा एक अछूत वग को ही लकर भारतीय समाज और धमशास्त्रा का आःोचना की जाती है। भारतीय समाज और धमशास्त्र पूएन निर्दोष नही हैं। फिर भी प्रःपेव सामाजिक समस्या के सम्बःध म सःतुलित दृष्टिकोण अपनाना अपेक्षित है। इस सःतुलित दृष्टिकोण म उःपर दिःय गय सवेता को ध्यान म रःपना आवःयक है। सःसृति के सजीव रूपो की जितनी विपुलता भारतीय परम्भरा म मिलती है उतनी कदाचित ही किसी देश अथवा समाज म मिल सकगी। इस साःसृतिक विपुलता से एक ओर कुछ आचार की पवित्रताओ का महःस्व अधिःक बढ गया तथा दूसरी ओर सेवा के विविध यवसाया की आवःयकता दूसरा दशो की अपेक्षा अधिःक बढ गई। स्वःच्छता और पवित्रता के कारण समाज म इनके आधार पर एक विभाजन हुआ जिसमे स्वःच्छता पवित्रता का साधक वग अपन को श्रेष्ठ समझने लगा और ऊचे मानदण्ड से कुछ मलिन रहन वाल वगों को हीन समझने लग। दःनिक जीवन की धमचर्या म भी बाह्य स्वःच्छता और शुद्धता चरम सीमा तक पहुच गई। जलवायु की उष्णता और स्नान प्रक्षालन का अतिशय महःस्व इसकी एक धुरी हैं। बढता हुई कृषि और उसके साथ बःन्ता हुआ अःनाहार तथा मासाहार की मलिनता ने भी अपना योग णिः। अमरीका और आस्ट्रेलिया के अत्यत अवाचीन दशा को छोडकर

ससार का कोई भी प्राचीन देग भारतवर्ष के समान कृषि म सम्पन्न नहीं है और न किसी देग म अन्नाहार का इतना अधिक प्रचलन था । धार्मिक और सांस्कृतिक आचार म स्वच्छता की चरमसीमा ने मलिनता के अनुपात म गूद्रा के विविध वर्गों की हीनता को दृढ बनाया । स्नान और प्रक्षालन का इतना महत्त्व तथा स्वच्छता एवं पवित्रता का इतना आग्रह कदाचित् ही किसी देश क धर्माचार म होगा । धार्मिक और सांस्कृतिक क्रियाआ के व्यावहारिक रूपा की जटिलता एवं विपुनता ने सेवा के अनेक कर्मों को अधिक व्यापक माना म आवश्यक बनाया । सेवा के कारण कुछ अपवाहित स्वच्छ और सम्मानित वर्गों को नी गूद्रा म शामिल कर दिया । पशुआ तथा चर्म के व्यापार की अधिकता तथा बढ़ती हुई नागरिता चमार, भगी जमे अछूता के दुर्भाग्य क कुछ प्राकृतिक कारण हैं । सम्भता का गव करन वाले पश्चिमी देगा म प्रचलित दाम प्रथा जैसे अमानुषी परम्पराआ का प्रचलन भारतवर्ष म नहीं रहा । गूद्रा की अपक्षा क साथ-साथ उनके प्रति व्यवहार और उनके साथ सम्बन्ध म बहुत कुछ मानवीयता रही भारतीय भावना के उग उदार और मानवीय पक्ष को सामाजिक विचारक भूल जात है । गूद्रो और विगेपकर अछूता का हीन एवं दलित स्थिति क प्रमग म धार्मिक एवं सांस्कृतिक आचार का स्वच्छता का भी प्राय ध्यान नहीं लिया जाता । इस कारण गूद्रो की स्थिति वस्तुतः दयनीय होन हुए भी, उमका सामाजिक विश्लेषण एकागो बन जात है । अय देगा की तुलना म भारतीय धर्म, सस्कृति आचार जलवायु आदि की भारतीय विगेपताआ को ध्यान मे रखकर ही गूद्रा की समस्या का मन्तु लित विश्लेषण सम्भव हो सकता है ।

घमगास्त्रो मे उद्धवर्णों की सेवा को ही गूद्रा का एक मात्र धर्म माना गया है । उाक उपनयन आदि सस्कार नहीं होते तथा द्विजा के द्वारा पानित धर्मकृत्य आदि भी उनके लिए आवश्यक नहीं हैं । घमगास्त्रा के विधान म तो उह वेद की शिक्षा से हा वचन लिया गया है किन्तु अय शिक्षा क लिए भी सेवा के कारण उनके जीवन म अवसर नहीं रहा और न उनके विषय मे विद्या को कोई महत्त्व दिया गया है । गूद्रा की निम्न स्थिति का सवेत पुरप सूक्त म मिलता है जिसम गूद्रा को विराट पुरप के चरण म स्थान दिया गया है । ' गरीर मे चरण सबसे नीचे और मलिन रहन हैं ।

१—पद्म्या सुद्रोऽजापत—ऋग्वेद १० ८० १२

सूद्राश्च पादत सृष्टास्तस्मात् ते परिचारिका ।

अनुगासनपर्ध—अध्याय १४१, श्लो० २६ से आगे

वे किसी श्रेष्ठ काम के अधिकारी नहीं हैं। बाहु पराक्रम व साधन हैं तथा उम्र अवलम्ब व साध-साध भोग व भी साधन हैं कि तु परण केवन सेवा व हा अधिकारी हैं। परणा व द्वारा ही शरीर का मचनग होता है शूद्रा की सेवा भी समाज के संचालन के लिए उतनी ही आवश्यक है, जितनी कि शरीर के लिए चरण की सेवा। इन सेवाओं में कुछ मनिन काम भी शामिल होने हैं। शरीर के चरण भी मलिन शत्रुओं में प्रवेश के लिए विवग होना है उमा प्रकार सामाजिक आवश्यकताओं से विवग होकर शूद्रा व कुछ वग भी मनिन कामों में प्रवृत्त होने व लिए विवग हुए हैं। इन मलिन कामों का समाधान ही शूद्रा की समस्या का वास्तविक और अंतिम समाधान होगा।

१—शूद्र के धर्म—

जिस प्रकार अथ वर्णों के धर्मों के विवरण व प्रसंग में महाभारत की अथ धर्मशास्त्रों के साथ बहुत कुछ समानता दिखाई देती है उसी प्रकार महाभारत में शूद्रा व धर्म का विवरण बहुत कुछ धर्मशास्त्रों व अनुकूल है।^२ धर्मशास्त्रों के समान महाभारत में भी उच्चवर्णों की सेवा को ही शूद्रा का प्रमुख काम माना गया है तथा सेवा को ही उनके लिए सभी पुण्यों का साधन बताया गया है। इन्द्राज के पूछने पर भृगु जी ने यह शूद्रा के लक्षण इस प्रकार बताये कि जो वेद और सदाचार का परित्याग करके सदा सब कुछ खाने में अनुरक्त रहता है और सब तरह के काम करता है साथ ही बाहर भीतर से अपवित्र रहना है वह शूद्रा कहा गया है।^३ तीनों वर्णों की सेवा

२—एकमेव तु शूद्रस्य प्रभु काम समादिशत् ।

एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनमूयया ॥

मनुस्मृति—अध्या० १, श्लो० ८१

३—सर्वभक्षरतिनित्यं सर्वकमकरोऽशुचि ।

एतन्वेदस्त्वनाचारं स व शूद्र इति स्मृत ॥

शांतिपर्व—अध्या० १८६ श्लो० ७

क लिए ही शूद्रा की सृष्टि हुई । भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि 'प्रजापति न अय तीना वर्णों के सेवक के रूप म शूद्र की सृष्टि की है, अत शूद्र के लिए तीनों वर्णों की सेवा ही शास्त्रविहित कर्म है ।'^४ जिस प्रकार ब्राह्मणा क लिए तप त्याग का जीवन, क्षत्रिय के लिए पराक्रम का जीवन तथा वश्य के लिए आर्थिक व्यवसाय शास्त्रो म विहित है, उसी प्रकार शूद्रों क लिए सेवा कर्म ही सब से श्रेष्ठ धर्म है । शूद्रो क काय बताते हुए श्री कृष्ण ने सजय से कहा कि शूद्र ब्राह्मणा की सेवा तथा बंदना करे, वेदो का स्वाध्याय न करे । उसके लिए यज्ञ का भी निषेध है । वह सदा उद्योगी और आलस्यरहित होकर अपन कल्याण के लिए चेष्टा करे । इस प्रकार शूद्रो का प्राचीन धर्म बताया गया है ।'^५ शूद्रा के लिए वेदो का अध्ययन न करना ही लिखा है क्यकि शूद्र अपवित्र होते थे तथा वेदो को समझने की उनम बुद्धि भी नहीं हाती थी । वेदो का पढना बड़ी तपस्या का काम था । शूद्र सेवा का काम करते थे, यदि शूद्र भी वेद के अध्ययन म लग जाते, तो मेवक का काय कौन करता । धर्मो ने सेवक के काय करने क कारण ही शूद्रो को वेद पढने से वंचित रखा । वसे शूद्रा को विद्या अध्ययन करने की छूट थी तथा और भी धार्मिक कृत्य राजा की आज्ञा से कर सकते थे । शूद्र को कर्मों से मुक्त प्राप्त होता है एसा कहते हुए विदुरजी न धृतराष्ट्र से कहा कि शूद्र यदि ब्राह्मण क्षत्रिय

४—प्रजापतिर्हि वर्णाना दास शूद्रमकल्पयत् ।
तस्माच्छूद्रस्य वर्णानां परिचर्या विधीयते ॥

शांतिपर्व—अध्याय ६०, श्लो० ३८

५—परिचर्या क दन ब्राह्मणाना
नाधीयीत प्रतिविद्भोऽस्य यत् ।
नित्योत्थितो भूतयेऽतिद्वित स्या
देव स्मृत शूद्रधर्म पुराण ।

उद्योगपर्व—अध्याय २६, श्लो० २६

और वक्ष्य की क्रम से 'यायपूवक' सेवा करके इह सन्तुष्ट करता है, तो वह 'यया से रहित हो पापो से मुक्त होकर दह त्याग के पश्चात् स्वर्ग सुख का उपभोग करता है । ६ शूद्रा के लिए तीनों वर्णों की सेवा ही सब धर्मों से श्रेष्ठ है और उनको मोक्ष भी सेवा कर्म को उचित ढंग से करने से प्राप्त हो जाती है । जिसकी सेवा स द्विज लोग जितने अधिक प्रसन्न एवं सन्तुष्ट होंगे, उसको उतना ही उत्तम फल प्राप्त होता था । सेवा का महत्त्व बताते हुए भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि 'शूद्र इन तीनों वर्णों की सेवा स ही महान् सुख का भागी हो सकता है । अतः शूद्र इन तीनों वर्णों की क्रमशः सेवा करे ।' ७

३—शूद्र के कर्त्तव्य—

अपने वर्णों की भाँति शूद्र के लिए भी कुछ कर्त्तव्य है जिनका पालन उसे सबदा करना चाहिए । शूद्र के कर्त्तव्य बताते हुए भीष्म जी ने युधिष्ठिर से कहा कि 'शूद्र को कभी किसी प्रकार भी धन का संग्रह नहीं करना चाहिए क्योंकि धन पाकर वह महान् पाप में प्रवृत्त हो जाता है और अपने स श्रेष्ठतम पुत्रों को भी अपने अधीन रखन लगता है ।' ८ मनुस्मृति में भी मनु ने

६—ब्रह्म क्षत्र वश्ययण च शूद्र

#मेणतान् यायत पूजयान्
तुष्टेऽप्येतेष्वभ्ययो दाघपाथ
स्त्यक्त्वा देह स्वगमुक्षानि भुङ्क्ते

उद्योगपर्व—अध्याय ४०, श्लो० २८

७—तेषां शुभ्रपणाच्चव महत् सुखमवाप्नुयात्
शूद्र एतान् परिचरेत् त्रीन् वर्णानुपूर्वम् ॥

गार्गीपर्व—अध्याय ६०, श्लो० २८

८—सचपांश्र ग बुर्वीत जातु शूद्र कथंचन ।

पापोयान् हि धन सध्वा वने बुर्पाद् गरीयस ॥

गार्गीपर्व—अध्याय ६०, श्लो० ३०

वहा है कि 'दूद्र को धन का सग्रह नहीं करना चाहिए । समय होने पर भी धन सचय नहीं करना चाहिए ।'^१

सेवका को छोटा बनकर ही रहना चाहिए, तभी वह सेवा वृत्ति का काय कर सकेंगे । यदि 'दूद्र धन का सग्रह करने लगेंगे तो फिर वह भी बड़े आदमी अर्थात् धनवान् बन जायेंगे और फिर किसीकी सेवाका काय क्या करेंगे । धनवान् होने पर तो वह स्वयं भी श्रेष्ठ पुरुषा को अपने यहाँ धन के कारण सेवक बना सकेंगे । इसीलिए धर्मशास्त्रो में दूद्रा के लिए धन का सचय करना निषेध किया गया है ।

दूद्र को अपने स्वामी की सब प्रकार से सेवा करनी चाहिए और आवश्यकता पडने पर सातान के अभाव म उसे पिण्डदान भी करना चाहिए । दूद्र को स्वामी के प्रति कसा आचरण करना चाहिए, इस विषय म बताते हुए भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि "यदि स्वामी सन्तानहीन हो तो सेवा करने वाले दूद्र को ही उसके लिए पिण्डदान करना । चाहिये यदि स्वामी बूढा या दुबल हो तो उसका सब प्रकार से भरण पोषण करना चाहिए । किसी आपत्ति म भी दूद्र को अपने स्वामी का परित्याग नहीं करना चाहिए । यदि स्वामी के धन का नाश हो जाय तो दूद्र को अपने कुटुम्ब के पालन से बचे हुए धन के द्वारा उसका भरण पोषण करना चाहिए ।"^१ सन्तानहीन स्वामी के लिए सेवक

६—शक्तेनापि हि दूद्रेणि न कार्यो धन सग्रह ।

दूद्रा हि धनभासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते ॥

मनुस्मृति—अध्या० १०, श्लो० १२६

१०—देयः पिण्डोऽनपत्याय भतयो वृद्धदुबलो ।

दूद्रेण तु न हातयो भर्ता कस्याश्चिदापदि ।

अतिरेकेण भतयो भर्ता द्रव्यपरिक्षये ॥

शान्तिपर्य—अध्या० ६०, श्लो० ३५ ३६

ही सतान व समान होता है। इसलिए स्वामी की वृद्धावस्था में सार प्रवार से सेवक को ही सहायता करनी चाहिए। युवावस्था में स्वामी सेवन का भरण पोषण करता है इसलिए वृद्धावस्था में सेवक को उसका भरण-पोषण आवश्यकता ही होकरना चाहिए, सच्चे सेवक व यही मुख्य कर्त्तव्य है। चारों वर्णों में ब्राह्मणों में बड़ा वही सम्भ्रा जाता है जो ज्ञान में मग्न अधिक ज्ञानी हो, क्षत्रियों में वही सबसे महान् सम्भ्रा जाता है, जो पराक्रम में सबसे वीर हो। इसी प्रकार वन्य और शूद्रों में तिन लक्षणों में बड़ा हाता है यह बताते हुए भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि वश्या में वही सर्वमाय है जो धन धान्य में बढ़कर हो केवल शूद्रों में ही जन्मकाल को ध्यान में रखकर जो अवस्था में बड़ा हो, उसको पूजनीय माना जाता है।^{११} शूद्रों में मान उसी का होता है जो उन्नत में सबसे बड़ा हो, उन्नत में सबसे बड़ा पुरुष ही शूद्रों का मुखिया होता है। सब लोग उसका व बताये हुए आदर्शों पर चलते हैं और सब कामों में उसकी ही आज्ञा का पालन करते हैं।

४—स्वामी द्वारा शूद्रों का भरण पोषण--

द्विजातियों का कर्त्तव्य है कि वह अपने सबको व भरण पोषण का प्रवर्ध करें। जो सेवक अपना सारा समय स्वामी की सेवा में लगा देता है, तो उसका पालन भी स्वामी को ही करना चाहिए। शूद्रों को देने योग्य वस्तुओं के विषय में बताते हुए भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि फटे पुराने कपड़े जो अपन धारण के योग्य न रहे वे द्विजातियों द्वारा शूद्रों को ही दान योग्य है क्योंकि धर्म वे सब वस्तुएँ शूद्रों की ही सम्पत्ति हैं।^{१२} शूद्रों को सेवक

११—वश्याना धान्यधनवाञ्छुद्राणामेव जन्मत ।

पूज्यतायां च गोविन्दे हेतू द्वावपि सन्धितौ ॥

सभाषव—अ० ३८, श्लो० १८

१२—अघार्याणि विशीर्णानि वसनानि द्विजातिभिः ।

शूद्रायव प्रदेयानि तस्य धमघन हि तत् ॥

शांतिपर्व—अ० ६०, श्लो० ३३३

का काय करने के लिए नवीन वस्त्रों की तो आवश्यकता होती नहीं है। वह सेवा का काय पुराने वस्त्रों से ही कर सकता था।

उसके पास नवीन वस्त्रों को खरीदने के लिए धन का भी अभाव रहता है, इसलिए स्वामी द्वारा दिए हुए पुराने वस्त्रों का ही वह उपयोग करता है। वस्त्रों के अतिरिक्त और छोटी छोटी वस्तुएँ भी स्वामी को सेवक के लिए दे दनी चाहिए। छोटी वस्तुओं के विषय में बताते हुए, भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि 'तीना वर्णों को गूद्र का भरण पोषण अवश्य करना चाहिए, क्योंकि उसको भरण पोषण करने योग्य कहा गया है। अपनी सेवा में रहने वाले गूद्र को उपभाग में लाये हुए छाते, पगड़ी, अनुलेपन जूते, और पखे देने चाहिए।'^{१३} गूद्र को पुरानी वस्तुएँ देने के अतिरिक्त उसकी जीविका का भी प्रबंध द्विजातियों को ही करना चाहिए इस विषय में भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि "द्विजातियों में से जिस किसी की सेवा करने के लिए कोई गूद्र जावे उसीको उसकी जीविका की व्यवस्था करनी चाहिए, ऐसा धर्मन पुम्पो का कथन है।'^{१४} जो सेवक जिसकी सेवा करेगा, वह अपने परिवार के पालन के लिए भी उही रा धन एवं वस्तुओं की आशा करेगा। समझदार लोग गूद्रों के भरण पोषण का सम्पूर्ण प्रबंध स्वयं ही करते हैं, जो नहीं कर पाते हैं उन्हें भा दूसरा के कहने पर करना ही पड़ता है। सेवक की जीविका का प्रबंध करना स्वामी का सहज कर्तव्य है।

१३—अवश्य भरणीयो हि वर्णानां गूद्र उच्यते ।

छत्र वेष्टनमौशीरमुपानद् व्यजनानि च ॥

पातयामानि देयानि गूद्राय परिचारित्वे ।

शांतिपर्व—अध्या० ६०, श्लो० ३२३

१४—य च कश्चिद् द्विजातीनां गूद्रं शुभ्रपुराग्रजैश्च
कल्प्या तेन तु ते प्राहुवृत्तिं धर्मविदो जनाः ।

शांतिपर्व—अध्या० ६०, श्लो० ३४१

५—राजा की आज्ञा से धार्मिक काय शूद्रो का अधिकार—

शूद्रो मे भी कई तरह के लोग होते हैं । बहुत से शूद्र काम तो सेवक का करते हैं किन्तु उनके आचरण श्रेष्ठ पुरपा जरा होते हैं । वे सत्कार स रहते हैं और नियम से स्नान आदि करके ईश्वर का ध्यान करते हैं, वे शूद्र होकर भी उच्च वृत्ति के लोग समझे जाते हैं । शूद्रो मे ऐसे लोग बहुत कम होते है । किन्तु जो भी होते हैं उनके आचार का दखकर राजा उन्हें धार्मिक काय करने की अनुमति दे देता है । भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि 'धर्मात्मा शूद्र राजा की आज्ञा लेकर अपनी इच्छा के अनुसार कोई धार्मिक कृत्य कर सकता है ।' १५ शूद्रो के लिए प्राचीन काल मे केवल ब्रह्म का पढ़ना ही बर्जित था, बाकी सम्पूर्ण धार्मिक ग्रन्थ वह पढ सकता था तथा धार्मिक काय कर सकता है । भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि 'शूद्र का अपना कोई धन नहीं होता है । उसके सारे धन पर उसके स्वामी का ही अधिकार होता है । यज्ञ का अनुष्ठान ताना वर्णों तथा शूद्र के लिए भी आवश्यक बताया गया है । शूद्र के यज्ञ मे स्वाहाकार, वपटकार तथा वदिक मन्त्रो का प्रयोग नहीं होता है । १६ शूद्रो को अपना यज्ञ वदिक मन्त्रो रहित करना पडता था । वदिक मन्त्रो को छोडकर अथ साधना का बरण करते हुए भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि 'शूद्र स्वयं वदिक व्रता की दीक्षा न लेकर पाकयज्ञों (बलि वश्वदेव आदि) द्वारा द्रजन कर । पाक यज्ञ की दक्षिणा पूणपात्रमयी बतायी गई

१५—राजा या समनुज्ञात काम कुर्वीत धार्मिक

तस्य वृत्ति प्रवक्ष्यामि यच्च तस्योपजीवनम् ॥

शांतिपर्व—अध्याय ६०, श्लोक ३१

१६—न हि स्वमस्ति शूद्रस्य भत हायधनो हि स ।

उक्तस्त्रयाणां वर्णानां यज्ञस्तस्य च भारत ।

स्वाहाकारवपटकारो मन्त्र शूद्रे न विद्यते ॥

शांतिपर्व—अध्याय ६०, श्लोक ३७

है ।^{१०} पूरणपात्र का परिमाण इस प्रकार है—आठ मुट्टी अन्न को 'क्वित्त' कहते हैं आठ क्वित्त का एक 'पुष्कल' होता है और चार पुष्कल का एक पूरणपात्र होता है । इस प्रकार दो सौ छप्पन मुट्टी का एक पूरणपात्र होता है । वस शूद्र को यज्ञ करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि तीनों वर्णों के यज्ञ करने से जो पुण्य उत्पन्न मिलता है, उसमें उनके सेवकों का भी हिस्सा होता है । यज्ञ में पुण्य का वर्णन करते हुए भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि ब्राह्मण आदि तीनों वर्णों का जो यज्ञ है, वह सब सेवाकाय करने के कारण शूद्र का भी है ही (उसे भी उसका फल मिलता ही है, अतः उसे पृथक् यज्ञ करने की आवश्यकता नहीं है) । सम्पूर्ण यज्ञों में पहले श्रद्धारूप यज्ञ का ही विधान है ।^{११} श्रद्धा यज्ञ करने वालों को पवित्र करती है । सभी वर्णों के लोग अपने-अपने कर्म द्वारा एक दूसरे के यज्ञों में सहायक होते हैं । सभी वर्णों को ब्राह्मणों की सत्तान ही माना जाता है । सभी वर्णों की भाँति सदाचारी शूद्र भी सत्यास को छोड़कर शेष सभी आश्रमों का पालन कर सकता है । इस विषय में बताते हुए भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि "जो शूद्र तीनों वर्णों की सेवा करके कृतायु हो गया है जिसके पुत्र हैं शौच और सदाचार की दृष्टि से जिसमें अथर्ववर्णियों की अपेक्षा बहुत कम अन्तर रह गया है अथवा जो मनुप्रोक्त दस धर्मों के पालन में तत्पर रहा है, वह शूद्र यदि राजा की अनुमति प्राप्त कर ले तो उसके लिए सत्यास को छोड़कर शेष सभी आश्रम विहित हैं ।^{१२} सदाचार से रहने वाले शूद्र में और उच्च वर्णों में जब

१७—तस्माच्छूद्र पाण्डित्ययज्ञेताव्रतवान् स्वयम् ।

पूरणपात्रमयीमाहू पाण्डित्यस्य दक्षिणाम् ॥

शान्तिपर्व—अध्याय ६०, श्लोक ३८

१८—यतो हि सर्वैर्वर्णाना यज्ञस्तस्यैव भारत ।

अथ सर्वेषु यज्ञेषु श्रद्धायज्ञो विधीयते ॥

शान्तिपर्व—अध्याय ६०, श्लोक ४०

१९—शुभ्रपाकृन्वायस्य कृतसत्तानवर्षण ।

अभ्यनुज्ञातराजस्य शूद्रस्य जगतीपते ।

अल्पातरगतस्यापि दशधमगतस्य वा ।

आश्रमा विहिता सर्वे व्रजयित्वा निरागिवम् ॥

शान्तिपर्व—अध्याय ६३ श्लोक १२ १३

कोद अंतर प्रतीत नहीं होता, तब राजा की आज्ञा से तीनों आश्रमा म उमका प्रवेग भी उचित ही है । जिस गूद्र ने मनु द्वारा बताये हुए दम धर्मों का ग्रहण कर लिया है उसके लिए सब काय करन की अनुमति मिल जाती है । वे दस धम ये है—धृति क्षमा मन का निग्रह, चारी का त्याग, वाहर-भीतर की पवित्रता, इन्द्रिय निग्रह सात्त्विक बुद्धि, सात्त्विक ज्ञान, सत्य भाषण और क्रोध का अभाव । उपरोक्त दस धर्मों के पालन करने वाला गूद्र गूद्र नहीं रहता उसम उच्चवर्णों जसी पवित्रता एव बुद्धिमत्ता प्रकट हो जाती है । उमक इन आचारा के कारण ही राजा उसे सब वर्णों की भाति भिक्षा का भी अधिकारी बना देता है । भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि पूर्वोक्त धर्मों का आचरण करने वाले गूद्र के लिए तथा वश्य और क्षत्रिय के लिए भी भिक्षा मागकर निर्वाह करने का विधान है ।^{१२} आश्रम चार होत हैं, उनमे सयास को छोडकर तीना आश्रमा का उपभोग सदाचारी गूद्र कर सकता है । प्रथम ब्रह्मचय आश्रम मे तथा तृतीय वानप्रस्थ आश्रम मे सबको भिक्षा ग्रहण करके अपना जीवन यापन करना पडता है । यहाँ भिक्षा माग कर निर्वाह करने का आशय यही है कि जत्र गूद्र वानप्रस्थ आश्रम म प्रवेश करेगा तब उसे भोजन की आवश्यकता होगी यह भिक्षा उसी समय वह मागगा और इसी स अपना वानप्रस्थाश्रम सफल करेगा । सदाचारी गूद्र इन पुण्य कर्मों के प्रभाव स अपना जीवन सुभार लेता है और परलोक मे जाकर सुख प्राप्त करता है ।

गूद्रो को जिन कर्मों स स्वर्ग की प्राप्ति हाती है उनके विषय मे श्री भगवान् न युधिष्ठिर से इस प्रकार कहा कि गूद्रा म से जो सदा तीनों वर्णों की सेवा करता और विवेपत ब्राह्मणा की सेवा म दास की भाति खडा रहता है जा विना मांगे ही दान दता है सत्य और शौच का पालन करता है गुरु और देवताआ की पूजा म प्रेम रखता है परस्त्री के ससग से दूर रहता है दूसरा को बध न पट्टा कर अपने कुटुम्ब का पालन पोषण करना है और

२०—भक्ष्यचर्यां तत प्राहुस्तस्य तद्धमचारिणः ।

तथा वश्यस्य राजेन्द्र राजपुत्रस्य चवहिः ॥

गान्धिपत्र—अध्याय ६३, श्लोक १४

सब जीवा का जभयदान कर दता है उस शूद्र को भी स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।^{१२१}

महाभारत में शूद्रों को गौरव देने वाले वचन भी मिलते हैं । सामान्य रूप से मलिनता के कारण शूद्रों को हीन माना जाता है । प्राचीन काल में अनेक जातियाँ मलिनता से रहती थीं । विवशता से वे उच्च वर्णों के सेवक बन गये । इस प्रकार शूद्र वर्ण की रचना हुई । उच्च वर्णों की सेवा ही उनका मुख्य धर्म है । वेदा के अध्ययन का अधिकार उनको नहीं है । ब्राह्मणों ने यह प्रतिबन्ध वेदा की शुद्धता की रक्षा के लिये किया । किन्तु वर्णों का अध्ययन अथवा कार्यों में लगे लोगों के लिये कठिन भी है । ब्राह्मण वेदा के अध्ययन में ही जीवन लगात था । क्षत्रियों और वश्यों का वेदाध्ययन का अधिकार था किन्तु वे भी उसका निर्वाह नहीं कर सके । वेद के अनिर्गुण अथवा शास्त्रों में तथा धार्मिक कर्मों में शूद्रों का भी अधिकार है । ये धार्मिक कर्म शूद्रों का भी पवित्र बनाते हैं । कर्मों की पवित्रता से शूद्र भी पवित्र हो जाता है तथा वह ब्राह्मणों के समान बदनीय बन जाता है ।^{१२२} ब्रह्माजी का यह वचन शूद्रों के प्रति अत्याय का एक बड़ा समाधान है । जो शूद्र शुभ कर्म करता है वह द्विजातियों से भी श्रेष्ठ है ।^{१२३} द्विजत्व का कारण वृत्ति ही है । शुभ वृत्ति

२१—प्रप्राणामपि वर्णानां शुभ्रूपानिरत सदा ।

विशेषतस्तु विप्राणा वासवद् यस्तु तिष्ठति ॥

अदाचितप्रप्राता च सत्यशौचसर्मा वत ।

गुरुदेवाचनरत परदारविवर्जित ।

परपीडामकृत्वव भयव्यग द्विर्भति य ।

शूद्रोऽपि स्वर्गमाप्नोति जीवानामभयप्रद ॥

आश्वमेधिक पर्व—अध्याय ६२ श्लोक ५३ से आगे

२२—कर्मभि शुचिभिर्देवि शुद्धात्मा विजितेन्द्रिय ।

शूद्रोऽपि द्विजवत् सेय इति ब्रह्माब्रवीत् स्वयम् ॥

अनुशासनपर्व—अध्याय १४१, श्लोक ४८

२३—स्वभावा कर्म च शुभ यत्र शूद्रोऽपि तिष्ठति ।

विगिष्ट स द्विजानेव विज्ञेय इति मे मति ॥

अनुशासन पर्व—अध्याय १४१, श्लोक ४६

वाला शूद्र भी ब्राह्मणत्व को प्राप्त करता है।^{२४} इन समाधानों से विदित होता है शूद्रों की हीनता शास्त्रकारों का जाग्रह नहीं थी वरन् वह तत्कालीन समाज की स्थिति से पदा हुई थी। इन समाधानों के सवेत से शूद्र की स्थिति को सुधारा जा सकता है।



२४--चारणानि द्विजत्वस्य वृत्तमेव तु कारणम् ।

वृत्ते स्थितस्तु शूद्रोऽपि ब्राह्मणस्य नियच्छति ॥

अनुशासन धर्म-अध्याय १४१,

श्लोक-५०, ५१

महाभारत में आश्रम-धर्म

१—आश्रम व्यवस्था का महत्व —

भारतीय धारणा के अनुसार काल को जीवन का मम माना गया है। काल ही जीवन और काल ही मृत्यु है। श्वेताश्वतर उपनिषद् के आरम्भ में प्राचीन ऋषि जीवन के तत्त्व के सम्बन्ध में विचार करते हैं तो उन्होंने काल का ही जीवन के तत्त्वों में प्रथम स्थान दिया है। काल को समय भी कहते हैं, जो सम्यक् (सम) रूप से व्यतीत होता है (या) उसे समय कहते हैं। समय ही जीवन है और उसका भले प्रकार बीतना ही जीवन की साधकता है। काल के अनुसार ही जीवन का विकास होता है इसे आयु कहते हैं। जीवन की कालगत अवस्था अथवा आयु के अनुसार ही जीवन के व्यतीत होने पर जीवन सफल होता है। सम्पूर्ण जीवन को एक रूप मानना जीवन और काल की गति का तिरस्कार करना है। काल की गति के इस तिरस्कार से जीवन का सौन्दर्य और आनन्द भी नष्ट हो जाता है। जीवन का सौन्दर्य जीवन की विविधता में सुरक्षित रहता है। काल की गति और विकास के मानन पर जीवन में अधिक स्वाभाविकता आ जाती है दूसरी ओर जीवन का सौन्दर्य और आनन्द भी बढ़ जाता है। जीवन की यही स्वाभाविकता और जीवन का यही सौन्दर्य आश्रम व्यवस्था का रहस्य है।

जीवन की एकरूपता में आयु की अनुकूलता और विविधता के सौन्दर्य का संनिवेश करने के लिए ही भारतीय धर्म शास्त्रों में मनुष्य के जीवन को चार भागों में विभाजित किया है। ये चार भाग जीवन के आश्रम कहलाते हैं। इन आश्रमों को ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यास कहते हैं। आश्रम की व्युत्पत्ति धर्म से होती है। धर्म जीवन का उद्योग है वही जीवन का धर्म और कर्तव्य भी बन जाता है। जीवन के विविध आश्रमों के धर्म और कर्तव्य जीवन को सुदूर और सफल बनाते हैं। मानव की पूर्ण आयु को

सो वप मानकर प्रत्येक आश्रम के लिए पद्योत वप का समय निर्धारित किया गया है। ब्रह्मचर्याश्रम जीवन का प्रथम आश्रम है। यह जीवन क निर्माण और विद्याध्ययन का समय है। यह स्वास्थ्य और चरित्र क बनान का समय है। इनकी समृद्धि से ही जीवन सफल होता है। गृहस्थ आश्रम म जीवन क सुखो के उपभोग तथा धार्मिक व सामाजिक कर्तव्या क पालन के लिए अवसर मिलता है। वानप्रस्थाश्रम का उद्देश्य नागरिक जीवन का त्याग कर वनवास करना तथा साधना और विद्यादान म जीवन बिताना है। सन्यास जीवन के समस्त बंधनो से मुक्त होकर विश्व का भ्रमण तथा मृत्यु क भय से रहित जीवन का स्वच्छन्द विहार है।

जावन के विभाजन मे जीवन के कई महत्वपूर्ण सिद्धांत निहित हैं। इनम सबसे पहला सिद्धांत जीवन की 'अनेकरूपता है। अनेकरूपता म हा जीवन का सौंदर्य और आनंद है। आश्रम-व्यवस्था म कई प्रकार स जीवन म अनेकरूपता का समावेश किया गया है। प्रत्येक आश्रम म जीवनयापन का क्षेत्र और स्थान भिन्न होता है। ब्रह्मचर्य आश्रम म अपना गृहत्याग कर गुरु के आश्रम म विद्याध्ययन करना होता है। गृहस्थाश्रम म नागरिक जीवन क सवसुख और उसकी सुविधायें प्राप्त होती है। वानप्रस्थ-आश्रम का वनवास नागरिक जीवन से ऊंचे हुए मन को एक नया वातावरण और जीवन को नई दिशा देता है। सन्यास का स्वच्छन्द विहार अपनी स्वतंत्रता और नवीनता म अलौकिक है। जीवन के स्थान और क्षेत्र के अतिरिक्त इन चारो आश्रमो मे रहन महन भोजन, वस्त्र जीविका कर्त्तव्य आदि की दृष्टि स भी भिन्नता होती है, जो प्रत्येक आश्रम म जीवन को एक नवीनता का सौंदर्य प्रदान करती है।

आश्रम व्यवस्था मे अतिनिहित जीवन का दूसरा सिद्धांत जीवन की पूर्णता है। विभिन्न आश्रमो म विभिन्न कर्तव्यो के पालन से मनुष्य जीवन पूर्ण होता है। आश्रम की इस चतुरंग व्यवस्था म जीवन क सभी प्रमुख और महत्वपूर्ण लक्ष्यो का समावेश है। स्वास्थ्य चरित्र विद्या और शक्ति की साधना ब्रह्मचर्य-आश्रम म जीवन की सुदृढ भूमिका बनाती है। गृहस्थ आश्रम म जीवन के लौकिक सुख तथा सामाजिक और धार्मिक कर्तव्य पूर्ण होत है। वानप्रस्थ और सन्यास म जीवन के वे आध्यात्मिक लक्ष्य पूरे होते है जिनकी कल्पना भी अन्य समाजो म नहीं की जा सकी। सन्यास की स्वतंत्रता जावन की पूर्णता की ही प्रतीक है। जीवन के सभी मुख्य लक्ष्यो के समावेश

के कारण आश्रम-व्यवस्था परिपूरण जीवन का एक उत्तम आदश है। अनेक-रूपता के सौंदर्य और जीवन क प्रमुख लक्ष्य के गौरव से युक्त आश्रम-व्यवस्था कोई अव्यावहारिक आदश नहीं है। यद्यपि उत्तरकाल म भारतीय समाज में इसका व्यापक व्यवहार नहीं रहा है फिर भी प्राचीन काल मे सभी आश्रमों का पर्याप्त व्यवहार होता था। राजाओं के भी वानप्रस्थ गृहण करने क उदाहरण मिलते हैं। ब्रह्मचारियों तथा वानप्रस्थों के कितने ही आश्रम प्राचीन कालों म थे। धम और दान की परम्परा म तथा उसम पथक-मत सयसी स्वच्छन्द आध्यात्मिक जीवन म लीन रहे। उत्तरकाल म और वर्तमान काल म भी अत्रिक सख्या मे ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और सन्यासी मिलते हैं। तात्पर्य यह है कि आश्रमों का आदश व्यवहार के योग्य हैं और आज तक भारतीय जीवन मे उसका व्यवहार हो रहा है।

आश्रम-व्यवस्था की इस व्यावहारिकता का मूल स्रोत भारतीय परम्परा की प्रबल प्रेरणा है, जो भारतीय सामाजिक जीवन को उत्तम लक्ष्य की ओर संचालित करती रही है। किन्तु इसके साथ-साथ इसका एक प्रमुख कारण आश्रम-व्यवस्था में अन्तर्निहित सिद्धान्तों की प्राकृतिक और सांस्कृतिक सत्यता है। आश्रम-व्यवस्था का आधार केवल अध्यात्म नहीं है। इसमें अध्यात्म के आदश प्रकृति की दृढ़ भूमि पर प्रतिष्ठित हुये हैं। समय, स्वास्थ्य और बल क प्राकृतिक सत्तों को इस व्यवस्था म आधार माना गया है। ब्रह्मचर्य-आश्रम का उद्देश्य जीवन से बराम्प नहीं बरन् स्वास्थ्य चरित्र और विद्या की साधना के द्वारा जीवन को ही पूरत सफल और आनन्दमय बनाना है। जीवन के इस आरम्भिक निर्माण में कालक्रम के प्राकृतिक सत्य को अत्यत महत्व दिया गया है। मानवीय जीवन काल का हा एक क्रम है। समय का यह क्रम एक नसर्गिक गति है। हम इसम किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकते हैं। प्राकृतिक दृष्टि से समय के सभी क्षण समान हैं। किन्तु उनके पूवापर क्रम की दृष्टि म पूर्वतर क्षण का उत्तर क्षणों की अपेक्षा इमलिए अधिक महत्व है कि प्रत्येक पूर्वतर क्षण उत्तर क्षण की भूमिका बनता है और उसको अधिक मूल्यवान बनाने की सम्भावना रखता है। ब्रह्मचर्याश्रम म ही नहीं, गृहस्थ और वानप्रस्थ मे भी पूर्वकाल के महत्व का ध्यान रखा गया है। आयु क विकास की दृष्टि से प्रत्येक आश्रम म अनुकूल धर्मों का विधान किया गया गया है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक पूर्व आश्रम के धम अथ आश्रमों को उत्तरोत्तर अधिक सफन बनाते हैं। ब्रह्मचर्याश्रम की तप और साधनामयी भूमिका तो सभी आश्रमों की सफलता की नींव है।

अनेकरूपता नवीनता, परिवर्तन, कालक्रम की उपयुक्तता आदि अनेक दृष्टियों से आश्रमा की व्यवस्था मनुष्य के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन की अत्यन्त सन्तुष्टि और सामञ्जस्यपूर्ण योजना है। तप और त्याग की प्रधानता हाते हुए भी प्राकृतिक जीवन के सातोप के लिए इसमें समुचित स्थान है। एक प्रकार से ब्रह्मचर्य का यह तप और त्याग ही प्राकृतिक जीवन को भी अधिन सुन्दर एवं सफल और अधिक आनन्दमय बनाता है। प्राकृतिक जीवन में ता मनुष्य की स्वाभाविक रूचि होती है। सामाजिक जीवन बौद्धिक विकास, नैतिक शिक्षा और आध्यात्मिक साधना को महत्व देना और इन सबके लिए समुचित आयोजन करना आश्रम व्यवस्था की एक महत्त्वपूर्ण उपयोगिता है। ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ और संन्यास के त्यागमय जीवन में समाज के नागरिक और प्राकृतिक जीवन के अनेक सघन कम हो सकते हैं जाके विषमताय दूर हो सकती है और इसके फलस्वरूप उसमें अधिक सन्तुलन रह सकता है।

मनुष्य के जीवन की पूर्णता और कृतायता की दृष्टि से आश्रमा के क्रम का विकास सगीत की रागिनी के समान विविधता पूर्ण तथा व्यवस्थित है। गृहस्थाश्रम में ब्रह्मचर्य की साधना के बाद लौकिक जीवन के सफल होने पर वानप्रस्थ और संन्यास का उत्तरोत्तर वर्तता हुआ अध्यात्म प्राकृतिक दृष्टि से ह्रासमुखी जीवन की एक आनन्दमय परिणति की ओर ल जाता है। संन्यास की पूर्ण आध्यात्मिक स्वतंत्रता में मानो मनुष्य का मृत्यु जीवन जम रता का अधिकारी बन जाता है। संन्यास की कृतायता और उसके अभय में मनुष्य मृत्यु जय बनकर विश्व में विहार करता है। काल के क्रम से जीवन का मृत्यु में विलय होना उसी प्रकार मनीहारी बन जाता है जिस प्रकार एक मधुर रागिनी अपने अवसान में जन्तरिक्ष में विलीन हो जाती है। ऐसे सुन्दर जीवन की कल्पना धर्मशास्त्रों की एक महत्त्वपूर्ण धन है। इस व्यवस्था का वास्तव रूप तो युग के अनुसार बनाया जा सकता है किन्तु इसका आंतरिक अभिप्राय सुन्दर और सफल जीवन का शाश्वत सत्य है।

२—ब्रह्मचर्य-आश्रम के धम—

ब्रह्मचर्य आश्रम जीवन का प्रथम पद है। इस हम जीवन के प्रासाद का नीच कह सकते हैं। समस्त जीवन इसी पर निर्भर है। यह जीवन का

विकास बाल है । इसम ही मनुष्य के शारीरिक अवयव और मानसिक शक्तियों का पूरा विकास होता है । इस विकास की गतिविधि पर ही हमारे जीवन का स्वरूप और उसकी साधना निर्भर है । सचेतन और सयत्न निर्माण को भूमिका पर आश्रित ही जीवन का प्रासाद स्थायी और उपयोगी हो सकता है । ब्रह्मचर्य की साधना द्वारा उपार्जित स्वास्थ्य शक्ति और सदाचार पर प्रतिष्ठित यौवन ही सफल और साधक होता है । इसीलिए ब्रह्मचर्य को गृहस्थ का द्वार ही नहीं बरन् उसकी कृतायता की भूमिका माना गया है । बगैर काठ म मनुष्य के जीवन म शक्ति के निर्वाध स्रोत पट पडन हैं । इस समय मनुष्य की उमडती हुई शक्ति के विशृङ्खल होने की यहूत सम्भावना रहती है । इसलिए यौवन की सफरता के लिए इस शक्ति के स्रोत का सयम आवश्यक है । साधारणत ब्रह्मचर्य का अथ काम का निरोध ही समभा जाता है । वस्तुत ब्रह्मचारी का गुरुसेवा पूवक विद्योपाजन शील सदाचार आदि क द्वारा चरित्र का निमाण, वद तथा शास्त्रो का अनुशीलन आदि ब्रह्मचर्य-आश्रम क मुख्य कर्त्तव्य है ।

प्राचीन बाल म ब्रह्मचारी की वपभूषा साधारणतना से भिन्न हाती था । उम वपभूषा स के सवको ब्रह्मचारी प्रतीत होते थे और सब गृहस्थ उनका आदर करत थे तथा भिक्षा देत थे । ब्रह्मचारी मूँज की मखला धारण करता था, जटा धारण करता था यनोपवीत धारण करता था, प्रतिदिन स्नान करता था, वद के स्वाध्याय म लीन रहता था तथा लोभहीन हाकर नियम का पालन करता था । पलास का दण्ड धारण करता था तथा गरए रग के वस्त्र या मृगचम पहनता था । दोना समय अग्नि म यन करता था जिसस उमका मन प्रसन्न और शांत रहता था । दिन म गाध म जाकर भिक्षा माँगता था और जो कुछ मिलता था वह गुरु के समक्ष मव रख दना था । उममे से जो कुछ गुरुजी उसे खान का दत थे उसे हा वह ग्रहण करता था । ब्रह्मचारी की प्राचीन वपभूषा का वरण करते हुए ब्रह्माजी ने महर्षिया स इस प्रकार कहा कि "ब्रह्मचारी मूँज की मखला पहन जटा धारण करे, प्रति दिन स्नान करे, यनोपवीत पहने, वेद के स्वाध्याय म लगा रह तथा लोभहीन होकर नियमपूवक व्रत का पालन करे ।" ब्रह्मचारी

१-मेखली च भवेमौत्री जटी निग्योदकस्तथा ।

यनोपवीती स्वाध्यायी अनुवधो नियतव्रत ॥

आश्वमधिक पव-अध्याय ४६ श्लोक ६

के धम बताते हुए महेश्वर ने उमा से कहा कि " ब्रह्मचारी के लिए भक्षाचर्या परम धम है। नित्य यज्ञोपवीत धारण किय रहना, धम का रहस्य सुनना वदोक्त व्रत का पालन करना, होम और गुरुसेवा करना—यह ब्रह्मचर्य आधम का धम है।^२ ब्रह्मचारी के लिए भिक्षा मागना तथा गुरु सेवा करना सब धर्मों में प्रधान धम है। गुरु की भक्ति करना तथा सेवा करना ब्रह्मचारी का प्रमुख धम है। गुरु की भक्ति का प्रसाद भी ब्रह्मचारियों को विद्या के रूप में मिलता था। गुरु अपन शिष्या को पुत्रों के समान प्रेम करत थे तथा उनको ज्ञान सिखाने में बड़ा परिश्रम करते थे। गुरु के प्रेम से ब्रह्मचारी इतने वर्षों तक बठोर परिश्रम करके अपना जीवन सफल और उत्ततिपूर्ण बनात थे। गुरु की सेवा से विद्यार्थी विनय सीखत थे। विनय से नम्रता आतो थी और नम्रता से उनकी बुद्धि का विकास होता था। बुद्धि के विकास से शास्त्रों का ज्ञान सहज ही प्राप्त हो जाता था। शास्त्रों के ज्ञान से ब्रह्मचारी अपन जीवन में अनेक नये शास्त्रों और सिद्धांतों का खोज करता था और विद्वानों की श्रेणी में गिना जाता था।

विद्योपाजन ब्रह्मचर्य का मुख्य लक्ष्य है। विद्या मनुष्य की चेतना का विकास है। विद्या की धारा स्वास्थ्य और चरित्र के दाकिनारा के बीच बहती है। विद्या मनुष्य की मानसिक उन्नति है। पशुओं की तुलना में विद्या ही मानव की विशेषता है। मनुष्य का आरम्भिक जीवन विद्योपाजन का ही समय है क्योंकि यही उसके मानसिक विकास का भी समय है। जैसे चलकर भी मनुष्य ज्ञान का संचय कर सकता है किन्तु बुद्धि का विकास और सामान्य मानसिक संस्कारों का निर्माण ब्रह्मचर्यावस्था में ही हो सकता है। इसलिए ब्रह्मचर्याधम में विद्या को महत्व देना एक प्राचीन परम्परा होने के साथ-साथ सनातन सत्य भी है।

२—भक्षाचर्या परोपमो नियमतोपवीतिता ।

रहस्यधरण धर्मो वेदव्रतनियेवणम् ।

अग्निदाय तथा धर्मो गुरुदायप्रसापनम् ॥

प्राचीन शिक्षा के अनुसार ब्रह्मचारी की शिक्षा क चार चरण बताये गये हैं—^३

पहला चरण— ब्रह्मचारी शिष्य को चाहिए कि वह नित्य गुरु का प्रणाम कर बाहर भीतर से पवित्र हो प्रमाद छोड़कर स्वाध्याय में मन लगाये, अभिमान न करे मन में क्रोध को स्थान न दे। जो शिष्य की वृत्ति के क्रम से ही जीवन निर्वाह करता हुआ पवित्र हो विद्या प्राप्त करता है उसका यह नियम भी ब्रह्मचर्यव्रत का पहला ही पाद कहलाता है।

दूसरा चरण— ब्रह्मचारी अपने प्राण और धन लगाकर भी मन, वाणी तथा कर्म से आचार्य का प्रिय करे, गुरु के प्रति शिष्य का जमा श्रद्धा और सम्मानपूर्ण व्यवहार कर वसा ही गुरु की पत्नी और गुरु के पुत्र के साथ भी व्यवहार करे। यह ब्रह्मचर्य का द्वितीय पाद कहलाता है।

तृतीय पाद— आचार्य ने जो अपना उपकार किया उस ध्यान में रखकर तथा उससे जो प्रयोजन सिद्ध हुआ, उसका भी ध्यान या विचार करके मन ही मन प्रसन्न होकर शिष्य आचार्य के प्रति जो ऐसा भाव रखता है कि इन्होंने मुझे बड़ी उन्नत अवस्था में पहुँचा दिया है—यह ब्रह्मचर्य का तीसरा पाद है।

चौथा पाद— आचार्य के उपकार का बदला चुकाये बिना अर्थात् गुरु दक्षिणा आदि के द्वारा उन्हें सन्तुष्ट किये बिना विद्वान् शिष्य वहाँ से अलग न जाये। दक्षिणा देते समय कभी मन में ऐसा विचार न लाये कि मैं गुरु का उपकार कर रहा हूँ तथा मुँह से भी कभी ऐसी बात न निकाले। यह ब्रह्मचर्य का चौथा चरण है।

प्राचीन धर्म शास्त्रों में ब्रह्मचर्य के पालन से ईश्वर की प्राप्ति का भी चरण मिलता है। धृतराष्ट्र के पूछने पर सनत्सुजात जो न बताया कि “जो साग आचार्य के आश्रम में प्रवेश कर अपनी सेवा से उनके अतरंग भक्त हो

ब्रह्मचर्य का पाता करता है, ये यहीं शास्त्रकार हो जाते हैं और इन रथान का पश्चान् परम योग रूप परमारमा को प्राप्त होता है।" ब्रह्मचर्य का पानन म मनुष्य की आयु बढ़ती है गुण का तत्र बढ़ता है, शरीर म शारीरक शक्ति बढ़ती है बुद्धि बढ़ता है तभी महान् योग गुण्य और ईश्वर का प्रेम का प्राप्त करता है। भगवान का प्रेम का प्राप्त करने रथग को प्राप्ति करता है।

३—गृहस्थ धर्म—

गृहस्थ-आश्रम जीना का दूसरा पद है। ब्रह्मचर्य का भूमिका पर प्रतिश्रित गृहस्थ-आश्रम ही मानवीय जीवन की श्रुतायता का प्रमुख पाठ है। ब्रह्मचर्य-आश्रम म उपार्जित शक्ति का उपयोग और शान का व्यवहार का यहा अवसर है। विधिपूर्वक विवाह करके काम का मर्यादा उपयोग का द्वारा परिवार और समाज की प्रतिष्ठा गृहस्थ का मुख्य धर्म है। दण्ड अनिरिक्त विद्या का प्रचार तथा कृषि, व्यवसाय आदि का द्वारा आर्थिक व्यवस्था का संरक्षण ही गृहस्थ का कर्म है। भारतीय शास्त्रा म गृहस्थ आश्रम का अत्यन्त श्रेष्ठ तथा अत्यन्त सभी आश्रमों का उपजीव्य माना गया है। दान आन्ध्र्य शिक्षा आदि के द्वारा वह अत्यन्त आश्रमों का पापण करता है। ताना आश्रमों को धारण करने का कारण गृहस्थाश्रम ज्येष्ठ जयवा मरम बना है।

गृहस्थाश्रम का धर्म मुख्यतः सामाजिक और सांस्कृतिक हैं। सामाजिक धर्म मनुष्य का का धर्म है जो दूसरों का प्रति उसके कर्त्तव्य रूप म बनाय गया है। जिनके प्रति गृहस्थ के कुछ कर्त्तव्य हैं, उनमें सत्कार के सभा जीव सम्मिलित हैं। निकट के जनो के प्रति उसका कर्त्तव्य अधिक हो सकता है किन्तु गृहस्थ के उत्तर सत्कार का द्वार सबके लिए खुला रहता है। एत और गृहस्थाश्रम एक सीमित रूप म प्रवृत्ति का उन्मोह और परिताप है। किन्तु

४—आचार्य योनिमिह ये प्रविश्य

भूत्वा गर्भे ब्रह्मचर्य चरति ।

इहेव ते गालकारा भवति

प्रहाय देह परम याति योगम ॥

उद्योगपर्व—अध्याय ४४ श्लो० ६

दूसरी ओर वह त्याग और उदारता के द्वारा दूसरों का सत्कार और पालन भी है। गृहस्थ के इन कर्तव्यों को भारतीय परम्परा में एक सुंदर सांस्कृतिक रूप दिया गया है। इस परम्परा में ये धर्म जीवन के सुंदर पव बन गये हैं। जन्म से मृत्यु तक मनुष्य के अनेक धार्मिक सास्कार इन पवों के अवसर हैं। पुनर्जन्म उपनयन, विवाह, मृत्यु आदि के रूप में जीवन के ये पव सौंदर्य और आनंद का सञ्चार करते हैं। इनका सौंदर्य जन्म और विवाह के प्राकृतिक धर्मों को सी गुना सुंदर बना देता है।

गृहस्थ में सबसे अधिक सम्बन्ध स्त्री का होता है। इसलिए पुरुष का स्त्री के प्रति सत्ता उत्तम भाव रखने चाहिए। स्त्री को आदर देकर ही गृहस्थ पुरुष गति और प्रेम पा सकता है। पति पत्नी का स्नेह और आदरपूर्ण सम्बन्ध कल्याण का मार्ग है। अतः स्त्रियाँ की प्रसन्नता और उनका आदर विशेष रूप से पुरुष का उत्तरदायित्व है। यद्यपि गृहस्थ जीवन की सफलता स्त्री के सद्भाव सदाचार श्रम आदि पर भी निर्भर है। मनु ने कहा है कि 'जिस कुल में पति पत्नी एक दूसरे से सतुष्ट रहने हैं, उस कुल का सत्त्व कल्याण होता है, यह निश्चित है।'^५

अतः कल्याण चाहने वाले पुरुष के द्वारा स्त्रियाँ सदा पूज्य हैं। उत्सव आदि के अवसर पर उनका विशेष सत्कार करना चाहिये।

गृहस्थ मनुष्य के लिए शास्त्रों में पाँच प्रकार के यज्ञ बताये हैं, जो पञ्चमहायज्ञ के नाम से प्रसिद्ध हैं। मनुस्मृति में पञ्चयज्ञ इस प्रकार बताये हैं कि

५—सतुष्टो भायया भर्ता भर्त्रा भार्या तयव च ।

यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र व ध्रुवम ॥

मनुस्मृति—अध्या० ३, श्लो० ६०

६—मनुस्मृति—अध्याय ३, श्लो० ७०

अध्यापन प्रज्ञापन है तपण तितृपण है, होम न्ययत है जीवा का दानि दना भूतपण है और अतिमि गरबार करणा मनुष्यपण है । य पाया महापण अलौकिक भौर लौकिक दोना प्रकार की सताभा के प्रति हमारे कर्तव्य क घोतक है ।

पहला महायज्ञ देवयज्ञ—

इसका सम्बन्ध देवताओं तथा ईश्वर से है । यज्ञि धम म देवता उम दिव्य शक्ति क प्रतीक है, जो विश्व का सत्ताता करता है । हमारा जीवा देवताओं की कृपा पर निर्भर है । आ देवताओं की पूजा उपासना आनि करना प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है ।

दूसरा महायज्ञ, ऋषियज्ञ—

यह ऋषिया क प्रति हमारे कर्तव्य का सूचक है । यज्ञि परम्परा म ऋषि मनुष्य जाति के प्राचीनतम पूर्वज तथा धम और सस्कृति क विधायक हैं । उन्होंने ही अपनी दिव्य दृष्टि से तथा अपनी त्यागमयी साधना क द्वारा धार्मिक और सास्कृतिक जीवन की सुन्दर परम्परा का निर्माण हमारे लिए किया है । इसलिये के हमारे कर्तव्य है । देवताओं की सत्ता समानान है इसलिये हम सदा उनकी उपासना कर सकते हैं । किन्तु अनीन क ऋषिया का तो कवल हम स्मरण है । स्मरण भी कृतज्ञता का सूचक है । किन्तु स्मरण हा पर्याप्त नहीं । ऋषिया के द्वारा दिये गये पान धम सस्कृति आनि की परम्परा का पोषित करना उनके प्रति हमारे कर्तव्य का अधिक सक्रिय माग है । विद्या धम और सस्कृति के प्रचार म योग दत्त ऋषि यज्ञ का ध्यावहारिक रूप है । धम और सस्कृति की परम्परा इसी क द्वारा सुरक्षित रह सकती है ।

तीसरा महायज्ञ, पितृयज्ञ—

यह प्रत्येक व्यक्ति और कुटुम्ब के द्वारा अपने विदित पूर्वजों का तपण अथवा पूजन है । हम अपने ज म और सस्कर के लिए पितरा के ऋणी है । उन्होंने हमारे माता पिता आनि का पालन किया है, स्मरण और तपण के द्वारा उनका सत्कार करना हमारा (गृहस्था का) कर्तव्य है । श्राद्ध पितरा के प्रति श्रद्धा का ही सूचक है । पितरों का स्मरण और सत्कार स्मृति के सूत्र को एक दृढ अरसम्ब देता है । इस प्रकार पितृयज्ञ एक और पितरों की तृप्ति का साधन है तथा दूसरी ओर सतति क सास्कृतिक कभव का माग है ।

चीया महायज्ञ, नृयज्ञ—

नृयन मानव के प्रति गृहस्थ के सामान्य कर्तव्य का सूचक है। मनुष्यता के नाते मनुष्य के प्रति भी हमारा कुछ कर्तव्य है। धर्मशास्त्रो मे मनुष्य को सबसे श्रेष्ठ माना है। धर्मशास्त्र का आदेश है कि मनुष्य का निरादर नहीं करना चाहिए। मनुष्य का सत्कार करना गृहस्थ का परम कर्तव्य है। अग्नि पुत्र सुदधान न गृहस्थ को अतिथि सत्कार करना चाहिए, इस विषय मे अपनी स्त्री स इस प्रकार कहा कि “जिस गृहस्थ के घर पर आया हुआ अतिथि पूजित होकर जाता है, उसके लिए उममे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है—ऐसा मनीषी पुरुष कहते हैं। * गृहस्थ जीवन के पव और सत्कारा मे भी उत्तमोन मनर की भांति नृयज्ञ का भी बहुत कुछ समागत है। अनेक आचारो क रूप मे सम्बन्धीजना का तथा सेवको आदि का सत्कार विधा जाता है। नृयन आधम व्यवस्था की व्यापक मानवीय भावना का सूचक है।

पाचवाँ महायज्ञ, भूतयज्ञ—

मनुष्य को भी भूत कहते हैं, किंतु नृयन में विशेष रूप से मनुष्य का ग्रहण होने के कारण भूत का अभिप्राय पशु पक्षी से है। इसमे पशु, पक्षी कीट आदि जीव सम्मिलित हैं। इनका पालन पोषण गृहस्थ का कर्तव्य तथा धर्म है। गो-पालन, जीवा को भोजन देना, उन पर दया करना वृक्षो को जल देना ये सब भूतयज्ञ के अंग हैं। भूतयज्ञ आधम-व्यवस्था की महती कर्षणा का सूचक है।

गृहस्थाश्रम मे पुत्र का बडा महत्त्वपूर्ण स्थान है। बिना पुत्र के गृहस्थ जीवन सूना है। पुत्र बिना गृहस्थ की मुक्ति भा नहीं जाती है। पुत्र की महिमा बताने हुए जरत्कार से उसके पितरा ने इस प्रकार कहा कि ‘तात । पुत्र वाले मनुष्य इस लोक मे जिस उत्तम गति को प्राप्त होने हैं उम अत्य लोभ धमानुबूल फल दन वाले भलीभाति सचिन किई हुए तप से भी नहीं

७—अनिधि पूजितो यस्य गृहस्थस्य तु गच्छति ।

नायस्तस्मात् परो धम इति प्राहुर्मनीषिण ॥

अनुशासन पव — अध्याय २, श्लोक ७०

पाल । ८ पुत्र अपने माता पिता का विधि पूवक श्राद्ध, तपण आदि कम करके उनकी आत्मा को गार्ति ही नहीं देता वरन् उनको पितर योनि से मुक्ति भा करता है । इस प्रकार पुत्र अपन पूवजा को स्वर्ग तक पहुँचा वाली सीढी है । गृहस्थाश्रम म रहा वाला गृहस्थ यदि व्रतपरायण, धर्मात्मी, गुरुसेवा तथा अतिथि का निराश न लौटान वाला पुत्रवान हो तो उसको उत्तम लोक तथा उत्तम गति प्राप्त होती है ।

४-वानप्रस्थ-धर्म—

वानप्रस्थ-आश्रम का उद्देश्य गृहस्थ जीवन के कतघ्यो को पूरा करके जीवन को एक नया रूप और नयी प्रेरणा देना है । लौकिक और प्राकृतिक जीवन की अपनी सीमायें हैं । अतः यह स्पष्ट है कि इतनी उम्र म जीवन का नवीन विकास का निया आध्यात्मिक ही हो सकती है । वानप्रस्थ जीवन की इसी नई निया का निमाण है । आश्रम व्यवस्था म जहाँ एक आर मनुष्य की सभी आकांक्षाओं को उचित स्थान निया गया है, वहाँ दूररी ओर जीवन के नय-नय रूपों की सम्भावना का पूरा महत्व प्राप्त किया गया है । चार आश्रमों म उचित समय पर समाप्त जीवन का रूप पूरा-पूर्ण बनाया रहता है और इस परिवर्तन म जीवन का मोक्षी चरित्र नय रूपों म मिलता है । मन्त्रियता का साथ साथ जीवन का इस व्यवस्था म मोक्षी का पूरा मन्त्रिधान है । आयु का अनुमान ब्रह्मण्य और गृहस्थाश्रमों म मनुष्य की वरत कुछ आकांक्षायें पूरा हो जाती हैं । गृहस्थाश्रम की वृत्तव्यवस्था का समाप्त जीवन का नय रूपों की मोत्र वानप्रस्थाश्रम म प्रकट हुई है ।

है । साथ ही समाज के लिए इन व्यक्तियों के ज्ञान और गुणा से लाभ उठाने का भी अवसर है । साहित्य और सभ्कृति की परम्परा के पोषण का वानप्रस्थ एक महान् माग है । वानप्रस्थ मे विद्यार्थियों की शिक्षा, साहित्य का निर्माण और सभ्कृति का पोषण होता था । वानप्रस्थ मनुष्य को परिवार की सकुचित सीमाओं और स्वार्थों से ऊपर उठकर एक विस्तृत सामाजिक क्षेत्र म साधना और सेवा द्वारा जीवन की पूगता का लाभ उठाने का अवसर है । वानप्रस्थ का मूल भाव गृहस्थ जीवन क उपयोग और परिवृत्ति के बाद त्यागपूर्वक प्रेम और सेवा को अधिक ध्यापक और लोकोपयागी बनाना है । व्यावहारिक दृष्टि से वृद्धों का लोकाधिकार प्रायः युवकों की स्वतन्त्रता अधिकार भावना और उनके आनन्द मे बाधक होता है । इसलिए वानप्रस्थ अथवा वनप्रवास वृद्ध राजाओं और नागरिकों का राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र को स्वस्थ और आनन्दमय रखने म सहायक होता था । इस सातुलित जीवन विधि म मानवीय जीवन और सभ्कृति की पूगता थी ।

वानप्रस्थ का जीवन ब्रह्मचर्य के समान ही सरल सात्विक और माधव नामय होता था । एक प्रकार से ये दोनों आश्रम एक दूसरे के पूरक हैं । वानप्रस्थ गुरुओं के आश्रम म हा ब्रह्मचारी विद्या-अध्ययन करते थे । विद्या का प्रसार अथवा दान वानप्रस्थ का मुख्य कर्तव्य था । वानप्रस्थ के योग से ही प्राचीनकाल म भारतवर्ष म विद्या की इतनी समृद्धि हुई थी । इसकी ससाय के किसी भी प्राचीन दग म तुलना नहा मिलती । विद्या दान और आध्यात्मिक साधना ही वानप्रस्थ के मुख्य धम थे । वानप्रस्थ को घर छोड़कर वन म आश्रम बनाकर रहना पडता था । यदि उसकी स्त्री चाहे तो वह उसे भी साथ रख सकती था यदि स्त्री न चाहे तो वह उसको अपने पुत्रों को साप कर अकेला ही वन म रह । वानप्रस्थ के धम बताते हुए महेश्वर ने उमा मे कहा कि वानप्रस्थ को सदा वन म ही रहना, वन मे ही विचरना वन म ही ठहरना, वन के ही माग पर चलना और गुरु की भाति वन की ही शरण लेकर वन मे ही जीवन निर्वाह करना चाहिए । प्रतिदिन अग्निहोत्र और पंचमहायज्ञ का सवन वानप्रस्था का धम है । १ वानप्रस्थी को वन म

६—वननित्य वनचरर्धनस्पर्धनगोचर ।

वन गुरुमिवासाद्य वस्तव्य वनजीविभि ॥

तेषा होमक्रियाधम पचपज्ञनिषेवणम् ।

भाग ध्व पचयज्ञस्य वेदोत्तस्यानुपालनम् ॥

अनुशासनपर्व अध्याय १४२, श्लोक १३ १४

उत्पन्न वस्तु को ही खाना चाहिए । बिना जोती भूमि में उगे अन्न का सेवन करना चाहिए । वन का ही अपना गुरु मानकर उसी में विचरते रहना चाहिए और शांत चित्त से अपने नित्य कर्मों को करना चाहिए । गृहस्थ व भानि वानप्रस्थी को भी पचमहायज्ञ करना चाहिए । अतिथि आ जाय त उसको बठने को आसन दे, जल दे तथा जो कुछ वय पत्थाय पास हो, उसी का आदर पूर्वक भोजन के लिए दे । दाडी मूर्च्छ शिर के बाल, नख आदि धार करे इन्द्रिया को वग म रखे, सत्य धम का पालन करे, वेत्ता का स्वाध्याय करे तथा समय पर अग्निहोत्र करे, वानप्रस्थी सदा व्रत और उपवास म तत्पर रह दूसरो पर क्षमा का भाव रखे, पृथिवी पर सोये धम का चिन्तन करते रहे । वानप्रस्थी के धम बताते हुए महेश्वर ने उमा से कहा कि सत्ता वीरास से बठ वेदी या चबतरे पर सोये, सर्दी क मौसम म रात को जल म बठे खड़ा रहे बरसात मे खुले मदान म सोये भीष्म म पचाग्नि का सेवन करे । * शीतमृतु म रात्रि म जल म बठना एक कठोर तप है वया म खु मदान म सोना वर्षाजल से भीगना है तथा गर्मी म चारो ओर अग्नि जलाक तथा ऊपर से सूर्य की गर्मी म बठे या खटे रहना वानप्रस्थ की घोर तपस्या का द्योतक है । वानप्रस्थ मुनि का जीवन इतना कठोर व्रतो से पूरा होता कि अय सब धम उसी मे पूरा हो जाते हैं ।

वानप्रस्थी का जीवन कठोर तपस्याओ से पूरा होता है । इसलिये उसका शरीर तपस्या के कारण मांस हड्डी तथा रक्त से हीन हो जाता है जिसका शरीर कृश और दुबल हो गया है वह वानप्रस्थी मुनि इस लोक का जीतकर परलोक पर भी विजय प्राप्त करता है । जिस वानप्रस्थी मुनि का म मदा शांत और एकाग्र रहता है वह सदा धम के ही आचरण मे लगा रहता है तथा सब इन्द्रिया को वग म रखता है वही मुनि मोक्ष का अधिकारी होता है । अपनी तपस्या से तथा धमपूरा आचरण से वनवासी मुनि अपनी मोक्ष करत ही हैं साथ म अपने पूर्वजो का भी उद्धार करते है । इस विषय

१० - वीरासनरतनित्य स्पण्डिले गयन तथा ।

शीतनोपान्नियोगश्च चतव्यो धमबुद्धिभि ॥

अनुशासनवर्ध अध्याय १४२ श्लोक १०

अष्टक को बताने हुए ययाति ने कहा कि "जो वनवासी मुनि वन म ही अपन पञ्चभूतात्मक शरीर का त्याग करता है, वह दस पीढी पूष के ओर दस पीढी घाद के जाति भाइया को तथा इक्कीसवें अपने को भी पुण्य लोका मे पहुँचा देता है।" वानप्रस्थ जीवन मुक्ति का शेष बाधाभा को तथा जीवन के शेष कृत्या को समाप्त करके सन्यास की स्वतन्त्रता का माग प्रार्थन करता है। वानप्रस्थ का जीवन गृहस्थ और सन्यास का दिग्ग सेतु है।

५-सन्यास-धम-

वानप्रस्थ क बाद चौथा अन्तिम आश्रम सन्यास है। सन्यास का अर्थ सामान्य रूप न त्याग है। वानप्रस्थाश्रम तक जीवन के सम्पूर्ण कृत्य पूरे हो जात हैं और सन्यासी कम से पूणतया मुक्त हो जाता है। आश्रम धम शास्त्रो द्वारा विहित जीवन के विभाजन पव हैं। अत प्रत्येक आश्रम के लिए शास्त्रो म कृतव्या का भी विधान किया गया है। सन्यास जीवन का मुक्ति पव है। सामाजिक और नागरिक कर्त्तव्य गृहस्थाश्रम म पूरे हो जाते हैं किन्तु कुछ विद्या और अध्ययन सम्बन्धी कर्त्तव्य वानप्रस्थ म शेष रह जाते हैं इही कृत्या के पालन क लिए वानप्रस्थो एक स्थान पर कुटी बनाकर रहता है। सन्यास म कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रहता इसी कारण सन्यासी का एक स्थान पर निवास करना आवश्यक नहीं है। धमशास्त्रो म सन्यासी को एक स्थान पर रहना निषिद्ध है। तीन दिन से अधिक वह एक स्थान पर नहीं रह सकता। वह निरन्तर घूमता रहता है। इसी कारण सन्यासी का परिव्राजक कहत हैं। सन्यासी को अनिर्वृत कहत हैं। क्यकि उमका कर्त्तव्य निवास स्थान नहीं होता। ससार म घूमता हुआ सन्यासी कही भी स्पर्श होन पर वृष के नाच, नर्त्ती के किनारे तथा पर्वत का गुफा म सा जाता है।

११-दशैव पूर्वान् दश धापरारच

जातीनयात्मानमयकविशम् ।

अरण्यवासी सुवृत्ते दधाति

विमुच्यारण्ये स्वशरीरपातून् ॥

आदिपर्वा-अध्याय ८१, श्लोक ७

तीनो आश्रमो म कतयानुकूल कुद्य चिह होत है, जिनम शिखा और मूत्र मुरय हैं । धामक कृत्या म इनका उपयोग हाता है । सयासी का कोई कतव्य नहीं होता इसलिए वह इन सभी चिहा को त्याग देता है । सयासी मुडित रहता है और यनोपवीत भी त्याग देता है । यनोपवीत तीन ऋणो का सूचक होता है, जिनस मुक्त होने पर ही सन्यास सम्भव होता है । व तीन ऋण देव ऋण, पितृ ऋण तथा ऋषि ऋण हात है । यनोपवीत जब तक मनुष्य धारण किय रहता है तब तक ही उसे इन ऋणो को चुकाना पडता है । यनोपवीत क त्याग क बाद सयासी इन सभी ऋणो से मुक्त हो जाता है । सयासी क पाम केवल एक दण्ड और एक कमण्डल रहता है । कमण्डल केवल जल का पात्र है, जो उष्ण दग म जावन निवाह क लिए आवश्यक है । दण्ड को प्राय सयासी का चिह माना जाता है इमीलिए कुछ सयासी दण्डी सयासी कहलाने है ।

सन्यासी का जीवन पूण स्वच्छद होता है । उसे जगल म ही अदिक रहना चाहिए, गाँव म केवल भिक्षा के लिए एक बार जाना चाहिए । स्वच्छद द हाते हुए भी सयासी क लिए कुछ नियम हैं, जिनका पालन करना उसके लिए आवश्यक है । सयासी के लिए नियम बताते हुए यमानि न अष्टक स कहा कि 'सयासी गित्पक्वता स जीवन निर्वाह न करे । गन, दम आदि श्रेष्ठ गुणा म मग्न हा । सदा अपनी इन्द्रिया को बग म रखे । गृहस्थ क घर न सोय । परिग्रह का भार न ल स्वतन्त्र रहे । १२ सयासा किसी स द्वेष न करे उन ग्गक न बन मग्रहरति रह । कुए म तुरत निवाला हुआ जल हा सयासी क लिए श्रेष्ठ है । किमा बीती हुई घटना का स्मरण न करे और न भविष्य की चिन्ता कर । कवन काल की प्रनीमा करता हुआ वित्तवृत्तिया का समाधान करता र । गत्र मे वाणी म और मन म कहा भी शोषदृष्टि न कर । किता की बुराई न करे । सयासी मग त्याग वृत्ति स तथा मन्त्राप स रट । सनोप

१२- अग्निपत्रोवी गुणवारधव निरम

जिनेन्द्रिय सर्गनो विप्रमुक्त ।

अनोङ्गापी सपुरस्परधार-

रघरन् देगानेरघर स निशु ॥

भाशिपव-अप्याय ६१, श्लोक ५

हो सन्यासी के मुख का मूल है । सन्यासी के आठ व्रत बताते हुए ब्रह्माजी न महर्षिया स कहा कि “अहिंसा, ब्रह्मचय सत्य, सरलता, क्रोध का अभाव दोष हृष्टि का त्याग, इन्द्रिय समय और चुगली न खाना—दन आठ व्रता का सदा भावधानी स पालन करे ।”^{१३} ब्राह्मणा के सम्मान का सदा ध्यान रहे । निष्ठात्मक शब्द सुनकर भी उत्तर न ल, सदा मौन ह । मौन रहना सन्यासी के लिए ससार से पार होने का माग है । पापो से मुक्त होकर सबदा शत्रुहीन हो जाय । किसी स भय न रहे । सन्यासी न जीवन का अभिनदन करे और न मृत्यु का भय करे ।

सन्यासी को भाजन की ओर से भी त्यागमयी भावना रखनी चाहिए । दोपहर के समय गाव या नगर म जाकर भिक्षा ग्रहण करे । जो कुछ मिल जाय उसी से जीवन निर्वाह करे । स्वाद की वस्तुआ की इच्छा न करे । कोई सम्मानपूर्वक भोजन कराये तो बहा भोजन न करे । मान प्रतिष्ठा से उभे घणा करनी चाहिए । भोजन मिलने पर हृष न हाना चाहिए और न मिलन पर दुःख न होना चाहिए । मनमाना भोजन कभी न करना चाहिए । किसी म परिचय न बढ़ाना चाहिए । किसी पर दया करव उस दान न दना चाहिए । सब वधना से मुक्त रहना चाहिए । ग्रीष्मकाल म गाव म एक रात स अधिक न ठहरना चाहिए । वर्षाकाल म किसी एक स्थान पर ही चार मास तक ठहरना चाहिए । उसे अपना धम का प्रदान न करना चाहिए । चार प्रकार के सन्यासिया मे परमहंस सबसे श्रेष्ठ होते हैं । इसलिए अपन त्याग स परम हम सन्यासी की भाति धम अधम पवित्र-अपवित्र से परे आत्मनिष्ठ रहना चाहिए । आत्मस्वरूप स सबको समान मानन वाना होना चाहिए । चारा वर्षों स भिक्षा लनी चाहिए । आत्म विभूति और ब्रह्मसाधना म सन्यासी का स्वतंत्र और गतिगीन जीवन व्यतीत हाता है । परिव्रजन सन्यासी का बाह्य

१३—अहिंसा ब्रह्मचर्यं च सत्यमाजबमेव च ॥

अक्रोधरचानसूपाच शमो नित्यमपगुनम् ।

अष्टस्वैतेषु युक्त स्याद् धृतेषु निपतेन्द्रिय ॥

आश्रमधिका पर्य-अध्याय ४६, श्लोक २६ ३०

लक्षण है। कृतकृत्य और मुक्त होकर सयासी अभय और अमृत हो जाता है। कृतकृत्यता और स्वतंत्रता के द्वारा मृत्यु जय अपस्था को प्राप्त हाकर सयासी मोक्ष को प्राप्त करता है। जो सयासी धन, मनन और निन्ध्या सन के द्वारा समय यतीत करता है। और आहार की भी चिंता छोड़ देता है। केवल वायु भक्षण से या जल से जीवन यापन करता है वह ब्रह्म की साधना म लीन हा जाता है। वही सयासी देह क यघन से मुक्त हाकर ब्रह्म म विलीन हो जाता है और सबदा क लिए अजर-अमर हो जाता है।

इस प्रकार ब्रह्मचय के अनुशासन से आरम्भ होकर मुक्ति और आनन्द म जीवन का पयवसान होता है। गृहस्थ के कतय और वानप्रस्थ क धम इस विकास क्रम की आवश्यक कडियाँ हैं। निर्माण और सचय उपभोग और उपयोग त्याग और सेवा तथा मुक्ति और आनन्द से युक्त यह चतुर्विध जीवन ब्यवस्था एक अत्यन्त सन्तुलित और सस्कृत दृष्टिकोण का प्रमाण है। जीवन की यह भारतीय व्यवस्था ही समाज क कल्याण का उत्तम माग है।

महाभारत में ब्रह्मचर्य-आश्रम

१—ब्रह्मचारी की परिभाषा—

ब्रह्मचय आश्रम चारा आश्रम म प्रथम आश्रम है । जीवन की नीव ब्रह्मचय से ही भजवूत बनती है । इसी नीव पर जीवन का भवन आधारित है । उपनयन से लेकर समावर्तन तक इसकी अवधि है । सामान्यत ब्रह्मचय आश्रम में रहने का समय १० वष से लेकर २५ वष तक का माना जाता था । यह जीवन का निर्माण काल है । स्वास्थ्य और चरित्र का गठन तथा विद्या का उपाजन इसके मुख्य धम हैं । इन्ही पर जीवन की सफलता और उमका आनंद निर्भर है । प्राचीन परम्परा मे ब्रह्मचारी गुरुकुल मे रहकर गुरुसेवा पूवक विद्याध्ययन और सदाचार का पालन करत थे । ब्रह्मचय की यह प्राचीन विधि युग की परिस्थिति के अनुरूप थी । उस प्राचीन विधि म ब्रह्मचय के अभीष्ट धर्मों का पालन सुविधा से हो सकता था । आज युग के अनुरूप दूसरी विधि बनाई जा सकती है । किन्तु ब्रह्मचय के मूलतत्त्व जीवन के मनातन सत्य हैं और सबकाल मे अनुशीलन के योग्य हैं ।

स्वास्थ्य, सुख और जीवन की सफलता की दृष्टि से समय और ब्रह्मचय आवश्यक है । ब्रह्मचय का सम्बन्ध शरीर के उन रसा से है, जो देह के विकास और उसके गठन म काम आते हैं । वे रस जीवन के तेज, कान्ति और बल हैं । उन्हीं से समयी पुरुष का मुख कान्ति से दीप्त होता है । कर्तोर काल मे जब शरीर का विकास और गठन होता है, तब तक ब्रह्मचय का पालन स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त हिनकारी है और स्वास्थ्य के द्वारा सभी क्षेत्रा म सहायक है । चरित्र का लक्षण भी समय है । चरित्र मनुष्य का ननिक् बल है जो जीवन की सफलता म योग देता है । ब्रह्मचय से मानसिक शक्ति भी बढती है उसी से विद्या सफल और उत्तरोत्तर बढती है । बतमान सम्यता

विलासपूर्ण होते व कारण समाज व मननाम का कारण था रहा है। उगत
वाहरी आदम्बर तथा ज्ञान गौरव म विना ही भ्रमणा हो, विदु उगता
आंतरिक रूप स्वस्य और आनन्दन नहीं है।

जो मनुष्य धर्म विषय आदि म बेपरवरा रहता है वहा ब्रह्मचारा माना
जाता है। ब्रह्मचारी की परिभाषा यथा ह्य एव ब्रह्मण न आनी पत्नी म
इत प्रचार वहा कि इन्द्रिय समय म प्रयुक्त रहा यथा युक्त म ग्या है ब्रह्म
चारी है। जो धर्म और कर्मों का त्याग करन कवन ब्रह्म म ग्या है वहा
ब्रह्मस्वरूप होकर सत्ता म विचरना रहता है वहा मुख्य ब्रह्मचारी है।^१
जो मनुष्य कवनन स हा ब्रह्मचय पानन करता रहता है और विद्याध्ययन
द्वारा उत अधिक ज्ञान प्राप्त हा जाता है। तो फिर उग ज्ञान म इतना आनन्द
आन लगता है कि वह गृहस्थाश्रम म प्रवर्ण निय विना आजम ब्रह्मचर्या
का संकल्प कर लता है और इग पन्थो पर ब्रह्मस्वरूप हाकर विचरना फिरा
है। उस विनी स राग द्वेष, मोह आदि नहीं होता यहा तन कि उग आन
गरीर स भी मोह नहा रहता। ब्रह्म म तीन ब्रह्मचारी व विषय म यथा।
ह्य ब्राह्मण न अपनी पत्नी स इस प्रकार वहा कि ब्रह्म ही उगकी गविधा
है ब्रह्म ही अग्नि है ब्रह्म स ही वह उपद्रव हुआ है ब्रह्म ही उगता तन और
ब्रह्म ही गुरु है। उताकी चित्तवृत्तियाँ सदा ब्रह्म म ही लान रहनी हैं। विगना
न इसी को सूक्ष्म ब्रह्मचय बतलाया है।* जिग ब्रह्मचारा की चित्तवृत्तियाँ

१—ब्रह्मचारी सवयय य इन्द्रियजये रत ।
अपेतव्रतकर्मा तु केवल ब्रह्मणि स्थित ।
ब्रह्मभूतस्वरत्नोके ब्रह्मचारी भवत्ययम् ॥
आरवमेधिक पर्व-अध्याय २६, श्लोक १५ १६

२—ब्रह्म व समिधस्तस्य ब्रह्माग्नित्र ह्यसम्भव ।
आपो ब्रह्म गुध्न ह्य स ब्रह्मणि समाहित ॥
एतदेवेदं सूक्ष्म ब्रह्मचय विदुषु धा ।
आरवमेधिकपर्व-अध्याय २६, श्लोक १७ १८

पुरुषरूप से ब्रह्म म लीन हो जाती हैं वह सब कर्मों को त्याग देता है । इस लिए समिधा लाना यन करना जल लाना गुप्त की सेवा करना आदि कार्यों को न करके केवल ब्रह्म को ही जानता है । उसके सम्पूर्ण काय ब्रह्ममय ही हो जाते हैं । विद्वान् लोग इसी को सच्चा ब्रह्मचारी तथा सूक्ष्म ब्रह्मचारी मानते हैं । एस ब्रह्म म लीन ब्रह्मचारी ससार मे विरल ही हाने हं । ब्रह्म का चान बडा म्भम है । ससार म जम लेकर मनुष्य ससार के भोगा और सुखा म फस जाता है । यह भी सासारिक प्राणी के लिए उचित है । अययन काल म ही ब्रह्मचर्य का पालन उचित है, जिससे मानसिक और शारीरिक शक्ति का विकास स्वस्थ हो सके और मनुष्य जीवन सुखी बन सक ।

२—ब्रह्मचारी के लक्षण—

प्राचीनकाल म ब्रह्मचारी की वपभूषा साधारण जनो से भिन्न होती थी । उस वपभूषा स व सबको ब्रह्मचारी प्रतीत होते थे और सब गहृत्य उनका आदर करन थे तथा भिक्षा दते थे । ब्रह्मचारी के लक्षण बतात हुए ब्रह्माजी ने महर्षिगण से इस प्रकार कहा कि “ब्रह्मचारी मूँज की मधला पहन जटाधारण करे, प्रति दिन स्नान करे, यज्ञोपवीत पहने, वेद के स्वाध्याय म लगा रहू तथा लाभहीन होकर नियमपूर्वक व्रत का पालन करे ।”^३ प्राचीन काल मे ब्रह्मचारी जटा रखते थे यज्ञोपवीत पहनते थे प्रतिदिन स्नान करते थ स्नान स चित्त प्रसन्न एव स्वस्थ हो जाता है । स्नान भी प्रात काल ही कर लत थ । जाजकल के विद्यार्थिया की भाति नस बजे नही नहात थे और न सर्दी के कारण गम पानी से स्नान करन थे । पूरे वर्ष सदव शीतल जल से स्नान करते थे । नित्य नियम से स्नान करने के कारण उनका स्वास्थ्य ठीक रहता था और जुकाम आदि बीमारिया उठे नही सताती थी । उनकी स्मरण शक्ति बडी तीव्र होती थी, जिसस वे अनेक शास्त्रा को महज ही स्मरण कर लिया करते थे । ब्रह्मचागी क लक्षण बताते हुए ब्रह्माजी न महर्षियो स इस

३—मेखला घ भवे मीज्जी जटी नित्योदकस्तया ।

यज्ञोपवीतो स्वाध्यायी अलु धो नियतव्रत ॥

आश्वमेधिकपत्र-अध्याय ४६ श्लोक ६

प्रकार कहा कि 'पवित्र और एकाग्रचित्त होकर दोनों समय अग्नि म हवन कर। सदा बेल या पलास का दण्ड हाथ मे रहे।' * रेशमी अथवा सूती वस्त्र या मृगचर्म धारण करे अथवा ब्राह्मण के लिए सारा वस्त्र गेरुए रंग का होना चाहिए। * जो ब्रह्मचारी सदा नियम परायण होकर श्रद्धा के साथ शुद्ध जन्म से नित्य देवताओं का तपण करता है, उसकी सबत्र प्रशंसा होती है। * ब्रह्मचारी के लिए बल का दण्ड इसलिए आवश्यक है कि वह प्राचीन काल मे जगलो म रहता था। रास्ते म नदी बाँटे तथा कीडे आदि मिलने पर उसकी सहायता लाठी ही करती थी। लाठी से फूल फल भी डाली भुत्ताकर आसानी से तोडे जाते थे। इसलिए ब्रह्मचारी के लिए लाठी रखना बडा आवश्यक था। ब्रह्मचारी के लिए बल का दण्ड इसलिए आवश्यक है कि राशमी वस्त्र या गेरुए रंग के वस्त्र वन म लाठी अस्त्र का वाम करती है। शास्त्रो म तीनों िजा के लिए अलग अलग षण का विधान है जिसस सब अलग पहचाने जा सकें। ब्राह्मण ब्रह्मचारी के लिए गरुए वस्त्र का ही वणन है। गरुए रंग के वस्त्रो से मनुष्य म त्याग और सरलता स्पष्ट प्रतीत होती है। इस त्याग और सरलता से ही ब्राह्मणा का जीवन पवित्र और ऊँचा बनता था। इमी के द्वारा व अपन जावन म नय नय शास्त्रा की रचना करत थ और देश की उन्नति म सहायता पहुँचान थ। आज भी हमारा दश अथ दशा व समस्त ज्ञान म इसीलिए प्रसिद्ध है कि मर्ल का प्राचीन साहित्य इतना विद्याल और गानवद्ध व है कि

४—द्विकालमग्नि बुद्धान् पुत्रिमूर्त्वा समर्हित ।
 धारयते सदा दण्ड बन्ध पात्तागमेव वा ॥
 आश्रमेपिचर्षा—अध्याय ४६ श्लोक ४

५—सोम वार्तातिष्ठ चापि मृगात्रिनमयापि वा ।
 सत्र वापायरक्त वा वागो वापि द्वित्रस्य ॥
 आश्रमेपिचर्षा—अध्याय ४६ श्लोक ५

६—पुनाभिरथ तपश्चाद्भिः सदा वचनपथम् ।
 आश्रमं नियतं कुर्मन् ब्रह्मचारी प्रणयने ॥
 आश्रमपिचर्षा—अध्याय ४६, श्लोक ७

अब कोई भी दग इससे तुलना नही कर सकता यह सब प्राचीन ब्राह्मणों का ही प्रताप है। उन्हीं को त्याग, तपस्या का फल हम लोगों को प्रसन्नता द रहा है। प्राचीन काल म सब लोग मूत्र की मेखला पहनने थे, किन्तु ब्रह्मचारी को मूत्र की मेखला पहननी पडती थी। क्योंकि मूत्र की मेखला कोमल और सुखदायी होती है, इसलिए बठोर धन के पालन करने वाले ब्रह्मचारी की मेखला भी बठोर मूत्र की हाती थी, जो हर समय ब्रह्मचारिया के काँट के नमान चुभती होगी। विद्या का उपाजन एव कठिन तपस्या म होना था। इसलिए विद्या की उप्रति के लिए मूत्र की मेखला उस प्राचीन काल म आवश्यक थी। जटा धारण करने का प्रयोजन भी यही था कि ब्रह्मचारी अपने सौम्य से दूर रहे। प्राय युवकों को अपने रूप का अहंकार हो जाता है। जटा के धारण करने का केवल यही रहस्य था कि ब्रह्मचारी सब प्रकार के अहंकार से दूर रह कर केवल विद्या-अध्ययन म ही अपना चित्त एकाग्र करे। एकाग्र चित्त से ब्रह्मचारी को दोना समय सुबह और शाम अग्नि म हवन करने से उसका मन पवित्र एव प्रसन्न होगा जिससे वह विद्याध्ययन म परिश्रम कर सकेगा। ब्रह्मचारी को दण्ड रखना इसलिए भी आवश्यक था कि वह सुबह चार बज अँदरे म उठता था। उस समय बिजली का प्रकाश नही था इसलिए साँप आदि कीडा को लाठी खटखटाकर ही रास्त म से हटाया जा सकता था। सब प्रकार के कीडे आवाज से दूर हट जाने हैं। प्राचीन काल म वैश्य तथा क्षत्रिय ब्रह्मचारी के वस्त्र रंगमी सूती या मृगचर्म के होते थे। क्योंकि क्षत्रिय पुत्र तथा वैश्य घनवान होत थे इसलिए उनके वस्त्र रंगमी, सूती होत थे किन्तु ब्राह्मण ब्रह्मचारी के लिए गेरू रंग के वस्त्र का ही वरण है। इसका कारण उनकी गरीबी तो था ही साथ ही यह भी कारण था कि उस जीवन भर विद्या से ही अपना जीवन निर्वाह करना होता था। प्राचीन काल म ब्राह्मण का जीवन विद्या पढाने मे यन कराने म तथा बड बड ग्रंथों की रचना करने मे बीतता था। इस कारण उसके पछा का रंग गरमा होता था जिससे उस वस्त्रो का मोह न हो और वह विद्या अध्ययन म अब ब्रह्मचारिया से भी अधिक एकाग्रचित्त होकर विद्या का ज्ञान प्राप्त करे। ब्रह्मचारी मदा नियमपरायण होता है। यदि अपन नियमों के पालन के साथ साथ वह देवताओं का गुड्ड जल से तपण भी करता रहे तो उसकी बडी प्रशंसा होती है। प्राय ब्रह्मचारी अपने नित्य के कार्यों म इतना व्यस्त रहता था कि उस अब बाध करने के लिए अवकाश हा नही मिलता था। इसलिए

इतने व्यस्त समय में तो यदि वह श्रमिताओं का तपण कर गया था, तो उमरी बड़ी प्रगाढ़ होती थी।

३—ब्रह्मचारी के कर्तव्य—

चारों आश्रमवागियों में निम्न अर्ध-आश्रम आश्रम में अनुगार पथ पर पृथक् कर्तव्य होना है। ब्रह्मचर्य आश्रम में रहने वाले ब्रह्मचारी के कर्तव्य अर्ध आश्रम आश्रम आश्रम से बिल्कुल भिन्न हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम में रहने वाले ब्रह्मचारी का मुख्य उद्देश्य गुरु की सेवा करके उनका विद्या का ज्ञान प्राप्त करना होता है और मध्यम तथा नियमा का पालन करके अपनी मानसिक और शारीरिक शक्ति का मचय करता होता है। उमा के पूछने पर ब्रह्मचर्य के कर्तव्य बताते हुए महर्षि ने इस प्रकार कहा कि धर्म का रक्ष्य मुनना ब्रह्मचर्य का पालन करना हाम और गुरुसत्ता करना—यह ब्रह्मचर्य-आश्रम का धर्म है। ब्रह्मचारी के निम्न भक्तियों परम धर्म है। नित्य यथाशक्ति धारण किय रहना, प्रतिदिन वस्त्र का स्वाध्याय करना और ब्रह्मचर्याश्रम के नियमों के पालन में लग रहना ब्रह्मचारी का प्रधान धर्म है। * ब्रह्मचारी के लिए गीर्वा म से भिगा भक्ति कर लेना चाहिए और उम मारा भिगा का गुरु की समर्पित कर देना चाहिए। प्राचीन काल में गुरु जागा को आजकल की शक्ति मासिक आमदनी नहीं होती थी। गुरु ब्राह्मण दूसरों के बच्चों का योग्य बनाने में बड़ा परिश्रम करते थे। उसका बदला में उन्हें विद्या का अन्न हा प्राप्त होता था या अभावमें पूणिमा का साग प्राप्त होता था। इसी में सन्तोष करके गुरु उन ब्रह्मचारियों को अपने पुत्रों से भी अधिक प्रेम करके उन्हें योग्य बनाते थे। ब्रह्मचारी के कर्तव्य बनाने हुए भीष्मजी ने युधिष्ठिर से कहा कि ब्रह्मचारी को चाहिए कि वह अकला ही ब्रह्मचारी का चिंतन

७—रहस्यध्वरण धर्मो वेदव्रतनिषेवणम् ।

अग्निकाय तथा धर्मो गुरुकायप्रसादनम् ॥

भक्त्यर्था वरो धर्मो नित्यपञ्चोपवीतिता ।

नि य स्वाध्यायिता धर्मो ब्रह्मचर्याधमस्तथा ॥

अनुशासनपथ—अध्याय १४१, श्लोक ३५-३६

और अभीष्ट मात्रा वा जप करत हुए सारे काय सम्पन्न करे । शरीर म मल या कीचड लगे रहन पर भी ब्रह्मचारी को आचार्य की परचर्या म उद्यत रहना चाहिए । ब्रह्मचारी नित्य निरन्तर मन और इन्द्रिया को बग म रखन हुए व्रत एव दीक्षा के पालन म तत्पर रहे । वदा का स्वाध्याय करते हुए सदव क्तय कर्मों के पालन म गुरु-गह म निवाम करे । ८ ब्रह्मचारी का सब कार्यों से बचकर गुरु सेवा ही प्रधान काय होता था । अपने माता पिता का छोड़कर आय हुए ब्रह्मचारी गुरु को ही अपना माता पिता समझन थे और उनकी सेवा म हर समय लगे रहते थे । व सारे काय गुरु को प्रसन्न रखन के करत थ और प्रात काल से उठकर रात्रि तक लगातार जन नियमों के पालन म ही व्यतीत करते थ । उनका मन बडा प्रसन्न एव उदार होता था । वे गुरु को भगवान के समान ऊँचा और बडा समझते थे । तभी ता गुरु की इतनी भक्ति और पूजा करते थे । उसी भक्ति का प्रामाद भी उह गुरु देते थे कि अपन पुत्रा स भी अधिक प्रेम करत थ और जितना पान उह स्वय होता था वह सब अपने विद्यार्थियों का सिखा देत थ । व अपने गिप्या से कुछ भी छिपाकर नहीं रखत थे । उसी प्रेम से ब्रह्मचारी इनन वर्षों तक कठार परिश्रम करके अपना जीवन सफल बनात थे । आथम धम के विषय म जब अष्टक न ययाति से ब्रह्मचय आथम के विषय म ब्रह्मचारी के कत्ता थ पूछे तब ययाति ने इस प्रकार कहा कि शिष्य को उचित है कि गुरु के बुलाने पर उसके ममीप जाकर पडे । गुरु का संवा म त्रिना बहे जगा रहे, रात म गुरुजी के सो जाने के बाद सोव और सबेरे उनसे पहल ही उठ जाय । वह मृदुल (विनम्र) जितेन्द्रिय धमवान सावधान और स्वाध्यायशील हो । इस नियम

८—स्मरने को जपनेक सर्वा नेको युधिष्ठिर ।
 एकस्मि नेव चाचार्ये शुभ्र द्युमलपङ्कवान् ॥
 ब्रह्मचारी व्रती नित्य नित्य दीक्षापरो वशी ।
 परिचर्या तथा वेद कृत्य कुर्वन् वसेत् सदा ॥

मार्तिसर्ग-अध्याय ६१ श्लोक १८-१६

से रहने वाला ब्रह्मचारी सिद्धि को पाता है।”^१ ब्रह्मचारी को विनम्र होना चाहिए क्योंकि विद्या का ज्ञान नम्रता से ही प्राप्त हो सकता है। जब तक हम दूसरो के प्रति विनम्र नहीं बनगे, तब तक हम विद्या का सार भी नहीं समझ सकेंगे। विद्या भी तो दूसरो के द्वारा लिखे हुए सिद्धांत है। जब तक हम जपन जह्कार म डूब रहेंगे तब तक हमारी बुद्धि भी निमल नहीं हागी और हम विद्या के सिद्धांतो को समझन म अपने को असमथ पायेंगे। इसलिए विद्यार्थिया का सबसे पहला धम विनम्र बनना है। अह्कार से पीडित आज का विद्यार्थी इसीलिए ज्ञान को समझने म असमथ है और नित्य फेन होता है। प्राचीन काल म विद्यार्थी की विनम्रता ही उसके शास्त्र ज्ञान म सहायक होता थी। विनम्रता से उसकी बुद्धि स्वच्छ रहती थी और गुरु जो कुछ भी ज्ञान पढाते थे वह सब सहज ही याद हो जाता था। ब्रह्मचर्य के पालन से उनकी मानसिक शक्ति भी बड़ी शक्तिवान थी इसलिए उनकी स्मरण शक्ति भी बड़ी तीव्र थी। बड़े बड़े ग्रंथ उ ह स्मरण से ही याद रहते थे। उस समय कापी कागज, पुस्तकें नहीं था। सम्पूर्ण उर्दा स्मरण से ही हाती थी। ब्रह्मचारी के कर्तव्य बताते हुए व्यासजी न अपने पुत्र शुक्रदेव से कहा कि “गुरु के घर म एक शिष्य या दास के करने योग्य जो कुछ भी काय हो उस वह स्वयं पूरा करे। गुरुजी जो भी आज्ञा दें उसके लिए सदैव उद्यत रहें। एक आनाकारी सेवक की भांति गुरु का सारा काय करने के लिए तयार रहे और सभी कर्मों क सम्पादन म कुशल हो।”^१ गुरु के रहने

६—आहूताध्यायी गुरुकमस्वचाद्य

पूर्वोत्थायी चरम चोपशायी

मृदुर्दातो धृतिमानप्रमत्त

स्वाध्यायशील सिध्यति ब्रह्मचारी ॥

आदिपर्व—अध्याय ८१, श्लोक २

१०—मच्च निप्येण कर्त्तव्य काय दासेन या पुन ॥

कृतमित्येव तत्सर्वा कृत्वा तिष्ठेत पारथत ।

किंकर सवकारो स्यात् सवकममु कोविद ॥

गातिपर्वा—अध्याय २४२ श्लोक १७ १८

याला ब्रह्मचारी अपन को कुछ न मान तभी उमका क्याण हो सकता था । गुरु को अपना स्वामी समझ कर उसके यहाँ एक सेवक की भाँति रहू तथा गुरु के घर म जो कुछ भी काय हो उसे शीघ्र ही प्रसन्नतापूर्वक कर । आना चारी सेवक की भाँति सदा गुरु से काय करने की आज्ञा प्राप्त करना रहे । ब्रह्मचारि के कृत्य बताते हुए व्यासजी न इस प्रकार कहा कि 'अपनी उन्नति चाहन वाल गिप्य को गुरु की सेवा टहल का सारा काय समाप्त करके उनके पास बठकर अध्ययन करना चाहिए । सबके प्रति उदार रहे, किसी पर कलक न लगाव । गुरु के बुनाने पर भट उनकी सेवा म उपस्थित हो जाय । काय म कुशल हो, गुणवान् बने, बाहर भीतर से पवित्र रहे । गुरु को प्रिय लगने वाली बात बोल, इन्द्रिया को बग म रखे, शांत भाव से भक्ति भरी दृष्टि से गुरु की ओर द्धे । ११ गुरु क यहा रहत समय विद्यार्थी को किसी के दोषा का न देखना चाहिए यदि किसी का दोष दिखाई भी द जाय, तब भी उसक विषय म किसी स भी कुछ न कहना चाहिए सदा उदार दृष्टि कोण अपनाना चाहिए । सत्र कार्यों म कुशलता प्राप्त करनी चाहिए और गुणो को सीखने म रचि रखनी चाहिए तथा दोषा को कभी भी ग्रहण न करना चाहिए वरन् अपन म भी कोई दोष हा तो उन्हें भी धीरे धीर छोडन का प्रयत्न करना चाहिए । गुणा को सीखन से और दोषा को छोडने से ब्रह्मचारी गुणवान् बनता है । गुरु की ओर विद्यार्थी का सदा शांत भाव से तथा भक्ति और श्रद्धा भरी दृष्टि से देखना चाहिए इस दृष्टि स गुरु को भी विद्यार्थी के प्रति प्रेम बढ़ता है, और वह विद्यार्थी को अधिक से अधिक ज्ञान सिखाने का प्रयत्न करता है । प्रेम म बढ़ कर उन्नति करने वाली ससार म कोई दूसरी वस्तु नहीं है । सबत्र सब काय प्रेम से अच्छे और दृढ होने है । ब्रह्मचारी के कृत्य बताते हुए व्यास जी ने फिर इम प्रकार कहा कि 'आचाय जब तक भोजन न कर लें तब तक स्वय भी न करे । ब जलपान न करें तो स्वय भी न कर । उनके बठने से पहले स्वय भी न बठे तथा उनके

११—वर्मातिशेपेण गुरावध्येतध्य बुभुषता ।

दक्षिणोऽनपवादी स्यादाहृतो गुरुमाभयेत् ॥

गुचिदक्षो गुरोपेतो ब्रूयादिष्टनिवाचनरा ।

चक्षुया गुरुमप्यग्रे निरीक्षेत जितेन्द्रिय ॥

दातिपव—अध्याय २४२, श्लोक १६ २०

सोन से पहले स्वयं भी न मोये । दोना हाथ फलाकर अपने दाहिने हाथ से गुरु का दाहिना चरण और बायं हाथ से उनका बायां चरण धीरे धीरे छूकर प्रणाम करे ।^{१२} ब्रह्मचारी अपने को सबक मानकर गुरु के घर में रहता था, तभी उसकी भावना ऐसी रहती थी कि वह गुरु से पढ़न न खाता था न पीता था, न सोता था और न उनकी किसी भी जाणा का उलघन करता था । अभिवादन तथा चरण छून का भी एक दूसरा ही नियम था जिसमें प्रतीत होता है कि विद्यार्थी का नियमा का कितना ध्यान रखना पड़ता था । चरण छून के लिए दाहिने हाथ से दायां पर तथा बायं हाथ से बायां पर छूना चाहिए । इस नियम के पालन करने वाला ब्रह्मचारी बड़ा नियमो का पालक बन जाता था और फिर उस पुस्तका तथा शास्त्रो का ज्ञान भी नियमा नुसार सहज ही प्राप्त हो जाता था । ब्रह्मचारी के य जो बाहरी नियम आज सबका यथ प्रतीत होत हैं उनमें बड़ा गूढ रहस्य छिपा था । जब तक ब्रह्मचारी इन बाहरी नियमो को समझन में अपनी बुद्धि नहा लगा सकता था तब तक उस शास्त्र ज्ञान भी नहीं हो सकता था । ये बाहरी नियम तो शास्त्र ज्ञान की प्राप्त करने के लिए आरम्भ की कक्षा के ज्ञान के समान धारण खड़ी थे । जिस ब्रह्मचारी की बुद्धि ताव्र और प्रखर होती थी वह उतनी ही शास्त्र गति से इन बाहरी नियमो को ग्रहण कर लेता होगा और फिर उसके शास्त्रीय ज्ञान सीखन में विलम्ब न लगता होगा । ब्रह्मचर्य आश्रम के विषय में जब भरद्वाज ऋषि ने भृगुजी से पूछा तो उन्होंने इस प्रकार कहा कि 'ब्रह्मचर्या को बाहर भीतर की बुद्धि वृत्तिक संस्कार तथा व्रतनियमो का पालन करते हुए अपने मन का वश में रखना चाहिए । दोना समय से दोपामन मूर्धोपस्थान और अग्निहात्र के द्वारा अग्निदेव की आराधना करनी चाहिए ।

१२—नाभुस्तवति चारुनीयादपीतवति नो विवेत् ।
 नातिद्वन्ति तथाऽस्तोन नानुह प्रत्यपेत च ॥
 उत्तानाभ्यां च पाणिभ्यां यादावस्य मृष्ट स्पृशेत् ।
 रणिण न्निस्तीनव सस्य स्थयेन पीडयेत् ॥

प्रकार कहा कि 'ब्रह्मन् ! इसके अतिरिक्त और भी जिन वापों के लिए आप आज्ञा देंगे, उन्हें ही पूरा करेगा। इस प्रकार निवेदन करके गुरु की आज्ञा लेकर फिर दूसरा वाप करे और उसे पूरा करके गुरु समाचार गुरुजी को बताय। शास्त्रों में ब्रह्मचारी के लिए जो कोई भी नियम बनाय है उन सबका पालन करके सदा गुरु के समीप रहे। ११ ब्रह्मचारी के लिए गुरु की आज्ञा मानना सबसे बड़ा धर्म एवं कर्तव्य है। प्रत्येक वाप करके गुरु की आज्ञा से लेनी चाहिए और एक काम पूरा होने पर उमरी सूचना गुरु को देनी चाहिए और तब दूसरा वाप करना चाहिए। इस प्रकार ब्रह्मचारी का सम्पूर्ण समय गुरु की सेवा तथा आना में पूरा हो जायगा और वह गुरु-वाक् विद्यावान् तथा चरित्रवान् बनकर आगे अपने जीवन में यश और भक्तता प्राप्त करेगा।

४-ब्रह्मचर्य के चार चरण-

जैसे तो ब्रह्मचारी के लिए पालन करने योग्य अनेक नियम शास्त्रों में बताये हैं। किन्तु धृतराष्ट्र के पूछने पर सनत्सुजात ने ब्रह्मचारी के लिए चार चरण ही मुख्य रूप से बताये हैं। उनमें से पहला चरण यह है कि 'ब्रह्मचारी शिष्य को चाहिए कि वह नित्य गुरु की प्रणाम करे बाहर भीतर से पवित्र हो प्रमाद छोड़कर स्वध्याय में मन लगाय अभिमान न करे मन में क्रोध का स्थान न दे। यह ब्रह्मचर्य का पहला चरण है। जो शिष्य की कृति के क्रम से ही जीवन निर्वाह करता हुआ पवित्र हो विद्या प्राप्त करता है उसका

१५—ब्रह्मस्तदपि कर्तास्मि यद् भवान् वक्ष्यते पुन ।

इति सवमनुज्ञाम निवेद्य च यथाविधि ॥

कुर्वात् कृत्वा च तत्सवमाह्वयेण गुरवे पुन ।

ये केचिद् विस्तरेणोक्ता नियमा ब्रह्मचारिण ॥

तान् सर्वानाचरोऽन्यभवेन्नानपमो गुरो ।

शान्तिपर्व—अध्याय २४२, श्लोक २४-२६

यह नियम भी ब्रह्मचर्य व्रत का पहला ही पाद कहलाता है । '१६' गुरु के घर म रह कर जो ब्रह्मचारी गुरु के वक्षा स सदक प्रेम करता है उनम क्रोध या अभिमान नहीं करता है, वही कुछ उन्नति कर पाता है । जो ब्रह्मचारी गुरु के घर म रह कर किसी प्रकार का प्रमाद नहीं करना तथा शिष्य क अनुरूप हो जा जीवन व्यतीत करता है, वही सच्चा ब्रह्मचारी है । जो ब्रह्मचारी स्वाध्याय म मन लगाता है पवित्र होकर विद्या अध्ययन करता है, नित्य गुरु की सेवा करता है वही ब्रह्मचारी श्रेष्ठ और महान होता है । ब्रह्मचारी का दूसरा चरण बतात हुए मनःसुजातजी न घृतराष्ट्र से इस प्रकार कहा कि 'अपन प्राण और धन लगा कर भी मन, वाणी तथा कर्म से आचार्य का प्रिय करे । गुरु के प्रति शिष्य का जसा श्रद्धा और सम्मानपूर्ण व्यवहार करे वसा ही गुरु की पत्नी और गुरु के पुत्र के साथ भी व्यवहार करे । यह ब्रह्मचर्य का द्वितीय पाद कहलाता है । '१७' यदि कभी आचार्य क साथ कोई कठिन समस्या आ जाय और आचार्य उससे दू खी हा तो अपने तन, मन धन सबम जिस प्रकार भी उनका

१६—गुरु शिष्यो नित्यमभिवाद्योत्त

स्वाध्यायमिच्छेच्छुचिरप्रमत्त ।

मान न कुर्यान्नादधीतरोप-मेप

प्रथमो ब्रह्मचर्यस्य पाद ॥

शिष्यवृत्तिर्भवेत्तु विद्यामाप्नोति य शुचि

ब्रह्मचर्यव्रतस्यास्य प्रथम पाद उच्यते ॥

उद्योगपत्र अध्याय ४४, श्लोक १० ११

१७—आचार्यस्यप्रिय कुर्यात् प्राणरपि धनरपि ।

कमणा मनसा वाचा द्वितीय पाद उच्यते ॥

समा गुरो यया वृत्तिगु न्यत्या तथाऽऽचरेत् ।

तत्पुत्रे च तथा कुवन् द्वितीय पाद उच्यते ॥

उद्योगपत्र-अध्याय ४४, श्लोक १२ १३

दुःख दूर हो सके करे। सवना आचाय का प्रिय पाप करता रहे असी वाणी से, मन से तथा कर्म से जस भी हो सक। ब्रह्मचारी जसा सम्मानपूण व्यवहार अपने गुरु के साथ करे, वसा ही सम्मानपूण व्यवहार गुरु का पत्ना तथा पुत्र के साथ करे। गुरु की पत्ना को सत्ता माना के समान समझे तथा गुरु पुत्र को भाई के समान प्रेम करे। आचाय के उत्कार का सर्व स्मरण करता रहे, उपकार को भूलकर आचाय से कभी डाह नहीं करना चाहिए। आचाय के उपदेश से जो ज्ञान प्राप्त होता है वह परम पवित्र और अमर अमर होता है। ज्ञान का उपदेश आत्मा में हमेंगा के लिए बना रहता है, चाहे वह नस्वर शरीर साथ छोड़ देता है किन्तु आत्मा का ज्ञान प्रत्यक्ष जन्म में बढ़ता ही जाता है। आत्मा अमर होने के कारण गुरु के द्वारा सिखाया हुआ ज्ञान भी अमर ही रहता है। क्योंकि ज्ञान का ग्रहण आत्मा ही करती है और आत्मा सदा अमर होती है। तृतीय चरण का वर्णन करते हुए मनस्मुनि जी ने इस प्रकार कहा कि 'आचाय ने जो अपना उपकार किया उसे ध्यान में रख कर तथा उससे जो प्रयोजन मिद्ध हुआ उसका भी विचार करने में ही मन प्रसन्न होकर विषय आचाय के प्रति जो ऐसा भाव रखता है कि इन्होंने मुझे बड़ी उन्नत अवस्था में पहुँचा दिया है—यह ब्रह्मचर्य का तीव्रता पाद है।'^{१८} ब्रह्मचारी को सदा अपने मन में गुरु के प्रति उदार और अच्छे भाव रखने चाहिए क्योंकि परम निखल जा ज्ञान आज उसे प्राप्त है और जिन ज्ञान को प्राप्त कर वह अब एक उच्चश्रेणी का मनुष्य बन गया है यह सब गुरु की कृपा का ही फल है। गुरु के इस उपकार को किसी भी धन या वस्तु से नहीं चुकाया जा सकता है। इससे बचने में तो गुरु को सदा आदर सम्मान श्रद्धा भक्ति तथा प्रेम ही दिया जा सकता है। गुरु विषय से कुछ

१८—आचार्येणात्मकृत विज्ञानम्

ज्ञात्वा चाय भावितोऽस्मीत्यनेन ।

यमते त प्रति हृष्टबुद्धि

स व ततोयो ब्रह्मचर्यस्य पाद ॥

उद्योगपत्र-अध्याय ४४, श्लोक १४

बदला नहीं चाहता, बरन् वह तो केवल यही चाहता है कि गिप्य बड़ा आदमी बनकर धर्म के अहंकार से अपने जीवन में ही गुरु को न भूल जाये। गुरु जिस परिश्रम से एक अबोध बालक को पढ़ाता है वह ऋण कभी न तो चुकाया जा सकता है और न भूला जा सकता है। अबोध बालक को उँगली पकड़ कर लिखना सिखाना तथा पढ़ना सिखाना कितना कठिन काम है इसको आजकल के पढ़े लिखे माता पिता स्वयं करके देख रहे हैं। उन गुरुओं में कितना प्रेम और उदारता थी कि दूसरा के बच्चों को पढ़ाने में अपना सम्पूर्ण जीवन बिता देते थे और स्वयं एक साधारण जीवन व्यतीत करते थे। पत्नियों के बदले में उन्हें मिलता क्या था, केवल भिक्षा का अन्न जिससे वे अपना और अपने परिवार का पालन करते थे। धर्म के ब्रह्मचर्य गुरु जिनकी कठिन तपस्या का फल देश ने आज तक प्राप्त किया है। ब्रह्मचर्य का चौथा चरण बताते हुए सनत्सुजातजी ने धृतराष्ट्र से कहा कि 'आचार्य के उपकार का बदला चुकाये बिना अर्थात् गुरु दक्षिणा आदि के द्वारा उन्हें सन्तुष्ट किये बिना विद्वान् गिप्य बड़ा से अन्यत्र न जाय। दक्षिणा दते समय कभी मन में ऐसा विचार न लाये कि मैं गुरु का उपकार कर रहा हूँ तथा मुझे से भी कभी ऐसी बात न निकाल। यह ब्रह्मचर्य का चौथा चरण है।' ब्रह्मचारी जब अपनी वह समस्त विद्या समाप्त कर लेता था, तब उसके घर वाले आकर गुरु को कुछ दक्षिणा देकर अपने पुत्र को ले जाते थे। शास्त्रों में ऐसा लिखा है कि गुरु-दक्षिणा दते समय विद्यार्थी को अपने मन में यह विचार कभी न लाना चाहिए कि हमने दक्षिणा देकर गुरु का उपकार चुका दिया, गुरु का उपकार तो किसी भी वस्तु से नहीं चुकाया जा सकता। इसलिए ब्रह्मचारी का गुरु का उपकार कभी नहीं भूलना चाहिए।

५—जीवन निर्वाह के छह कर्मों से दूर रहे—

ब्रह्मचारी को गुरु के घर रह कर सदा गुरु की सेवा करनी चाहिए

१६—नाचायस्थानपाकृत्य प्रवास

प्रातः कुर्वीत नतदहं करोमि ।

इतीवमप्येत न भाषयेत्

स व चतुर्थो ब्रह्मचर्य स्थपाद ॥

उद्योगपत्र-अध्याय ४४, श्लोक १५

और ब्रह्मचारी के लिए जो धम तथा कर्त्तव्य उचित है, उहा म अपना मन लगाये । ब्रह्मचर्य के विपरीत जो जीवन निर्वाह के छ कम हैं, उह कभी न करे । इन छ कमों के विषय म बताते हुए भीष्म जाने मुधिशिर स इग प्रकार कहा कि "निरतर गुरु की सेवा म सलग रहकर उह प्रणाम करे । जीवन निर्वाह के उद्देश्य स किय जाने वाल यजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन तथा दान और प्रतिग्रह इन छ कमों स अलग रहे और किसी भी असत् कम म वह कभी प्रवृत्त न हो । १" शास्त्रा म इन छ कमों का वर्णन का कर्त्तव्य गृहस्थ के लिए बताया है, ब्रह्मचारी क लिए इन कमों का करना वजित है । ये छ कम तो गृहस्थी क पालन के लिए आवश्यक हैं ब्रह्मचारी को इन कमों से क्या प्रयोजन है । ब्रह्मचारी को तो जब तक गुरु के घर रहे सदा गुरु की आना माननी चाहिए तन, मन से उनकी सेवा करनी चाहिए तथा भिक्षावृत्ति को ही अपना जीवन निर्वाह का साधन समझना चाहिए । नित्य गाँवो म जाकर गुरु के लिए भिक्षा लानी चाहिए और ब्रह्मचारी क लिए जा वाय उचित है उहा म सदा लगा रहना चाहिए ।

६-ब्रह्मचर्य से ईश्वर प्राप्ति तथा सद्गति—

ब्रह्मचर्य के पालन से ईश्वर प्राप्ति भी सहज ही हो जाती है, एसा प्राचीन शास्त्रा म वर्णन है । धृतराष्ट्र क पूछने पर सनत्सुजात जी ने बताया कि ' जो लोग आचार्य क आश्रम म प्रवेश कर अपनी सेवा से उनक अतरग भक्त हो ब्रह्मचर्य का पालन करते है व यही शास्त्रकार हो जाते हैं और देह त्याग के पश्चात् परम योग रूप परमात्मा को प्राप्त होत हैं । २' जो ब्रह्मचारी

२०—शुधूषा सतत कुवन् गुरो सम्प्रणमेत च ।

पटक्मसु निवृत्ताश्च न प्रवृत्ताश्च सबश ॥

शांतिपर्वा—अध्या० ६१, श्लो० २०

२१—आचार्ययोनिमिह ये प्रविश्य

भूत्वा गर्भे ब्रह्मचर्य चरन्ति ।

इहैव ते शास्त्रकारा भवन्ति

प्रहाप देह परम यान्ति योगम् ॥

उद्योगपर्व—अध्या० ४४, श्लो० ६

अपने गुरु को अपनी सेवा और भक्ति से बहुत प्रसन्न कर लेते थे, उन गिष्या को गुरु भी अपना सम्पूर्ण ज्ञान सिखा देते थे और वे शिष्य गिष्या ग्रहण के बाद बड़े-बड़े शास्त्रकार बन जाते थे । ब्रह्मचय के द्वारा ही ब्रह्मविद्या सुगमता से सीखी जा सकती है । ब्रह्मचय का महत्त्व पूछने पर भृगु जी ने भरद्वाज से इस प्रकार कहा कि "जो द्विज गुरु की आराधना करके वदाध्ययन करता है उसे स्वर्गलाक की प्राप्ति होती है और उसका मानसिक सत्त्व सिद्ध होता है ।"^{२२} गुरु की भक्ति का बड़ा महत्त्व है । गुरु की भक्ति से ब्रह्मचारी को स्वर्ग की प्राप्ति होती है और उसका सब कामनायें भी पूरे हो जाती हैं । ब्रह्मचय से स्वर्ग प्राप्ति की प्रशंसा करते हुए श्रीकृष्ण ने अपनी बहन सुभद्रा से अभिमन्यु की स्वर्ग प्राप्ति के विषय में इस प्रकार कहा कि "तपस्या ब्रह्मचय शास्त्रज्ञान और सदबुद्धि के द्वारा साधु पुरुष जिस गति को पाना चाहते हैं वही गति तुम्हारे पुत्र को प्राप्त हुई है ।"^{२३} जिस सद्गति को साधु पुरुष या तो तपस्या से प्राप्त करते हैं, या ब्रह्मचय के पालन से या शास्त्रा के ज्ञान से प्राप्त करते हैं उस सद्गति को अभिमन्यु ने अपनी वीरता से प्राप्त किया है । युधिष्ठिर के द्वारा पूछने पर श्रीकृष्ण ने ब्रह्मचय के पालन के गुण इस प्रकार बताया कि "ब्रह्मचय के पालन से मनुष्य आयु तज, बल वीर्य, बुद्धि, लक्ष्मी महान् यश, पुण्य और मेरे प्रेम को प्राप्त करता है ।"^{२४} ब्रह्मचय

२२—गुरु यस्तु समाराध्य द्विजो वेदमवाप्नुयात् ।

तस्य स्वर्गफलावाप्ति सिध्यते चास्य मानसमिति ॥

शान्तिर्पा—अध्या० १६१, श्लो० ६

२३—तपसा ब्रह्मचर्येण धृतेन प्रज्ञयापि च ।

सतो या गतिमिच्छति ता प्राप्तस्तव पुत्रक ॥

द्रोणपर्व—अध्या० ७० श्लो० १६

२४—आयुस्तेजो बल वीर्य प्रज्ञा श्रीश्च महदयश ।

पुण्य च मन्त्रियत्वं च लभते ब्रह्मचय या ॥

आश्वमेधिकापर्व—अध्या० ६२, अष्टमोऽध्यायः

के पालन से मनुष्य की आयु बढ़ती है, मुख का तेज बढ़ता है, शरीर में शारीरिक शक्ति बढ़ती है। ब्रह्मचारी मनुष्य के शरीर में इतनी ताकत होती है कि वह किसी से हार नहीं सकता। साधारण मनुष्या को तो उससे हार माननी पड़ती है, अधिक ज्ञान के कारण उसका पास धन की भी कमी नहीं रहती, शास्त्रों के रचयिता होने के कारण चारों ओर उनका यश फैलता है अनेक पुण्यों का फल प्राप्त होता है तथा अंत में भगवान के प्रेम को प्राप्त हो कर स्वर्ग का प्राप्ति करता है। ब्रह्मचर्य से मृत्यु को भी जीता जा सकता है इस विषय में धृतराष्ट्र के पूछने पर सनत्सुजात जी ने इस प्रकार कहा कि "राजन् ! जो इस ब्रह्मचर्य का आश्रय लेता है, वह ब्रह्मचारी यम नियमादि तप का आचरण करता हुआ अपने सम्पूर्ण शरीर को भी पवित्र बना लेता है तथा इससे विद्वान् पुरुष निश्चय ही अबोध बालक की भाँति राग द्वेष से धूँय हो जाता है और अन्त समय में वह मृत्यु को भी जीत लेता है।" २५ यम नियमादि तप के आचरण से ब्रह्मचारी अपने शरीर को पवित्र कर लेता है और ससार के राग द्वेष से धूँय हो जाता है और उसकी बुद्धि एक अबोध बालक की भाँति निमल हो जाती है। वह ब्रह्मचर्य के पालन से ही अंत समय में मृत्यु को भी जीत लेता है। इसका अभिप्राय यह है कि वह ब्रह्मचारी ब्रह्म कान तक तपस्या में लीन रहता है और उसकी शरीर भी अमर हो

है, उसी प्रकार उसको अपने पूज्य माना पिता तथा गुरु की आज्ञा मानना भी महान धर्म है। जो मनुष्य अपने से बड़ो का आदर करते हैं उह सबत्र मग और मान मिलता है। बड़ो तथा पूज्या की आज्ञा क पावन स मनुष्य के दाना लोक, इहलोक और परलोक सुघर जाते हैं। युधिष्ठिर ने दोना लोका मे परम धर्म प्राप्त करने के लिए पूछा तो भीष्म ने इस प्रकार कहा कि "य माता पिता और गुरुजन ही तीना लोक हैं ये ही तीनो आश्रम हैं ये ही तीनो वेद हैं तथा ये ही तीनो अग्निर्वा हैं।" २६ 'यत्त्वि तुम इन तीना की सेवा म कोई भूल नहीं करोगे, ता तीना लोका को जीत लागे। पिता की सेवा से इस लोक का माता की सेवा से परलोक को तथा नियमपूर्वक गुरु की सेवा स ब्रह्मलोक को भी लार्घ जाओगे।' २७ इन तीना गुरुजना की सेवा तथा आज्ञा का पालन सब लोका से बढकर है। यदि कोई मनुष्य और कोई धर्म-काय न कर सके, केवल माता पिता तथा गुरु की सेवा मे ही लगा रह तो उसके लिए सब धर्मों का पुण्य स्वय प्राप्त हो जाएगा। यदि वह धार्मिक काय न लगा रहे और इन तीनो की सेवा न करे तथा न आना माने तो उसके सब धार्मिक काय निष्फल हो जाते हैं। इसलिए माता पिता और गुरु की आज्ञा से बढकर अर्य कोई धर्म नहीं है। माता पिता तथा गुरु की आज्ञा उल्लघन न करना चाहिए इस विषय म भीष्मजी ने कहा कि "इन तीना की आज्ञा का कभी उल्लघन न

२६—एतएव त्रयो लोका एत एवाश्रमाश्च ।

एतएव त्रयो वेदा एत एव त्रयोऽन्नय ॥

शांतिर्षा—अध्या० १०८, श्लो० ६

२७—श्रित्वप्रमाद्यनेतेषु श्रील्लोकाश्च विजेष्यसि ।

पितृवृत्त्या त्विम लोक मातृवृत्त्या तथा परम् ॥

ब्रह्मलोक गुरोवृत्त्या नियमेन तरिष्यसि ॥

शांतिपथ—अध्या० १०८, श्लो० ८३

क पालन से मनुष्य की आयु बढ़ती है, मुख वा तेज बढ़ता है, शरीर म शारीरिक शक्ति बढ़ती है। ब्रह्मचारी मनुष्य के शरीर म इतनी तावत होती है कि वह किसी से हार नहीं सकता। साधारण मनुष्या को तो उसमे हार माननी पड़ती है, अधिक ज्ञान के कारण उसक पास धन की भी कमी नहा रहती, शास्त्रो के रचयिता होने के कारण चारो ओर उनका यग फरता है अनेक पुण्यो का फल प्राप्त होता है तथा अत मे भगवान के प्रेम को प्राप्त हा कर स्वर्ग को प्राप्ति करता है। ब्रह्मचय स मृत्यु को भी जीता जा सकता है इस विषय मे धृतराष्ट्र के पूछने पर सनत्मुजात जी न इस प्रकार कहा कि 'राजन् ! जो इस ब्रह्मचय का आश्रय लेता है, वह ब्रह्मचारी यम नियमादि तप का आचरण करता हुआ अपने सम्पूर्ण शरीर को भी पवित्र बना लेता है तथा इससे विद्वान् पुरुष निश्चय ही अबोध बालक की भाँति राग द्वेष स दूय हो जाता है और अन्त समय मे वह मृत्यु को भी जीत लेता है।'^{२५} यम नियमादि तप के आचरण स ब्रह्मचारी अपने शरीर को पवित्र कर लेता हैं और ससार के राग द्वेषो स दूय हो जाता है और उसकी बुद्धि एक अबोध बालक की भाँति निमल हो जाती है। वह ब्रह्मचय के पालन से ही अत समय मे मृत्यु को भी जीत लेता है। इसका अभिप्राय यह है कि वह ब्रह्मचारी बहुत काल तक तपस्या मे लीन रहता है और उसका शरीर भी अमर हो जाता है। ब्रह्मचय के पालन से मनुष्य बडे बडे काय कर जाता है और स्वयं तो अमर हो ही जाता है साथ म अपन दो चार शिष्य और बना जाता है जिसस इस परम्परा की पक्ति समाप्त नहीं होती है।

७--माता-पिता और गुरु की आज्ञा पालन का धर्म--

मनुष्य के लिए जिस प्रकार से अनेक धर्मों का पालन करना आवश्यक

२५--य आश्रयेत् पावयेच्चापि राजन्

सव शरार तपसा तप्यमान ।

एतेन व बाल्यमभ्येति विद्वान्

मृत्यु तथा स जयत्यन्तकाले ॥

उद्योगपथ--अध्या० ४४, श्लो० २३

है, उसी प्रकार उसको अपने पूज्य माता पिता तथा गुरु की आज्ञा मानना भी महान धम है । जो मनुष्य अपने से बडो का आदर करते है उह सबत्र यग और मान मिलता है । बडो तथा पूज्या की आना के पालन से मनुष्य के दोनो लोक, इहलोक और परलोक सुधर जाते हैं । युधिष्ठिर ने दोनो लोको म परम धम प्राप्त करने के लिए पूछा तो भीष्म ने इस प्रकार कहा कि 'य माता पिता और गुरुजन ही तीना लोक हैं, य ही तीनो आश्रम हैं ये ही तीनो वेद हैं तथा ये ही तीनो अग्नियाँ हैं ।' २१ 'यदि तुम इन तीनो की सवा म कोई भूल नहीं करोगे, ता तीना लोको को जीत लागे । पिता की सेवा से इस लोक को माता की सेवा से परलोक को तथा नियमपूर्वक गुरु की सेवा से ब्रह्मलोक को भी लाभ जाओगे ।' २२ इन तीना गुरुजना की सेवा तथा आना का पालन सब लोको से बढकर है । यदि कोई मनुष्य और कोई धम-काय न कर सके, केवल माता पिता तथा गुरु की सेवा म ही लगा रहे तो उसके लिए सब धर्मो का पुण्य स्वय प्राप्त हो जाएगा । यदि वह धार्मिक काय म लगा रह और इन तीनो की सेवा न करे तथा न आज्ञा माने तो उसके सब धार्मिक काय निष्फन हो जाते हैं । इसलिए माता पिता और गुरु की आना स बढकर अय कोई धम नहीं है । माता पिता तथा गुरु की आना उल्लघन न करना चाहिए इस विषय म भीष्मजी ने कहा कि "इन तीना की आना वा कभी उल्लघन न

२६—एतएव त्रयो लोका एत एवाधमाश्रय ।

एतएव त्रयो वेदा एत एव त्रयोऽग्नय ॥

शान्तिपर्व—अध्या० १०८, श्लो० ६

२७—त्रिष्वप्रमाद्यनेतेषु त्रींल्लोकांश्च विजेत्प्रास ।

वितवृत्त्या त्विम लोक मातवृत्त्या तथा परम् ॥

ब्रह्मलोक गुरोषु त्या नियमेन तरिष्यसि ॥

शान्तिपर्व—अध्या० १०८, श्लो० ८३

करे, इनको भोजन कराने के पहले स्वयं भोजन न करे, इन पर कोई दोषा रोपण न करे और सदा इनकी सेवा म सतमन रहे । यही सबसे उत्तम पुण्य कम है । नृपश्रेष्ठ ! (युधिष्ठिर से) इनकी सेवा से तुम कीर्ति, पवित्र यश और उत्तम लोक सत्र कुछ प्राप्त कर लागे ।^{२८} जिसने इन तीनों का आदर कर लिया , उसने सम्पूर्ण लोकों का आदर कर लिया । जिसने इन तीनों गुरुजनो का सदा अपमान ही किया है उसके लिए न तो यह लोक ही सुख दायी है और न परलोक ही अच्छा है । माता पिता तथा गुरु जिस काय को करने की आजा दें वह चाहे घम क अनुकूल हो या विरुद्ध, उसका पालन अवश्य करना चाहिए । इन तीनों की आजा पालन से तथा सेवा से मनुष्य अपना जीवन सफल बना सकता है तथा मृत्यु के बाद परलोक में भी सुख प्राप्त कर सकता है । मनुष्य के लिए तीनों गुरुजन पूज्य है, इसलिए सदा उनका ध्यान रखना चाहिए । इन तीनों में माता के समान दूसरा कोई गुरु नहीं है ।

८--माता-पिता से अधिक पूजनीय गुरु--

मनुष्य के लिए माता पिता बहुत माननीय तथा पूज्य है और इन दोनों में माता का स्थान पिता से भी अधिक माननीय है क्योकि वह मनुष्य की जन्मदात्री है, किन्तु गुरु का स्थान इन दोनों से भी बढकर ह एसा शास्त्रा में बहा गया है । गुरु की श्रेष्ठता बताते हुए भीष्मजी न युधिष्ठिर से कहा कि भारत ! पिता और माता केवल शरीर को ही जन्म देते हैं, किन्तु आचार्य का उपदेश प्राप्त करने जो द्वितीय जन्म उपलब्ध होता है वह दिव्य है, अजर अमर है ।^{२९} जो गुरु सत्यस्वरूप वेद का उपदेश देता है और असत्य की

२८--नतानतिगर्भे ज्ञातु नात्यशनीयात्त द्रूपदेत् ।

नित्य परिचरेष्वथ तद् व मुकृतमुत्तमम् ।

कीर्ति पुण्य यगो लोकान् प्राप्स्यसे राजसत्तम ॥

गान्तिपर्वा--अध्याय १०८ श्लो० १० ११

२९--गरारमेव मृतन पिता माता च भारत ।

आचार्यगिष्टा या जानि सा दिव्या साजराभरा ॥

गान्तिपर्वा--अध्याय १०८ श्लो० १६३

रोकथाम करता है, उस गुरु का ही पिता और माता समझना चाहिये । उसके उपकार को सदैव ध्यान में रखना चाहिए और गुरु से कभी भी द्रोह नहान करना चाहिए । मन, वाणी तथा क्रिया द्वारा सदा गुरु की सेवा करनी चाहिए । गुरु सेवा में पुरातन धम की प्राप्ति हो सकती है, इन विषय म भीष्म जी ने इस प्रकार कहा कि 'जा पुरातन धम का पान पाना चाहते हैं उह चाहिए कि वे गुरुआ की पूजा-अर्चा करें और प्रयत्नपूर्वक उहें आवश्यक वस्तुएँ लाकर दें ।' ३ गुरु को जिस वस्तु की आवश्यकता हो, उम वस्तु का कठिन परिश्रम से प्राप्त होती हो तो भी लाकर दे । गुरु जिस काय को करन की आना दे चाहे वह कितना ही दुष्कर क्यों न हो पूरा करके दिवाय । ब्रह्मचारी क लिए ससार म कोई वस्तु दुलभ नही होती है । अपने कठिन तप और समय के बल से वह असम्भव को भी सम्भव बना सकता है । पिता का प्रसन्न करने से माना प्रजापति प्रसन्न होते हैं तथा माता क प्रमन्न करन से मानो सम्पूर्ण पृथ्वी की पूजा हो जाती है किन्तु गुरु की पूजा इन तीना से श्रेष्ठ है बताते हुए भीष्म जी न युधिष्ठिर से कहा कि "जिस कम से गिप्य उपाध्याय (विद्यागुरु) को प्रसन्न करता है, उसी के द्वारा परब्रह्म परमात्मा की पूजा सम्पन्न हा जाती है, अत गुरु माता पिता से भी अधिक पूजनीय है ।" ३ गुरु की श्रेष्ठता बताते हुए भीष्मजी ने फिर कहा कि "गुरुआ क पूजित होन पर पितरो सहित देवता और ऋषि भी प्रसन्न होने है इसलिए

३०—तस्मात् पूजयित्वाश्च सविभज्याश्च यत्नत ।

गुरवोऽचपिनश्याश्च पुराण धममिच्छति ॥

शांतिपर्व—अध्याय १०८, श्लोक २४

३१—येन प्रीणात्युपाध्याय तेन स्याद् बह्व पूजितम् ।

मातत पिततश्चव तस्मात् पूज्यतमो गुरु ॥

शांतिपर्व—अध्याय १०८, श्लोक २६

गुरु परम पूजनीय है।^{३२} किसी भी व्यवहार के कारण गुरु अपमान के योग्य नहीं होता। इसी तरह माता पिता भी अनादर के योग्य नहीं हैं। जैसे गुरु माननीय हैं, उसी प्रकार माता पिता भी माननीय हैं। अतः सब मनुष्या को इन तीनों का आदर मान करना चाहिये।

६--ब्रह्मचर्य का प्रताप—

ब्रह्मचर्य के पालन में बड़ा अद्भुत प्रताप होता है। ब्रह्मचर्य से ऐसे धर्मों और लोकों को प्राप्त किया जा सकता है जिनको अन्य किसी कारणों से नहीं प्राप्त किया जा सकता। ब्रह्मचर्य का प्रताप बताते हुए सनत्सुजात जी ने घृतराष्ट्र से कहा कि इस ब्रह्मचर्य के पालन से ही देवताओं ने देवत्व प्राप्त किया और महान् सौभाग्यशाली मनीषी ऋषियों ने ब्रह्मलोक को प्राप्त किया।^{३३} 'इसी के प्रभाव से गन्धर्वों और अप्सराओं को स्थिर रूप प्राप्त हुआ। इस ब्रह्मचर्य के ही प्रताप से सूर्यदेव समस्त लोकों को प्रकाशित करने में समर्थ होते हैं।'^{३४} ब्रह्मचर्य मनोवाञ्छित वस्तुप्रदान करने वाला है। ऐसा समझकर ही ऋषि देवता आदि वैसे भावों को प्राप्त हुए। ब्रह्मचर्य के

३२—ऋषयश्च हि देवाश्च प्रीयते पितृभि सह ।

पूज्यमानेषु गुरुषु तस्मात् पूज्यतमो गुरु ।

गीतापत्र—अध्याय १०८ श्लो० २७

३३—एतेन ब्रह्मचर्येण देवा देवत्वमाप्नुवन् ।

ऋषयश्च महाभागा ब्रह्मलोक मनीषिण ॥

उद्योगपत्र—अध्याय ४४, श्लो० २०

३४—गन्धर्वाणामनेनैव रूपमप्सरसामभूत् ।

एतेन ब्रह्मचर्येण सूर्योऽप्यह्नाय जायते ॥

उद्योगपत्र—अध्याय ४४, श्लो० २१

पालन से गंधर्वों और अप्सराओं को षष्ठा अद्वितीय रूप, और सौंदर्य मिला है कि जो अन्य किसी को प्राप्त नहीं हुआ। ब्रह्मचर्य के पालन से ही ऋषियों को ब्रह्मलोक प्राप्त हुआ तथा देवताओं को देवत्व प्राप्त हुआ। ब्रह्मचर्य के प्रताप से ही सूर्य को इतना प्रकाश प्राप्त हुआ है कि वे सूर्य देव समस्त लोका को प्रकाशित कर रहे हैं। ब्रह्मचर्य के प्रताप की प्रशंसा करते हुए गंधर्व ने अपनी हार का कारण बताते हुए अर्जुन से कहा कि 'ब्रह्मचर्य सबसे बड़ा धर्म है और वह तुम में निश्चिन्त रूप से विद्यमान है। कुन्तीनन्दन ! इसी लिए युद्ध में तुमसे हार गया हूँ। जिस गंधर्व को युद्ध में कोई नहीं जीत सकता था उस गंधर्व को अर्जुन ने अपने ब्रह्मचर्य के द्वारा हरा दिया। हारने पर गंधर्व को आश्चर्य हुआ कि इस हार का क्या कारण है नहीं तो मुझे कोई मनुष्य हरा ही नहीं सकता। तब ब्रह्मचर्य ही सबसे बड़ा धर्म है एसा सोचकर गंधर्व को अर्जुन से अपनी हार माननी पड़ी। ब्रह्मचर्य के पालन से ही अरुणित्याण का भागी सम्पूर्ण ब्रह्मा का ज्ञाता तथा समस्त धर्मशास्त्र का पाता हो गया है। सचमुच ब्रह्मचर्य की महिमा अवरुणीय है।

महाभारत में गृहस्थ-धर्म

१—गृहस्थाश्रम सब धर्मों का मूल—

गृहस्थ आश्रम सब आश्रमों का मूल है। गुरुकुल व ब्रह्मचारी और वन म रहकर सक्लप के अनुसार व्रत नियम एवं धर्मों का पालन करने वाल वानप्रस्थी तथा सब कुछ त्याग कर सबत्र विचरण करने वाल स्यासी भी गृहस्थाश्रम से ही भिक्षा भट उपहार दान आदि पाकर अपन धम का पालन करत है। इस प्रकार हम कह सकते है कि अय तीनों आश्रमों का निर्वाह गृहस्थ से ही होता है। गृहस्थाश्रम सब आश्रमों का आश्रय है। अत वह सब म थोष्ट आश्रम है। गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता बताते हुए मनु न कहा है जिस प्रकार वायु का आश्रय लेकर सब जीव जीत हैं उसी प्रकार गृहस्थ का आश्रय लेकर सब आश्रमवासी धर्मों का निर्वाह करत है। तीनों ही आश्रम वाले गृहस्थ से पान और अन्न का दान पात हैं। गृहस्थ गुरु ही ब्रह्मचारिया और विचारियों को विद्यादान करते है। गृहस्थ ही उ ह भिक्षा दान दत हैं। तीनों आश्रमों को धारण करने व कारण गृहस्थाश्रम ज्यष्ठ अथवा सबसे बडा है। १

१—यथा वायु समाश्रित्य वत्त ते सबजंतव ।

तथा गृहस्थमाश्रित्य वर्त्त ते सब जाश्रमा ॥

यस्मात्प्रयोज्यमाश्रमिणो ज्ञानेनाने चा यहम् ।

गृहस्थेनैव धायत तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥

मनुस्मृति अध्याय-३ श्लोक ७७ ७८

ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और सन्यासी समाज के सभी उत्तरदायित्वा स मुक्त है। उन सबका निवाह गृहस्थ ही करता है। गृहस्थ तीन आश्रमों के अनिरिक्त बालक वृद्ध, स्त्री, पशु, जन्तु, रोगी आदि को गरण दता है तथा उनका पालन करता है। यदि ब्रह्मचर्य निमाण का काल है तो गृहस्थ कतव्य का समय है। गृहस्थी वाले पुरुष का अनेक कतव्य का पालन करना पडता है।

गृहस्थाश्रम को सब धर्मों का मूल बताते हुए भीष्मजी ने युधिष्ठिर से कहा— गृहस्थाश्रम सब धर्मों का मूल कहा जाता है। इसमें रह कर अत करण के रागादि दोष पव जाने पर जितेन्द्रिय पुरुष को सबत्र मिद्धि प्राप्त होती है।^२ अथ तीनों आश्रमों के पालन करने वाल ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी तथा सन्यासी लोग अपने-अपने धर्मों का पालन गृहस्थाश्रम पर निर्भर रहकर ही कर सकते हैं। यदि गृहस्थी किसी कारण से इन तीनों आश्रमवासियों का दान भिक्षा तथा पान न दे, तो वे वेचारे अपने धर्मों का पालन शांति मे न कर सकेंगे। उनका सम्पूर्ण समय भोजन की चिन्ता तथा भोजन की खोज में ही व्यतीत होगा, तब वे अपने धर्मों का पालन किस प्रकार कर सकेंगे अथात् गृहस्थाश्रम की सहायता से ही वे अपने-अपने धर्मों का पालन उचित नियमों से कर सकेंगे। इसलिए गृहस्थ पुरुष को दानी तथा धर्मात्मा होना चाहिए। गृहस्थ पुरुष को अपने अत करण को गुद्ध रखना चाहिए। राग द्वेष क्रोध आदि दोषों को गृहस्थ पुरुष जीतकर ही उदार बन सकता है। इसलिए गृहस्थ पुरुष को सद्भाव वाला सद्गुणा वाला तथा परोपकारी होना चाहिए। इही गुणा से युक्त गृहस्थ सच्चा और सफल गृहस्थ पुरुष बन सकेगा तथा अथ आश्रम वालों को सुख-सुविधा दे सकेगा। इन गुणा के न होन पर स्वयं तो दुःखी रहेगा ही तथा दूसरों को भी सुख न दे सकेगा। उसके ऊपर निर्भर रहने वाल स्त्री बालक वृद्ध पशु सभी परिवार के लोगों का जीवन दुःखमय हो जायेगा। इसलिए गृहस्थ सद्बिचारा वाला अपन सुखों को त्यागन वाला तथा परोपकारी होना चाहिए तभी सबका कल्याण सम्भव हो सकेगा।

२—गृहस्थस्तवेप धर्माणा सर्वेषा मूलमुच्यते ।

यत्र पशवकपापो हि दा त सबत्र सिध्यति ॥

शांतिपर्व-अध्याय २३४, श्लोक ६

२—गृहस्थाश्रम की महिमा—

गृहस्थ आश्रम शास्त्र और समाज की दृष्टि से अत्यंत सब आश्रमों का पालन करता है। अतः वह सर्वमं श्रेष्ठ है। गृहस्थ का जीवन प्राकृतिक सामाजिक और सांस्कृतिक सभी दृष्टियों से जीवन की पूर्णता का माग है। विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य के पालन से जीवन की सुदृढ़ भूमिका बनाकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने वाला मनुष्य जीवन को सायक बनाता है। भारतीय आचार शास्त्र ने मनुष्य की प्राकृतिक आकांक्षाओं को उचित स्थान दिया है। गृहस्थाश्रम में ऐसे अनेक कर्तव्य हैं जो प्रकृति के स्वायत्त भोग नहीं हैं बरन् परायण और सांस्कृतिक कर्म हैं।

मनु और याज्ञवल्क्य दोनों ने विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करने के बाद गृहस्थाश्रम में प्रवेश और विवाह करने का विधान किया है। मनुस्मृति में विवाह के लिए इस प्रकार कहा है कि "अखण्डित ब्रह्मचर्य के पालन के बाद गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना चाहिए।" इसी प्रकार याज्ञवल्क्य ने कहा है कि 'अखण्डित ब्रह्मचर्य के पालन के बाद सद्गुणों वाली स्त्री का वरण करना चाहिए।' महाभारत में भी ब्रह्मचर्याश्रम पूर्ण होने पर गृहस्थाश्रम के प्रवेश के विषय में शुक्रद्विज ने यासजी से पूछा तो उन्होंने इस प्रकार कहा कि धर्म पत्नी का पाणिग्रहण करके उसके साथ यत्न पूर्वक अग्नि की स्थापना करे और वायु के द्वितीय भाग अर्थात् पचास वय तक उत्तम व्रत का पालन

३—'अविच्छुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसत्'

मनुस्मृति—अध्याय ३, श्लोक २

४—'अविच्छुत ब्रह्मचर्यो सप्तम्यां म्रियमुद्गह्'

याज्ञवल्क्य स्मृति—अध्याय १, श्लोक ५२

करते हुए गृहस्थ बना रह ।' ५ अखण्डित ब्रह्मचर्य मनुष्य के शारीरिक विकास के लिए उत्तम है । शारीरिक दृढता से ही मनुष्य का गृहस्थ जीवन सफल हो सकता है । गृहस्थ जीवन म सुख और सामाजिक कल्याण दोनों के सफल निर्वाह के लिए जिस स्वास्थ्य और चरित्र की आवश्यकता है वह ब्रह्मचर्य के पालन से ही मिल सकते हैं । मनु न कहा है कि जिनका चरित्र दुबल है वे गृहस्थाश्रम का धारण नहीं कर सकते अर्थात् वे गृहस्थ के सामाजिक और धार्मिक कर्तव्यों का पालन नहीं कर सकते ।' ६ जिस प्रकार अन्न और काम की मर्यादा धम है उसी प्रकार गृहस्थ का आधार ब्रह्मचर्य है । आरम्भिक जीवन में ब्रह्मचर्य के पालन से जीवन परिपक्व होता है । ब्रह्मचर्य सच्य का बाल है । गृहस्थाश्रम विस्तार और विनय का समय है । विवाह आतिथ्य, दात, अध्यापन, महायज्ञ आदि के द्वारा गृहस्थ मनुष्य अपने प्राकृतिक धम और सामाजिक कर्तव्यों को पूरा करता है । यदि ब्रह्मचर्य जीवन स्त्री वृक्ष का मूल और मूल्य है तो गृहस्थाश्रम उसकी पल्लवित पुष्पित तथा फलित होने वाली शाखा का वसत-भव है । तप, समय आदि का अपने आप म भी महत्त्व हो किन्तु वे गृहस्थ के प्राकृतिक और सामाजिक धर्मों की मर्यादाओं म भी सफल होते हैं ।

३—गृहस्थ से धर्म प्राप्ति—

भारतीय आचार शास्त्र में गृहस्थ के अनेक कर्तव्य एवं धम बताया गया है । अपने कर्तव्यों का पूरा पूरा पालन करने वाला गृहस्थ बड़ा पुण्यवान् होता है । सदाचारी गृहस्थ केवल एक पानी बरत होता है । एक स्त्री से ही प्रेम करने

५—धमलब्धुषु तो दाररग्नीनुत्पाद्य यत्नत ।

द्वितीयमायुषो भाग गृहमेधो भवेद् व्रती ॥

शांतिपर्व-अध्याय २४२, श्लोक ३०

६— योऽप्यार्यो दुबलेन्द्रिय

मनुस्मृति

वाला गहस्य धम के काय करने का अधिकारी माना जाना है। गहस्य पुण्य सत्यता से सरलता है तथा अतिथि सत्कार आदि गुणों से परम सुख प्राप्त करता है। सदाचारी गहस्य अपने गुणों में इस 'रोम' में प्रशंसा प्राप्त करता है तथा परलोक में भी उम सुख मिलता है। ऐसा हमारे धार्मिक ग्रन्थों में बर्णन है। आश्रम धम का बर्णन करते हुए भीष्म जी ने युधिष्ठिर ने गहस्य की सद्गति के विषय में इस प्रकार कहा कि "गहस्य पुरुष इस लोक में सत्य, सरलता, अतिथि सत्कार धम, जय अपनी पत्नी के प्रति अनुराग तथा सुख ना सेवन कर। ऐसा होने पर ही उम परलोक में भी सुख प्राप्त हान हैं यद्म मग मत्त है।" गहस्य के पुण्य के विषय में जब युधिष्ठिर ने व्यास में पूछा तब व्यास जी ने मनु और सिद्ध पुरुषों के संवाद रूप इस प्रकार इतिहास के उदाहरण को इस प्रकार कहा कि "जसे गहस्यागी सत्पासी घर के प्रति अना सत्त होता है, उमा प्रकार गहस्य को भी ममता और आसक्ति छोड़कर ही घर में रहना चाहिए। जो इस प्रकार सदाचार का पालन करत हुए अपनी प्रिय पत्नी के साथ घर में निवास करता है वह धम का पूरा-पूरा फल प्राप्त कर सता है। जो गहस्य पुण्य ममता तथा अनुराग को छोड़कर अपने गहस्य धर्मा का पालन करत है व ही धम का पूरा पूरा फल प्राप्त करत है अर्थात् ममता और अनुराग के न हाने पर हा गहस्य पुरुष पचास वष की अवस्था पर ज्ञानप्रस्थ से सक्ते है और भगवान् के ध्यान के साथ साथ दान का भा बुद्ध कार्य कर सकते हैं। सद्गति का इच्छा रखने वाल गहस्य पुरुष अपने

७—सत्याजब चातिथिपूजन च

धमस्तथायश्च रति स्वदार ।

निषेधितयानि सुखानि लोके

ह्यस्मिन् परे च व मत्त ममतत् ॥

शांतिपर्व-अध्याय ६१, श्लोक १४

८—यथा प्रव्रजितो भिक्षुस्तथैव स्वे गृहे वसेत् ।

एव वृत्तं प्रियदर्शं तयसन् धममाप्नुयात् ॥

शांतिपर्व-अध्याय ३६, श्लोक ३५३

अपन पुत्रा को गृहस्थ वा भार साध कर गान प्राप्त करने हुए अपन कल्याण वा भाग बनात हैं ।

४- गृहस्थाश्रम मे पुत्र प्राप्ति महान पुण्य—

भारतीय धर्मशास्त्रा व मतानुसार गृहस्थ जीवन मे पुत्र का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है । प्राचीन इतिहास मे देखने मे पात होता है कि जिन गृहस्था व पुत्र नहीं हाता था, व बड़े चिंतित तमा दुःखी रहा करते थे । पुत्र प्राप्ति व लिए राजा दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ किया था तथा राजा श्लीष ने तथा उनकी राना इन्दुमती ने पुत्र प्राप्ति व लिए गाय की सेवा का थी । इस प्रकार पुत्र प्राप्ति के लिए मनुष्य बड़े उठे तप किया करत थे और उनके त्याग का फल उह प्राप्त भी होता था । ऐसा भी कहा जाता है कि जिसने पुत्र नष्ट होता उसकी मुक्ति नहीं होती । इसका अभिप्राय यही है कि मनुष्य को जब तक अपना उत्तराधिकारी नहीं प्राप्त होता तब तक उसे अशांति बनी रहती है । पुत्र व समान हितकारी सुखकारी तथा सेवा करने वाला मनुष्य व लिए अर्थ कोई नहीं हो सकता । अपने जीवन मे जिनकी भा सम्पत्ति वस्तुएँ तथा जायदान आदि का भी मनुष्य संग्रह करता है उसे अपन अतबाल मे किसी को सापना चाहता है । वस तो वह दूसरा को भी सोच सकता है । किन्तु मनुष्य की ममता और मोह सामारिक वस्तुओं व संग्रह मे इतनी प्रवल होती है कि वह अपने पुत्र के विवाह और किसी को नहीं सोच सकता । पुत्र उसकी आत्मा होता है, इसीलिए पुत्र को आत्मज बटने है । संसार मे मनुष्य व लिए पुत्र से बढकर अर्थ कोई वस्तु प्रिय नहीं हाती । इसीलिए भारतीय शास्त्रो मे पुत्र व बिना जीवन व्यथ बताया गया है ।

भारतीय धर्म के अनुसार मनुष्य के लिए जो आश्रम बताया है वे भी पुत्र की प्राप्ति व पश्चात ही पूरा हो सकते हैं अथवा उनका जीवन अपूरण ही रह जाता है । गृहस्थ का समय ५० वर्ष तक का इसीलिए माना गया है कि मनुष्य २५ वर्ष मे विवाह करके २५ वर्ष तक गृहस्थ मे रहे और जब उसके पुत्र का विवाह आदि सम्पूर्ण कार्य सम्पन्न हो जाय और उस पुत्र व भी पुत्र हो जाये तब मनुष्य का वानप्रस्थ आश्रम मे प्रवेश करना चाहिए । उमका यही अभिप्राय है कि पुत्र को गृहस्थ का भार सोच कर ही मनुष्य अर्थ अर्थ आश्रम मे शांति से प्रवेश कर सकता है । इसीलिए पुत्र प्राप्ति

को महान पुण्यो का फल माना जाता है। महाभारत म जब जरत्ता७ न अपन पितरो से दुःख का कारण पूछा तब उहान इस प्रकार बटा कि "तात । पुत्र वाले मनुष्य इस लोक म जिस उत्तम गति को प्राप्त होत हैं उसे अय लोग धर्मानुकूल फल देने वाले भलीभाति सचित किए हुए तप स भी नहीं पाते । १ भारतीय धम म मनुष्यो को तेमी धारणा है नि मृत्यु न वात् भी आत्मा अपने पुत्रा से श्राद्ध आदि कर्मों की आगा रखी है और जिस के पुत्र नहीं होते उनकी आत्मा इधर उधर भटकती फिरती है। पुत्र अपने माता पिता का विधिपूर्वक श्राद्ध तपण आदि कर्म करके उनकी आत्मा को शान्ति ही नहीं देता वरन् उनकी पितर योनि स मुक्ति भी कराता है। इस प्रकार पुत्र अपने पूर्वजो को स्वर्ग तक पहुँचान वाली सीटी है। बिना पुत्र के मनुष्य का जीवन अपूण है तथा उसके जीवन की मुक्ति सम्भव नहीं है। इस लिए मनुष्य के उद्धार का माग शुभ तथा श्रेष्ठ कर्म तो हैं ही इसके अति रिक्त पुत्र इन कर्मों से भी बढकर उद्धार करने वाला है। पुत्र की प्राप्ति सब तपस्याओ से सब श्रेष्ठ कर्मों से तथा सब प्रकार के पुण्यो से भी श्रेष्ठतम है।

५—अतिथि पूजन गृहस्थ का सर्वोच्च धर्म—

गृहस्थ आश्रम म रहने वाले मनुष्यो के लिए बसे अनेक कतय है जिनका उस पालन करना आवश्यक है। उन कत यो म स अतिथि सत्कार करना भी बडा महत्वपूर्ण कतय है। अग्नि पुत्र सुदशन नाम के गृहस्थ ने अतिथि सत्कार से मृत्यु पर विजय प्राप्त की थी। उसने अपनी पत्नी ओष वती से इस प्रकार कहा कि जिस गृहस्थ के घर पर आया हुआ अतिथि पूजित होकर जाता है उनके लिए उससे बढकर दूसरा कोई धम नहीं है—

६—न हि धमकलस्तात न तपोभि सुसचित
ता गति प्राप्नुवन्तीह पुत्रिणो या व्रजति व ॥

आदिपर्व—अध्याय १३, श्लोक २५

ऐसा मनीषी कहने हैं ।^{११०} अग्निपुत्र सुदगान न मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए अपनी पत्नी से इस प्रकार कहा कि जिस जिस वस्तु में अतिथि सातुष्ट हो वह वस्तु तुम्हारे द्वारा सदा ही दनी चाहिए । यदि अतिथि के मन्तोष के लिए तुम्हें अपना शरीर भी दना पड़े तो मन में कभी अथवा विचार न करना ।^{१११} "सुदरो ! अतिथि सेवा का यह व्रत भरे हृदय में मदा स्थित रहता है । गृहस्थों के लिए अतिथि सेवा से बढ़कर दूसरा कोई धम नहीं है ।"^{११२} जिस प्रकार सावित्री न धमराज से वर मागकर तथा अपने पतिव्रत धम के पुण्या से सत्यवान् को पुनर्जीवित किया था उसी प्रकार अग्निपुत्र सुदगान का उसकी पत्नी ओघवती ने अतिथि सेवा में अपना शरीर तक देकर अपने पति का मृत्यु से बचाया था । अग्निपुत्र की उन्न भी कम थी, इसलिए मृत्यु हमेंगा उसका पीछा किये रहनी थी । एक बार धम स्वय ही ब्राह्मण का रूप रखकर उस मती ओघवती के घर पर पधारे उस समय उसका पति घर से बाहर समिधा लेने गया था । इसलिए उन ब्राह्मण का अतिथि पूजन उस ओघवती को ही करना पडा । उसन उनको बठने को आसन दिया तथा चरण धोने को जल दिया और वस्तुजा के लिए उनस निवेदन किया । किन्तु उन्होंने और कोई वस्तु न मागकर केवल उसक शरीर

१०-अतिथि पूजितो यस्य गृहस्थस्य तु गच्छति ।

ना गृहस्थात् परो धम इति प्राहुर्मनीषिण ॥

अनुशासतपर्व-अध्याय २, श्लोक ७०

११-येन येन च तुष्येत नित्यमेव त्ययातिथि ।

अप्यात्मन प्रदानेन न ते कार्या विचारणा ॥ ४३

१२-एतद् व्रत मम सदा हृदि सम्परिवर्तते ।

गृहस्थानां च सुधोणि नातिथेर्विद्यते परम् ॥

अनुशासन पर्व-अध्याय २, श्लोक ४३ ४४

का ही दान मागा । अपने पति की आज्ञा का स्मरण करके उसने उन ब्राह्मण को अपना शरीर अर्पण कर दिया । उसी समय उसका पति आ गया और मृत्यु उसका पीछे पीछे लोहदण्ड लिए आ गई । मृत्यु ने सोचा कि अब यह अपनी पत्नी से नाराज होगा बस तभी मैं इसके प्राण ले जाऊँगी किंतु उसने यह जानकर कि मेरी पत्नी एक ब्राह्मण अतिथि की सेवा में लगी हुई है कुछ न कहा और हसकर ब्राह्मण देवता से इस प्रकार कहा कि 'विप्रवर ! आपकी मुरत कामनापूर्ण हो । इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता है, क्योंकि घर पर आय हुए अतिथि का पूजन करना गृहस्थ के लिए सबसे बड़ा धर्म है ।' १३ यह सुनकर मृत्यु को वापिस जाना पड़ा और ब्राह्मण वेपथारी धर्म प्रसन्न होकर बोला कि तुमने अपन धर्म से मृत्यु को वग म कर लिया है । भीष्म जी न युधिष्ठिर से अतिथि सेवा का महत्व बताते हुए इस प्रकार कहा कि सुदशान न अतिथि सत्कार क पुण्य से मृत्यु आत्मा लोक पञ्चभूत बुद्धि बाल मन, आकाश वाम और क्रोध को भी जीत लिया । १४ इस प्रकार गृहस्थ पुरुष के लिए अतिथि को छोड़कर दूसरा कोई देवता नहीं है । इसलिए प्राचीन काल में अतिथि सेवा करना गृहस्थ के लिए आवश्यक धर्म माना जाना था । हमारा प्राचीन धार्मिक ग्रंथों का आचरण करने वाले लोग आज भी अतिथि सेवा करना अपना कर्तव्य मानते हैं । अतिथि सेवा करने से मन बड़ा प्रसन्न तथा चित्त बड़ा शांत रहता है । गृहस्थ में अपने ही जना क साथ रहते रहते मानव मन कुछ उदास रहने लगता है अतिथि के आ जाने से घर में एक नया वातावरण छा जाता

१३-मुरत तेऽस्तु विप्राय प्रीतिहि परमा मम ।
गृहस्थस्य हि धर्मोऽयं सम्प्राप्तातिथि पूजनम् ॥ ६६

१४-मृत्युरात्मा च सोकाग्र जिता भूतानि पञ्च च ।
बुद्धि बालो मनो श्योम कामप्रौघो तथैव च ॥
अनुगासनपव—अध्याय २ श्लोक ६६ ८०

है और घर म चारो ओर चहल पहल सी लगन लगती है । बच्चे क्या बडे सभी लोग प्रसन्न मन दिग्वाई देने लगते है । कुछ दिन के लिए घर म स उदासी बिल्कुल दूर हो जाती है और सबका मन प्रसन्नता से भर उठता है । इसलिए भारतीय सभ्यता म अतिथि सत्कार करना गृहस्थ का धम माना गया है । वशम्पायनजी से बातें करत समय अतिथि क प्रति गृहस्थ के क्या कतय हैं बताते हुए युधिष्ठिरजी न इस प्रकार अतिथि के कतय बताय कि 'जो अपने घर पर आ जाय उस प्रेमभरी दृष्टि से दखे मन म उसके प्रति उत्तम भाव रखे उससे मीठे बचन वाले और उठकर उसके लिए आसन दे । यह गृहस्थ का सनातन धम है । अतिथि को आते दख उठकर उसकी अग वानी और यथोचित रीति से उसका आदर सत्कार कर ।' १५ अतिथि क प्रति गृहस्थ के कतय बतात हुए युधिष्ठिर न पाच प्रकार की दक्षिणाआ से युक्त अतिथि-यन रूपी अतिथि सेवा का बखान इस प्रकार किया है कि 'अतिथि को नेत्र दे (उसे प्रेमभरी दृष्टि से दखे), मन दे (मन से हित चिंतन कर) तथा मधुर वाणी प्रदान करे (सत्य, प्रिय हित की बात कह) । जब वह जान लगे, तब कुछ दूर तक उसके पीछे पीछे जाय और जब तक वह घर पर रहे, तब तक उसके पास बडे (उसकी सेवा म लगा रहे) । यह पाच प्रकार की दक्षिणाआ से युक्त अतिथि-यन है ।' १६

मनुस्मृति म मनु १ गृहस्थ के लिए अतिथि का सत्कार भी एक प्रमुख कतय बताया है 'अतिथि को आता देखकर उसे बठने को आसन दे

१५-चन्द्रदद्यामनो दद्याद् वाच दद्याद् सुभाषिताम् ।

उत्पाय चासन दद्यादेष धम सनातन ।

प्रत्युत्पयभिगमन कुर्यान्पायेन चाचनम् ॥

१६-चक्षुदद्यामनो दद्याद् वाच दद्याच्च सूनुताम् ।

अनुव्रजेदुपासीत स यज्ञ पञ्चदशिए ॥

धनपवणिए अरण्यपर्व-अध्याय २, श्लोक ५६ ६६

गृहस्थाधर्म म प्रवेश करने के पश्चात् पुरुष को स्त्री से प्रेम करने के अतिरिक्त अपना मुनि लोग जसे उचिन कार्यो भी न भूलना चाहिए । इन्द्रिया का समय भी गृहस्थ के लिए परमावश्यक है । इस विषय म व्यासजी न अपन पुत्र स गृहस्थ पुरुष के धर्म बताते हुए इस प्रकार कहा कि 'गृहस्थ पुरुष सदा अपनी ही स्त्री से प्रेम करे । इन्द्रिया का समय करके जितेन्द्रिय बन । किसी क गुणा म दोष न ढूँढे । वह ऋत्विज पुरोहित, आचार्य, मामा, अतिथि, शरणागत वृद्ध, बालक, रोगी, वध, जाति भाई, सम्बन्धी वधु-वाधव माता पिता, कुटुम्ब की स्त्री, भाई, पुत्र, पत्नी, पुत्री तथा सेवक समूह क साथ कभी विवाह न कर । जो इन सबक साथ कहल श्याग देना है, वह सब पापा स मुक्त हा जाता है ।' २, २१, २२, गृहस्थ पुरुष को शास्त्रो की आना क अनुसार अपन सब पारिवारिक लोग का तथा पूज्य आचार्यों का आदर करना चाहिए । किसी के साथ कभी भी बलह न करनी चाहिए । क्रोध का पूणरूप स जीन लेना चाहिए, तभी वह सच्चे रूप स गृहस्थ कहलायेगा और क्रोध के शांत हो जाने पर ही वह दूसरा के दोषा को न ढूँढ सकगा । गतचित्त बाला मनुष्य ही उदार बन सकता है और सबका सम्मान कर सकता है । गृहस्थ म सबसे अधिक सम्बध स्त्री का हाता है । इसलिए पुरुषा को स्त्री के प्रति सदा उदार भाव रखने चाहिए । स्त्री को छोटा नहीं समझना चाहिए । उस

२०—स्वदारनिरतो दातो ह्यनसूयुजितेन्द्रिय ।

ऋत्विक् पुरोहिताचार्ये भतुलातिथिसन्धित ॥ १४

२१—वृद्धबालातुरवैद्य ज्ञाति सम्बन्धवाधव ।

मातापितृभ्यां जामोभिर्भ्रात्रा पुत्रेण भायया ॥ १५

२२—दुहित्रा दासवर्गेण विवाद न समाचरेत् ।

एतान् विमुच्य सवादान् सबपापविमुच्यते ॥

शांतिपत्र—अध्याय २४३, श्लोक १४ १५ १६

आदर देकर ही गृहस्थ पुरुष शांति और प्रेम पा सकता है। पति पत्नी का स्नेह और आदरपूर्ण सम्बन्ध कल्याण का माग है। अतः स्त्रियाँ की प्रसन्नता और उनका आदर विनोय रूप से पुरुषों का उत्तरदायित्व है। यद्यपि गृहस्थ जीवन की सफलता स्त्री के सद्भाव सदाचार, धर्म आदि पर भी निर्भर है। मनु न कहता कि जिस कुल में पति पत्नी एक दूसरे से सन्तुष्ट रहते हैं, उस कुल का सदैव कल्याण होता है यह निश्चित है।" अतः कल्याण चाहने वाले पुरुषों के द्वारा स्त्रियाँ सदा पूज्य हैं। उत्सव आदि के अवसर पर उनका विशेष सत्कार करना चाहिए। गृहस्थ के भोजन के विषय में भी सत्कार करना अनेक श्रेष्ठ नियम हैं। गृहस्थ के भोजन के विषय में बताते हुए व्यासजी ने अपने पुत्र से इस प्रकार कहा कि वह केवल अपने ही भोजन के लिए रसोई न बनावे (अपितु देवता पितर और अतिथियों के उद्देश्य से ही भोजन बनाये) और पशुहिंसा न करे क्योंकि यह अनर्थ मूलक है। २४ व्यासजी ने गृहस्थ के भोजन के विषय में इस प्रकार कहा कि गृहस्थ सुनह और शाम दो ही समय भोजन करे बीच में न खाये। ऋतुकाल के सिवाय अन्य समय में स्त्री को अपनी शय्या पर न सुलाये। उसका घर पर आया हुआ कोई ब्राह्मण अतिथि आदर सत्कार और भोजन पाय बिना न रह जाये। २५ गृहस्थ पुरुष को दिन में दो बार से अधिक खाना

२३—सतुष्टो भार्याया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र व भ्रुवम् ॥

मनुस्मृति—अध्याय ३ ६०

२४—गृहमेधिप्रतापत्र महागतीह प्रचक्षते ।
नात्मार्यं पाचयेदन्नं न वृथा यातयेत् पशून् ॥५

२५—न भुञ्जीतातरा काले नानृतावाहृयेत् स्त्रियम् ।
नास्यानभम् गृहे धिप्रो वसेत् कश्चिदपूजित ॥
शांतिपर्या—अध्याय २४३ श्लोक ५७

इसलिए व्रजित है जिससे उसे आलस्य न आये और परिश्रम करने में उसे कोई दुःख न हो। अधिक भोजन करने से मनुष्य को आलस्य आता है और वह दिन में सोना चाहता है। दिन में सोना गृहस्थ के लिये वर्जित है। व्यासजी ने गृहस्थ के लिए अधिक सोना वर्जित बताया है। उन्होंने न गृहस्थ के लिए सान के नियम बताते हुए उस प्रकार कहा कि 'गृहस्थ पुण्य दिन में कभी न सोये। रात के पहले और पिछले भाग में भी नीद न ले।' ^{२६} कुटुम्ब के सागवानों का भोजन कराने का वाद जो भोजन शेष रहे, गृहस्थ का उसी भोजन को करना चाहिए उस विषयाशी बताया गया है। पञ्चमहायन एवं बलिबदवन्धेव से बचे हुए अन्न को अमृत कहा गया है। व्यासजी ने गृहस्थ के खाने योग्य विषय तथा अमृत अन्न बताते हुए कहा है कि "गृहस्थ को सदा विषय और अमृत अन्न का भोजन करना चाहिए। यद्यपि सच्चा हुआ भोजन हविष्य के समान और अमृत माना गया है।" ^{२७} गृहस्थ का भोजन करवाना चाहिए इस विषय में युधिष्ठिर के पूछने पर व्यास जी ने कहा कि 'गृहस्थ को चाहिए कि वह पहले देवताओं, ऋषियों, मनुष्यों (अतिथियों) पितृगणों और घर के देवताओं का पूजन करके पीछे स्वयं भोजन करे।' ^{२८} गृहस्थ मनुष्य के भोजन में देवता पितर आदि समस्त प्राणियों का हिस्सा होता है उनमें से अपने हाथ से भोजन न बनाने वाले सयासी आदि को भी भोजन देना गृहस्थ का धर्म

२६ - न दिवा प्रस्वपञ्जातु न पूर्वापररात्रिषु ॥६

२७—विषयाशी भवेन्नित्यं नित्यं चामृत भोजनम् ।
अमृतं यज्ञेयं स्याद् भोजनं हविष्या समम् ॥

शांतिपर्व—अध्याय २४३, श्लो० ६१२

२८—देवानुषीन् मनुष्याश्चपितृन् गृह्याश्च देवताः ।
पूजयित्वा ततः पश्चाद् गृहस्थो भोक्तुमहति ॥

शांतिपर्व—अध्या० ३६ श्लो० ३४१

है। गृहस्थ के लिए पुण्य प्राप्ति का माग बताते हुए युधिष्ठिर ने श्री शौनक जी से इस प्रकार कहा कि 'जो गृहस्थ अपरिचित धके माँदे पयिक को प्रसन्नता पूर्वक भोजन दता है उसे महान् पुण्य फल की प्राप्ति होती है।' २९ गृहस्थ के लिए परोपकार करना बडा उत्तम काय है। परोपकार से गृहस्थ के मन को भा गाति मिलती है तथा गात्रों क कयनानुसार उमका पर लोक भी उत्तम हो जाता है।

७—गृहस्थ के कर्त्तव्य—

गृहस्थाश्रम म प्रवेश करने के बाद मनुष्य को अनेक धर्मों और अनेक कर्त्तव्यों का पालन करना पडता है। धर्मों और वस्तुव्या का उचित प्रकार से पालन करने वाले गृहस्थ को सद्गति प्राप्ति होती है। गृहस्थाश्रम के द्वारा मनुष्य उत्तम उत्तम कर्मों को पूरा करता है और इस पृथ्वी पर अनेक जीवा को सुख पहुँचाता है। गृहस्थ के साथ अनेक माधुम यासी, ब्रह्मचारी तथा ज ग मनुष्यों का भरण पोषण हा जाता है। इसलिए गृहस्थाश्रम बहुत से दु खी जीवों का सहायता पहुँचाने वाला माग है। गृहस्थ मनुष्य के लिए गात्रों म पाँच प्रकार के यह बताये हैं जो पञ्चमहायन क नाम से प्रसिद्ध है। मनुस्मृति म पञ्चयन इस प्रकार बडे हैं कि अध्यापन ब्रह्मयन है तपण पितृ यज्ञ है होम देवयन है जीवों को बलि दना भूतयज्ञ है और अतिथि सत्कार मनुष्य यज्ञ है। ३० इसी प्रकार याज्ञवल्क्य स्मृति म गृहस्थ क लिए पाच

२६—यो दद्यादपरिक्लिष्टमन्नमप्यनि व्रते ।

धातायादृष्टपूर्वाम तस्य पुण्यफल महत् ॥

वनपत्र—अध्याय २, श्लो० ६२

३०—अध्यापन ब्रह्मयन वित यज्ञ स्तुतपणम् ।

होमो बवो बलिर्भूतो नृपज्ञोऽतिथि पूजनम् ॥

मनुस्मृति ३, ७०

मुख्य काम बताये हैं कि 'बलिक्वम तपण, होम, स्वाध्याय तथा अनिधि सत्कार य मनुष्या के लिए सबसे बड़े यम हैं ।'^{३१}

भृगु ने गृहस्थ के कर्तव्य बताते हुए भरद्वाज मुनि से कहा कि— 'गृहस्थाश्रम म रह कर यम करने से दक्षता श्राद्ध-तपण कर्म से पितर, वेद शास्त्रों के श्रमण अभ्यास और धारण स ऋषि तथा सन्तानोत्पादन से प्रजापति प्रसन्न होते हैं ।'^{३२} शास्त्रों के मतानुसार गृहस्थ पुरुष को चार ऋणा को चुकाना पड़ता है। वह चार ऋण हैं— पितृऋण देवऋण, ऋषिऋण और मनुष्य ऋण। पुत्र प्राप्ति से पितृऋण पूरा होता है यज्ञों द्वारा देवताओं को वृत्त करके गृहस्थ देवऋण स उऋण होता है स्वाध्याय और तपस्या द्वारा गृहस्थ ऋषियों को सन्तोष देना है और ऋषि ऋण पूरा करता है तथा अतिथि सत्कार द्वारा तथा दयापूर्ण व्यवहार द्वारा गृहस्थ मनुष्या को प्रसन्न करता है और अपने मनुष्य नामक ऋण को पूरा करता है। जो गृहस्थ यथा ममय इन ऋणा का पूरा नहीं कर पाता है, उनका पुण्यलोक मुक्किल से ही प्राप्त होते हैं, ऐसा शास्त्र म लिखा है। इन चार ऋणों म से तीन ऋण तो मनुष्य के हाथ म हैं और वह उन्हें अपनी इच्छानुसार पूरा भी कर सकता है किन्तु पितृ ऋण ईश्वराधीन है। यदि किसी पुरुष के पुत्र न हो तो उसे पितृऋण का भार बना रहता है और वह पुत्र प्राप्ति के चिन्तन म लगा रहता है। बिना पुत्र वाले लिए स्वर्ग का द्वार बन्द रहना है तथा पितर असंतुष्ट रहने हैं। इही चार ऋणा को मनुस्मृति म मनु ने यम कहा है। गृहस्थ के कर्तव्य बताने हुए भृगुजी ने भरद्वाज ऋषि से इस प्रकार कहा कि 'गृहस्थ आश्रम म धर्म अथ और काम तीनों की प्राप्ति होती है। इसलिए त्रिवर्ग साधन की इच्छा रखकर गृहस्थ को उत्तम काम के द्वारा धन-संग्रह करना चाहिए। अर्थात्

३१— बलिक्वमस्वधाहोमस्वाध्यायाऽर्तिपितृत्रिया ।

भूत पित्रमर-बद्ध-मनुष्याणा महामत्वा ॥

याज्ञवल्क्य स्मृति अध्याय १, १०२

३२— यज्ञक्रियाभिर्देवता प्रीयन्ते, निवापेन पितरोविद्याभ्यासध्रवणधारणेन ऋषयः । अपत्योत्पादनेन प्रजापतिरिति ॥

का प्राचीन एवं रहस्यमय स्वरूप है।^{३५} प्राचीनकाल में गृहस्य पुस्तक को धन या तो अध्यापन से प्राप्त होता था या देवताओं की प्रसन्नता से अथवा किसी पयत ने नीचे सोने, चाँदी या रत्ना की खानों के निकल आने पर धन प्राप्त होता था। इस धन को प्राचीनकाल में वायपूरा समझा जाता था और इस धन में से किया हुआ दान, यज्ञ, अतिथि सत्कार आदि ही श्रेष्ठ समझा जाता था। गात्रा के मतानुसार इस धन का दान पुण्यदायक माना जाता था तथा इसके श्रेष्ठ उपयोग से गृहस्य का परलोक भी मुझर जाता था। गृहस्य की आजीविका बताते हुए व्यासजी ने भीष्म से इस प्रकार कहा कि 'गृहस्य ब्राह्मण के विद्वाना ने चार प्रकार की आजीविका बतायी है--कोठ भर अनाज का सग्रह करके रखना यह पहली जीविनावृत्ति है। कु डभर अन्न का सग्रह करना, यह दूसरी वृत्ति है तथा इनके ही अन्न का सग्रह करना जो दूसरे दिन के लिए क्षय न रहे यह तीसरी वृत्ति है अथवा 'वापोति वृत्ति' (उच्छ्रवृत्ति) का आश्रय लेकर जीवन निवाह करे, वह चौथी वृत्ति है।'^{३६} इन चारों में पहली वृत्ति की अपेक्षा दूसरी वृत्ति श्रेष्ठ है। अन्तिम वृत्ति का आश्रय लेने वाला धर्म की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है। वापोती वृत्ति की विशेषता तथा श्रेष्ठता बताते हुए व्यासजी ने इस प्रकार कहा कि 'कु डभर अनाज का सग्रह करके अथवा उच्छ्रशिल के द्वारा अन्न का सग्रह करके 'वापोती वृत्ति' का आश्रय लेने वाला पूजनीय ब्राह्मण जिस देश में निवास करत है उस राष्ट्र की वृद्धि

३५—धर्मगत प्राप्य धन यजेत्,

दद्यात् सदवातिथीन् भोजयेच्च ।

अनाददाश्च पररदत्त

स धा गृहस्योपनिषत् पुराणो ॥

आदिपत्र—अध्याय ६१, श्लो० ३

३६—गृहस्यवृत्तायश्च व चतस्र क्विभि स्मृता ।

कुसूलधाय प्रथम कुम्भधान्यस्वनंतरम् ॥

अश्वस्तनोऽय वापोतीमाधितो वृत्तिमाहरेत् ॥

होता है ।" ३० उच्छ्रित्तं अर्थात् अनाज क एक-एक दाँत चीनी स जा अनाज इकट्ठा हो जाता है उन उच्छ्रित्त कहन है । इमना अभिप्राय यह प्रतात जाता है कि प्राचीनकाल म अनाज का एक एक दाँत बड़े परिश्रम न धारर इकट्ठा किया जाता था और उम दिन हुए अनाज क गग्रह करने धार का सबसे श्रेष्ठ माना जाता था । जो गृहस्थ अपनी आजीविका इम चीनकर गग्रह किय हुए अनाज से चलाता था, उसको लोग बड़े आदर की दृष्टि म दगा थ । इसस यही प्रतीत होता है कि प्राचीनकाल म परिश्रम करने वाल का उत्तम समभा जाता थी । इन चारों वृत्तियाँ क द्वारा जो गृहस्थ अपना जीवन बिताता था उसको परलोक म तो सुख मिलता ही था साथ-साथ ही उमकी दस पीढी भी पवित्र हो जाती थी । इस विषय म ध्याग जो न इन वृत्तियाँ का फल बताते हुए भीष्म जी से इम प्रकार कहा कि जो मन म तनिक भी बलश का अनुभव न करके गृहस्थ की इन वृत्तियाँ क सहार जीवन निभाना है, वह अपनी दस पीढी के पूवजा का तथा दस पापी तब आम हान वाली सताना को पवित्र कर देता है ।" ३१ गृहस्थ के लिए अपन ही लाग का विषय म बताते हुए दासजी ने भीष्म जी स कहा कि 'बड़ा भाई पिता क समान है । पत्नी और पुत्र अपने ही गरीर है तथा सेवकगण अपनी छाया क समान हैं । बटी तो बहुत ही दयनीय है । जत इनक द्वारा कभी अपना निरस्कार भी हो जाय तो भी सग क्रोधित रहकर सहन कर लना चाहिए । गृहस्थपुरष

३७—कुम्भघावश्च्छ्रित्तं वापोर्नी चास्थितास्तया
यस्मिश्चते वसत्यर्हास्तद् राक्ष्मभिवधते ॥

शार्निपव—अध्याय २४३, श्लो० २३, २५

३८—पूर्वान् दश दश परान् पुनाति च पितामहान् ।
गृहस्थवृत्तीश्चाप्येता वर्तयेद् यो गतयय ॥

शार्तरव—अध्याय २४३ श्लो० २५

बलश और धकावट को जीतकर धर्मका निरंतर पालन करते रहना चाहिये।" उ गृहस्थ पुत्र को अपने बड़े भाई का पिता के समान आदर सम्मान करना चाहिये तथा पिता की ही भांति उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिये। बड़े भाई से प्रेम रखने से परिवार में प्रेम बढ़ेगा और गृहस्थ को सब लोग प्रसन्न एवं सुखी रहेंगे। अधिकतर परिवारों में बड़े भाई का सम्मान न करने का कारण ही छोटेभाई आपस में भगडाकर उठते हैं और इसका परिणाम परिवार को भोगना पड़ता है। भाई भाई के झगड़े के कारण न जाने कितने परिवार नष्ट हो चुके हैं और हा रह हैं। इसी झगड़े की शांति के लिए हमारे ऋषिया न शास्त्रों में इस नियम लिखे थे जिसको मानकर लोग सुखपूर्वक अपना जीवन बिता सकें। सम्भदार लोग शास्त्रों की बातों को मानकर सुख से अपना जीवन बिताते हैं तथा देव की उन्नति में बुद्ध योग द सकत हैं। किंतु दूसरी ओर कम सम्भार लोग शास्त्रों की बातों को न मानकर बड़े भाई से झगडा करके स्वयं अपना जीवन तो दुःखी बनात ही हैं, साथ में देव की भी अवनति ही करते हैं। शास्त्रकारों ने बड़े भाई को पिता के समान मानने के लिए इसलिये लिखा है जिससे भाई भाईया में प्रेम बना रहे और अपनी तथा अपने देव की उन्नति कर सकें। पुत्र और स्त्री को गृहस्थ के लिए अपना ही शरीर समझना चाहिए। इसका भी यही अर्थ है कि पिता को पुत्र से प्रेम करना चाहिए क्योंकि वह उनके कुल का उद्धार करने वाला है। प्रेम से ही पुत्र विद्वान् और योग्य पुरुष बन सकेगा, ताड़ने से नहीं। जो लोग अपने पुत्र को प्रेम नहीं करते उनका जीवन तो निष्फल ही जाता है साथ में कुल का भी नाम ऊँचा होना असम्भव हो जाता है। पिता से प्रेम न मिलने पर पुत्र घर छोड़कर परदेश चला जाता है और वहाँ बिना ध्याया के दुःखी रहकर जीवन को ऊँचा बनाने में असफल रह जाता है। स्त्री का भी पुत्र का

३६—भ्राता ज्येष्ठ सम पित्रा भार्या पुत्र स्वका तनु।

एषां स्वा दासव्यगश्च दृहिता कृपण परम् ॥

तस्मादेत रधिक्षिप्त सहेन्नित्यमसज्वर ।

गृहधर्मपरो विद्वान् धर्मशीलो जितबलम् ॥

शांतिपत्र - अध्याय २४३, श्लो० २० २१

अपना ही गरीर समझना चाहिए। इसका अभिप्राय भी यही है कि स्त्री पुरुष की अर्द्धांगिनी माना जाती है। बिना स्त्री के गृहस्थी अधूरी है। स्त्री के बिना घर सूना है। पुरुष को हर काम में सहायता देने वाला स्त्री व समान दूमरा कोई नहीं है। स्त्री ही ससार में एक ऐसा है जो पुरुष के दुःख में, गरीबी में हर प्रकार के संकट में उसका साथ देती है। इसलिए स्त्रियाँ का आदर करना उनसे प्रेम रखना पुरुष के लिए बहुत ही आवश्यक हैं। बिना प्रेम के गृहस्थी में सुख नहीं मिल सकता। इसीलिए सुखी जीवन बिताने के लिए पुरुषों को अपनी गृहस्थी में स्त्री जीवित पुत्रों से प्रेम रखना चाहिए। सेवकों का छाया बताने का अभिप्राय भी यही है कि सेवकों भी अपने स्वामी का वाय भली प्रकार तब ही कर सकेंगे जबकि स्वामी का भाव तथा प्रेम उनकी तरफ से अच्छा होगा। स्वामी का योग फलाने वाला सबके ही होते हैं इसलिए सेवकों को अपनी छाया समझकर सदैव उनका हित करना चाहिए जिससे वे लोग मंगल प्रसन्न रहें। पुत्रों का दयनीय इसलिए बताया है कि उनका जीवन तो सत्य दूमरों के ही ऊपर धारण है। जो जिस प्रकार उन्हें रखता है वे उसी प्रकार रहती हैं चाहे दुःखी रहें या सुखी। इसका कारण है कि स्त्रियाँ को स्वतंत्रता नहीं है वे कभी अकेली रह ही नहीं सकती हैं। बचपन में माता पिता उनकी देखभाल करते हैं तथा युवावस्था आनंद पर माता पिता ही अच्छा घर देख कर पुत्री का विवाह कर देने हैं। पुत्री तो घर में बंद रहने के कारण अधिक कुछ समझना नहीं। माता पिता जसा भी घर-घर दूटकर उसका विवाह कर देने हैं, वह उसी के साथ प्रसन्न रह कर अपना गृहस्थ जीवन सुखी बनाती है। पुत्री स्वतंत्र न हान के कारण दयनीय मानी जाती है। पुत्र के साथ यदि अच्छा व्यवहार नहीं होता तो वह घर छोड़कर चला जाता है किन्तु पुत्री के साथ कसा भी बुरा व्यवहार क्या न हो वह घर छोड़कर नहीं जा सकती है। इसलिए मंत्रों के साथ अच्छा व्यवहार तथा प्रेम करना चाहिए।

—शुभकर्मों से गृहस्थ को सद्गति मिलती है—

गाम्भीर्य में बताया हुए नियमों पर चलने वाले गृहस्थ को स्वर्गलाभ तथा सद्गति प्राप्त होता है। स्वर्ग की प्राप्ति का कारण ब्रह्माज्ञान गृहस्थाश्रम का ही बताया है। गृहस्थाश्रम में रहने वाला गृहस्थ यदि ब्रह्मपरायण, धर्मज्ञान, शुद्धबुद्धि तथा अनिधि का निराग न लौगने वाला होता है तो

उसको उत्तम लोका तथा उत्तम गति प्राप्ति हाती है। गृहस्थाश्रम में रहने वाला गृहस्थ यदि प्रसन्नता पूर्वक चार प्रकार की वृत्तियाँ से जो ऊपर बताई जा चुकी हैं अपना जीवन व्यतीत करता है तो व्यासजी ने भीष्म से इस प्रकार उनको क्या गति मिलती है कहा कि “उसे चक्रधारी श्रीविष्णु के साथ क सहज उत्तम लोका की प्राप्ति होती है अथवा वह जितेन्द्रिय पुरुष को मिलने वाली श्रेष्ठ गति प्राप्त कर लेता है।”^{४०} गृहस्थ के उत्तम कर्मों से जो गति प्राप्त होती है उसका वर्णन करते हुए व्यास जी ने भीष्मजी से इस प्रकार कहा कि ‘उदार चित्तवाले गृहस्थों का हितकारक स्वर्गलाक प्राप्ति होता है ऐसा वेदा में वर्णन है। ब्रह्माजी ने गृहस्थ्य-आश्रम का स्वर्ग की प्राप्ति का कारण बताया है। इसलिये इसका पालन का विधान किया गया है। मन और इन्द्रियाँ को समय में रखने वाले गृहस्थों के लिए स्वर्ग लाक व ही प्रतिष्ठा का स्थान नियत किया है।’^{४१} गृहस्थाश्रम से ही धर्म का पालन पूरा होता है। ब्रह्मचारी वानप्रस्थी, मन्थानो सब का धर्म गृहस्थाश्रम पर ही निर्भर रहना है। सब प्रकार के धर्मों का पालन गृहस्थाश्रम में रहकर ही पूरा हो पाता है। अनिधि सत्कार, यज्ञ दान, भिक्षा तथा अन्य धार्मिक कृत्य सब गृहस्थाश्रम से ही पूरा होते हैं। इसीलिए गृहस्थाश्रम स्वर्ग तक पहुँचाने वाला कल्याण का मार्ग कहा जाता है। इसीलिए चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम को ही उसकी विशेषताओं के कारण श्रेष्ठ कहा गया है।

४०—स चक्रधरलोकाना सहस्रीभाण्डुयाद् गतिम् ।

जितेन्द्रियाणामथुवा गतिरेषा विधीयते ॥

४१—स्वर्गलोको गृहस्थानामुदारमनसा हित ।

स्वर्गो विमानसपुत्रो वेददृष्ट सुपुष्पित ॥

स्वर्गलोको गृहस्थाना प्रतिष्ठा नियतात्मनाम् ।

ब्रह्मणा विहिता मोनिरेषा यस्माद् विधीयते ।

द्वितीय क्रमण प्राप्य स्वर्गलोके महीयते ॥

गीता तपव—अध्याय २४३, श्लो० २६ २७ २८

महाभारत में स्त्री-धर्म

१-स्त्री का महत्त्व--

भारतीय सभ्यता में स्त्री का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान है। माना पत्नी, पुत्री आदि रूप में स्त्री को भारतीय सभ्यता का परम्परा में बहुत आदर मिला है। भारतीय साहित्य में भी स्त्री का चरित्र का गौरवपूर्ण चित्रण किया गया है। महाभारत भारतीय साहित्य का एक महिमामय ग्रन्थ है। महाभारत में भी स्त्री का महत्त्वपूर्ण स्थान है। महाभारत की कथा में गांधारी कुन्ती, द्रौपदी आदि स्त्री पात्र अपना विशेष स्थान रखती हैं। महाभारत में अनेक स्थानों पर स्त्री के महत्त्व और उनके धर्म का वर्णन किया गया है।

शांति पर्व में युधिष्ठिर को नीति का उपदेश दत्त हुए पितामह भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि समार में स्त्री का समान कोई वधु नहीं है स्त्री का समान कोई अश्वत्थ नहीं है और स्त्री के समान धर्म सख्ख नहीं है सहायक भी दूसरा कोई नहीं है। १ पुरुष की जीवन साधना में पत्नी उमकी सबसे बड़ी सहायक है। अनुभव में मोक्ष की साधना तो कदाचित् मनुष्य का एकान्त धर्म है। स्त्री का सम्बन्ध और बाधन मोक्ष में बाधक भी हो सकता है किन्तु गेय तीना पुरुषार्थों की साधना में स्त्री का सहयोग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। पितामह

१--नास्ति भार्यासमो वधुर्नास्ति भार्यासमा गति ।

नास्ति भार्यासमो लोके सहायो धर्मसग्रहे ॥

शांतिपर्व—अध्याय १४५, श्लोक १६

के सट्टा म "धम, अय और काम की साधना के समय पत्नी पुन्य की सहायक होती है ।'२ वदिक अनुशासन के अनुसार गृहस्थ पुरषा के धार्मिक कृत्य स्त्री को माय लेकर ही हाते हैं । वदिक काल म स्त्रियाँ पुरुषो के साथ बठकर यन करती थी । सीता के द्वितीय निर्वासन के बाद राज्याभिषेक के समय रामचन्द्र को सीता की साने को प्रतिमा बनवानी पडी थी । भारतीय धम कृत्यो म उपकरण और उपचार बहुत होते हैं उनकी व्यवस्था म भी स्त्री का अमूय सहयोग रहता है । अय की साधना म भी स्त्री की प्रेरणा, उसका परामश और उसका सहयोग पुरुष का सहायक हाता है । काम की साधना म स्त्री का सहयोग सृष्टि की अद्भुत विभूति है । पत्नी के सहयोग से धम सम्मन काम भगवत् गीता के अनुसार मनुष्य का दिव्य धम बन जाता है ।^३

धमशास्त्रा की परम्परा के अनुरूप महाभारत म भी स्त्री को रक्षणीया माना गया है । शारीरिक और सामाजिक दोनो ही दृष्टिया से स्त्री की स्थिति एभी है कि अनेक रूपो म स्त्री के साथ पुरुष के अतिचार की आगका हो सकती है । जनतत्र और स्वतंत्रता के विकास के आधुनिक युग मे भी प्रति दिन ऐसे अतिचारा क समाचार मिलते हैं । इसीलिए भारतीय धमशास्त्र क जाचार्यों न स्त्री की रक्षा का भार पुष्ट्य को सौंपा है । पुरुषा क द्वारा रक्षित होन पर ही इस पुन्य-तत्र समाज म नारी का नील और जीवन सुरक्षित रह सकता है । इस सुरक्षा के ही प्रसंग म धमशास्त्रकारा ने स्त्री को स्वतंत्रता के योग्य नही माना है । स्वतंत्रता के अय रूपा से स्त्री को वदित नही किया

२—धमयिकामकालेषु भार्या पु स सहायिनी ।

विदेशगमने चास्य सच विश्वासकारिका ॥

गीतापर्व—अध्याय १४५, श्लोक १३

३—बल बलवता चाह कामरागविवर्जितम् ।

धर्माविरुद्धो मूतेषु कामोऽस्मि भरतपथ ॥

श्री भगवद्गीता-अध्याय ७, श्लोक ११

गया है। पारिवारिक और सामाजिक जाया म गरीब का अनर अधिनार प्राप्त है। धर्मशास्त्रकारा का अभिप्राय यवल इतना हा है कि पुत्र व अतिनारा से अपने गील और जीवन की रक्षा स्त्री स्वय नही कर सकती। अन उमरा रक्षा पुरुषा का उत्तरदायित्व है। धर्मशास्त्रा म स्त्री की रक्षा का मह भार आयु और सम्बन्ध के अनुमार क्रमश पिता, पति, और पुत्र का सापा गया है। इस प्रसंग म महाभारतकार क 'गण' ४ मनु' और यागवल्क्य' क वचना का स्मरण दिलात हैं।

रक्षणीया होत के साथ साथ स्त्री अवध्य भी है। स्त्री का अवध्यता भी उसकी रक्षणीयता का ही एक अंग है। महाभारत म अनर प्रसंगा म स्त्रा को अवध्य माना गया है। एक तपस्वी ब्राह्मण क 'गाप स पीडित गया आदि अप्सराओ न ब्राह्मण से क्षमा की याचना करत हुए यह प्रमाण उपस्थित किया था कि 'धर्मात्मा पुरुष स्त्रिया को अवध्य मानते हैं। * इसी प्रकार

४—पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।

पुत्रस्तु स्यविरे भावे न स्त्री स्वात्त्रयमहति ॥

विराटपर्व—अध्याय १६, श्लोक ४२ ४३ के बीच का

५—पितारक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।

रक्षति स्यविरे पुत्रा व स्त्री स्वात्त्रयमहति ॥

मनुस्मृति—अध्याय ६, श्लोक ३

६—रक्षेत्क्या पिता विद्या पति पुत्रास्तु बाद्ध के ।

जभावे ज्ञातयस्तेषा स्वात्त्रय न ष्वञ्चित्त्रिया ॥

याज्ञवल्क्य स्मृति—अध्याय १ श्लोक ६५

७—अवघ्यास्तु स्त्रिय सृष्टा मयते धर्मचारिण ।

तस्माद् धर्मेण वध त्व नास्मान् हिंसितुमहति ॥

आदिपर्व—अध्याय २१६, श्लोक ४

जब कस ने देवकी के पुत्र के हाथो अपनी मृत्यु की आकाशवाणी सुनी और द्रुपदी के वध का प्रयत्न करना चाहा तब वसुदेव ने कस से कहा कि पश्वीपते ! प्राय सभी धर्मो म नारी का अवध्य कहा है ।^८ हिडिम्बासुर का मारकर जब भीमसेन न उसका वहिन हिडिम्बा को मारना चाहा तब युधिष्ठिर ने भी भीमसेन को समझाया कि 'क्रोध म स्त्री का वध नहीं करना चाहिए । शरीर की रक्षा की अपेक्षा धर्म की रक्षा श्रेष्ठ है ।^९ वकासुर की क्या के प्रसंग मे जब असुर क भोजन के लिए एक ब्राह्मण की बारी आई ता पति की रक्षा के लिए उसकी स्त्री न स्वय असुर के पास जान का प्रस्ताव रक्का । उस समय ब्राह्मणी न ब्राह्मण से कहा कि धर्मन विद्वानो न धर्म निरुपेय के प्रसंग म नारी को अवध्य बताया है । राक्षसो को भी लोग धर्मन कहत हैं । (राक्षस ने धर्म का विचार किया ता मेर वच जाने की आशा है)'^{१०} राक्षस मे भी स्त्री की अवध्यता का आदर करन की आशा यह प्रमाणित करती है कि कितनी गम्भीरता के साथ भारतीय परम्परा म इस सिद्धांत को स्वीकार किया गया है ।

८—अहिंस्या प्रमदामाहु सवधर्मेषु पार्थिव ।

अक्स्माद्बला नारो हतासीमामनागतोयु ॥

सभाषव—अध्याय २२, श्लोक ३६ से आगे

९—कुद्धोऽपि पुरुषयात्र भीम मा स्म खिय वधी ।

शरीरगुप्यन्म्यधि न धम गोपाय पाण्डव ॥

आदिषव—अध्याय १५४, श्लोक २

१० अवध्या स्त्रियमित्याहुधर्मज्ञा धमनिश्रये ।

धमज्ञान् राक्षसानाहुन ह यात् स च मामपि ॥

आदिषव—अध्याय १५७, श्लोक ३१

भारतीय ससृति म स्त्रिया व त्रिए पातिव्रत धम का भी बडा मरुत्व है। प्राचीन वान म लडके लटरिया व विवाह गम्बय उनक कुन का रग कर किथ जाते थे, क्याकि कुन का प्रभाव बघो व पालन प पण म प्रधान रूप स रहता है। यदि ब्या की माँ शीलवती गुणवती तथा धम परायणा हागा तो उसकी पुत्री भी बस हा गुणा स सम्पन्न अय्य हागी। इतीलिए निगाह सम्न ध कुलीन परिवार म होते थ। महाभारत म स्त्रिया व धम पातिव्रत धम तथा स्त्रियो व वतव्या व विषय म अनव स्थान। पर वगण मित्त है। महाभारत म वकामुर वृत्त के प्रसंग म जब एक ब्राह्मण की बारी उस वका सुर ने भोजन व लिए आती है तब वह बडा दुखी होता है और उगवा स्त्री स्वय अपने पति व स्थान पर भक्षण के लिए जान को उद्यत होनी है तब ब्राह्मण अपनी स्त्री व गुणा को दसकर बहता है कि कुलीन सतानवती सती सावी नित्य पति व अनुकूल चाने वाली धमपत्नी हो य स्त्री का धम है। ११ स्त्री के पातिव्रत धम व विषय म महाभारत म वष्य ऋषि न पुत्री सकुन्तला की विदा के समय स्त्रिया व वतव्य तथा पतिव्रता व लक्षणा का भी बताया है। वष्यऋषि ने कहा है कि 'भार्या वही हैं जो घर के कामकाज म कुशल हो सतानवती हो पति को प्राणो व समान प्रिय मानती हा तथा जो पतिव्रता हो। १२ भारतीय ससृति म स्त्रियो के त्रिए पति की सेवा से बढकर कोई काय थ छ नहीं है। स्त्री के लिए पतिसवा ही सब धम, यज्ञ तीर्थो तथा दानो का फल प्राप्त करा देती है। वकामुरवृत्त म ब्राह्मणी ने अपने पति स कहा है कि 'जो स्त्री सदा अपन पति के प्रिय और हित कार्यों म लगी रहती है यह उसके लिए बडे बडे यज्ञो तपस्याआ नियमा

११-कुलीना गीनसम्पन्नामपत्यजननीमपि ।

त्वामह जोवितस्यार्थे साष्ट्वीमनपकारिणीम् ॥

आदिपव—अध्याय १५६, श्लोक ३

१२—सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रजावती
सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता ॥

आदिपव—अध्याय ७४, श्लोक ४०

और नाना प्रकार के दाना से भी बढकर है । १३ महाभारत म कवच ऋषि न अपनी पुत्री गङ्गुन्तला का स्त्रिया के धम के विषय म बताया है कि 'सती स्त्रियो को मन, वाणी शरीर और चेष्टाआ द्वारा निरन्तर पति की सेवा करती चाहिए तथा पतिव्रताचित आचार-व्यवहार से ही विशिष्ट गोभा प्राप्त करनी चाहिए ।' १४ पतिव्रता स्त्री के बताया का वणुा करत समय महान् भारत म भीष्म पितामह न भी युधिष्ठिर स कहा है कि 'पतिव्रता स्त्रा बहा है आ उत्तमव्रत का पानन बगती है, बिना पति को भोजन कराये भोजन नही करती पति को नहलाये बिना स्नान नही करती, पति के मो जान पर गयन करती है यही पतिव्रता के धम हैं ।' १५ एक वार पावतीजी न शिव से अध्यात्म ज्ञान जानन की अपनी इच्छा प्रकट का तब शिवजी ने उह सम्पूर्ण अध्यात्म ज्ञान वत्ता दिया । फिर शिवजी न पावती मे बहा कि अब मैं तुम स स्त्री धम विषयक बातें जानना चाहना हू क्योंकि विगपन स्त्रिया ही स्त्रिया की परम गति हैं । ब्रह्माजी की पत्नी सावित्री साध्वी हैं इन्द्र-पत्नी शची भी सती हैं विष्णु की प्वागी पत्नी लक्ष्मी पतिव्रता हैं आदि इन समस्त पतिव्रता धविया का तुमन सदा सग किया है इसलिए तुम्हार मुख स वर्णित नारा धम सुनना चाहता हू । तब पावतीजी न पतिव्रता नारी के लक्षण इस प्रकार बताया कि 'जो हृदय के अनुराग के कारण स्वामी के आधीन रहनी है चित्त को प्रसन्न रखनी है देवता क ममान पति की सेवा और परिचया करती है, पति

१३—पञ्चस्तपोभिर्नियमदानैश्च विविधस्तया ।

विगिष्यते स्त्रिया भतु नित्य प्रियहिने स्थिति ॥

आदिपव—अध्याय १५७, श्लोक २४

१४—पतिशुभ्रू परण पूर्व मनोवाक्कापचेष्टित ।

अनुज्ञाता मया पूव पूजयतद् वत तव ॥

आदिपव—अध्याय ७४, श्लोक ६ १० के मध्य का

१५—न भुङ्क्ते मय्यभुक्ते या नास्नाते स्नाति सुव्रता ।

नातिष्ठत्पुपतिष्येत नेते च गयिते मयि ॥८॥

गार्तिपर्वा—अध्याय १४५, श्लोक ८

के लिए सुन्दर वेष धारण करती है, प्रसन्नवदन रहती है तथा जो स्वामी व
 बठोर वचन बहने या दोषपूर्ण दृष्टि दखन पर भी प्रसन्नता से मुस्कराती रहनी
 है वही स्त्री पतिव्रता है । ११ उमा ने फिर पतिव्रता व लक्षण इस प्रकार कहे
 कि पति पत्नी को एक साथ रहकर धर्माचरण करना चाहिए, जो स्त्री मंगल
 मय दाम्पत्य धम को सुनकर धमपरायण हो जाती है वही पतिव्रता है । १०
 स्त्रिया के लिए पति का महत्त्व बताने हुए सत्यभामा ने द्रौपदी से कहा है कि
 पति के साथ रहना स्त्री का सनातन धम है पति ही उनका देवता है पति
 ही उनकी गति है तथा पति के सिवा स्त्री का दूसरा कोई महारा नहा है । ११
 भारतीय सस्कृति म पति की सेवा के साथ अपन मास समुद्र की सेवा तथा
 बड़ो का आदर करने की भावना रखना भी सती माध्वी स्त्रिया का कर्त्तव्य
 है । वन जाते समय रामचन्द्र जी ने भी सीताजी से अनुरोध किया था कि
 तुम घर पर रहो और अपन मास समुद्र की सेवा करना इससे बड़ कर दूसरा
 धम नहीं है । महाभारत म मास समुद्र की सेवा के सम्बन्ध म भीष्म जी न

१६-शुश्रूषा परिचार च देवतुल्य प्रकुर्वती ।

वया भावेन सुमता सुव्रता सुखदशना ।

जनयचित्ता सुमुखी भवु सा धमचारिणी ॥

परुषाण्यपि चोक्ता या दृष्टा दुष्टेन चक्षुषा ।

सुप्रसन्नमुखी भवु र्या नारी सा पतिव्रता ॥

अनुशासन पर्व—अध्याय १४६ श्लोक ४१, ४२

१७-श्रुत्वा दम्पतिधम व सहधम कृत शुभम् ।

या भवेद् धमपहमा नारी भतसमव्रता ॥

अनुशासनपर्व—अध्याय १४६, श्लोक ३६

१८-पत्याधयो हि मे धर्मो मत स्त्रीणां सनातन ।

स देव सा गतिर्नाया तस्य का विप्रिय चरेत् ॥

वनपर्व—अध्याय २३३, श्लोक २७

युधिष्ठिर जी से कहा है कि "सदा सास समुर की आत्मा म रहने वाली देवता पितर तथा ब्राह्मणा की पूजा म सदा सावधान होकर सलग्न रहन वाली स्त्री ही पतिव्रता है ।"^{११} प्राचीन काल म पतिव्रता स्त्रिया अपन पति की प्रसन्नता के लिए घम के प्रतिकूल कार्यों को करने के लिए भी उद्यत रहनी थी, क्योंकि वह पति को देवता तुल्य मानती थी और उनक वहे हुए वचना का बह उल्लंघन नहीं कर सकती थी । एक बार पाण्डु न कुत्ती से इसी प्रकार के घम के प्रति कूल वचन कहे और कुत्ती न उन वचनों का पालन स्त्री घम समझकर किया । पाण्डु ने कहा कि 'प्राचीन घम यही है कि पति अपनी पत्नी से जो बात कह, वह घम क अनुकूल हो या प्रतिकूल, उस जवन्ध पूरा करना चाहिए ।'^{१२} एक बार सत्यभामा ने द्रौपदी से कहा कि आपन ऐसी कौनसी जड़ी बूटी इन पाण्डवा को खिना रक्खी है जिससे य सबके सब आपको बहुत प्रेम करत है । मैं भी उस औषधि से अपने श्यामसुन्दर को सत्ता अपने अधीन करना चाहती हूँ ; तब द्रौपदी ने कहा कि ऐसी कोई जड़ी-बूटी या औषधि नहीं है जिसस कि पुरुषा को अपने अधीन किया जा सक । पुरुषा को अपन वश म करने का एक मात्र साधन सच्चा प्रेम, त्याग तथा सेवा है । मैंने सब पाण्डवा की सदा सेवा तथा उनके साथ जीवन भर त्याग किया है, उसी से प्रभावित होकर ब लाग मुझम इतना प्रेम करते ह तथा तुमका ऐसा लगना है कि सब मरे वग म हैं । पुरुषा को प्रसन्न करने के लिए स्त्रियों को चाहिए कि वे उनका माता पिता आदि बड लोग का सदा आदर सम्मान करें तथा उनका प्रेम से सेवा कर और उनकी आत्मा का पालन कर, जिससे घर मे सुख शांति की वृद्धि हो और सब लोग आपस मे प्रेम भाव मे रहे । अपने बडों की प्रसन्नता से पुरुष बडे प्रसन्न रहग

१६—दयताना पित एा च ब्राह्मणाना च पूजने ।

अप्रमत्ता सदा युक्ता श्वधू श्वपुरवर्तिनी ॥

अनुशासन पव—अध्याय १२३, श्लोक १०

२०—घममेव जना सत्त पुराण परिचरते ।

भर्ता भार्या राजपुत्रि घम्य वाघम्यमेव च ॥

यद् य यात् तत् तथा क्षयमिति वेद विदा विदुः ।

आदिपव—अध्याय १२१, श्लोक ४३

और वह अपनी स्त्री की गन्ध प्रशंसा करेंगे तथा उस पर स्तन मानेंगे और उनका मन व सात छुट्ट गारे काय पूर्ण होगे । अग प्रकार गन्धभोग व पूछने पर द्रौपदी ने उभ स्त्रिया व कर्त्तव्य व बात म दम प्रसार धारणा कि पतिप्राप्त स्त्रियों पति व गया व बात गया करती है । भावना गान्ध आदि गारे काय पति व बात करती है । पति का इच्छा व रिच्छ आभूषण नहीं पड़ नहीं, कभी किसी का निन्दा नहीं करती । य ही उक्त कथाम्य है । *१ पति प्रता स्त्रिया का भारताय शास्त्रा म गान्ध गुण एक वया श्रेष्ठ गुण है । गान्ध एक प्रकार म नारा का आभूषण है । गालकी स्त्रिया हा अता गया अता परिवार का कल्याण करा यानी माती जाती है । त्रिम परिवार म गान्धवा स्त्रिया होना है गुण गान्ध उमी परिवार म निवास करा है । प्राणात कान म विवाह सम्बन्ध व समय कथाया का गीत गुण हा प्राय अगा—पूर्णा जाता था । प्राचीन काल म विवाह म अज प्रया नहा था और न गान्ध का द्विप्रिया थी इसलिए कथाया का कुन और उनका गीतगुण हा अधिभार दगा जाता था । गीतगुण व विषय म घुनराण न महाभारत म सुयोधा म कहा है कि मन्वाणा और क्रिया द्वारा किसी भी प्राणी स दान न करना अया करना यथाशक्ति दान दना आदि गुण गीत कहलाते हैं जिसकी योग प्रशंसा करा है । *२

भारतीय धर्मशास्त्रा म स्त्री को पति के घर हा रहने का आन्ध अधिार है । कथाकि पति व घर म ही अधिव रहने स स्त्रा का मान मर्यादा बडा है तथा गृहस्थी व सम्पूर्ण प्रबन्ध भी सुचारु रूप स स्त्री व ही रहने स धरत है । इसलिए स्त्रिया को अपने माता पिता के घर अधिव निन र लिए नहा जाना चाहिए । स्त्रिया को अपने माता पिता व यही कुछ निन व लिए किसी विनोप

२१-अह पतीन् नातिशये नात्परने नातिमूपये ।

नापि श्वधू परिवदे सबदा परिर्था प्रता ॥

वनपव—अध्याय २३४, श्लोक ३८

२२-अद्रोह सबभूतेषु कमणा मनसा गिरा ।

अनुग्रहश्च दान च शीलमेतत् प्रशस्यते ॥

गान्धितपव—अध्याय १२४, श्लोक ६६

काय म सम्मिलित होने के लिए ही जाना चाहिए, इसी म स्त्रियो का कल्याण है तथा उनकी कीर्ति है। महाभारत मे स्त्रिया को पति गृह म ही अरिक् रहने के विषय म कण्वऋषि न अपनी पुत्री शकुन्तला से कहा है कि 'स्त्रिया को भाई बन्धुअ. के घर अधिक रहन स उनकी कीर्ति, शील तथा पतिव्रत धम का नाश होता है। २३ पतिव्रता स्त्रिया के लिए शास्त्रा म ऐमा भी वरण है कि यदि किमी प्रकार से किमी स्त्री का पति उससे अप्रमत्त हा जाय और उस अपने पास न रखना चाहे तब भी स्त्रिया को सब प्रकार से पति को प्रसन्न रखना चाहिए और पति के पास ही रहना चाहिए। शकुन्तला को जब राजा दुष्यन्त भूल गये थे और शकुन्तला क कहने पर भी जब वह उस नही पहचान मने और शकुन्तला लौटकर जब फिर कण्वऋषि क पास आकर आश्रम म रहने लगी थी। तब एक दिन कण्वऋषि न फिर से शकुन्तला से अपने पति के घर जाने को कहा था और तभी उहाने शकुन्तला स कहा था कि "पतिव्रताआ पर सम्पूर्ण बरो को देन वाले दैवता लोग भी सन्तुष्ट रहत हैं। पतिव्रत दैविया पति क प्रसाद से ही पुण्यगति को प्राप्त हाती है। २४ भारतीय स्त्रिया के लिए धमशास्त्रो मे पति की सेवा से बन्कर अय कोई पुण्य नही बताया है। पति की सेवा स ही भारतीय स्त्रिया को सम्पूर्ण व्रता तपस्याआ तथा यना का फल प्राप्त हो जाता है ऐमा भारतीय धमशास्त्रो का कथन है। पतिव्रताआ के लक्षण पूछे जाने पर उमा ने शिवजी को बताया था कि 'जो साध्वी नारी पतिव्रत धम का पालन बरती हुई पति की सेवा म

२३—नारीणा चिरवासो हि बन्धवेषु न रोचते ।

कीर्तिचारित्रधमघ्नस्तस्मान्नयत मा चिरम् ॥

आदिपव—अध्याय ७४, श्लोक १२

२४—पतिव्रताना देवा व तुष्टा सबवरप्रदा ।

प्रसाद च करिष्यन्ति ह्यापदये च भामिनि ॥

पतिप्रसादात् पुण्यगति प्राप्नुवन्ति न चाशुभम् ।

तस्माद् गत्वा तु राजानमाराधय शुचिस्मिते ॥

आदिपव—अध्याय ७४, श्लोक ६ १० के मध्य का

लगा रहती है, उगता घट काय महात् पुष्प बगी भारा लहरया आर गागन स्वर्ग का साधन है । १५ महाभारत म गुमता आर नागिनी गवा म स्त्रिया क सत्कार क विषय म अनर बाँ आर है । गुमता पतिरग धर्म का पालन करतो हई स्वर्ग तार म पहुँच गइ सौ गो* गमम या नागिनी भी अपन धर्म क प्रताप से स्वर्ग म पहुँची तो गुमता न उगम कता कि तुमन जो धर्म काय किय है निनसे तुम्ह स्वर्ग प्राप्त हुआ है, पर बगामा । पर सया भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि सत्कार म जीवत विधान काना हिन्दवी स्वामी क परदेश या बाहर जान पर आता म अत्रन सत्कार पर गोरारत तिलक, पूजा की माला अगा म अगराय सया शृ गार रहा करता है । २५ भारतीय स्त्रिया का शृ गार भी पति क लिए ही होता है । जब उार पति घर पर रहत हैं तभी वह सय शृ गार करती है । नागिनी क सत्कार म स्त्रिया क गौदम को साधवता भी पति क म म ही है (प्रियतु सौभाग्य फला हि चारता कुमार सम्भव) भीष्म जान युधिष्ठिर से कहा कि 'साध्या स्त्रिया को पति क प्रति सदब प्रियवचन बोलने चाहिए अहितरर क्योर वचन नही बोलने चाहिए । २७

२५-पुण्यमेतत् तपरधेतत् स्वर्गश्चप सनातन ।

मा नारी भत परमा भवेद् नत प्रता सतो ॥

अनुशासनपथ—अध्याय १४६, श्लोक ५४

२६-अजग रोचनो चय स्नान माह्यानुलेपनम् ।

प्रसाधन च निष्क्राते नाभिन दामि भत रि ॥

अनुशासनपथ—अध्याय १२३, श्लोक १७

२७-अहितानि च वाश्यानि सर्वानि परुषाणि च ।

अप्रमत्ता च भर्तार कदाचिन्नाहमश्रुयम् ॥

अनुशासन पथ—अध्याय १२३, श्लोक ६

पति ही स्त्रिया के लिए देवता है एसा कहनी हुई वनासुर सवाद मे एक ब्राह्मणी ब्राह्मण स बोली कि ' प्रियवर ! मुझे तो पति की सेवा से जो धर्म प्राप्त होता है वही प्रिय है । सम्पूर्ण देवनाभा म ही पति मेर सत्रसे बडे देवता हैं । ' २८ भारतीय स्त्रियो की भावना सदा ही पति को देवता मानने की रही है । पति को देवता मानकर ही भारतीय स्त्रिया उनकी इनकी प्रेम भाव स सेवा करती रही हैं । कुन्ती ने सूर्यदेव स कहा कि ' मैं अपने धर्म का लोप नहीं करूंगी । स्त्रिया के सदाचार म अपने शरीर की पवित्रता बनाये रखना ही प्रधान है । ' २९ सदाचार से रहने वाली भारतीय स्त्रिया अपने शरीर को मन मे, वचन से तथा काम से सभी प्रकार से पवित्र रखती है । ऐसे पवित्र और ऊँचे विचार रखने वाली स्त्रिया ही सच्ची पतिव्रता होती है उनका मन कभी स्वप्न म भी दूमर पुरुष को नहीं देखता । भीष्म ने सदाचार स रहने वाली स्त्रिया के स्थान के बार म युधिष्ठिर से कहा कि ' जो स्त्री सदा सावधान रहकर धर्ममार्ग पर चलती है, वह नारियो मे अरु धती के समान आदरणीय होना है, और स्वर्गलोक मे भी विशेष प्रतिष्ठा पाती है । ' ३०

२८—पतिशुभूषया धर्मो य स मे रोचते द्विज ।

दवतोऽपि सर्वेषु भर्ता मे दवत्त परम् ॥

वनपर्व—अध्याय २०६, श्लोक ३०

२९—पिता माता गुरुवश्च येऽपि

देहस्यास्य प्रभवति प्रदाने ।

नाह धर्म लोपयिष्याति लोके

स्त्रीणां वृत्ता पूज्यते देहरक्षा ॥

वनपर्व—अध्याय ३०६, श्लोक २३

३०—इम धर्मपथ नारी पालयती समाहिता ।

अरुधतीव नारीणां स्वर्गलोके महीयते ॥

अनुशासन पर्व—अध्याय १२३, श्लोक २०

भारतीय धर्मशास्त्रों में पतिव्रता स्त्रियों के लिए बस एक पति व वरण करने का ही नियम है। यदि उसके पति की मृत्यु हो भी जाय तब भी उस दूसरा पति नहीं देखना चाहिए और नियम पूर्वक रहकर अपन बच्चा का पालन पोषण करना चाहिए। पुरुष के लिए धर्मशास्त्रों में अनेक विवाह करने व अधिकार थे कि यदि किसी पुरुष की स्त्री की मृत्यु हो जाय तो वह फिर दूसरा विवाह करके अपन गृहस्थ का मुख प्राप्त कर सकता है। किंतु स्त्रियाँ दूसरा विवाह नहीं कर सकती थीं। ऐसे ही विचारों से प्रभावित होकर ब्राह्मणी न ब्राह्मण से कहा कि स्त्रियों को अपन पूर्व पति का उत्पन्न करने पर बड़ा भारी पाप लगता है।^{३१} प्राचीन काल में स्त्रियाँ अपन पति की मृत्यु का जान पर उसका संग सती हो जाती थी किंतु कभी कभी बच्चे छोड़ होने के कारण उन्हें सती नहीं होने दिया जाता था। तब वह पति के पीछे अपन शरीर को सुखाती हुई समस्त स्वादिष्ट भोजनों का त्याग करके नियम से रहती थी। पाण्डु की मृत्यु के पश्चात् तपस्वी ऋषियों ने कुंती और माद्री से कहा कि जो स्त्रियाँ साध्वी होती हैं वह अपने पति की मृत्यु के बाद ब्रह्मचर्य के पालन में अविचल रूप से लगी रहती हैं। यम और नियम पालन का बल सहन करती हैं।^{३२} प्राचीन काल में पति के साथ हो जाने को बड़ा भारी पुण्य समझा जाता था। इसी विचार से प्रत्येक साध्वी अपने पति व साथ सती होकर अपने को धर्म समझती थी। ऋकुमारा ने पाण्डु की मृत्यु के समय कुंती और माद्री से कहा कि इस

३१—न चाप्यधम बल्याण बहुपत्नीकृता नृणाम् ।
स्त्रीणामधम मुमहान् भवतु पूर्वस्य सङ्गने ॥

आदिपर्व—अध्याय १५७ श्लोक ३६

३२—मृतं भतरि या साध्वी ब्रह्मचर्यव्रत स्थिता ।
यमश्च नियमं धाता मनोवाक्पायज गुभ ॥
आदि पर्व—अध्याय १२४, श्लोक २८ २९ के मध्य का

तनिक भी मरुह नहा है कि पति के साथ मृत्यु स्वीकार करना पत्नी के लिए महान फलदायक है । ११

सम्पूर्ण धमशास्त्रा की रचना पुरुषा ने की है इसलिए उमम स्त्रिया के लिए तो बहुत कतव्य निसे हैं, किन्तु पुरुषा के लिए पालनीय कतया का इतना महत्व और विस्तार नहीं है । इसलिए पुरुष स्त्रिया के प्रति अपना काइ कर्त्तव्य नहीं समझन । उह जो अच्छा लगता है वही काय स्वनत्रता म करत हैं क्याकि स्त्रिया का भाति उनको अनुचित कायों स रोकन का नियम पुरुषा द्वारा रचित धमशास्त्रा म नहीं है । स्त्रिया का पालन-याग्य वचपन से ही एमे नियमा म होता है कि वह आरम्भ स ही गील और लज्जा धारण करती हैं । वचपन के पवित्र सस्कार ही स्त्रिया को आग चलकर जीवन म ऊंचा स्थान प्राप्त करान हैं । पवित्र सस्कारा के प्रभाव स ही स्त्रिया स्वयं ता गीलवती परिवार का कल्याण करन वाली हाती हा हैं वह अपना कयाआ म भी वही सस्कार उत्पन्न करके अनक परिवारा का कल्याण करन वाली बनाती हैं ।

सती द्रौपदी स जब काचक न बुद्ध अनुचित व्यवहार किया था तब द्रौपदी न कहा कि ' अपनी स्त्री म अनुराग रखन वाला मनुष्य शीघ्र ही कल्याण का मार्गी होता है । ३५ द्रौपदी के इस वचन म पुरुष क उस गील और सदाचार का सक्त है जो धमशास्त्रो के अभीष्ट स्त्रिया के पातिव्रत का पूरक है । धार्मिक याय के अनुसार यदि पानिव्रत स्त्रा का सर्वोत्तम धम है ता पुरुषा के लिए भी एक पत्नीव्रत हांना आवश्यक है । पुरुष के इस धम

३३—भर्त्रा तु मरण साध फलवद्भात्र सगय ।

पुवाभ्या दुष्कर चतद् वदति दिज्जपुङ्गवा ॥

आदिपव-अध्याय १२४ श्लोक २८ २९ के मध्य का

३४—स्वेषु दारेषु मेघावी कुश्ले यत्नमुत्तमम् ।

स्वदारनिरतो ह्यानु नरो भद्राणि परयति ॥

विराटपव-जयाय १४, श्लोक ३४ ३५ के मध्य मे मे

की आरंभ धर्मशास्त्रों ने बहुत कम ध्यान दिया है। द्रौपदी का उक्तवचन स्त्रियों के धर्म विधान से परिप्लुत धर्मशास्त्रों में अपवाद के समान है। फिर भी महाभारतकार ने इस ओर ध्यान दिया है यह सतोप की बात है। पुरुष के इस वक्तव्य का संकेत स्त्री के मुख से होना नितांत उचित और स्वाभाविक है। किंतु ऐसा कुछ निर्देश यदि महाभारत में धर्म और नीति का उद्देश्य करने वाले महापुरुषों के मुख से होते तो अधिक उचित होता। उससे यह प्रमाणित होता कि वरिष्ठ पुरुष भी पुरुषों के इस वक्तव्य को पतिव्रत के समान ही महत्त्व देते हैं। मातृवत् परदारपुत्रों के निर्देश धर्म और नीति के ग्रंथों में अनेक जगह मिलते हैं। इनका उद्देश्य भी अर्थात् स्त्रियों का आदर और पतिव्रत का पालन ही है। अर्थात् स्त्रियों के शील के आदर के साथ साथ अपनी स्त्री के प्रति निष्ठा और उदारता का भाव भी पुरुष का वक्तव्य है। पुरुष के इस वक्तव्य पर धर्मशास्त्रों में वही बल नहीं दिया गया है। इतिहास और संस्कृति की परम्परा में शिव और राम के चरित्र में एक पतिव्रत का निष्ठा का सर्वोत्तम उदाहरण मिलता है। बीचक के दुर्व्यवहार के जिस प्रसंग में द्रौपदी ने पुरुष के इस वक्तव्य का संकेत किया है वह समाज में प्रायः हानि वाली घटनाओं का एक उदाहरण है। इसी स्थिति को ध्यान में रखकर स्त्री रक्षा का भार पुरुष पर मँपा गया है। किंतु स्त्रियों के शील की यह सुरक्षा तभी पूर्ण हो सकती है जब कि सामान्य रूप से पुरुष अपनी पत्नियों के प्रति निष्ठा रखें तथा पतिव्रत का पालन करें और अर्थात् स्त्रियों के शील का आदर करें।

महाभारत में वानप्रस्थ-आश्रम

१—वानप्रस्थ का समय—

गृहस्थाश्रम में सामाजिक और सांस्कृतिक कृत्याओं को पूरा करके वृद्धावस्था का आगमन देखकर वानप्रस्थ ग्रहण करना चाहिए। वानप्रस्थ का अर्थ 'वन को प्रस्थान करना' है। भारतीय आचार शास्त्र नगर के निवास और गृहस्थ जीवन के प्रपञ्च में ही सम्पूर्ण जीवन को बिताना उचित नहीं समझता। उसके अनुसार जीवन का प्रत्येक कर्त्तव्य पूरा करने से कृतकृत्यता हाती है। भोग और कर्त्तव्य दोनों की अवधि है। प्रत्येक स्थिति से आगे एक नवीन स्थिति है। इस प्रकार पिछले कर्त्तव्यों को पूरा करके मनुष्य उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। गृहस्थ आश्रम के बाद यह विकास अध्यात्म का जोर अधिक होता है। वानप्रस्थ में मनुष्य गृह और नगर को छोड़कर वन में सरल और सात्विक जीवन व्यतीत करता है। संन्यास में मनुष्य स्थायी निवास के बंधन से तथा अन्य कर्त्तव्यों से मुक्त हो जाता है। यह मुक्ति ही जीवन का परम लक्ष्य है।

विधिपूर्वक गृहस्थाश्रम का पालन करके तथा वाधक्य के लक्षण दपने पर मनुष्य वन का प्रस्थान करे। त्वचा का गिथिल होना और बालों का सफेद होना वृद्धता के लक्षण हैं। पुत्र का पुत्र होने पर भी गृहस्थआश्रम की पूरुणता और वन के प्रस्थान का समय मानते हैं। वानप्रस्थ ग्रहण का समय बताते हुए याम जी ने ऐसा कहा कि 'गृहस्थ पुरुष का जब अपने सिर के वान सफेद दिखाई दें, शरीर में मुरिया पड़ जाय और पुत्र को भी पुत्र की प्राप्ति हो जाय, तो अपनी आयु का तामरा भाग व्यतीत करने के लिए वन में जाय और वानप्रस्थ-आश्रम में रहे। वन में रहकर वानप्रस्थाश्रम में भी उन्हीं अनिया का सेवा कर जिनकी गृहस्थाश्रम में उपासना करता था। प्रति दिन दवा

राधन भी करता रहे ॥' १ इसी प्रकार मनुस्मृति में भी मनु ने कहा है कि गृहस्थाश्रम में द्विजा को विधिपूर्वक गृहस्थ का पावन करना तथा पुत्रों का आगमन जानकर मनुष्य को धन में रहना चाहिए । पुत्र का पुत्र होने पर भाग्यवश आश्रम पूर्ण हो जाता है । इससे बाद गृहस्थ का धन में निर्याग करना चाहिए । २ वृद्धावस्था का आरम्भ होने पर मनुष्य का धन अशौच और सामाजिक काम पूरे कर लेने चाहिए । वह काम जीवन का अग भाग है । जीवन का सबस्व नहीं है । वह पूर्ण करने मनुष्य को अपनी अन्तिम धर्म प्रवृत्ति का साधना करनी चाहिए । आत्म साधना जीवन का अमृत और अमृत तथा आनन्दमय बनाती है ।

वानप्रस्थ आश्रम पुरुषों के लिए तो आवश्यक है किन्तु स्त्रियों के लिए उमर विकल्प है । यदि स्त्री चाहे तो पुरुष के साथ धन का प्रस्थान कर सकती है । किन्तु धन में वे गृहस्थ दम्पति की भाँति नहीं रह सकती हैं । वह त्याग और समय से तपस्वियों की भाँति रहना होगा । यदि स्त्री धन को न जाना चाहे तो पुरुष अपनी स्त्री का भार अपने पुत्रों को सौंप कर स्वयं धन को प्रस्थान करे । स्त्री के अतिरिक्त गृहस्थ जीवन के सभी उपकरण त्याग करने धन प्रस्थान करना उचित है । ब्रह्म अग्नि होना के लिए ब्रह्म अग्नि

१—गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मन ।
अपत्यस्यैव चापत्य वनमेव तदाश्रयेत् ॥
ततीयमापुषो भागं धानप्रस्थ्याप्रमे वसेत् ।
तानेवानोन् परिचरेद् यजमानो दिवौकस ॥
शांतिपत्र-अध्याय २४४, श्लोक ४ ५

२—एव गृहाश्रमे स्थित्वा विधिवत्स्नातको द्विज ।
वने वसेत्तु नियतो यथावद्विन जितेन्द्रिय ॥
गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मन ।
अपत्यस्यैव चापत्य तदारण्य समाश्रयेत् ॥
मनुस्मृति-अध्याय ६, श्लोक १ २

तथा यत् के अर्थ उपकरण वह अपने साथ ले जा सकता है। अग्नि का आदान आवश्यक है। वानप्रस्थ 'साग्नि कहलाता है। मन्वासी स्त्री अग्नि और स्थान तीना से मुक्त हो जाता है। यह वानप्रस्थी और मन्वासी में अंतर है। मनुस्मृति में वानप्रस्थी के नियम बताते हुए मनु ने इस प्रकार कहा है कि 'ग्राम का आहार त्याग कर पुत्र का अपनी पत्नी का भार सौंपकर या पत्नी चाहता साथ लेकर वन को चला जाये। अग्निहोत्र को नकर और घर की अग्नि को लेकर ग्राम सेवन को जाय और इन्द्रिया को ब्रह्म रखे।' ३ इसी प्रकार याज्ञवल्क्य ने भी अपनी स्मृति में लिखा है कि 'पुत्र को अपनी पत्नी का भार सौंपकर या स्त्री चाहता साथ लेकर वन को जाना चाहिए। वानप्रस्थी और ब्रह्मचारी को अग्नि साथ रखनी चाहिए इसीलिए वानप्रस्थी को साग्नि कहते हैं। ४ वानप्रस्थी के लिए सरल और सात्विक जीवन अभीष्ट है। अतः उसके लिए भिक्षा यत् स्वाध्याय भोजन व्रत आदि के सम्बन्ध में शास्त्रों में नियमों का विधान है। नागरिक आहार और गृहस्थ उपकरणों का त्याग वानप्रस्थ का प्रथम कर्म है। वानप्रस्थ का जीवन बहुत कुछ ब्रह्मचारी से समान है। अतः उसके लिए भी मधु भ्रमण यदि वर्जित है। केवल वय अन्न फल मूल और भिक्षा से उसे अपना जीवन निर्वाह करना चाहिए। भिक्षा और भोजन केवल उसके शरीर निर्वाह के लिए हैं सुख के लिए नहीं है। वानप्रस्थी को अन्त्याहार होना चाहिए जन्म धारण करनी

३—सत्यंय प्राभ्यमाहार सर्वं च व परिच्छदम् ।

पुत्रेषु भार्या निक्षिप्य वन गच्छेत्सहैव वा ॥

अग्निहोत्र समादाय गृह्य चाग्नि परिच्छदम् ।

ग्रामादरण्यं नि सृत्य निवसन्नियते द्वय ॥

मनुस्मृति—अध्याय ६, श्लोक ३ ४

४—सुतविभ्यस्तपत्नीवस्तथा चाऽनुगतो धनम् ।

वानप्रस्थो ब्रह्मचारी साग्नि सोपासनो व्रजेत् ॥

याज्ञवल्क्य स्मृति—अध्याय ३, श्लोक ४५

चाहिए अध्ययन तप व्रत आदि म तगा रहना चाहिए । वाग कुण, मृग चम जीर वृशा का छाल स वन वन्या स अन्ना गरीर हो । नियम नमय पर स्नान, बलि वस्त्र तथा अग्निहोत्र आदि कर्मों का अनुष्ठान कर । घन का सग्रह न करे शुद्ध एक हिनकर अप्रमात्र व इच्छुत हावर स्थाप्याय ताप यात्रा, दश दान व निमित्त सारी पूषा पर धूमे । भूमि पर बट भूमि पर शयन करे । सदा शातचित्त स अपन नियमा का पालन करे ।

२-वानप्रस्थी के धम—

गहस्याधम व पश्चात् तीसरा आधम उगम भी श्रुत परम उत्तर वानप्रस्थ आधम है । जो शरीर का मुक्ताकर अस्थिचमावगिष्ट कर दन वाल तथा वन म रह कर तपस्यापूर्वक शरीर का त्यागन वाल वानप्रस्थिया का आधम है । यह गहस्या से श्रुतम माना गया है । वानप्रस्थ व धम बतान हुए व्यासजी ने इस प्रकार कहा कि वानप्रस्थी पुरुष नियम व साय रह नियमानुबूल भोजन करे । दिन व राठ भाग अर्थात् तीसरे पहर म एक बार अन्न ग्रहण करे और प्रमाद से बचा रहे । गहस्याधम की ही भाति अग्निहोत्र वसी ही गो सेवा तथा उसी प्रकार यन के सम्पूर्ण अगा का सम्पादन करना वानप्रस्थ का धम है । ५ वानप्रस्थी के लिए भी गहस्य की भाति गो सेवा तथा यन आदि कर्म करना आवश्यक है । वानप्रस्थी का जीवन भी नियमा स मुक्त नहीं होता है जसा कि स यासी का होता है । वानप्रस्थ के धम बताते हुए ब्रह्मा जी ने महर्षिगणों से इस प्रकार कहा कि वानप्रस्थ मुनि को सब प्रकार व सस्कारा के द्वारा शुद्ध होकर ब्रह्मचयव्रत का पालन करते हुए घर की ममता त्याग कर गाँव स बाहर निकल कर वन म निवास करना चाहिए । ६ वानप्रस्थी को सदा वन म ही रहना चाहिए । गाँव म कभी

५—नियतो नियताहार षष्ठभुक्तोऽप्रमत्तवान् ।
तन्निहोत्र सा गावो यज्ञाङ्गानि च सवशा ॥
शांतिपत्र-अध्याय २४४ श्लोक ६

६—सस्मृत सर्वास्कारस्तथैव ब्रह्मचयवान् ।
ग्रामान्निप्रभ्य चारण्ये मुनि प्रव्रजितो वसेत् ॥
आश्वमेधिकपत्र अध्याय ४६, श्लोक ८

प्रवृत्त न करना चाहिए । प्रातः और सायंकाल के समय स्नान करे । वानप्रस्थ के धर्म बताते हुए महेश्वर न उमा से कहा कि 'वानप्रस्थ को सदा वन में ही रहना, वन में ही विचरना वन में ही ठहरना, वन के ही मार्ग पर चलना और गुरु की भाँति वन की शरण लेकर वन में ही जीवन निर्वाह करना चाहिए । प्रतिदिन अग्निहोत्र और पंचमहायना का सेवन वानप्रस्था का धर्म है । उन्हें विभागपूर्वक वेदोक्त पचयना का निरन्तर पालन करना चाहिए । * वानप्रस्थी को घने वन में अपना आश्रम बनाना चाहिए । वन में ही रह वन को ही अपना गुरु ममके और वन में जो वृक्षमूल फल फूल आदि प्राप्त हो सकें, उही से अपना जीवन निर्वाह करना चाहिए । वानप्रस्थी के लिए जो पाच यज्ञ बताये हैं वे गृहस्थ के पाचयज्ञ ही हैं । (१) अध्ययन और अध्यापन ब्रह्मयज्ञ है । (२) श्राद्ध तपण आदि 'पितृयज्ञ' है । (३) होम देवयज्ञ है । (४) जीवा को बलि देना भूतयज्ञ है । (५) अनिधि सत्कार करना मनुष्य यज्ञ है । इस प्रकार वानप्रस्था को भी पचयज्ञ करने चाहिए । वानप्रस्थी के धर्म बताते हुए महेश्वर न उमा से कहा कि सदा वीरासन से बठना और वेदी या चबूतरे पर मोना चाहिए । उन्हें सर्दों के मौसम में रात को जल में बठना चाहिए या खड़े रहना, वरसात में खुले मदान में सोना चाहिए और ग्रीष्मऋतु में पचाग्नि का सेवन करना चाहिए ।'८ सर्दों में जल में बठना एक कठोर तपस्या है तथा ग्रीष्म में चारों ओर अग्नि

७—वननित्यवनचरवनस्थवनगोचर ।

घन गुरुमिवासाद्य वस्तव्य वनजीविभि ॥

तेषां होमत्रिया धर्म पचयज्ञनियेवणम् ।

भाग च पचयज्ञस्य वेदोक्तस्यानुपालनम् ॥

अनुशासनपत्र—अध्याय १४२ श्लोक १३ १४

८—वीरासनरतनित्य स्पर्ण्डिले शयन तथा ।

शीततोषाग्नियोगश्च चतुर्ध्वो धमबुद्धिभि ॥

अनुशासन पत्र—अध्याय १४२, श्लोक १०

जलाकर ठना तथा ऊार म मूष की गर्मी पन्ना भी बरी कठिन तस्या है। तने बठोर व्रता का पूण करव हा वानप्रस्था अरना परतो म सुधार लेना है। वाप्रस्वी को अपन तारीर त भी को माह नरा रना है इग लिए बह बगर व्रतो और तपस्याआ से अरा शरीर को मुगाना है। वान प्रस्वी महात्मा एव स्थान पर आगन लगा कर बठन है ताना कात गुरा दोपहर जीर शाम को स्नान करत है तथा सध्या करत है। गण स्वय भाजन करन वाले होत है। वानप्रस्थ का आश्रय लकर कोई ब मून म और काई कोई ह् व्रत का पालन करत हुए पूना म ही धमानुसूल जाविना तान है। वानप्रस्थ का श्रष्ट धम बताते हुए यमाति ने अष्टक से बग नि वानप्रस्थ मुनि का जो धर्म पालन है वहा सरलता है बग समाधि है और बने श्रष्ट आचरण है। * वानप्रस्थ मुनि का जीवन इतना बठोर व्रता त पूण हाता है कि अय सब धम उसी म पूण हो जाने हैं। उसको गमाधि लगात की आवश्यकता नहा होती है। क्योंकि उमका जीवन स्वय ही एव गमाधि जमा हाता है। इसलिए वानप्रस्थ का बठोर तपपूण जीवन सब धमों से श्रष्ट है।

३—वानप्रस्थ के कतव्य—

वानप्रस्थ के पालन करन वाले मनुष्य धम का अनुसरण करत हुए पवित्र तीर्थों नदियों के किनारे भरनो के आसपाम घन बनो म विचरन रहते है। गहस्यो के उपभोग म आने वाले मुदर वस्त्र स्वाच्छिष्ट भोजन और विषय भोगा का परित्याग करव ब जगलो म होन बाल क मूल पत्ता का आहार करते है तथा मृगचम जयवा वृक्षा की छाल से बन वस्त्र पहनते है। मिर के बाल दाढी मूँछ नख और रोम सदा धारण किय रहने से वे नाना प्रकार के नियमों का पालन और सत्कर्मों का अनुष्ठान करते रहने से वे बड दुबला शरीर हो जाते हैं। ऐम तपस्विमा के वर्त्तव्य वतात हुए ब्रह्मागी

८—ज्योऽप्यनीगस्य तथैव राज

स्तदाजव स समाधिरतदायम ॥

आदिपव-अध्याय ८२, श्लोक ५

न मर्हपिया न इम प्रकार कहा कि ' नित्य प्रति पहल देवता जोर अनिथिया वा भोजन द, उसके बाद मीन होकर स्वय अन्न ग्रहण करे । किमी स स्पघा न करे ह का भोजन करे दवनाआ का महारा ल । इद्रिया का समय कर सबके साथ मित्रता का वर्ताव करे क्षमाशील बन और दाडी मू छ नया सिर के वाला को धारण किय रहे । समय रर अग्निहाय और वंदा का स्वाध्याय कर तथा मर्य धम का पालन कर । ' वानप्रस्थी को सदव मर्य का पालन करना चाहिए तथा क्षमाशील हाना चाहिए । सके साथ मद् व्यवहार करना चाहिए जन धर्मों का पालन नियम स करना चाहिए । धम के पालन म कोई प्रमाद नही करना चाहिए । अतिथि सत्कार भी वानप्रस्थी के लिए परमा वश्यक बनाया है । अतिथि क सत्कार के विषय म ब्रह्माजी न इस प्रकार कहा कि ' अतिथि को आश्रय दे और समय पर उनका सत्कार करे । कोई अतिथि आजाय तो फल मून की भिक्षा दकर उसका सत्कार करे । वमी आलस्य न कर । जो कुछ भोजन अपन पाम उपस्थित हो उसी म स अतिथि को भिन्ना द । ' ' वानप्रस्थी के पास किसी भी समय यदि कोई अतिथि आ जाय ता आलस्य छोडकर शीघ्र ही उसकी पूजा अचना करे और

१०—देवतातिथिपूर्व च सदा प्राश्नीते वाग्यत ।

अस्पधितमनाश्च लघ्वाग्नी देवताध्यय ॥

दातो मत्र क्षमायुक्त केशाश्मथु च धारयन् ।

जुह्वन् स्वाध्यायशीलश्च सत्यधमपरायण । ।

आश्वमेधिकपव अध्याय ४६, श्लोक १४ १५

११—अचयन्नतिथीम् काले दद्याच्चापि प्रतिधयम ।

समूलफलभिक्षाभिरर्चैदतिथिमागतम ।

पद् भक्ष्य स्यात् ततो दद्याद् भिक्षा नित्यमतद्भित ॥

आश्वमेधिक पद—अध्याय ४६ श्लोक १२-१३

गाम ही जो बुद्ध आगे पाग कर्म, मूत्र, पत्र आदि ११ उपाय उपाय गाने का है। धर्मागत पर बह हृण गिष्ट पुण्या द्वारा उपाय धर्मागतुक्त कथाय गुणनी चाहिए, पुष्य आश्रम याना चाहिए। यह पृथ्या पर गाव। यथाश्रमी गता व्रत और उपवास म तत्पर रहे हूमरा पर कामा का भाव रहन आती इन्द्रिया को वश म रग। धर्म का विज्ञान करता रहे। यथाश्रमा को गरीर का निरन्ता करन के लिए क्या लगाता चाहिए इग तत्पय म मर पर न उमा म कहा कि 'याश्रम्य का जीविता व' निग नीशर (निग्रा का पावन) और पत्र मूत्र का संयत् करता चाहिए तथा गरीर म स्निग्धता तात या तात म होन वाल कायी व निवाह व लिए इगु और रेधा व तन का संयत् करता चाहिए। उह योग का अभ्यास करव उगम गिद्धि प्राप्त करना चाहिए। काम और क्रोध को त्याग दना चाहिए। विगात और पात वन म निराग करना चाहिए। १२ वन म रहन रहन वानप्रस्था का शरार जब बहुत गुण हा जाता हा, तब उसे इगु या रडी का तल लगाता चाहिए अथवा अ व किसी वस्तु म यदि तल की आवश्यकता पर तब भी इ हा तात म काम लना चाहिए। सग याग का अभ्यास करना चाहिए तथा काम और काय जसे मनुष्य के गत्रुआ को त्याग दना चाहिए। काय को त्याग बिना याग साधन कठिन है। वानप्रस्थी व व्रता का यतात हुए महेश्वर न उमा रा कहा कि 'अष्टमी तिथि को होने वाल अथवा श्राद्धस्य यन म तत्पर रहना चातुर्मास्य व्रत का सेवन करना पौणमास और दशनादियन तथा नित्ययन का अनुष्ठान करना वानप्रस्थ मुनि का धर्म है। १३ चातुर्मास्य यन वपाश्रुतु व चार महीना

१२—नीवारग्रहण च व फलमूलनिषेवणम् ।

इडगुवरणतलाना स्नेहार्ये च निषेवणम् ॥

योगचर्माकृत सिद्ध कामक्रोधविवर्जित ।

वीरशय्यामुपासद्भिर्बोरस्थानोपसेविभि ॥

अनुशासन पत्र-अध्याय १४२ श्लोक ७ ८

१३—अष्टमीयज्ञपरता चातुर्मास्यनिषेवणम् ।

पौणमासावधौ यज्ञा नित्ययज्ञस्तथैव च ॥

अनुशासनपत्र-अध्याय १४२, श्लोक १५

म कही भ्रमण न करे, एक जगह ही रहना चाहिए उसे चातुर्मास यत्र कहने है । वानप्रस्थी को बहुत हुए जल, वायु आदि सब वन की वस्तुओं का ही सेवन करना चाहिए । वानप्रस्थ के कर्त्तव्य बताते हुए यासजी न कहा कि 'वन म फल मूल खाकर रहे भारी तपस्या म तत्पर हो जाय पुण्य तीर्थों म भ्रमण करे और किसी भी प्राणी की अपने द्वारा हिमा न होने दे ।'^{१४} वान प्रस्थी को सब जावों पर दया रखना चाहिए । किसी भी जाव की हिंसा न करनी चाहिए । हिंसा न करना वानप्रस्थी के लिए बड़ा धर्म है । वानप्रस्थ के भोजन व विषय म बताते हुए महेश्वर न उमा से कहा कि 'व वायु अथवा जल पीकर रह । सेवार का भोजन कर । पत्थर स अन्न या फल को कुचल कर खावें अथवा दाँतो से चबाकर ही भक्षण करें । सम्प्रक्षाल के नियम से रह अर्थात् दूसरे दिन के लिए आहार सग्रह करके न रख ।'^{१५} वस वानप्रस्थी के लिए अन्न का भोजन वर्जित है किन्तु यदि कही वन म ही अन्न पदा हो जाय और वानप्रस्थी उसे खाना चाहे तो उस अन्न का या तो पत्थर से पीसकर खा ले अथवा दाँतो से चबाकर खा लना चाहिए । इसी प्रकार यदि कोई फल इतना बड़ा हो कि हाथ से न टूटे तो उसे भी पत्थर से अथवा दाँतो से तोड़कर खाना चाहिए । वसे वानप्रस्थी के लिए वन म होने वाले समा के चावलो का ही उल्लेख है । वानप्रस्थी को एक ही दिन के लिए जितना भोजन आवश्यक हो, उतना ही भोज्य पन्था सग्रह करना चाहिए तथा बतना को उसी दिन धो मज्जकर साफ कर दना चाहिए । दूसरे दिन के लिए भोजन का प्रबंध न करना चाहिए यही वान प्रस्थी के लिए सम्प्रक्षाल का नियम है ।

१४—वने मूलफलाशी च तप्यन् सुविपुल तप ।

पुण्यापतनचारी च भूतानामविहिंसक ॥

शक्तिपर्व—अध्याय २४२ श्लो० ७

१५—अम्भक्षव्यायुभक्षश्च क्षवलोत्तरभोजन ।

जश्मकुटस्तथा दात सम्प्रक्षालस्तथापर ॥

अनुशासनपर्व—अध्याय १४२ श्लो० ११

४—वानप्रस्थ की चार वृत्तियाँ—

वानप्रस्थ आश्रम म गृहस्थ की भाँति जीवन निर्याह व लिए तथा अनिधि सत्कार और यत्न के लिए अन्न सग्रह करने की आवश्यकता मानी जाती है। इस आश्रम म भी चार प्रकार से अन्न सग्रह करने का विधान है। वानप्रस्थी के अन्न सग्रह की वृत्तियाँ बताते हुए व्यास जी ने इस प्रकार कहा कि वानप्रस्थ आश्रम म भी चार प्रकार की वृत्तियाँ मानी गई हैं। वार्ड उतने ही अन्न का सग्रह करता है कि उसी दिन बना साकर वर्तन माजजर साफ करले अर्थात् दूसरे दिन को अन्न न रखे। कुछ दूसरे लोग एक महीन व लिए अनाज का सग्रह करते हैं। कोई वष भर व लिए और कोई बारह वर्षों के लिए होता है।^{१६} वानप्रस्थ आश्रम म अधिकतर मुनि लोग अन्न का सग्रह नहीं करते हैं। वे लोग वन म उत्पन्न हुए फल व मूल आदि ही खाकर अपना जीवन निर्याह करते हैं। बिना जोती हुई पृथ्वी से पदा हुआ धान जो नीवार तथा विषस (अतिथियों को देने स वच हुए) अन्नसे जीवन निर्याह करते हैं। इन वन म उत्पन्न हुई वस्तुआ का सग्रह हो नहीं सकता क्योंकि वन मूल, फल तो नित्य ताडकर ताजी ही खाय जा सकत है। वन म उत्पन्न समा का चावल जाति कुछ अन्न ऐसे होत है जिनका सग्रह वनवासी मुनि कर सकत है। वर्षासुनु म पचयजा व लिए अन्न की आवश्यकता को मुनि लोग सग्रह स ही पूरा करत हागे। वर्षा म वनवासी लोगो को अन्न का वटा सकट होता होगा। उनका अग्ने भाजन व अतिरिक्त पचयजा के लिए अन्न की कठिनाई अवश्य होती होगी। उम कठिनाई को दूर करने के

१६—वानप्रस्थाश्रमेष्वेताश्चतस्रो वृत्तय स्मृता
सद्य प्रभालका केचित् कश्चिन्मासिकसचया ॥
वारिक सचय क्वचित् केचिद् द्वादशवारिकम् ।
कुच यतिथिपूजाय यत्न त्रायमेव वा ॥
गातिपत्र—अध्या० २४४, श्लो० ८ ६

एक अन्न का संग्रह करना वानप्रस्थी के लिए उचित ही था। अपना भोजन भी वानप्रस्थी एक बार ही करता था तथा वह भी बहुत स्वल्प इसलिए वह अपना उदर तो फल-फूलों से भी भर सकता था किन्तु पचयना का बंधन वानप्रस्थी के लिए अन्न संग्रह का कारण है।

५—वानप्रस्थ से स्वर्ग प्राप्ति—

वानप्रस्थी मुनि जब नियमपूर्वक रहकर अपन जीवन को सफल बनाते हैं तो अंत में अपने पुण्या में उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति होती है। वानप्रस्थी को मोक्ष कैसे मिलती है, इस विषय में ययाति ने अष्टक से कहा कि 'वानप्रस्थ मुनि वन में निवास करे। आहार और विहार को नियमित रखे। अपन ही पराक्रम एवं परिश्रम से जीवन निर्वाह करे, पाप से दूर रहे। दूसरा को दान दे और किसी को कष्ट न पहुँचावे। ऐसा मुनि परम मोक्ष का प्राप्त होता है।' जो वानप्रस्थी अपन ही परिश्रम से अन्न प्राप्त करके अपना जीवन निर्वाह करते हैं तथा सत्ता पापकर्मों से दूर रहते हैं और पुण्यकर्मों में ही सदा अपना मन लगाते हैं उनको अन्त में मोक्ष प्राप्ति होती है अर्थात् अपन कर्मों से पुण्यो से वे मुनि फिर इस असार ससार में जन्म धारण नहीं करते। उनकी आत्मा परब्रह्म में लीन हो जाती है। अपनी तपस्या के बल से वानप्रस्थी इस लोक पर तो विजय प्राप्त कर ही लेते हैं अपना परलोक भी मुधार लेते हैं। परलोक पर विजय प्राप्त करने के विषय में बताया हुआ ययाति ने अष्टक से इस प्रकार कहा कि 'तपस्या में मग्न रहूँ तथा रक्त कर्म धीण हो जाने पर जिनका शरीर वृद्ध और दुबल हो गया है वह वानप्रस्थी मुनि इस लोक को जीत कर परलोक पर भी विजय पाता है। जब वानप्रस्थ मुनि सुख दुःख राग द्वेष आदि द्वन्द्व से रहित एवं भलीभाँति मौनावलम्बी हो जाता है, तब

१७—स्ववीर्यवीर्यो धृजिनाग्निवृत्तो

दाता परेभ्यो न परोपतापी ।

तादृग्मुनि सिद्धिमुपति मुन्या

वसन्तरण्ये नियताहारचेष्ट ॥

मादिपत्र—अध्याय ८१ श्लो० ४

इस लोक को ही जीतकर परमात्म पर भी विजय पाता है। १८ जो मननरम्य मुनि आती घोर तपस्या में आता ही तपस्वी को मुक्त बना है तथा मुक्त-मुक्त का उग मुक्त भी ध्याता नहीं रहता है और उगरे मन में रागादिवर्जित बिल्लुन नहीं रहते तब स्वस्वद मनसा वातप्रस्था भक्त्य ही परमात्म का जीवन वाता हो सकता है। मुक्त-मुक्त का अनुभव न होना सिद्धांत ही कि रागादिवर्जित होना यही तब ही घटा हो प्रसार में बंध मोक्त नहीं रहे जाता तथा जो बंध मोक्त प्राप्त किए रहता है अपात् जो मुनि बंध भक्त्या तपस्या में ही समा रहता है तथा मुक्ति में प्राप्त करने योग्य हो जाता है और कि इस प्रकार में जन्म नहीं होता है। तब तपस्या मुक्ति का पानन कर। तब यमानि त कहा कि जो वातप्रस्था मनुष्य पापकर्मों में निर्य भय करता है और तथा अपन धर्म का आचरण करता है वह आपत्त मुक्त्य माता को अनायास ही प्राप्त कर भाता है। १९ माता का स्वस्वद तथा वाता व तपस्या मुक्ति प्राप्तियों से तथा टरता रहता है और अर्थात् कर्मों में ही तपस्य तथा स्वय ही प्राप्त ही जाती है। वातप्रस्था का स्वय प्राप्ति बंध हुआ है इस विषय में बताता हुए ब्रह्माजी ने महाविद्या से इस प्रकार कहा कि तपस्वी का सदा पवित्र रह। धर्म पालन में कुशलता प्राप्त कर। तथा वा में रहकर चित्त को एकाग्र किए रह। इस प्रकार उत्तम धर्मों का पानन करने वाला

१८—तपसा कश्चितः क्षाम क्षीणमांसास्थिगोणित ।
 स च लोकमिम जित्वा लोक विजयते परम् ॥
 य वा भवति निद्र द्वो मुनिमो न समास्थिन ।
 अथ लोकमिम जित्वा लोक विजयते परम् ॥

आदिपत्र—अध्या० ६१, श्लो० १६ १७

१९—पापानां कर्मणा नित्य विभियाद् यस्तु मानव ।
 सुखमप्याचरन् नित्य सौम्यत सुखमेवते ॥

आदिपत्र—अध्याय / श्लो० ४

जितेन्द्रिय वानप्रस्थी स्वर्ग पर विजय पाता है । उत्तम गुणा से युक्त जितेन्द्रिय वानप्रस्थी पुरुष ही उत्तम लोका पर विजय पाता है । वह उत्तम स्थान को पाकर फिर इस ससार में जन्म धारण नहीं करता । २ वानप्रस्थी मुनि का मन सदा शांत और एकाग्र रहता है । वह सदा धर्म के ही आचरण में लगा रहता है तथा सब इन्द्रियों को वन में रखता है, वही मुनि मोक्ष का अधिकारी होता है । अपनी तपस्या से तथा धर्मपूर्ण आचरण से वनवासी मुनि अपनी तो मोक्ष करते ही हैं साथ में अपने पूजकों का भी उद्धार करते हैं इस विषय में बताते हुए ययाति ने कहा कि 'जो वनवासी मुनि वन में ही अपने पंचभूतात्मक शरीर का परित्याग करता है वह दस पीढ़ी पूर्व के और दस पीढ़ी बाद के जाति भाइयों को तथा इच्छीसर्वे अपने का भी पुण्यलाभों में पहुँचा देता है ।' २१ जो वानप्रस्थी मुनि तपस्या से अपने शरीर को सुखाकर अपने शरीर को वन में त्याग देता है, वह बड़ा पुण्यवान् आदमी समझा जाता है । उस अकेले की तपस्या में वह अपनी तो मोक्ष करता ही है, साथ में अपने पूजकों और आने वाली पीढ़ियों का भी उद्धार करता है । तपस्या में बड़ा बल है ।

२०—शुचिदेहं सदा दक्षो वननित्यं समाहितः ।
 एव युक्तो जयेत् स्वर्गं वानप्रस्थो जितेन्द्रियः ॥
 एव युक्तो जयेत्लोकान् वानप्रस्थो जितेन्द्रियः ।
 न सत्सरति जातीषु परमं स्थानमाश्रितः ॥

आश्वमेधिक पर्व—अध्याय ४६, श्लो० १६ ८

२१—दशैव पूर्वान् दश चापराश्र
 ज्ञातीन्थात्मानमधीकं विशम् ।
 अरण्यवासी मुकृते दधाति
 विमुञ्च्यारण्ये स्वशरीरघातून् ॥

आदिपर्व—अध्या० ६१, श्लोक ७

प्राचीन युग म वानप्रस्थ धम का पालन एव प्रचार करने वाले अनेक ऋषियो ने मोक्ष प्राप्त करनी जीर स्वर्ग म जाकर हमारा के लिए जमर हो गय । उनम स अगस्त्य ऋषि सप्तपिण्ड मधुच्छन्द आदि अनेका ऋषि वानप्रस्थ के धम पालन से स्वर्ग मे जाकर आकाश म नक्षत्र बन गय । नक्षत्र बने हुए वानप्रस्थियो की प्रशंसा करते हुए ऋषि जी ने कहा कि य सब ब्रह्मण प्राय उपवास आदि क्लेशनायक कर्म करने के कारण लौकिक सुख म रहित थे । सदा धम में तत्पर रहते और इन्द्रियो का वश म रखत थे । उह धम के फल का प्रत्यक्ष अनुभव था । वे सब ने सब ज्ञानप्राप्ती थी । इम लोका से जान के बाद वे आकाश में नक्षत्र भिन्न, दुष्य ज्योतिमय तारा के रूप म दृष्टिगोचर होते हैं ।^{१२२} वानप्रस्थ के धम पालन के कारण ही वे अनेक तपस्वी ब्राह्मण आकाश म जाकर नक्षत्रो स भिन्न अधिक प्रकाश वाले होकर हजारों से चमक रहे है जीर आग भी चमकते रहत । यह प्रताप उनकी तपस्या का है । उनक त्याग और सत्यता तथा धमानुकूल आचरण से हा आज उह इतना मान मिला हुआ है । धम के पावन से तथा त्यागमय तपस्या द्वारा आज भी इम कलियुग म जो भी मनुष्य चाह स्वर्ग प्राप्त कर सकत है । स्वर्ग की प्राप्ति तो सत्कर्मों से प्राप्त हो जाती है । इसलिए स्वर्ग की इच्छा रखन वाले मनुष्य सत्कर्म कर उनकी इच्छा पूरा होगी ।

१२—कमभिस्त निरानदाधमनिर्वाजितेऽपि ।

गता प्रत्यग्धर्माणस्त सार्धे वतमात्रिणा ॥

अनन्याप्रास्त्वनापृष्या हरपत्ने ज्यां धां गणा ॥

गातिपरम—अध्याय २४४ श्लो० २१३

महाभारत में सन्यास-आश्रम

१--स यास का समय—

चारा आश्रमों में सन्यास आश्रम ही ऐसा आश्रम है जो मनुष्य का मोक्ष प्राप्त करता है। स यास आश्रम में वही मनुष्य प्रवेश करत है जिनकी चित्त अध्यात्म का ओर होनी है। ब्रह्मचर्य गृहस्थ और वानप्रस्थ इन तीनों आश्रमों में चित्त का राग द्वेष आदि दोषों को पकाकर—उट्ट नष्ट करके शीघ्र ही सर्वोत्तम चतुर्थाश्रम सन्यास को ग्रहण करे।

स यासी पुरुष सत्र वधना से मुक्त होता है। स यासी पुरुष अग्निमान धन स्त्री आदि परिवार की तथा घर की सम्पूर्ण वस्तुओं का परित्याग करके आसक्ति का वधना को त्यागकर सदा के लिए घर से बाहर निकल जाता है। स यासी लोग मिट्टी और पत्थर तथा स्वर्ण मयके समान समभक्त हैं शत्रु और मित्र का प्रति उदासीन हो जाते हैं। स्थावर पिण्ड अण्डज स्वेदज और उद मिज्ज प्राणियों के प्रति मन वाणी और क्रियाओं द्वारा कभी द्वेष नहीं करत। सबके प्रति समान दृष्टि रखते हैं। स यासी अपने लिए कुटी या मठ बनाना नहीं करते। वे हमेशा चारों ओर भ्रमण करत रहते हैं। चलते चलते जहाँ कहीं भी गत हो जाय वही ठहरकर रात बिताते हैं। रात्रि में ठहरने के लिए पर्वत की गुफा नदी का किनारा, वृक्ष का जड़, देव मन्दिर या नगर गाव ही उचित है। स यासी नगर में पांच रात्रि से अधिक नहीं ठहरें और गाव में एक रात्रि से अधिक नहीं ठहरें। सन्यासी को प्राण धारण के लिए विगुद्ध धर्मों का पालन करने वाला ब्राह्मण क्षत्रिय वश्य के घरों पर खटा हो जाना चाहिए और बिना माग जा पात्र में आ जाय भिक्षा लेकर लौट जाए। भिक्षा मागने नगहर में जाय जब सब गृहस्था की रमोड़ का धुँआँ बंद हो जाय। स यासी काम, क्रोध, दप, लोभ मोह कृपणता लज्जा निम्न अभिमान तथा हिंस

स सयस्य दूर रहे । सयसी सभी सिंगी का सिंगी १ गुन और आती सिंगी
करा यात की ओर आंग उठाकर दग भी नहीं ।

सयस आश्रम को ग्रहण करने का समय यम तो शास्त्रानुसार करीब
७५ वर्ष पूरा होना चाहिए । सयस्य ग्रहण करना यात की उम्र हमन
बुद्ध कम और बुद्ध अधिन भी हो सकती है । सयस्य का समय बनाया हुआ
व्यास जी न बता कि ' इम प्रकार वानप्रस्थ की अवधि पूरा कर लेना चाहिए
जब आयु का चौथा भाग गप रह जाय, वृद्धावस्था म गरीर दुर्बल हो जाय
और रोग सतान लगे तो उम आश्रम का परिवर्षण कर ले (और स पाग-आश्रम
ग्रहण कर ले) । सयस्य की दीक्षा लन समय एक दिन म पूरा होना चाना यम
करवे अपना सयस्य दक्षिणा म द डा । १ वानप्रस्थी का गरीर जब बहूत
दुर्बल हो जाय तथा उत्तम अपना नियम का पूरा करती गरीरिगि गति १
रह तथा अनन प्रकार क रोग उसे सतान लगे तब उम मनुष्य का यानप्रस्थ
आश्रम छोडकर सयस-आश्रम ग्रहण कर लेना चाहिए । वानप्रस्थ आश्रम में
रहने वाले के पास अग्निहोत्र आदि कुछ वस्तुएं होनी है उन मय वस्तुआ को
उसे एक दिन का यम करवे दान म दे देनी चाहिए और बिना किनी वस्तु के
सयस्य ग्रहण कर लेना चाहिए । वानप्रस्थ म तप और श्रत पूरा करवे सयस्य
गृहण करना चाहिए । सयस्य आश्रम सब श्रत नियम के बंधा स मुक्त है ।
इसलिए सयस्य को ग्रहण करवे मनुष्य अपना तन, मन सय ईश्वराधान म
ही लगा देता है । सयस्य आश्रम मुक्ति का माग है ।

२—सन्यासी के लक्षण —

सयसी एकाकी होता है । वानप्रस्थ के समान वह स्त्री को साथ नहीं
रख सकता । सयसी एक स्थान पर नहीं रहता, चारो ओर घूमता रहता है

१—जरया च परिच्छूनो ध्यायिता च प्रपीडित ॥

चतुर्थे चायुष मेवे वानप्रस्थाश्रम त्यजेत् ॥

सद्यस्कारा निष्कर्षेष्टि सववेदत क्षणाम् ॥

गार्गीतपव—अध्याय २४४, श्लोक २२ २३

इसलिए उसे परिव्राजक कहते हैं। यग, जप, तप आदि सब कर्त्तव्य उसके लिए समाप्त हो जाते हैं। उनको पूरा करके ही वह सत्यास ग्रहण करता है। अतः अग्नि धारण उसके लिए आवश्यक नहीं है। इसलिए उस 'अग्नि भी कहते हैं। गृहस्थ और वानप्रस्थ के कर्त्तव्यों को पूरा करके तथा सब पितर और ऋषियों के लीन ऋणा को चुवाकर ही सत्यासी को मोक्ष में अग्न्या ध्यान लगाना चाहिए। वानप्रस्थ मुनि को सत्यास के लिए क्या करना चाहिए इन विषय में व्यास जी ने कहा कि वानप्रस्थ मुनि का लोम और नख कटाकर बर्तों से परित्र हो वानप्रस्थ से सत्यास में प्रवेश करे।^२ वानप्रस्थी के लिए जटा, लोम, नख आदि रखने का नियम है किन्तु वनवासी सत्यासी को उसका उल्टा है कि वह सिर के बालों को नखा का कटवा रहे हैं। सत्यास का अर्थ ही यही है कि वह सबदा सिर मुड़ाकर रहें। सत्यासी को सब प्रकार के वस्त्रों का त्याग करना चाहिए, केवल मृगछाला से काम चलाना चाहिए। जो अग्नि और गृह को त्याग चुका है जिसका गोत्र और चरण अर्थात् जाति आदि में भी सम्बन्ध नहीं रहा है, जो मौन रहता है तथा उतने ही वस्त्र की इच्छा रखता है जितने से लगोटी और ओटने का काम चल जाये। इसी प्रकार जितने अन्न से जीवन निवाह हो सके, उतना ही अन्न ग्रहण करना चाहिए। सत्यासी के लिए कम से कम अन्न तथा कम से कम वस्त्र की भिन्ना लनी चाहिए। सत्यास के लक्षण बताते हुए ययाति ने अधिक से कहा कि 'जिस समय रूप, रस आदि विषय तुच्छ प्रतीत होकर लगे इच्छानुसार जीते लिए जायें तथा उनके त्याग में ही सुख जान पड़े उसी समय विद्वान् पुरुष मन को बगैर करके समस्त संप्रदाय का त्याग कर वनवासी होने का प्रयत्न कर।^३ जब

२—केगलोमनखान् वाप्य वानप्रस्थो मुनिस्मन ।

आश्रमादाश्रम पुण्य पूतोगच्छति कमभि ॥

शांतिपत्र—अध्याय २४४, श्लोक २७

३—राग्या यथा धाभिजिताश्च लोका

भवति कामाभिजिता मुक्ताश्च ॥

तामेव रात्रिं प्रयतेत विद्वा—

नरव्यसस्यो भवितु यतात्मा ॥

आदिपत्र - अध्याय ६१, ६

मनुष्य का मन मूर्ख की मोह ममता में तथा धानप्रसव के मय पत्तों में पूर्ण
 में गाय और उस सांसारिक यन्त्रुभा में मारूत रहै । मय यन्त्रुण व्यय मगन
 तम तभी उस मयागा हो जाता चाहिए और अना जाता या उदारत मय
 अयनाता चाहिए । जो मनुष्य वा म रहकर भा ग्राम की यन्त्रुभा में मारूत
 श्रेयता वह वायाना हाता हुआ भा ग्रामवागा हा यता रहता है । यनवागा
 शकर भी त्रिमयी इच्छाए वृष्ण तहा हाता । ता उमरा मयाग मना मय है
 दमस ता उग ग्राम म हा रहता चाहिए । जो मनुष्य रगता ता ग्राम म है त्रि
 उसना इच्छाय यनवासी अमी हा जाता है । ता यत ग्राम म रगता हुआ भा
 यनवागा क ममान है । म यागी क सभ्य यताए हुए ध्याग ता त पुत्र जा
 स बन्ध त्रि भिशापात्र एव क मण्डनु रग । वृत्त की जट म गाव या निथाग
 कर । जो दमन म सुन्दर त हो, एगा वस्त्र धारण कर । त्रिगी का गाव न
 रम जोर सब प्राणिया वा उपधा कर द । य मय सयागा क सभ्य है । *
 मयासी को अपन साथ न तो मनुष्य रगना चाहिए और त कर्ई यन्त्रु रगना
 चाहिए । उस ता क्वच भिक्षा मागन क लिए एत भिशापात्र तथा जट या
 क त्रिद एक क मण्डन रगना चाहिये । उसको गण्ट रग क अमु त्र वस्त्र धारण
 करन चाहिए । ससार क सर प्रकार क जीदा म प्रेम दाड द और अपन वा
 अक्ला ही समझे । वृधा की जडा म रात्रि हात पर मो जाय । मनुष्य
 को जब ऐसी भावना पता हो जाय त्रि वह किगा क द्वारा निष्ठा करन
 पर या प्रसंगा करन पर बुद्ध उत्तर न द अद्यान् मय प्रकार की वाता
 को सुनकर जो बुरा या अर्द्धा नहा मानना उमे म याग आश्रम म प्रवृत्त
 करना चाहिए । सयासी को मठ या ग्रह न बनाना चाहिए इम विषय
 में यासजी ने इम प्रकार कहा कि 'सयासी कभी न तो अग्नि का
 स्थापना करे जोर न पर या मठ ही बनाकर रहे क्वचल भिक्षा लन के लिए
 ही गाव म जाय ।' * सयासी को सदा जनिकत रहना चाहिए । मकान या
 मठ बनाकर रहना सयासा के लिए अनुचित है । सयासी को गाव म भा

४—कपाल वृक्षमूलानि कुचलमसहायता ।

उपेक्षा सबभूतानामेतावद् भिक्षुलभम् ॥

शांतिपर्व—अध्याय २४५ ७

५—अनग्निरनिकेश्व ग्राममन्नायमाश्रयेत् ॥

शांतिपर्व—अध्याय २४५ ५

अधिक जाना निषेध है। उस केवल भिक्षा मात्र के लिए गाव म प्रवेश करना चाहिए। गाव म अधिक जाना तथा गृह या मठ बनाकर रहना सयासी के माह का लक्षण प्रतीत हागा। ऐसा सयासी वास्तविक सयाती नहीं है और न वह आग जीवन मे मोक्ष को प्राप्त हो सकेगा सयासी के नियम बताते हुए ययाति ने अष्टक से इन प्रकार कहा कि "सयासी शिल्प कला स जीवन निर्वाह न करे। शम, दम आदि श्रेष्ठ गुणा मे सम्पन्न हो। सदा अपनी इन्द्रिया को वश म रखे। सबसे अलग रह। गृहस्थ के घर म न साये। परिग्रह का भार न ले, स्वय स्वतन्त्र रहे।" सयासी को जीवन निर्वाह के लिए चित्रकला आदि दस्तकारी का सहारा नहीं लेना चाहिए उसे तो केवल भिक्षा से जीवन यापन करना चाहिए। सब प्रकार के दुखा को सहन करन की शक्ति होनी चाहिए तथा दूसरा के द्वारा कहे हुए अच्छे या निःशर्मक शब्दा का कोई उत्तर न देने की भी शक्ति होनी चाहिए, तभी सच्चे शब्दा म सयासी माना जाता है। सयासी अपनी इन्द्रिया को सदा वग मे रखना है। सयासी कभी भी गृहस्थ के घर म न मोये। थोडा थोडा चलता रहे, भ्रमणशील हाकर रह। किसी प्रकार की वस्तु को साथ न रखे, सदा अपरिग्रही बनकर रहे। सयासी के लक्षण बताते हुए ब्रह्माजी ने महर्षिया से इस प्रकार कहा कि "कभी सुवर्ण की इच्छा न करे। किसी स द्वेष न कर और उपदेशक न बने तथा सग्रहरहित रहे। * किसी भी धन की इच्छा न कर, किसी को उपदेश न दे तथा सब सग्रहो का त्याग कर दे। ब्रह्माजी ने महर्षिया से कहा कि

६—अशिल्पजीवी गुणवाश्च व नित्य

जितेन्द्रिय सवतो विप्रयुक्त ।

अनोकगायी लघुरूपप्रचार—

श्ररन् देशानेकचर सभिभु ॥

आदिपव—अध्याय ६१, श्लोक ५

७—न शिल्पजीविका जीवेद्विरण्य मोत कामयेत् ।

न द्वेष्टा नोपदेष्टा च भवेच्च निरुपस्कृत ॥

आरवमेधिक पर्य—अध्याय ४६, श्लोक ३७

मोक्ष धम क ज्ञाना साधामी को उचित है कि सदा पतिव्रत जन्म म काम म । प्रतिदिन तुरन्त निराम हृण जन्म म स्नात कर । ६ कुण्ड म सुग्ग निरता हुआ जल हा साधामी क तिम श्रेष्ठ हागा है । इगतिम उम गग्ग सुग्ग निरता हुआ जल ही पीना तथा अय काम म स्नाना चाहिये, पदन म भरत्तर रक्ता हुआ पानी कभी काम म न लागे । साधामी को उचित है कि भविष्य क तिम विचार न करे बानी हुई किगा भी प्रवत्तर की घटनाश्रुता का तिम न करे और यत्तमान की भा उपागा करे । कवन पात की प्रतीगा नग्ग हुआ चित्तवृत्तिया का समाधान करता रहे । तेन म मा म और याना स कहा भी दोषदृष्टि न करे । मवक मामा या दूमरा का आंग यत्तत्तर का, वुराइ न करे । साधामा न आठ व्रत यत्तात हृण ब्रह्मज्ञा न मर्त्यिया म कहा कि 'अहिंसा ब्रह्मचय, सत्य सरलता, श्राप का अभाव, दोष-दृष्टि का त्याग इन्द्रियसयम और चुगला न गाना—एन आठ व्रता का सदा सावधानी क साथ पालन करे । इन्द्रिया की वश म रग । ७ साधामी को ब्रह्मचय का पालन करना चाहिये हमगा सत्य बोलना चाहिए श्राप कभी नहा करना चाहिए, हमगा सरलता स तथा गति स रहना चाहिये, किगी क पाय म कभी दाग दृष्टि नही रखनी चाहिए कभी किसी की चुगली नहा गानी चाहिये, हमगा इन्द्रिया का वश म रखना चाहिये सब जीवा पर सदा दण ररानी चाहिये य सन्यासी क लिये महत्त्वपूर्ण व्रत हैं । इनको पालन करा वाला साधामा ही सही अर्थों म साधामी है । साधामी क सनातन धम यत्तात हृण कपिलजी न कहा कि सतोप ही गितवे सुख का मून है त्याग ही जिसका स्वस् है

८—पूताभिरङ्गिनिय च काय कुर्वीत मोक्षवित् ।

उपस्पृशेदुद्धताभिरङ्गिश्च पुण्य सदा ॥

भारवमेधिव पव—अध्याय ४६, श्लोक २८३

९—अहिंसा ब्रह्मचय च सत्यमाजवमेव च ॥

अक्रोधश्चानसूया च दमो नित्यमपगुनम् ।

अष्टस्वतेषु युक्त स्याद् व्रतेषु नियतेषु द्वय ॥

भारवमेधिव पव अध्याय ४६, श्लोक २९३

जो ज्ञान का आश्रय कहा जाता है, जिसमें मोक्षदायिनी बुद्धि—ब्रह्मसाक्षात्कार रूप वृत्ति निरव्यवहार है वह सायास आश्रमरूप धम सनातन है ।^१ जिस मनुष्य में सतोप का भाव आ जाता है, वह उसके लिए सुख का मूल ममता जाता है और सतोप ही सायामी के लिये परमावश्यक व्रत है । इसी प्रकार सायासी के लिये त्याग की भावना भी बहुत आवश्यक है । त्याग की भावना से ही मनुष्य इस असार ससार को व्यय समझने लगता है और व्यय समझने के कारण ही वह मोक्ष की इच्छा रखता है । सायास-आश्रम मोक्ष प्राप्ति का माग है । सब प्रकार की कामनाओं से रहित मनुष्य ही सायास को ग्रहण करता है और अंत में मोक्ष को प्राप्त करता है । सायामी के धम बताते हुए व्यासजी ने भाम्प से कहा कि 'आत्मा का ही यजन, आत्मा में ही रत होकर आत्मा में ही क्रीडा करे । सब प्रकार से आत्मा का ही आश्रय ले । अग्निहोत्र की अग्नियों को आत्मा में ही आरोपित करके सम्पूर्ण सग्रह परिग्रह को त्याग दे ।'^{११} जब वानप्रस्थ आश्रम में रहकर मनुष्य के सब प्रकार के नियम, ध्यान आदि कम पूरे हो जायें और उस आत्मा में ही आनंद प्रतीत होने लग, तभी उसे वानप्रस्थ छोड़ कर सायास ग्रहण कर लेना चाहिये । सायामी का यज्ञ आत्मा ही हो, तथा सब प्रकार की क्रीडा आत्मा में रत होकर ही करे तो वह सच्चा सायामी मोक्ष प्राप्त करने का अधिकारी है । सायासी के धम बताते हुये व्यासजी ने ऋषिदेव से कहा कि "सायासी को चाहिए कि वह सिद्धि प्राप्त करने के लिए किसी को साथ न लेकर अकेला ही

१०—सतोपमूलस्त्वागात्मा ज्ञानाधिष्ठानमुच्यते ।

अपवगमतिनित्यो यतिधम सनातन ॥

शान्तिपर्व—अध्याय २७० श्लोक ३१

११ आत्मयात्री सो ऽऽत्तरतिरात्मक्रीडात्मसश्रय ।

आत्मयग्नौ नूतमारोप्य त्यक्त्वा सवपरिग्रहान् ॥

शान्तिपर्व—अध्याय २४४, श्लोक २४

सायास धर्म का पालन करे ।”^{१२} सायास-आश्रम में प्रवेश करते समय मनुष्य का अकला ही रहना चाहिये किसी की साथ न रहे । अकेले मनुष्य का ध्यान ही सब तरफ से हठकर ब्रह्म में लीन हो सकता है अथवा बहुत कठिन है । सायासी का मन ब्रह्म में तभी लीन हो सकेगा जब वह सबसे दूर, सब को त्याग कर केवल ब्रह्म को ही अपना सब कुछ मानेगा । ब्रह्म में लीन होकर ही वह मोक्ष को प्राप्त होगा । आत्मतत्त्व का बोध करके जो एकाकी विचरता रहता है वह कल्याण को प्राप्त होता है । सायासी के धर्म बताते हुए व्यासजी ने शुकदेव से कहा कि सायासी किसी की निंदा करने वाले पुष्टपकी ओर आँख उठाकर नहीं देखे कभी किसी का निंदात्मक वचन सुने नहीं तथा विशेषतः ब्राह्मणों के प्रति किसी प्रकार न कहने योग्य बात न बहे । जिससे ब्राह्मणों का हित हो वसा ही वचन सदा बाले । अपनी निंदा सुनकर भी चुप रह जाय— इस मौनावलम्बन को भव रोग से छूटने की दवा समझकर इसका सेवन करता रहे ।^{१३} किसी के कहे हुए निंदात्मक वचनों को सुनकर किसी प्रकार का प्रत्युत्तर न दे, सबदा मौन धारण करके रहे । ब्राह्मणों के प्रति न कहने योग्य बात न कह, सदा उनका सम्मान का ध्यान रखे । ब्राह्मणों के प्रति हितकारी वचन बोले । मौन रहना इस ससार रूपी सागर से पार होने का मार्ग है । इसलिए सदा शांत चित्त रहकर मौन का धारण करे । सायासी के धर्म बताते हुए व्यासजी ने कहा कि सायासी अपने चित्त को राग द्वेष आदि दोषों से दूषित न होने दे । अपनी वाणी को निंदा जादि दोषों से बचाये और पापा

१२-एक एव चरेद् धर्मं सिद्धधर्ममहायवान् ।

गीतपत्र—अध्याय २४५, श्लोक ४

१३ नय पयैश्च शृणुयाद्वाप्य जातु कस्यचित् ।

ब्राह्मणानां विनेयेण नव द्रूयात् कस्यचन ॥

यद् ब्राह्मणस्य कुण्ठत तदेव सतत वदेत् ।

वृष्णीमासीत् निंदाया कुवन् भयङ्ग्यमारमन ॥

गीतपत्र—अध्याय २४५, श्लोक ६ १२

सं मुक्त होकर सवय शत्रुहीन हो जाय । किसी से भय न रह ।^{१४} सायासी का कभी किसी सं राग या द्वेष नहीं बरना चापिये । राग द्वेष सवदा किमी वं प्रति प्रेम से अथवा किमी ने अपने विषय मे कुछ निन्दात्मक शब्द कह दिय तो क्रोध के कारण उससे कुछ कहा सुनी हो गई और चलकर उसस द्वेष होन लगा । इसी प्रकार चित्त द्वेष वं कारण हर समय अशांति रहन लगता है और उम मनुष्य सं शत्रुता-सा होने लगती है । सायासी के लिए अशांति के कारण ही यह राग द्वेष वर्जित है । उसे तो किमी के द्वारा कह जाने वाले शब्दों पर ध्यान ही नहीं देना चाहिए वह शब्द चाह अपनी प्रशंसा के हा अथवा निन्दा वं हा । क्याकि ध्यान न दकर ही सायासी शांत चित्त रह सकता है नहीं ता उसकी रास्त चलत अनेक मनुष्यों सं बाद विवाद करना पडगा । यह तो ससार है इसम सब प्रकार के बुद्धिमान, मूर्ख स्वार्थी अहितकारी आदि कई प्रकार के मनुष्य रहत हैं । सायासी का देखकर के कोई कुछ कहता है, कोई कुछ इसलिए सायासी को तो किसी के वचन न सुनने चाहिये और न उनका प्रत्युत्तर देना चाहिए । सायासी के लिए मौन रहना इसलिए बताया है जिसम उसका मन स्थिर और शान्त रहे । सन्यासी क जीवन माह वं विषय म बताया हूए व्यासजी न शुकदवजी से इस प्रकार कहा कि सायासी न ता जीवन का अभिनन्दन करे और न मृत्यु की प्रतीक्षा ही । जस सेवक स्वामी के आदेश की प्रतीक्षा करता है उसी प्रकार उसे भी काल की प्रतीक्षा करनी चाहिए ।^{१५} सायासी का अपने जीवन से न तो मोह ही होना चाहिए और न त्रिबुवन विरक्ति ही जानी चाहिये । उस ता जब तक प्राण है तब तक अपन धम का पालन करते रहना चाहिए और सदाव मृत्यु की प्रतीक्षा करनी

१४—अभ्याहृतचित्त स्थानम्याहेतवाग भवेत् ।

निमुक्त सवपापेभ्यो निरमित्रस्य किं भयम् ॥

शांतिपत्र—अध्याय २४५, श्लोक १६

१५—नाभिनन्देत मरणं नाभिनन्देत जीवितम् ।

कालमेव प्रतीक्षेत निवेगं भक्तो यथा ॥

शांतिपत्र—अध्याय २४५, श्लोक १५

चाहिए । सन्यासी को तो हमेशा अपने नियमों का पालन गान्त्वित्ता से करते रहना चाहिए, जो अन्त समय में उसके साथ रहेगा । अच्छे काम करना चाहिए तथा अहिंसा की ओर सदैव ध्यान रखना चाहिये । रास्ता चलते समय रास्ते में चीटी आदि छोटे कीड़े मिलें, उन पर सदा दयाभाव रखना चाहिये ।

३—सन्यासी के नियम, दण्ड, कमण्डल—

जटा रहित सिर आदि सन्यासी के लक्षण हैं । सन्यासी का पान लम्बी या मिट्टी के होते हैं । वे उसके लिए केवल जीवन-यात्रा के अवलम्ब हैं । य उसका बाहरी उपलक्षण मात्र हैं । सन्यास का वास्तविक स्वरूप तो आन्तरिक आत्म-साधना है । बाहरी चिह्न धर्म के कारण नहीं होने । सन्यासी के नियम बताते हुए ऋषि जी ने शुकदेवजी से कहा कि 'वह दूसरे दिन के लिए अन्न का संग्रह न करे । चित्त वृत्तियों को एकाग्र करके मौनभाव से रहे । हलका और नियमानुसूत भोजन करे तथा दिन रात में केवल एक ही बार अन्न ग्रहण करे । ' १६ सन्यासी को दिन में एक ही बार भोजन के लिए अन्न का भिक्षा माँगनी चाहिए अधिक अन्न की भिक्षा न मागे । सन्यासी की भिक्षा का समय बताते हुए ऋषि जी ने महापुरुषों से इस प्रकार कहा कि 'प्रातः काल का नित्यकर्म करने के बाद जब गृहस्थों के यहाँ रसोई घर से बुआ निकलना बन्द हो जाय, घर के सब लोग खा पी चुके और बतन धो माँजकर रख दिया गया हो, उस समय मौनधर्म के ज्ञान सन्यासी को भिक्षा लेने की इच्छा करनी चाहिए । ' १७ सन्यासी की भिक्षा के लिए तब किसी गृहस्थ के घर जाना

१६—अवस्तनविद्यता स्यात्मुनिर्भावसमाहित ।

सत्यागो नियताहारः सद्दमननिषेधिता ॥

पार्तिपर्य—अध्याय २४५, श्लो० ६

१७—कृत्वा प्राह्णे चरद् भक्ष्य विभू मे भुक्तयज्ञने ॥

भृशे परायसम्भात भक्ष्य लिप्तेत् मोषयित् ॥

पार्थवपथिकपर्व—अध्याय ४६, श्लो०

चाहिए, जब उसके यह सब परिवार वाले भोजन कर चुके हों। इसका अभिप्राय यही है कि उसे बचा हुआ भोजन प्राप्त करना चाहिए, किसी के हिस्से का भाजन नहीं प्राप्त करना चाहिए। शेष बचा हुआ भोजन पूरा नहीं हो सकता। गृहस्थ म कभी केवल रोटी ही बच रहती है और कभी केवल तरकारी। शेष अन्न का यही अभिप्राय है कि जो कुछ रोटी या तरकारी मिल जाय, उसी को लेकर सन्यासी को पानी पी लेना चाहिए और अधिक अन्न की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। सन्यासी जीवन निवाह के लिए भिक्षा माग। उचित समय तक उसके भित्ति की प्रतीक्षा करे। चित्त को एकाग्र बिय रहे। अधिक सम्मान वाल स्थान पर भोजन न करे इस विषय मे ब्रह्माजी न कहा कि 'साधारण वस्तुओं की प्राप्ति की भी इच्छा न करे। जहाँ अधिक सम्मान होता हो, वहाँ भोजन न करे। मान प्रतिष्ठा के लाभ से सन्यासी को घणा करनी चाहिए। वह खाय हुए तिल, कसले तथा कड़वे अन्न का स्वाद न ले।' १५ सन्यासी को भिक्षा मिल जान पर हृष्य न होना चाहिए और न मिलने पर विषाद न होना चाहिए। भिक्षा जीवन यात्रा के निर्वाह लिए जितनी आवश्यकता हो, उतनी ही लेनी चाहिए। भोजन करते समय मधुररस का भी आस्वादन न करे, प्राणधारणमात्र के लिए अन्न का आहार करे। जहाँ पर सन्यासी को प्रेमपूर्वक भाजन कराया जाय वहाँ वह भोजन न करे। सम्मान और प्रेम से सदा दूर रहें। भिक्षा मागते समय दाता के द्वारा न्यि जान वाल अन्न व सिवा दूसरा अन्न लेने का कदापि इच्छा न करे। पाप गठना और कुटिलता से रहित होकर बतव करना चाहिये। नित्यप्रति जो अन्न अपन आप प्राप्त हो जाय उसका ही ग्रहण करना चाहिए। उसके लिए भी मन मे इच्छा नहीं रखनी चाहिए। मनमाना भोजन कभी नहीं करना चाहिए। किसी अच्छा वस्तु का उपयोग करके फिर उसके लिए लालयित न रहें। मिट्टी, जल अन्न, पत्र पुष्प और फल— ये वस्तुएँ यदि किसी के अग्रि

१८—लाभ साधारण नैषद्येन भुञ्जीताभिपूजित ॥

अभिपूजितलाभाद्धि विजुगुप्तेत भिक्षुक ।

भुक्तायनानि तित्तानि कषायकटुकानि च ॥

आश्वमेधिकपत्र - अध्याय ४६ श्लो० २१ २२

कार म न हो ता जावस्यक्त। पडने पर क्रियागीन सायासी इह काम मे ला सकता है। सायासी के नियम बताते हुए ब्रह्माजी ने महर्षिमा से इम प्रकार कहा कि 'खाने के लिए अन्न और शरीर ढकने के लिए वस्त्र के मित्रा और किसी वस्तु का संग्रह न करे। बुद्धिमान सायासी को चाहिए कि दूसरा क लिए भिक्षा न मागे तथा सब प्राणियो क लिए दयाभाव स सविभागपूर्वक कभी कुछ देने की इच्छा न करे। सबके साथ अमृत क समान मधुर बनाव क कही भी आसक्त न हो और किसी भी प्राणी के साथ परिचय न बढ़ाये।'^{१९} सायासी के लिए कोई कतव्य नेप नही रहता है इसलिए उम दूसरा के लिये भिक्षा न मागनी चाहिए, तथा न दया क कारण किसी को कोई वस्तु देनी चाहिए। सायासी को तो सब बरना स मुक्त बताया है। उस तो केवल अपने जीने मात्र के लिए भोजन ग्रहण करवे जीवन निर्वाह करना चाहिए। सबके साथ मधुरवाणी से व्यवहार करे किसी स प्रेम न करे और न किसी क साथ परिचय बढ़ाये। सायासी के नियम बनाने हुए ब्रह्माजी न कहा कि जितने भी कामना और हिंसा से युक्त काम है उन सबका एक तौकिक कर्मों का न स्वय अनुष्ठान करे और न दूसरा स कराय।'^{२०} सायासी को किसी प्रकार की कामना न करनी चाहिए। कामनाआ स शून्य होने पर ही मनुष्य सायास-आश्रम ग्रहण करता है। यदि किसी मनुष्य की कामनाय वृत्त न हुई हो तो उसे सायासी न होना चाहिये। सायासी को हिंसा स युक्त

१९—प्रासादाच्छादनादयत्र गृह्णीयान् कथंचन ॥

परेभ्यो न प्रतिग्राह्य न च देय कदाचन ।

देयभावाच्च भूताना सविभय सदा बुध ॥

मुधावृत्तिरसत्तश्च सबभूतरसविदम् ॥

आश्रमेषु पर्वा-अध्याय ४६ श्लो० ३२ ३४ ३८

२०—आगोषु क्षानि सर्वाणि हिसायुक्तानि यानि च ।

तौकसप्रथम च नव कुर्या न कारयेत् ॥

आश्रमेषु पर्वा-अध्याय ४६, श्लो० ३६

नी कोई काय न करता चाहिर । उसे तो सत्र जीवा पर दयाभाव रखना चाहिए । उसे तो लौकिक धर्मों का किसी प्रकार का भी अनुष्ठान न करना चाहिए और न दूसरो से कराना चाहिए । सत्यासी के नियम बताते हुए ब्रह्माजी ने कहा कि "उसे अपने धम का प्रदर्शन न करना चाहिये । निज न स्यान मे विचरते रहना चाहिये । रात को सोने के लिए सूने घर, जगल वृक्ष की जड, नदी के किनारे अथवा पर्वत की गुफा का आश्रय लेना चाहिए । ग्रीष्मकाल मे गाव में एक रात से अधिक नही रहना चाहिए, किंतु वर्षाकाल मे किमी एक ही स्थान पर रहना उचित है ।" २५ सत्यासी को कभी भी अपने धम का प्रदर्शन नही करना चाहिये । धम के प्रदर्शन से उसका अहङ्कार बढ़ेगा और उसकी मोक्ष प्राप्ति का साधना म बह बाधा बनेगा । इसलिए सत्यासी को कुछ भी न करना चाहिए और न कुछ कहना चाहिए । उसे तो मौनभाव से स्वतंत्र रहना चाहिए । ग्रीष्मकाल मे सत्यासी को एक रात से अधिक किसी भी गाव मे नहीं ठहरना चाहिए । उसे ता सुबह होते ही दूसरे गाँव को प्रस्थान कर देना चाहिए । वर्षाकाल मे सत्यासिया के लिए चारमास तक एक ही स्थान पर ठहरने का नियम बताया है । क्योंकि वर्षा के समय गाव के आस पास के रास्ते, नदी या नालो मे वर्षा के पानी क आ जाने क कारण बंद हो जाते हैं और सबका आगमन प्राय बंद सा हो जाता है । जब वर्षाकाल मे सभी का आवागमन बंद रहता है तो बेचारे सत्यासी को ही पानी मे फिरने से क्या लाभ । इसीलिए सत्यासी के लिए चार मास तक एक स्थान पर रहने का नियम उचित है । सत्यासी के नियम बताते हुए ब्रह्माजी ने कहाकि ' जैसे बल्लुआ अपने अङ्गा को मव ओर से सभेट लेना है, उसी प्रकार इन्द्रिया को विषयो की ओर से हटा ले । इन्द्रिय मन और बुद्धि

२१--न सनिकागयेद् धम विविक्ते चारजाभरेत् ।

धूयागारमरण्य वा वृक्ष मूलनदी तथा ॥

प्रतिश्रयाय सेवेत पार्वती वा पुनगृहाम् ।

ग्रामकरात्रिको श्रोत्मे वर्षास्थेऽत्र वा वसेत् ॥

को दुबल करने निश्चेष्ट हो जाय । सम्पूर्ण तत्वो वा पान प्राप्त कर ।"२२
 सयासी के नियम बताते हुए भीष्मजी ने युधिष्ठिर से इस प्रकार कहा कि—
 स यासी को चाहिए कि वह मन और इन्द्रियो को समय म रखते हुए मुनि
 वृत्ति से रहे । किसी वस्तु की कामना न करे । अपन लिए मठ या कुटी न
 बनवाये । निरंतर धूमता रहे और जहाँ सूर्यास्त हो जाय वही ठहर जाय ।
 प्रारब्धवग जो बुद्ध प्राप्त हो जाये उसी से जीवन निर्वाह करे ।"२३ सयासी
 को निरंतर धूमते रहना चाहिए और जहाँ सूर्यास्त हो जाये वही रुक जाय ।
 मन और इन्द्रियो को समय म रखकर त्याग की भावना स रहे । ज्ञान के
 सम्पूर्ण तत्वो को जानने की इच्छा रखे और पान को ही प्राप्त करने का
 प्रयत्न करता रहे । सयासी को चाहिए कि किसी एक स्थान म आसक्ति न
 रखे एक ही ग्राम म न रहे तथा किसी एक ही विनारे पर सबदा शयन न
 करे । उसे सब प्रकार की आसक्तियो स मुक्त होकर स्वच्छन्द विचरना
 चाहिए । अपने अन्त करण म ही परमात्मा का ध्यान करना चाहिए । सयासी
 को मोक्षोपयोगी कम श्रवण मनन निदिध्यासन आदि के द्वारा समय व्यतीत
 करना चाहिए ।

४—सन्यासी के प्रकार—

साधारणतया सब लोग एक प्रकार के ही सयासी को सयासी
 समझते हैं क्योंकि आधुनिक युग म वे ही अधिक दिखाई देने हैं । जो भी
 मनुष्य गोरूप रग के वस्त्र धारण कर लेता है सब लोग उसी को सयासी

२२—इन्द्रियाण्युपसहृत्य कर्मोऽज्ञानीव सवश ।
 क्षीरोन्द्रियमनोबुद्धिनिरोह सर्वातत्ववित् ॥

भारवनेधिकपत्र—अध्याय ४६ श्लो० ४४

२३—यत्रास्तमितगायो स्यात्प्रिरागीरनिवृत्तन ।
 यथोपलभ्यजीवी स्यात्मुनिर्दातो जितेन्द्रिय ॥

गातिपत्र—अध्याय ६१, श्लो० ८

समभने लगते हैं । हमारे प्राचीन धमशास्त्रा मे सन्यासी चार प्रकार के बताये गये हैं । महाभारत मे उमा को बताते हुए महेश्वर ने कहा कि "सन्यासी चार प्रकार के होते हैं—कुटीचक, बहूदक, हस और परमहस । इनमे उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं ।"^{२४} धम शास्त्रो म जो सन्यासिया का चतुर्विध विभाजन मिलता है, वह महाभारत के अनुशासनपत्र के इसी वचन के अनुसार है । वखानम सूत्र म सन्यासियों के इन चार भेदों की व्याख्या इस प्रकार की गई है—

- (१) "कुटीचक—उस सन्यासी को कहते हैं, जो सन्यास - आश्रम को ग्रहण करके वन मे नहीं जाता । कुटीचक सन्यासी पुत्रो द्वारा निर्मित कुटी मे निवास करना है । यह कुटी पुत्रा के घर के पास ही होती है, वन मे नही । भिक्षा लेने के लिए भी कुटीचक नगर या गाव म नही जाता है, वरन् भिक्षा माग्ने वह अपने ही पुत्रा के घर या सम्बन्धिया के घर जाता हैं । कुटीचक शिखा, सूत्र, त्रिदण्ड और कमण्डल धारण करता है ।
- (२) बहूदक—उस सन्यासी को कहते हैं जो गरिक वस्त्र धारण करता है । त्रिदण्ड और कमण्डल साथ रखता है । सात श्रेष्ठ ब्राह्मणो के घर से भिक्षा माग्ता है ।
- (३) हस—हस नामक सन्यासी वन म रहता है । ग्राम म एक रात्रि निवास करता है । नगर मे पाच रात्रि से अधिक निवास नही करता है । एक मास का व्रत करता है । चन्द्रायण व्रत करता है । पितामह के अनुसार एक दण्ड धारण करता है । केवल भिक्षा के लिए गाँव म जाता है । वृक्ष, कन्दरा, नदीतट पर निवास करता है ।
- (४) परमहस—वृक्ष के नीचे या श्मशान म निवास करता है । कवन कौपीन धारण करता है या नग्न रहता है । धम-अधम, पवित्र अपवित्र

२४—चतुर्विधा भिक्षवस्ते कुटीचकबहूदकी ।

हस परमहसश्च यो य पश्चात् स उत्तम ॥

अनुशासनपत्र—अध्याय १४१, श्लो० ८८

स परे, आत्मनिष्ठ होता है। आत्मस्वरूप से सबको समान मानने वाला होता है। चार वर्णों से भिदा लते हैं।^{१२५} इन चार प्रकार के सत्यासिया म एक स एक श्रेष्ठ मान जाते हैं। ये चार प्रकार के सत्यासी मोक्ष प्राप्त करने की चार सीढ़ी के समान हैं। धमगाछा म सत्यासी क चार प्रकार मनुष्य की वृद्धि और मन को समय करने के लिए चार पाठ के समान है। आरम्भ म मनुष्य पुत्रों के द्वारा कुटी बनवाकर पुत्रों क ही अन स अपना जीवन व्यतीत करत है और अपनी मोक्ष प्राप्ति क लिए जो नियम ध्यान आदि हैं उनमे लीन रहते है। जब इस प्रकार ध्यान म और सत्यास म उनको आनंद आन लगता है, तब वह दूसरे प्रकार क बहूक सत्यासी हो जाते हैं। बहूक गेहू रग के वस्त्र धारण करता है और सान श्रेष्ठ ब्राह्मणों के यहां स भिक्षा मागता है। इस प्रकार पहले पुत्री के अन से, फिर ब्राह्मणों के भिक्षा माग कर मनुष्य नगर को छोड़ देता है। तीसरे प्रकार का सत्यासी हस कहलाता है जो अपना घर नगर छोड़कर वन म विहार करता फिरता है। गाव म एक रात ठहरता है तथा नगर मे पाँच राति ठहरता है। भ्रमण शीत रहता है। अनेक प्रकार क धत करक शरीर को दुबल कर लेता है।

२५--तत्र कुटीचका गौतमभारद्वाजयाज्ञवल्क्यहारीतप्रनलोनाभाशमेत्वष्टौ प्रासांश्चरतो योगमागतस्वज्ञा मोक्षमेव प्राथयते ।

बहूदकाश्चिदण्डकमण्डलुकायायधालुवस्त्रग्रहणवेषधारिणो ब्रह्मपिगृहेषु चापेषु साधुवृत्तियु मांसलवणपशु पिता न वज्रयत्त सप्तागारेषु भक्ष कृत्वा मोक्षमेव प्रार्थयते । हसनाम ग्रामे चक्रराश नगरे पचरात्र वसतस्तदुपरि न वसतो गोमूत्रगोमयाहारिणो वा मासोपवासिनो वा नित्यचा द्रायणव्रतिनो नित्यमुत्पानमवप्रापयत । परमहसा नाम वृक्षक मूले सूयागारे श्मशाने वा चांसिन साम्बरा वा दिग्म्बरा वा । न तथा घर्माघमौ सत्यानृते शुद्धधनुद्धग्नादि द्व तम् ।
सबसमा सर्वात्मान समलाष्टकात्रना सर्ववर्णपु भिक्षाचरण कूर्चति ।

गीतानससूत्र—अध्याय ८ ६

(गण्डकल्पद्रुम के अनुसार)

वही पर भी कुटी आदि बनाकर नहा रहता । वृक्ष, बन्दरा या नदी तट पर रात्रि हाने पर सो जाता है । यम म ही अधिक् रहता है । रात्रि म केवल एक बार दिन म भिक्षा लेने जाता है । मोक्ष की प्राप्ति के लिए ही ध्यान करता रहता है । चौथ प्रवार का सायासी परमहम कहलाता है । इसम मनुष्य तीन सीढ़ी चढ़ चुकता है, तब इस तक आता है । यह मोक्ष प्राप्ति की अन्तिम सीढ़ी मानी गई है । इस सायासी को किस प्रकार का ध्यान नहीं रहता है । वह तो पूण ब्रह्म म लीन अवस्था पर पहुच जाता है । इसलिए न उस वस्त्रो का ध्यान रहता है, न भोजन का, न धम का न पवित्रता का । इस प्रकार का सायासी केवल एक कोपीन धारण करता है चारो बर्णों म स जो भी उम बुद्ध भिक्षा दे दता है, उसी को वह ग्रहण कर लेता है । सब जीवा को अपन समान मानने लगता है । इस प्रकार उत्तरोत्तर सायासी श्रेष्ठ माना जाता है । परमहम सायासी ही सबसे श्रेष्ठ समझा जाता है इस विषय म उमा से महेश्वर ने इस प्रकार कहा कि "इस परमहस धम के द्वारा प्राप्त होने वाले आत्मनान से बढ़कर दूसरा बुद्ध भी नहीं है । यह परमहस ज्ञान किमी से निष्कृष्ट नहीं है । परमहस ज्ञान क सम्मुख परमात्मा तिरोहित नहीं है । यह दुःख मुख से रहित सौम्य अजर-अमर और अविनाशी पद है ।" २१ परमहम शन्यासी सदव अजर अमर और अविनाशी हा जाता है । इसका अभिप्राय यही है कि उसकी आत्मा इतनी शुद्ध और पवित्र हो जाना है कि वह फिर जम नहीं लेता । उसका नश्वर शरीर यहा रह जाता है किन्तु उसकी आत्मा अजर अमर हा जाती है अर्थात् ब्रह्म म लीन हो जाती है । सब कर्मों और बंधना से मुक्त होकर सबदा के लिए इस असार ससार से मुक्ति पा जाता है । फिर जम ग्रहण नहीं करता क्योंकि उसके बुद्ध बम गप ही नहीं रह जाते हैं, सब कर्मों को पूण करके मोक्ष को प्राप्त होता है । इसलिए परमहस सायासी सबसे श्रेष्ठ सायासी होता है ।

२६—अत परतर नास्ति नावर न तिरोप्रत ।

अदु क्षमसुख सौम्यमजरामरमययम् ॥

अनुशासनपत्रा—अध्या० १४१, श्लोक ६०

५—सायास के पालन से मोक्षप्राप्ति --

सायास आश्रम म पहुँचन समय तब मनुष्य क निय कोई कम शय नही रह जाता है । यह पूण स्वतंत्रता की अपस्था है । यह स्वतंत्रता ही जीवन का अंतिम लक्ष्य है । सायासी जीवा-यात्रा के लिए जो भी कम करता है, वे सब अनासक्ति होन क कारण बर्थापत होन । सायासी क लिए जप, तप यन आदि किसी कम का विधान नही है । ये कम भी या प्रत्य म पूण हो जाते हैं । एत तर्षों से उपाजित आरम धिभूति और ब्रह्म साधना म सायासी का स्वतंत्र और गतिगील जीवा ब्याप होना है । परिश्रान स्वतंत्रता का बाह्य लक्षण है । श्रुतश्रुत्य और मुक्त हो कर सायासी अभय और अमृत हो जाता है । श्रुतापता से उसका जीवन श्रुता पूण और आनन्दमय हो जाता है कि यह न जीवन की लालसा करता है, न मृत्यु में डरता है और न मृत्यु की इच्छा करता है । श्रुतश्रुत्यता और स्वतंत्रता क द्वारा मृत्युञ्जय अवस्था को प्राप्त होकर सायासी माण को प्राप्त करता है । सायासी को सिद्धि कसे प्राप्त होती है इस विषय म ययाति ने अष्टक म इन प्रकार कहा कि ' जो मुनि सम्पूर्ण कामनाओं को छोड़ कर कर्मों को त्याग चुका है और इन्द्रिय-सयमपूर्वक सदा मीन म स्थित है एसा सायासी लोक म परम सिद्धि को प्राप्त होता है ।''^{२७} इसी प्रकार सायासा की मोक्षप्राप्ति के विषय म बताते हुए ययाति ने कहा कि ' कामवृत्ति बाल गृहस्था क बीच ग्राम मे ही वास करते हुए भी जो जितेन्द्रिय और गृह्यरहित सायासी है, वही उन दीना प्रकार के मुनियों म पहले ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है ।''^{२८} अष्टक ने

२७ - यस्तु कामान् परित्यज्य त्यक्तकर्मा जितेन्द्रिय ।

जातिष्ठेच्च मुनिनो न सलोके सिद्धिमाप्नुयात्॥

आदिपर्व—अध्याय ६१^१ श्लो० १४

२८—अनिकेतो गृहस्थेषु कामवृत्तेषु सयत ।

ग्राम एव वसन् भिक्षुस्तथो पुनरतर गत ॥

आदिपर्व—अध्या० ६१, श्लो० २

याति से वानप्रस्थ और सायास दोनो आश्रमा मे रहने वाले मुनिया के विषय म पूछा कि कौन मुनि पहल ब्रह्मभाव का प्राप्त होता हैं । तब ययाति ने कहा कि जो सायासी गृहस्था के बीच म रहते हुए भी जितेन्द्रिय और घर रहित हैं अथात् नगर म रहते हुए भी जो जितेन्द्रिय हैं, व सायासी सबसे पहले ब्रह्मभाव को प्राप्त होते हैं । वन मे रहकर तो सब सायासी समय कर सकते हैं, क्योंकि उह वन से मन को मोहने वाली वस्तुएँ दिखाइ ही नहीं देती । किन्तु गृहस्था के बीच मे तथा नगर म विचरण करने वाले सायासी के लिए इन्द्रिय समय बहुत कठिन तपस्या है । जो इस तपस्या को प्राप्त कर लेता है । वह सब मुनिया म श्रेष्ठ है और सबसे पहले ब्रह्मभाव को प्राप्त करता है । सायासी को स्वर्ग प्राप्ति कैसे होती है इस विषय मे ब्रह्मा जी महर्षिया स कहा कि जो मनुष्य इन्द्रिय, उनके विषय पञ्चमहाभूत मन बुद्धि अहङ्कार, प्रकृति और पुरुष इन सबका विचार करके इनके तत्त्व का यथावत् निश्चय कर लेता है, वह सम्पूर्ण बधना से मुक्त होकर स्वर्ग को प्राप्त कर लेता है ।"२५

जो मनुष्य तत्त्वो का ज्ञाता हो जाता है तथा एकांत म बठकर परमात्मा का ध्यान करता है, वह आकाश म विचरनवाले वायु की भांति सब प्रकार की आसक्तियों से छूटकर पञ्चकोशा से रहित, निभय तथा निराशय होकर मुक्त एवं परमात्मा को प्राप्त हो जाता है । सायासी के मोक्ष के विषय म उमा को बताते हुए महेश्वर ने इस प्रकार कहा कि "जो युक्तचित्त होकर सायासी होता है और और मोक्षोपयोगी कमश्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि के द्वारा समय व्यतीत करता हुआ निराहार (विषय सेवन से रहित) और ठूठ काठ की भांति स्थिर रहता है, उमको सनातन धम का मोक्षरूप धम प्राप्त होता

२८—इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च महामूतानि पच च ॥

मनो बुद्धिरहकारमय्यक्त पुरुष तथा ।

एतन् सर्वं प्रसख्याय यथावत् तत्त्वनिश्चयात् ॥

ततः स्वर्गमवाप्नोति विमुक्तः सर्वबधनः ।

है।" जो शायमी श्रवण, मत्त और निम्ब्यागत के द्वारा ममय ध्योग करता है और आहार की भी निम्ब्यागत दत्ता है। कर्मन वायुमभय म मा केवल जल के पान म जीवत विहाता हुआ वृष्ट की माभ्या म ही सात हा जाता है। वह ही सच्च अथ म मोन प्राप्त करी वा अधिकागी होता है। गसा शायसी अथवा परमहम सपागी ही मोनप्राप्त करके मरणा के निम्ब्यागत म मरण क सन्कट स छूट जाता है और उगवा आरमा अजर अमर होकरवृष्ट म तीन हो जाती है।



३०—स्याण्णमृते निराहारी मोक्षदृष्टेन कर्मणा ।

परिव्रजेति यो युक्तस्तस्य धमः सनातन ॥

अनुशासनपत्र—अध्या० १४१, श्लो० ८६

महाभारत में—दिव्य-धर्म

१—सामाजिक धर्म और दिव्य-धर्म—

भारतीय धर्मशास्त्रा और महाभारत में धर्म के सामाजिक और मानवीय रूप की ही प्रधानता है। 'आत्मोपम्येन और 'आत्मन प्रतिकूलानि के अनुरूप मानवीय समानता और उदार मानवीय भावना इस धर्म के मूल आधार हैं। धर्म का यह रूप भावना की दृष्टि से अत्यन्त मानवीय है तथा व्यवहार के प्रसंग में सामाजिक है। धर्मशास्त्रों और महाभारत में इस धर्म के अन्तर्गत जो लक्षण, गुण, कर्तव्य आदि बताये गये हैं वे मनुष्यता की दृष्टि से प्रत्येक मनुष्य के अमूल्य अलंकार हो सकते हैं। व्यवहार की दृष्टि से ये सामाजिक हैं। सामाजिक व्यवहार और सम्बन्ध में ही ये लक्षण और गुण चरितार्थ होते हैं। व्यक्ति के शील की दृष्टि से ये मनुष्य के व्यक्तित्व को गौरवमय बनाते हैं। इन गुणों का सामाजिक फल दूसरों को प्राप्त होता है। जिस प्रकार वृक्षा के फल दूसरों को लाभ देते हैं उसी प्रकार धर्मशीला के गुण भी दूसरों के उपकारक होते हैं। व्यक्तित्व का मानवीय गौरव और परोपकार ये दो धर्म की इस धारणा के मुख्य पक्ष हैं। परोपकार ही मानवीयता का मुख्य रहस्य है। दूसरों के प्रति उत्तम भावना धर्म के सभी लक्षणों में अंतर्भूत है। इसी भावना से धर्म की इस धारणा में उदारता, दया आदि के मानवीय भाव उदित होते हैं। धर्म के सामान्य लक्षणों का विवेचन प्रस्तुत शास्त्र प्रवचन के आरम्भिक छठे अध्याय में किया गया है। समाज की व्यवस्था के अनुसार धर्म के इस सामान्य रूप के अनेक विशेष रूप बन जाते हैं। प्राचीन समाज-व्यवस्था वर्णाश्रम पर अवलम्बित थी। अनेक वर्णों और आश्रमों के विभाजन के अनुरूप ही धर्म के विशेष रूप निरूपित हुए हैं। धर्म के इन विशेष रूपों का विवरण पिछले बारह अध्यायों में विस्तार से माय किया गया है।

धम के ये सामाज्य और विशेष दोनो ही प्रकार के रूप मानवीय और सामाजिक ह । यदि हम ईश्वर को दिव्य और अलौकिक मानें, तो धम के इन रूपा को लौकिक भी कह सकते हैं । धम के जिस रूप की महाभारत और धमशास्त्रा म प्रमुखता है, वह लौकिक, सामाजिक और मानवीय है । ईश्वर से उस धम का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है । धम के प्रसंग म धमशास्त्रो और महाभारत म ईश्वर क नाम का उल्लेख नहीं है । धम का यह रूप मनुष्य के प्रति मनुष्य के भाव तथा मनुष्य क प्रति मनुष्य के सम्बन्ध एव व्यवहार म चरिताथ होता है । ईश्वर के प्रति मनुष्य के सम्बन्ध का इसमे कोई विशेष स्थान नहीं है । यदि ईश्वर के किसी विशेष रूप का आग्रह न करके ईश्वर का परम-आत्मा क रूप म मानें तो धमशास्त्रा और महाभारत के इस मानवीय धम को भी ईश्वरीय धम कहा जा सकता है । किन्तु यह ईश्वरीय धम मूलत मानवीय ही रहता है । क्योंकि आत्मा दिव्य होत हुए भी मानवीयता का मूल आधार है । ईश्वरीय धम का यह रूप धम के उन रूपा से भिन्न है जो भारतवर्ष के पश्चिम म विकसित हुए हैं तथा जिनमे ईश्वर, पगम्बर, धम ग्रन्थ, उपासना आदि के एक विशेष रूप को ही सत्य माना जाता है । ये धम अगरजी के रिवाजना क पर्याय हैं । भारतीय धारणा के अनुसार इनका सम्प्रदाय कहना अधिक उचित होगा । इनकी धारणा बहुत सकुचित है । दूसरे धारणाओ के विरोध तथा अपनी धारणाआ क आग्रह एव प्रचार की दृष्टि से इन धम-सम्प्रदायो को अमानवीय भा कहा जा सकता है । स्वतन्त्रता और समानता मानवीयता क दो मूलमन्त्र हैं । इन धम सम्प्रदायो म इन दोनो का स्पष्टन किया गया है । ये धम सम्प्रदाय अपने को अत्यन्त श्रेष्ठ मानते हैं । किन्तु इनके समझको तथा आलाचको म किसी न भी मानवीयता क उक्त मम क। दृष्टि से इनका मूयावन करन का माहम नहीं किया । इस मौलिक आत्मविरोध का द्वाडकर इन सम्प्रदायो म भी मानवीय और सामाजिक तत्व हैं इसम काई सन्देह नहा । किन्तु भिन्न धारणा वाला क प्रति इनका दृष्टि कोण कतना अनुदार है कि ये मानवीय तत्व निष्कन हो जाते हैं । इससे अनिरिक्त सीमित अथ म मानवीय और सामाजिक होने क साथ-साथ इन सम्प्रदायो म ईश्वर और उपासना सम्बन्धी आग्रहो का प्रभुत्व है ।

इसके विपरीत धमशास्त्रा क धम म उदार मानवीयता और सद्भाव युग सामाजिकता हो प्रधान है । ईश्वर क प्रति मनुष्य क सम्बन्ध का विशेष उल्लेख भी धमशास्त्रो म नहा है । किन्तु महाभारत म श्रीकृष्ण के प्रभाव क कारण तथा अथ ईश्वराय तत्त्वा क कारण त्रिय धम का सम्बन्ध अत्रि

आंतरिक एव घनिष्ठ है। महाभारत के संचालक श्रीकृष्ण हैं। वे भगवान् विष्णु के अवतार माने जाते हैं। डा० सुक्यनकर का मत है कि महाभारत में सबके श्रीकृष्ण को भगवान् माना गया है।^१ सभी पाण्डव और द्रौपदी उन्हें भगवान् मानते हैं। श्रीकृष्ण की महिमा महाभारत में सबसे व्याप्त है। नारायण की वन्दना करके ही महाभारत की कथा आरम्भ होती है।^२ श्रीकृष्ण की महिमा की दृष्टि से महाभारत में धर्म के दिव्य, अलौकिक और ईश्वरीय रूप का महत्त्व भी बहुत है यद्यपि उसके अधिकांश विस्तार में सामाजिक धर्म का ही विवरण है। गीता को महाभारत का आंतरिक अंग मान लेने पर ईश्वरीय धर्म का महत्त्व महाभारत में अधिक बढ़ जाता है। गीता में श्रीकृष्ण का भगवत् रूप अधिक स्पष्ट है। गीता में ईश्वर भक्ति का महत्त्व भी बहुत है। महाभारत में अनेक स्थानों पर भी भक्ति की महिमा मिलती है। श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य अवतारों की चर्चा भी महाभारत में आती है। अवतारों के अतिरिक्त शिव आदि अन्य देवताओं के प्रसंग भी महाभारत में आते हैं। ईश्वर, अवतार और देवताओं के अतिरिक्त तीर्थ व्रत आदि आचारों की चर्चा भी महाभारत में है। ये भी दिव्य अथवा ईश्वरीय धर्म के अंग हैं। इस प्रकार दिव्य अथवा ईश्वरीय धर्म का भी महाभारत में कुछ स्थान है यद्यपि उसमें मानवीय और सामाजिक धर्म की ही प्रधानता है।

किन्तु महाभारत के इस दिव्य और ईश्वरीय धर्म में पश्चिमी धर्म-सम्प्रदायों के समान सकीर्णता और अनुदारता नहीं है। महाभारत का यह दिव्य धर्म उस सामाजिक धर्म का ममान ही उत्तर और मानवीय है जिसका विवरण पिछले अध्यायों में विस्तार के साथ किया गया है। दिव्य धर्म का यह रूप धर्म के उस सामान्य मानवीय सिद्धांत के अनुरूप है जो धर्मशास्त्रों

१—डा० सुक्यनकर कीर्तिग आद्य महाभारत—

पृष्ठ ६३ ६७

२—नारायण नमस्तु नर भव नरोत्तमम् ।

भारत का महासागर

और महाभारत म सामाजिक धम का मूल आधार माना गया है । यह सिद्धांत मानवीय स्वतंत्रता और समानता का उत्तम सिद्धांत है । इसके अनुरूप हान पर दिय धम अपनी अलौकिकता और आध्यात्मिकता म रहते हुए भी मानवीय बन जाता है । पश्चिमी धम-सम्प्रदायो की तुलना म महाभारत का दिय धम उनसे बहुत भिन्न है । पश्चिमी धम सम्प्रदायो म ईश्वर, पगम्बर, धम ग्रन्थ उपासना आदि की एकरूपता का अनुरोध है । महाभारत के दिव्य धम म इस एकरूपता का अनुरोध नहीं है । उसम अनेक देवताओ की उपासना को आदर दिया गया है । यह अनेकरूपता भारतीय दिय धम का सामान्य लक्षण है जो महाभारत के दिव्य धम म भी पाया जाता है । इस अनेकरूपता का स्रोत सामाजिक धम के उस सामान्य सिद्धांत मे मिलता है, जो समानता और स्वतंत्रता को आदर देता है । स्वतंत्रता का आदर धार्मिक आचार म परोपकार बन जाता है । यह उदारता और सहिष्णुता को जन्म देता है जिनके द्वारा समाज मे ईश्वर तथा देवता और धमग्रन्थो की अनेकता सम्भव होती है । दिव्य धम के भारतीय रूपो म कही भी अपने प्रचार और दूसरों के विरोध का आग्रह नहीं है । इसी कारण वह दिय धम मानवीय भी है । दिव्यधम की यह मानवीयता मनुष्य और ईश्वर की उस आन्तरिक और आत्मिक एकता को चरिताय करती है जो भारतीय दिय धम का एकमूल सिद्धांत है तथा जो पश्चिमी धम सम्प्रदायो के मनुष्य और ईश्वर की भिन्नता के सिद्धांत से भिन्न है ।

सामाजिक और नतिक धर्म का यह दिव्य एवं अलौकिक आधार उसे एक आध्यात्मिक अवन्म्व प्रदान करता है । अवतार और देवताओ के रूप म यह अवलम्ब अधिक स्पष्ट और आश्रयणीय बन जाता है । भगवान की नित्य सत्ता धम म विश्वास को प्रेरित करती है । भगवान, अवतार और दृष्ट देवता के एक पूरा आदर्श के रूप म मनुष्य को धम की प्रेरणा देते हैं । महाभारत म ऋषिओ की साक्षात् उपस्थिति सम्पूर्ण कथा और जीवन को ईश्वरीय प्रेरणा म ओत प्रोत्त करती है । भारतीय परम्परा म तीर्थ धम के दिव्य तत्व और प्रभाव को भूमि पर स्थायी बनात है । तीर्थ धम के दिय स्थल है । देवताओ का प्रतिष्ठा स व पुण्य विभूति स विभूषित होत हैं । महाभारत म तीर्थों का भा वरण है । य ताय ईश्वर और मनुष्य तथा वकुण्ठ और पृथ्वी के बीच गन्तु का वाय करत है । द्रव्य और तपधम की साधना के आध्यात्मिक एवं व्यक्तिगत उपाय हैं । जन-मनम के द्वारा ताय धम के सामाजिक प्रभाव का

पेसते हैं। व्रत और तप धर्म के आंतरिक पक्ष की पूति करते हैं। नतिक धम भी आचार है। दिव्य एव आध्यात्मिक पक्ष म वह धम "साधना" बन जाता है। "तप" उस साधना का सामान्य रूप है। 'व्रत' भी साधना ही है। वह भी तप के समान त्यागमय होता है। किन्तु समय, दक्षता आदि के समान ब्रतों के निमित्त बनाकर उट सांस्कृतिक बना देने है। भगवान तीय और साधना की यह त्रिवेणी धम के रूप की पूरण बनाती है।

२-श्रीकृष्ण की महिमा—

महाभारत कौरव-पाण्डवा के युद्ध की क्या है किन्तु उसके सचालक श्रीकृष्ण हैं। सारथी बनकर वे एक रूपक बन गये हैं। सारथी रथ का सचालन करता है, किन्तु महाभारत के नायक अर्जुन के सारथी बनकर श्रीकृष्ण महाभारत क युद्ध के सचालक बन गये हैं। वसुदेव के पुत्र होने के नान श्रीकृष्ण को इतिहास पुरण कहा जा सकता है। किन्तु भारतीय परम्परा म व भगवान के अवतार बन गये हैं। वे विष्णु के पूरण अवतार माने जाते हैं। चरित्र के दिव्य गुणा की महिमा से श्रीकृष्ण भगवान बने। सौंदर्य शक्ति, ज्ञान, नीति, धर्म, अस्त्रविद्या, कला आदि सब म व अतुलनीय थे। बाल्यकाल म ही कस चासूर जस मत्स्य का मदन किया था। गदा धनुष चक्र आदि के सचालन म उनके समान कोई नहीं था। इसके अतिरिक्त नृत्य, रास की आदि श्रीकृष्ण के चरित्र के वसात्मक पक्ष थे। इस प्रकार सबगुण सम्पन्न श्रीकृष्ण अपन अद्भुत और अद्वितीय गुणा स श्रीकृष्ण अपने सृज अधिकार से भगवान बने। पुराण आदि ग्रंथ की धार्मिक परम्परा म श्रीकृष्ण को भगवान माना गया है। वे विष्णु के पूर्णवतार हैं। महाभारत मे भी श्रीकृष्ण सबन ही भगवान के रूप मे ही मान्य हैं। डा० सुकथनकर न अपन ग्रंथ म बड़े विश्वास के साथ कहा है कि महाभारत म कोई एसा श्लोक नहीं है जो श्रीकृष्ण का भगवान के अवतार के रूप म स्वीकार नहीं करता।^३ महाभारत

के पाठ के आरम्भ मे ही नारायण की वन्दना की जाती है ।^४ आगे चलकर महाभारत मे अनेक स्थानो पर यह बताया गया है कि अजु न और श्रीकृष्ण ही नर और नारायण हैं । महाभारत के अनेक पात्रो ने अनेक स्थानो पर श्रीकृष्ण के भगवत् स्वरूप का वन्दन किया है ।

आदिपर्व के प्रथम अध्याय मे सौति न कहा है कि महाभारत मे भगवान् वासुदेव का कीर्तन किया गया है, जो शाश्वत ब्रह्म तथा परम ध्रुव ज्योति हैं ।^५ हरिहर सुभाषित मे श्रीकृष्ण के यश को भारतसरोवर का लीलामय हस बताया गया है । उक्त सुभाषित का सुन्दर रूपक इस प्रकार है—ध्यास की वाणी के अमृत से पूरा यह महाभारत नामक सरोवर सुशोभित हो रहा है । अनेक क्षत्रियकुल इसमे कमल के समान हैं । उनके बीच मे श्रीकृष्ण का उज्ज्वल यश हस के समान विलसित होता है ।^६ आदि पर्व मे ही श्रीकृष्ण के जन्म के प्रसंग मे उनको जगत का कर्त्ता स्वामी, ब्रह्म आदि कहा गया है ।^७ खाण्डव वन क दाह के प्रसंग मे ब्रह्माजी ने अग्नि को

४—नारायण नमस्कृत्य नर च नरोत्तमम् ।

भगलाचरण

५—भगवान् वासुदेवश्च कीर्त्यतेऽत्र सनातन ।

शाश्वत ब्रह्म परम ध्रुव ज्योति सनातनम् ॥

आदिपर्व—अध्याय १, श्लोक २५६ ५६३

६—भारतास्य सरो भाति ध्यासवागमृतवृत्तम् ।

यत्र क्षत्रकुलाग्नेषु हसोयति हरेयम् ॥

७—अनुग्रहाय सोऽना विष्णुर्लोकनमस्कृत ।

अनादिनिधनो देव स कर्त्ता जगत प्रभु ॥

आदिपर्व—अध्याय ६३, श्लोक ६६, ६६३

सम्बोधित करते हुए अजु न और श्रीकृष्ण को नर-नारायण बताया है ।^८ आकाशवाणी के द्वारा भा इस तथ्य का समर्थन हुआ है ।^९ आदिपर्व में ही कुंती ने गोविन्द को अनाथा का नाय कहा है ।^{१०} सभा पर्व में भीमसेन न भगवान श्रीकृष्ण से सनाय होने के कारण जय की आगा की है ।^{११} सभापर्व में राजसूययन के प्रसंग में भी श्रीकृष्ण का भगवान क रूप में स्मरण किया गया है ।^{१२} राजसूययन के ही प्रसंग में जब आगत राजाआ के अभ्यथना का प्रसंग उठा, तो युधिष्ठिर ने भीष्मपितामह से पूछा कि 'सर्वप्रथम पूजा क योग्य कौन है, तब उहाने यही णिय दिया कि तेज बल पराक्रम आदि स

८—नरनारायणौ यो तौ पूवदेवौ विभावसो ।

अजु न वासुदेव च यो तौ लोकोऽभिमन्यते ॥

आदिपर्व—अध्याय २२३, श्लोक ८ ८^३

९—वासुदेवाजु नावेतौ निबोध वचनामम ।

नरनारायणावेतौ पूवदेवौ दिविश्रुतौ ।

आदिपर्व—अध्याय २२७, श्लोक १८

१०—त्वया नाथेन गोविन्द दु ख तीण महत्तरम् ।

त्व हि नाथस्त्वनाथाना दरिद्राणा विशेषत ॥

आदिपर्व—अध्याय २०६, श्लोक ५१ के बाद का

११—त्वद्बुद्धिबलमाधित्य सर्व प्राप्स्यति घमराट् ।

जयोऽस्माक हि गोविन्द येना नाथो भवानुसदा ।

सभापर्व—अध्याय १५, श्लोक १३

१२—साधान् स विविधारिघ्न क्षत्रे नारायणो विभु ।

हृरिं नारायण ध्यात्वा यज्ञरीज्यतमीश्वरम् ॥

सभापर्व—अध्याय ३६, श्लोक १३-२०

श्रीकृष्ण ही तीनों लोको मे प्रथम पूजनीय हैं ।^{१३} इसी प्रसंग मे भीष्मपितामह न भगवान श्रीकृष्ण की महिमा का वरुण विस्तार के साथ किया है और उह नव लाका म श्रेष्ठ बताया है ।^{१४} चीर हरण के समय द्रौपदी न भगवान क रूप म ही श्रीकृष्ण का स्मरण किया है । द्रौपदी ने श्रीकृष्ण का गोवि रमानाथ विश्वात्मन् आदि नामो से पुकारा है ।^{१५} वनपव म श्रीकृष्ण न अर्जुन से स्वय कहा है कि मैं नारायण हू तुम नर हा ।^{१६} वनपव म द्रौपदी ने भी श्रीकृष्ण से कहा है कि तुम धमशीलो की गति हो तुम प्रभु हो । पथ्वी

१३-एष ह्येषा समस्ताना तेजोबलपराक्रम ।

मध्ये तपत्रिवाभाति ज्योतिषामिव भास्कर ॥

सभापर्षी—अध्याय ३६, श्लोक २८

१४-ऊष्व तियगधश्चव यावती जगतो गति ।

सदेवकेषु लोकेषु भगवान् कशवो मुखम् ॥

सभापव—अध्याय ३८, श्लोक २६

१५-गोविन्द द्वारकावासिन् कृष्ण गोपीजनप्रिय ।

कीरव परिभ्रूता मां किं न जानासि केशव ॥

ह नाय हे रमानाय कजनायातिनाग्न ।

कीरवाणवमर्णा मामुद्धरस्य जनादन ॥

कृष्ण कृष्ण मह्ययोगिन् विश्वात्मन् विश्वभायत ।

प्रपन्ना पाहि गोविन्द कुदमध्ये वसोदतीम् ॥

सभापव—अध्याय ६८ श्लोक ४१ ४२ ४३

१६-नरस्यमसि त्रुधय हरिर्नारायणो ह्यहम् ।

कार सोऽस्मिन् प्राप्तो नरनारायणावृषी ॥

वनरश्च—अध्याय १२, श्लोक ५८

भूय, आशाश भव तुमम प्रतिष्ठित हैं ।^{१७} द्रौपदी के ये वचन गीता के समा-
नायक वचना का स्मरण दिलाते हैं ।^{१८} वन म युधिष्ठिर के पृथ्वी पर माक-
ण्डेय ऋषि ने श्रीकृष्ण की महिमा का वरण किया है, उहोने श्रीकृष्ण का
पुराणपुरुष, शास्वत, निगुण, कृता आदि कहा है ।^{१९} वनपव मे ही जब
जयद्रथ ने गगाक्षर म तपस्या करके शिव स वरदान मागा तब उहनि
श्रीकृष्ण की महिमा का वरण किया ।^{२०} सजय ने भी धृतराष्ट्र से श्रीकृष्ण की
की महिमा का वरण किया है ।^{२१} भीष्मपव म अजु १ ने युधिष्ठिर म कहा

१७ सवधर्मोपपन्नाना त्व गति पुरुषयम ।

त्य प्रभुस्त्व विभुश्च त्व भूतात्मा त्व विचेष्टसे ॥

लोकपालाश्च लोकाश्च नक्षत्राणि दिगो दग ।

नभश्चन्द्रश्च सूर्यश्च त्वयि सव प्रतिष्ठितम् ॥

वनपर्वा—अध्याय १२, श्लोक ५७ ५८

१८—श्री भगवद्गीता—अध्याय ४ श्लोक ६ १०

वही—अध्याय ६, श्लोक ४ ५

१९—ह त ते घणयिष्यामि नमस्कृत्वा स्वयम्भुवे ।

पुरुषाय पुराणाय शास्वतायाध्ययाय च ॥

अध्यत्ताय सुमूर्त्माय निगु णाय गुणात्मने ।

वनपर्वा—अध्याय १८८, श्लोक १७ २१ ३

२०—देवदेवो ह्यनन्तात्मा दिव्य सुखगुह प्रभु ।

प्रधानपुरुषोऽध्यक्षो विश्वात्मा विश्वमुनिमान् ॥

वनपर्वा—अध्याय २७२, श्लोक ३१

२१—वातस्य च हि मृतयोश्च जङ्गमस्यावरस्य च ।

ईसते भगवानेक सत्यमेतद् व्रवीमि ते ॥

ईगमपि महायोगी सवस्य घगतो हरिः ।

उद्योगपव—अध्याय ६८, श्लोक १३ १४

है कि अनन्तज बाल गोविन्द हमारा महापुत्र है, हमारा त्रय हाथा । व सनातन पुरुष हैं ।^{२२} शांतिपत्र म भीष्म न युधिष्ठिर का भगवान् श्रीकृष्ण की शरण म जान का उपदेश दिया है और उसका स्वकारण का कारण बताया है ।^{२३} अनुशासनपत्र म शिव न श्रीकृष्ण की महिमा का वर्णन किया है ।^{२४} धर्मराज युधिष्ठिर के पृथ्वी पर श्रीकृष्ण न अनुशासन पत्र म स्वयं अपनी महिमा का वर्णन विस्तार से किया है ।^{२५}

२२-अनन्ततेजा गोविन्द प्रपुत्रोऽप्यु निव्यय ।

पुरुष सनातनमसौ यत कृष्णस्ततो जय ॥

भीष्मपर्व—अध्याय २१ श्लोक १४

२३-तस्माद् ब्रज हृषीकेश कृष्ण देवकिनन्दनम् ।

एतमाराध्य गोविन्द गता मुक्ति मह्यय ।

एष कर्ता विकर्ता च स्वकारणकारणम् ॥

गार्गीतपर्व—अध्याय २०७, श्लोक ४६ से आगे का

२४-पितामहादपि चर शाश्वत पुरुषो हरि ।

कण्ठो जातूनदाभासो व्यध्रे स्रुय इवादित ॥

दशबाहुमहातेजा देवतारिनिपूदनः ।

श्रीवसाङ्गो हृषीकेश सवदवतपूजित ॥

नायक सवभूताना सर्वदिवनमस्वत ॥

अनुशासनपर्व—अध्याय १४७, श्लोक २३ ११

२५-यद् भूत यद् भविष्यच्च तन् सवमहमेव तु ॥

मया सृष्टानि भूतानि मम्ययानि च भारत ।

मामेव न विजानन्ति मायया मोहितानि व ।

एत ह । जगदिद सदेवागुरमानुषम् ।

मत्त प्रभवत राजन् मय्येव प्रविलीयत ॥

आश्वमेधिक पर्व—अध्याय ६२, श्लोक ५३ से आगे

इस प्रकार महाभारत में सर्वत्र श्रीकृष्ण की दिव्य महिमा व्याप्त है। महाभारत में वे सर्वत्र भगवान् के रूप में वर्णित हैं। पश्चिमी विद्वानों का मत है कि श्रीकृष्ण की प्रभुता को महाभारत में बाद में आरोपित किया गया है। श्री रामेयचन्द्रसेन का भी ऐसा ही मत है। किन्तु महाभारत के वर्तमान रूप में श्रीकृष्ण की महिमा सर्वत्र व्याप्त है। श्रीकृष्ण के बिना महाभारत की कल्पना नहीं की जा सकती। वे महाभारत की आत्मा हैं, जिस प्रकार कि वे जगत की आत्मा हैं। अतः महाभारत के वर्तमान रूप में श्रीकृष्ण की प्रभुता को स्वीकार करना ही उचित है। श्रीकृष्ण का चरित्र वर्तमान महाभारत का अविन्न अंग है। श्रीकृष्ण की यह महिमा महाभारत में दिव्यधर्म के स्थान का महत्त्वपूर्ण बनाती है। किन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि भारतीय परम्परा में दिव्य अथवा ईश्वरीय धर्म भी धर्मशास्त्रों के मानवीय और सामाजिक धर्म के अनुबन्ध है। दिव्यधर्म में जिन रूपों में भगवान् की वन्दना की गई है, उनमें न भगवान् के एकरूप का आग्रह है और न वही भगवान् के दूसरे रूपों को मानने वालों को विरोधी कहकर वेद का अधिकारी बताया है। भारतीय परम्परा में अथवा ईश्वरीय धर्म सम्प्रदायों के समान ही महाभारत का श्रीकृष्ण की महिमा से ओतप्रोत दिव्यधर्म भी आग्रह सकोच प्रचार आदि में उन दोषों से मुक्त है जो श्रेष्ठता के अभिमानी पश्चिमी धर्मों में कलक हैं। श्रीकृष्ण के चरित्र और गुणों की श्रेष्ठ मानवीयता और उदारता इस दिव्य धर्म को अत्यन्त मानवीय भी बनाती है। श्रीकृष्ण के चरित्र में सम्बन्ध में जो आक्षेप उठाये जाते हैं उनका अनेक प्रकार से समाधान किया जाता है। कौरवों की गम्भीर अनीतियों की तुलना में श्रीकृष्ण का कूटनीति के शुद्ध ममस्यल व्यावहारिक नीति की सीमा के अतगत आते हैं।^{२६}

३—अन्य अवतार और देवता—

महाभारत में श्रीकृष्ण की ही महिमा अधिक व्याप्त है जैसा कि पिछले प्रकरण के प्रसंग से विदित होता है। किन्तु श्रीकृष्ण के अतिरिक्त

अथ अवतारा और देवताओं की चर्चा भी महाभारत में मिलती है। विष्णु और उनके अवतारों को अतिरिक्त शिव, शक्ति तथा अथ देवताओं का वर्णन भी महाभारत में मिलता है। देवताओं की चर्चा यहाँ से ही मिलती है। वेदा में अनेक देवताओं की उपासना का वर्णन है। उनको एक ही सत्ता के भिन्न भिन्न रूप भी बताया गया है। * आगे चलकर पौराणिक युग में ब्रह्मा विष्णु, महेश की त्रिपुटी तथा विष्णु के अवतारों की प्रतिष्ठा हुई। तबसे देवताओं की चर्चा भी चलती रही। तेतीस देवताओं की गणना महाभारत में इस प्रकार मिलती है—आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आश्रित्य और दश अश्विन।^{२८} ब्रह्मा का प्रसंग महाभारत में कई स्थानों पर आता है।^{२९} विष्णु और शिव दो प्रधान देवता हैं। विष्णु की महिमा भारतीय धर्म परम्परा में बहुत रही है। विष्णु के अवतार भारतीय समाज के अत्यन्त लोकप्रिय देवता

२७—एक सद्विप्रा बहुधा वदति—

२८—एकादशते प्रथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वरा ॥

इत्येते द्वादशादित्या वाश्यपेया इति धृति ।

प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिता ।

नासत्यश्चापि दक्षश्च स्मृतौ द्वावश्विनादपि ॥

जनुगासनपव—अध्याय १५० श्लो० १३, १५३, १७

२९—पाणिभ्यां प्रतिजग्राह तामथ्रूणि पितामह ।

द्रोणपव—अध्या० ५३, श्लो० २२३

बहुत्व प्रेक्ष्य सर्पाणां प्रजानां हितकाम्यया ॥

आदिपव—अध्या० २०, श्लो० १०

है।^३ शांतिपर्व म अध्याय ३३६ म विष्णु क दशअवतारा का विस्तृत वरण किया गया है। ये दश अवतार इस प्रकार हैं—मत्स्य, वृषभ, वराह, नरसिंह वामन, परशुराम, श्रीराम, बलराम, श्रीकृष्ण और कलि। महामुनि नारद श भगवान् ने कहा कि मेरा पहला अवतार मत्स्य रूप म होगा, जा महासागर म डूबते हुए लोका और वेदा की भी रक्षा करेगा। दूसरा अवतार वृषभ अर्थात् वृषभ का होगा। जब देवता समूह क लिए क्षीरसागर का मन्थन करेग तब मैं अपनी पीठ पर मन्दराचल को धारण करूँगा। प्राणिया और समुद्र स पिरी हुई पृथिवी जब भारी भार स दब कर पीर महासागर म निम्न हो जायगी, उस समय मैं वराहरूप धारण करके पुन इसे अपन स्थान पर ला दूँगा। उसी समय बल क घमण्ड म भर हुए हिरण्यक्ष दस्य का वध करूँगा। देवताआ क वाय के नियम नरसिंह रूप धारण करके यम नागक दितिन दन हिरण्यकशिपु का संहार करूँगा। विरोचन के बलवान् पुत्र बलि नामक दस्य हागा जो त्रिलोकी का अपहरण करेगा। देवता, असुर तथा सम्पूर्ण लोक भी उसे न मार सकेंगे इन्द्र को राज्य से भ्रष्ट कर देगा। तब मैं कश्यपजी के अंग और अदिनि क गर्भ मे वारहृषा आदित्य वामन वनकर प्रकट होऊँगा और बलि क यमण्डप मे जाकर तीन पग भूमि माँगूँगा। तीन पग से त्रिलोकी को नापकर सारा राज्य अमितनेजस्वी इन्द्र को समर्पित कर दूँगा, इस प्रकार सम्पूर्ण देवताआ को अपने अपने स्थाना पर स्थापित कर दूँगा और दानव बलि पातालनिवासी बन जायेगा। फिर त्रेतायुग म भृगुकुलभूषण परशुराम के रूप म प्रकट होऊँगा और सना तथा सवारिया से सम्पन्न क्षत्रिय कुल का संहार कर दालूँगा। उसके बाद त्रेता और द्वापर की सध्या उप स्थित होगी, उस समय दशरथनरत्न राम के रूप म अवतार दूँगा और इन्द्र क तुल्य पराक्रमी वानरो की सहायता से भयकर राक्षसराज रावण को गणो सहित मार दालूँगा। फिर द्वापर और कलि का सधि का समय बीतते बीतते

३०—मत्स्य कूर्मो वराहश्च नरसिंहश्च चाम्पकः ।

रामो रामश्च रामश्च कृष्ण कल्की च ते दश ।

शांतिपर्व—अध्याय ३३६ श्लो० ७६ से आगे

वश का वध करने के लिए मधुरा में मेरा अवतार होगा। उस समय ब्रह्म, वैसी, कालासुर, अरिष्टासुर, धेनुवासुर तथा वृषभरूपधारी अरिष्ट को मारकर कालियनाग को वश में करके गोकुल में इंद्र के वर्षा करते समय गौआ की रक्षा के लिए महान् पवत गोवधन को सात दिन रात अपना हाथ से छत्र की भाँति धारण करूँगा। इसके बाद अनेक राक्षसा का सहार करके धर्मात्माओं का उद्धार करूँगा। धर्मपुत्र युधिष्ठिर के यज्ञ में गिणुपाल का वध करूँगा। अजुन मेरा सखा होगा। मैं राजा युधिष्ठिर सहित उनके भाइयों सहित पुनः राजपद पर प्रतिष्ठित करूँगा। 'श्रीकृष्ण, बलभद्र, प्रद्युम्न और अनुरुद्ध इन चार स्वरूपा का धारण करने वाला मैं असह्य ब्रह्म करके प्रह्लादी के द्वारा सम्मानित अपने धाम को चला जाऊँगा।"^{३१}

इनमें राम और कृष्ण तो भक्तों के परम आराध्य हैं। कृष्ण की महिमा तो महाभारत में सर्वत्र व्याप्त है। महाभारत में मिलने वाले श्रीकृष्ण के असंख्य प्रसंगों में कुछ मुख्य प्रसंगों का विवरण पिछले प्रकरण में किया गया है। श्रीउत्तर-की-कथा वनपर्व में २७५ अध्याय से लेकर २८१ अध्याय तक मिलती है। विष्णु के अन्य अवतारों में परशुराम वराह आदि के प्रसंग महाभारत में मिलते हैं। परशुराम की कथा बड़े प्रसंग में मिलती है। राम और परशुराम के युद्ध का वृणन वनपर्व के ६८वें अध्याय में मिलता है। राम के दिव्य रूप का वृणन इसी प्रसंग में बड़े विराट रूप में मिलता है^{३२} जो गीता के विवरूप दशन का स्मरण दिलाता है। महाभारत में राम को

३१—कर्माण्यपरिमेयाणि चतुसू तिधरो ह्यहम् ।

कृत्वा लोकान् समिष्यामि स्वानह ब्रह्मसत्कृतान् ॥

गातिपर्व—अध्याय ३३८, श्लो० १०२३

३२—वनपर्व—अध्याय ८८, श्लो० ५६ से ६० तक

विष्णु का अवतार ही माना गया है ।^{३३} परशुराम के चरित्र के अर्थ प्रसा भी वनपत्र म अध्याय ११६ म मिलते हैं । वराह अवतार की कथा शांतिपत्र के २०६ अध्याय मे मिलती है । इसम वराह को विष्णु का अवतार बताया गया है ।^{३४}

शिव की महिमा भी महाभारत में अनेक स्थाना पर गाई गई है । अनुशासन पत्र मे शिव ने श्रीकृष्ण को वरदान दिया है ।^{३५} अनुशासनपत्र के १७वें अध्याय म शिव का सहस्रनाम भी दिया गया है । शिव की स्तुति करते हुए उपमन्यु ने शिव को भव देनताआ मे श्रेष्ठ बताया है । अजुन आदि ने शिव से अस्त्र भी प्राप्त किये हैं । लिंग रूप म शिव की पूजा के संकेत भी महाभारत म मिलते हैं । द्रोणपत्र म लिखा है कि शिव के अर्थ रूपा की अपेक्षा लिंगरूप से शिव की पूजा करना अधिक महत्त्व का और अधिक फलवान है । लिंग की पूजा करने वाला भद्रुष्य महती सम्पत्ति का प्राप्त करता है ।^{३६}

३३—तत स भगवान् विष्णुस्त व वारुण मुमोच ह ।

वनपत्र—अध्या० ६६, श्लो० ६१

३४—एतस्मिन्नतरे विष्णुर्वराह रूपमास्तिः ।

शांतिपत्र—अध्या० २०६, श्लो० ३०

३५—नास्ति शिवसमो देवो नास्ति शिवसम मति ।

नास्ति शिवसमो दाने नास्ति शिवसमो रणे ॥

अनुशासनपत्र—अध्या० १५, श्लो० ११

३६—पूजयेद् विग्रहं यस्तु लिंगं चापि महात्मन ।

लिङ्गं पूजयिता नित्यं महतीं श्रियमश्नुते ॥

द्रोणपत्र—अध्याय २०२, श्लो० १४०

गिव के साथ शक्ति का वरुण भी महाभारत म मिलता है। युद्ध के आरम्भ म श्रीकृष्ण के आने से अनुत्तरे दुगा की स्तुति की है। भीष्म पर्व क अध्याय ३३ म यह दुगा स्तोत्र मिलता है। इगम दुगा के पराक्रमा का निम्नान है तथा दुर्गासप्तशती के अनुष्टुप श्री और सरस्वती के साथ उनका एतताभाव दिसाया गया है। विराटपर्व क आरम्भ म भी दुर्गा का स्तोत्र है। उगम दुगा को विष्णुवासिनी और महिषामुरमदिनी कहा गया है।^{३७}

शिव के पुत्र गणेश और स्कन्द का वरुण भी महाभारत म है। गणेश तो महाभारत के लेखक ही हैं। आदिपर्व क आरम्भ म उका प्राग आता है।^{३८} स्कन्द का वरुण महाभारत म दो स्थाना पर मिलता है। वनपर्व क २३६ अध्याय म स्कन्द की उत्पत्ति का वरुण है और अगले अध्याया म उनके पराक्रमा का वरुण है। इनम महिषामुर वध पुर्य है। अनुगासनपर्व के अध्याय ८३ म तारकासुर वध की कथा है। इसके अतिरिक्त अय अनन दवताआ की चर्चा महाभारत म मिलती है। तीना देवताआ की समष्टि क रूप म दत्तात्रेय का उल्लेख महत्वपूर्ण है। वनपर्व के ११५ अध्याय म एमा वरुण मिलता है कि सहस्राजु न को दत्तात्रेय क प्रसाद से एग स्वर्णिम विमान प्राप्त हुआ था। गतिपर्व क अध्याय ४८ म यही कथा है। अनुगासनपर्व के ८१ अध्याय म दत्तात्रेय का अग्नि का पुत्र बताया है।^{३९} किन्तु महाभारत

३७—विष्णवे च व नगधे ष्टे तव स्यान् हि शाश्वतम् ।

त्रलोक्यरक्षणार्थाय महिषामुरनाग्नि ।

विराटपर्व—अध्या० ६, श्लो० १७, १५

३८—लेखको भारतस्यास्य भव त्व गणनायक ।

आदिपर्व—अध्या० १ श्लो० ७६३

३९—स्वायम्भुजोऽग्नि कौरव परमयि प्रतापवान् ।

तस्य वने महारान दत्तात्रेय इति स्मृतः ॥

अनुगासनपर्व—अध्याय ८१, श्लो० ४

मे दत्तात्रय के जन्म की कथा नहीं है। उनके अतिरिक्त इन्द्र अग्नि आदि
वदिक देवताओं के प्रसंग भी महाभारत में आते हैं। महाभारत के इस बहु
देववाद का मूल वदिक बहुदेववाद में ही मिलता है। इन अनेक देवताओं को
एक ही परम सत्ता के विभिन्न रूप माना जाता है। ऋग्वेद का 'एक सद्
विप्रा बहुधा वदति' का सूत्र भारतीय दिव्य धम का मूल सूत्र रहा है। यह
सूत्र अनेक देवताओं की कल्पना को एकमूर्तता देता रहा है। इसके साथ साथ
यह भारतीय एकेदेववाद को कठोरता से बचाकर उदार बनाता रहा है।
भारतीय धम की यह उत्तरता पश्चिमी एकेदेववादा की आग्रहपूर्ण कठोरता
और अनुदारता से तुलनीय है। अनेक देवताओं की कल्पना उपामना की
स्वतंत्रता प्रदान करती है। महाभारत आदि में जहाँ इन देवताओं को
महिमा का वरणा है, वहाँ कोई कठोर आग्रह नहीं है तथा अनेक देवताओं के
उपासकों की निंदा नहीं की गई है और उन्हें अधार्मिक नहीं कहा गया है।
एक ही सत्ता के अनेक रूप के प्रतिनिधि अनेक देवता भारतीय धम को समृद्ध
उदार और अभिनन्दनीय बनाते हैं।

४-महाभारत मे तीर्थ—

देवताओं और अवतारों के तीर्थ ननिक तथा दिव्य धम का समग
सम्बन्ध बनाते हैं। तीर्थों की प्रतिष्ठा से धम का सङ्कलन और समाज में भी
समन्वय होता है। इसीलिये भारतीय धम-परम्परा में तीर्थों का महिमा बहुत
है। जिस प्रकार देवता और अवतार अनेक हैं, उसी प्रकार तीर्थ भी अनेक
हैं। एक देवता और एक अवतार के अनेक तीर्थ दत्त में फले हुए हैं। इन
तीर्थों के द्वारा वैकुण्ठ की दिव्य विभूति भारत की पवित्र भूमि पर अवतीर्ण
होना है।

प्राचीन काल में धम और अध्यात्म की साधना के पीठ बना में ही
थे। वय-आश्रमा के एकांत और शान्तिपूर्ण वातावरण में तप और साधना
करने वाले मुनियों की प्रतिभा से ही धम और अध्यात्म का पथ प्रकाशित
हुआ है। प्राचीन काल में यह आरण्यक आश्रम भी धम के तीर्थ थे। इस
उष्ण देश में नदियाँ अमृत की धाराएँ थीं। गम दश होने के कारण भारत
वष में जल का बड़ा महत्त्व है। इसलिए यहाँ के अधिकांश तीर्थ नदियाँ के
तट पर ही बने हुए हैं। नदियाँ पवता से निकलती हैं निम्नरा और नदियाँ

क उद्गम होने के कारण पर्वत भी धर्म और सभ्यता के पीठ बन गये हैं। हिमालय के गोलमाल अचल म जनक मुनिया के आश्रम थे। पर्वत और नदी तटा के सघन और शान्तिपूर्ण क्षेत्र अध्यात्म की साधना के पीठ और धर्म की आराधना के तीर्थ बने। भार्गवधर्म म दक्षनाश्रम और सम्प्रदाय की विपुलता का कारण धर्म पर सभ्यता का ही प्रभाव है। य देवता प्रकृति के असह्य पीठ म असह्य रूप म प्रतिष्ठित हुए। प्रकृति के अचल म प्रत्येक सम्प्रदाय का तीर्थ बना। इन तीर्थों की यात्रा धार्मिक उत्साहना और आराधना का आवश्यक अंग बन गई। नागरिक सभ्यता के क्षेत्र प्रकृति के इन तीर्थों से दूर होने लगे। नदिया के मदानो म कृषि का विस्तार हुआ तो असह्य ग्राम बन गये और वे ग्राम भी नगरों की भाँति इन प्रकृति के पीठों से दूर हो गये। दूर और दुर्लभ होने के कारण प्रकृति के इन तीर्थों का महत्व और बढ़ गया। दूसरी ओर ग्रामीण और नागरिक सभ्यता के क्षेत्र म भी अनेक उपयुक्त स्थानों पर धर्म के मन्दिर बन गये और निकट होने के कारण इन तीर्थों की यात्रा सुगम हो गई। इस प्रकार धर्म और दक्षनाश्रम की अनेक रूपता के प्रकाश म भार्गवधर्म के विनाश भू भाग म विभिन्न प्रकार के स्थानों पर असह्य तीर्थों का स्थापना हुई। अवकाश और सुविधा के समय म इन तीर्थों की यात्रा धार्मिक पुण्य के साथ साथ लौकिक आनन्द भी बन गई। लोग समूहों म यात्रा के लिए जाते हैं और पदल यात्रा करके धर्म के पुण्य के साथ-साथ मानसिक आनन्द भी प्राप्त करते हैं।

पुराणों की भाँति महाभारत म भी अनेक धार्मिक तीर्थों का वर्णन है। जनमेजय के पुण्य पर यज्ञस्थलकी न तीर्थों का वर्णन करते हुए भारत के अनेक स्थानों म स्थित तीर्थों का वर्णन किया। धर्म्य श्रुति न सुविष्टित म पूज स्थानों का वर्णन इस प्रकार किया कि 'दक्षिण-दिशि प्राचीन स्थान म नमिष नामक तीर्थ है जहाँ दक्षिणदिशि परम रमणीय पुण्यमयी गोमता नदी है। दक्षिण दिशि का यज्ञभूमि और मूष का यज्ञस्थल वहाँ विद्यमान है।' प्राचीन स्थान म हा पुण्य पर्वत स्थित मय है तथा वहाँ का यज्ञस्थल

४६-नामकी देवविष्णुस्थापी नमिष नाम भारत ।

यत्र ता गोमता पुण्या रम्या दक्षिणदिशि ।

यत्र भूमिश्च देवार्ता नामिषं च विश्वतः ॥

दशरथ—अध्याय ८७ श्लोक ५३, ७

ब्रह्मसरोवर है। वही पर गया तीर्थ स्थान है, जहा पितरा के लिए दिया हुआ अन्न अक्षय हाता है। वही फल्गु नामावाली पुष्य सलिला महानदी है वही पर तपोधन विश्वामित्र ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुए थे। पूव दिशा मे ही पुष्य नदी गंगा बहती है, जिमके तट पर राजा भगीरथ ने प्रचुर दक्षिणा वाल बहून स यनी का अनुष्ठान किया था। गंगा और यमुना का परम उत्तम पुष्यमय पवित्र सगम सम्पूर्ण जगत मे विरयात है और बड़े-बड़े महर्षि उसका सेवन करते हैं। ब्रह्माजा ने वही पर प्रकृष्टयाग किया था इस यज्ञ क नाम से उस स्थान का नाम प्रयाग हो गया।^{१४१} वही पर महर्षि अणस्त्य का श्रेष्ठ आश्रम है। कालिंजर पर्वत पर हिरण्यविन्दु नाम से प्रसिद्ध महान् तीर्थ बताया गया है। आगस्त्यपर्वत बहुत ही रमणीय, पवित्र, श्रेष्ठ एव कल्याण स्वरूप है। महात्मा भागव का निवास स्थान महेंद्र पर्वत है, वहा पर ब्रह्माजी ने पूवकाल मे यज्ञ किया था। वही पर पुष्यसलिला भागीरथी गंगा सरोवर मे स्थित थी। वही महात्मा मतंगश्रुति का महान् एव उत्तम आश्रम केदारतीर्थ है। कुण्डोद नामक रमणीय पर्वत बहुत फल मूल और जल से सम्पन्न है। वही तपस्वीजनो से सुशोभित पवित्र देववन नामक पुष्यश्रेत्र है जहाँ पर्वत के शिखर पर बाह्युग और नन्दा नदी बहती हैं। इस प्रकार पूव दिशा के तीर्थ नदी तथा पर्वतो का वणन करके ऋषिजी न दक्षिण दिशा के तीर्थों का वणन किया।

दक्षिण दिशा मे पुष्यमयी गोदावरी नदी बहुत प्रसिद्ध है। बहुत मे तपस्वी उसका सेवा करते हैं तथा वह सबके लिए कल्याण स्वरूपा है।

४१-गंगा यत्र नदी पुष्या यस्यास्तीरे भगीरथ ।

अपजत् तत्र बहूभि ऋतुभिः रिदक्षिणं ॥

पवित्रमृषिभिर्जुष्ट पुष्य पावनमुत्तमम् ।

गगायमुनयोर्वोर सगम लोकविधुत्तम् ॥

प्रयागमिति विख्यात तस्माद् भरतसत्तम ॥

वनपर्व-अध्याय ८७ श्लोक १४ १८ १९

'वेणा और भीमरथी—ये दो नदियाँ भी दक्षिण में ही हैं जो समस्त पापभय का नाश करने वाली हैं। उससे दोना तट अनेक प्रकार के पशु-पक्षियों से व्याप्त और तपस्वीजनो के आश्रमों से विभूषित हैं। ४२ राजा नृग की नदी पयोष्णी भी उधर ही है जो रमणीय तीर्थ भी है। 'जहाँ भगवान् धरु का स्वयं ही अपने लिए बनाया हुआ शृगनामक वाद्य विशेष स्वर्ग से भी उँचा और निमल है, उसका दशन करके मरणधमा मानव शिवधाम में चला जाता है। ४३ दक्षिण में पवित्र माठर वन है। वहाँ वरुणस्तोत्र नामक पर्वत पर माठर का विजयस्तम्भ सुशोभित होता है। यह स्तम्भ प्रवेणी नदी के उत्तर, वर्ती माग में कण्व के पुण्यमय आश्रम में है। शूपायक क्षेत्र में महात्मा जमदग्नि की वेदी है वही पर रमणीय पापाणतीय और पुनश्चद्रा नामक तीर्थ विशेष हैं। उसी क्षेत्र में अशोक तीर्थ, अगस्त्य तीर्थ और वारुणतीय है। पाण्ड्यदेश के भीमर पवित्र कुमारी कायाय (कायाकुमारी तीर्थ) कटी गई हैं। ताम्रपर्णी नदी मोक्ष दायिनी है। वहाँ मोक्ष पाने की इच्छा से देवताओं ने आश्रम में रहकर बड़ी भारी तपस्या की थी। वहाँ का गोवर्ण तीर्थ तीनों लोकों में विख्यात है। देवसम नामक पर्वत ही वह आश्रम है। वहाँ परम सुन्दर मणिमय बद्रूपपर्वत है जो शिवस्वरूप है। उसी पर महर्षि अगस्त्य का आश्रम है।

महाभारत में सौराष्ट्र के तीर्थों का वर्णन इस प्रकार है कि सुराष्ट्र में ही समुद्र के तट पर प्रभास क्षेत्र है जो देवताओं का तीर्थ कहा गया है।

४२—वेणा भीमरथी च नद्यो पापभयापहे ।
मृगद्विजसमाकीर्णो तापसालयभूषिते ॥

४३—स्वर्गात्तु शूममल विद्याल यत्र शूलिनः ।
स्वमात्मविहितं दृष्टवा मत्य शिवपुर सजेत् ॥

वनपर्व—अध्याय ८८ श्लोक ३ ८

वही पर पिडारक नामक तीर्थ है। उधर ही उज्जयंत नामक महान् पवत भीम सिद्धि प्रदान करने वाला है। उसके विषय म नारदजी द्वारा कहा गया एक श्लोक सुना जाता है कि "सुराष्ट्र दश म मृगो और पक्षियो न सवित उज्जयंत नामक पुण्यपवत पर तपस्या करने वाला पुण्य स्वर्गलोक म पूजित होता है। उज्जयंत के ही आम-पास पुण्यमयी द्वारिकापुरी है जहाँ साक्षान् पुराणपुरुष मधुसूदन निवास करते हैं वे ही सनातन धमस्वरूप हैं।" ४४

धोम्य ऋषि द्वारा पश्चिम दिशा के तीर्थों का वणन इस प्रकार किया गया है, पश्चिम दिशा म पुण्यमयी नमदा नदी प्रवाहित होती है। त्रिलोकी म जो-जो पुण्यतीर्थ, मन्दिर, नदी वन, पवन, ब्रह्मा आदि देवता, सिद्ध, ऋषि चारण एवं पुण्यात्माओं के समूह हैं वे सब सदा नमदा के जल म स्नान करने के लिए आया करते हैं। यहाँ पर विश्वा का पवित्र आश्रम है, जहाँ पर धनाध्यक्ष कुबेर का जन्म हुआ था। बद्रथक्षिस्तर नामक पवित्र पवत भी नमदा के तट पर है, उस पवत पर एक पुण्य सरावर है, देवता और म धम उस पुण्यतीर्थ का सेवन करते हैं। इस पवत पर राजर्षि विश्वामित्र की तपस्या म प्रकट हुई एवं पुण्यमयी नदी है जो परम तीर्थ मानी जाती है। उमों के तट पर नहुषनन्दन राजा ययाति स्वर्ग से साधु पुण्या के बीच म गिरे थे और पुन सनातन धममय लोका म चल गये थे। वहाँ पुण्यनरोवर, विश्वात मनाक पवत और अक्षित नामक पवत है। उमों पवत पर बद्धमन का पुण्यदायक आश्रम है। महर्षि च्यवन का सुविश्रान्त आश्रम भी वहाँ है। पश्चिम दिशा

४४—पुण्ये गिरीसुराष्ट्रेषु मृगपक्षिनिषेवित ।

उज्जयन्ते स्म तप्तान्णो नाकपृष्ठे महीयते ॥

पुण्या द्वारवती तत्र यत्रासी मधुसूदन ।

साक्षाद् देव पुराणोत्तौ श हि धम सनातन ॥

वनपत्र—अध्याय ८८, श्लोक २३ २४

म ही जम्बूमाग है, जहाँ महर्षिया का आश्रम है । उधर ही सप्त तपस्वी जना से भरे हुए पुण्यतम तीर्थ-केतुमाला, मध्या और गगाद्वार [हरिद्वार] हैं । द्विजा से सेवित सुप्रसिद्ध सप्तवारण्य भी उधर ही है । "ब्रह्मात्री का पुण्यगायक गरोवर भी पश्चिम दिशा म हो है, जो वानप्रस्था, सिद्धा और महर्षिया का प्रिय आश्रम है । जहाँ पर निवास करने ने मनुष्या के सारे पाप नष्ट हो जात है तथा स्वर्गलोक म आनन्द भोगते हैं ।" ४५

युधिष्ठिर से पूर्व, पश्चिम तथा दक्षिण के तीर्थों का वरुण वरुण के बाद महर्षि धौम्य मुनि न उत्तर दिशा के तीर्थों का वरुण दस प्रकार किया कि उत्तर दिशा म तीर्थों की पक्ति से मुशोभित सरस्वती नदी बड़ी पुण्यदायिनी है । समुद्र मे मिनने वाली महावेगगानिनी यमुना भी उत्तर गिगा म ही है । उधर ही परम पुण्यमय प्लक्षावतरण नामक मगलकारक तीर्थ है । उधर ही अग्निशिर नामक दिव्य कल्याणमय पुण्यतीर्थ है । इस तीर्थ मे सहदेव (राजासृञ्जय के पुत्र) ने यमुना तट पर लाग स्वर्ण मुद्राआ की दक्षिणा देकर अग्नि की उपासना की थी । वही महापितास्त्री चक्रवर्ती राजा भरत ने पत्नीस अश्वमेधयज्ञा का अनुष्ठान किया था । परमपुण्यमयी हृषिकेशी नदी भी उधर ही है । जहा यमरोध, पुण्य पाचारय, गाम्भोधोप और गाम्भ्यमे पाच आश्रम है तथा अनन्तवीति एव अमित तेजस्वी महात्मा सुव्रत का पुण्य आश्रम भी उत्तराखण्ड मे ही है । गिरिश्रेष्ठ हिमालय विरातो और किन्नरो का निवास स्थान है । गगाजी अपने वेग से उस शलराज को फोडकर जहा प्रकट हुई हैं वह पुण्यद्वार गगाद्वार (हरिद्वार) के नाम से विख्यात है । उस तीर्थ का

४५-पितामहसर पुण्य पुष्कर नाम नामत ।

बलानसाना सिद्धानामधोनामाश्रम प्रिय ॥

मनसाप्यभिकामस्य पुष्कराणि मनस्विन ।

द्विप्रणश्यति पापानि नाकपृष्ठे च मोदते ॥

वनपर्व-अध्याय ८६, श्लोक १६ १८

ब्रह्मापिगण सदा सेवन करते है । पुण्यमय बनखान म पहल सनत्कुमार न यात्रा की थी । वही पुरु नाम से प्रसिद्ध पवत है, जहा पूवकाल म पुरुरवा ने यात्रा का थी । जिस महान् पवत पर भृगु ने तपस्या की थी, वह भृगुतुङ्ग आश्रम के नाम से विख्यात है । 'भूत, भविष्य और वतमान जिनका स्वरूप है जो सब यापी, सनातन एव पुस्पोत्तम नारायण हैं, उन जत्यत यशस्वी श्रीहरि की पुण्यमयी विशालापुरी बदरीवन के निकट है । वह नर-नारायण का आश्रम कहा जाता है, वह पुण्यप्रद बदरिकाश्रम तीनों लोको म विख्यात है ।^{४६} पूव काल से ही विशाला बदरी के समीप गंगा वही गम जल तथा वही शीतल जल प्रवाहित करती है उसकी वातु सुवण की भाति चमकती है । वह बद रिकाश्रम पुण्य क्षेत्र और परब्रह्मस्वरूप है । वही तीथ है वही तपोवन है वही तपोवन है वही सम्पूर्ण भूतो का परमदेव परमेश्वर है । वही द्रवपि सिद्ध और नमस्त तपोधन महात्मा निवास करते है । जहाँ महायोगी आदिदिव भगवान मधुसूदन विराजमान है वह स्थान पुण्या का भी पुण्य है ।

भारतीय लोग के मन म गंगासागर अयोद्या, चित्रकूट प्रयाग हरिद्वार पुष्कर द्वारिकापुरी, बदरीनाथ, रामेश्वर गया आदि प्राचीन तीर्थों के लिए विशेष श्रद्धा आजतक वतमान है । भारतीय धम परम्परा म इन तीर्थों का बडा महत्व है । य तीथ सख्या मे इतने अधिक हैं कि समस्त भारत भूमि तीथमयी जान पडती है । हिमालय से कायाकुमारी तक और हिंगलाज स कामाक्षी तक दश मे चतुदिक ये तीथ फले हुए हैं । सागर, नदीतट वन पवतखिखर आदि विविध प्रकार के प्राकृतिक स्थानो पर स्थित इन तीर्थों की विविधता धार्मिक जीवन म सुदरता उत्पन्न करती है । निकट और दूर के

४६-य स मून भविष्यश्च भवच्च भरतपम ।

नारायण प्रभुविष्णु शाश्वत पुष्पोत्तम ॥

तस्यातिपगस पुण्या विनाला बदरीमनु ।

आधम एयापते पुण्यस्त्रिपु लोकपु विभ्रुत ॥

वनपव—अध्याय ६०, श्लोक २४, २५

सुगम और कठिन तीर्थों की यात्रा से धार्मिक जीवा म एक साराम्य प्राप्त होता है। वष के विभिन्न काला म इन तीर्थों की यात्रा वष व पानत्रम का एकरूपता म पर्वों व समान सौन्दर्य का संचार करती है। ताभयात्रा के पव भी सांस्कृतिक पर्वों की भांति जीवन म उल्लास भरत हैं। इन तीर्थों का सम्बन्ध अनेक देवताआ से है। देवताआ की अनकता भारतीय धम-परम्परा को उदार बनानी है। तीर्थों की अनकता इन उन्मरता का प्राकृतिा और व्यावहारिक आधार प्रदान करती है। अनेक देवताआ और तीर्थों के सवन व सम्बन्ध म मनुष्य को पूरा स्वतंत्रता है। यह स्वतंत्रता धम शास्त्रा की मानवीय भावनाआ के अनुरूप है तथा धम शास्त्रा व सामाजिक धम की भांति दिया धम का भी उदार एव मानवीय बनाना है। पश्चिम के एवद्वरवादी धर्मों के तीर्थों की विरलता और एकरूपता से भारतीय धम-परम्परा का विविधता के समान ही तीर्थों की अनकता भी महत्त्वपूर्ण है। अवतार देवता, तीर्थ आदि कई प्रकार की अनेकताआ स विभूषित भारतीय धम परम्परा उदार और कलात्मक धम का सर्वोत्तम उदाहरण है।

५—महाभारत मे व्रत और तप—

तीर्थों और पर्वों की भांति व्रत भी भारतीय धम और संस्कृति व महत्त्वपूर्ण अंग हैं। प्रतिमास म अथवा प्रतिपक्ष म कई छोटे-बड़े व्रत आते हैं। उपनयन विवाह आदि के कुछ बड़े संस्कार ऐसे हैं जिनमे उत्सव की विपुलता होते हुए भी व्रत का अंश कम नहीं होता। विशेष रूप से विवाह के अवसर पर वर और कन्या उसके माता पिता अथ बड़े लोगों को कई बार पूर दिन का निराहार व्रत करना होता है। इम व्रत के साथ ही सस्वारा का कई विधिया सम्पन्न होती हैं। दूसरी ओर सभी व्रतों को थोड़ी बहुत मात्रा म पव के उल्लास की भावना कुछ उत्सव का रूप देता है। जमाष्टमी रामनवमी, जनतचतुदशी, शिवरात्रि आदि के व्रत ऐसे ही पव हैं। इनके अतिरिक्त अथ अनेक 'व्रत उपवास आदि की तपामय भावना से पूरे हैं। तप का त्यागमय भाव सभी व्रतों मे व्याप्त रहता है। व्रत के समान मानसिक सबल्य और त्याग की अपेक्षा तप म भी होती है। देवता, समय आदि का निमित्त रहने पर त्यागमयी साधना का सामान्य रूप तप कहा जा सकता है। तप और व्रत धम साधना के व्यक्तिगत और आंतरिक प

है । वे धम की आध्यात्मिकता के साधक हैं । महाभारत म तीर्थों की भांति अनेक व्रतो और तपो का भी बणुन है ।

युधिष्ठिर न जय भीष्म जी से व्रतो का नियम पूछा तब भीष्मजी ने प्राचीनवाल म जो व्रत के विषय मे सुन रखा था, वह इस प्रकार बताया कि ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिए तीन रात उपवास करने का विधान है । वश्या और सूद्रा के लिए चौथे समय तक के भोजन का त्याग करने का विधान है । व्रत के फल को बताते हुए अगिग जी ने युधिष्ठिर से कहा कि 'यदि मनुष्य पचमी, षष्ठी और पूर्णिमा क दिन अपने मन और इन्द्रिया को काबू म रखकर एक वक्त भोजन करके दूसरे वक्त उपवास करे, तो वह क्षमावान् रूपवान् और विद्वान् होता है । वह बुद्धिमान् पुरुष कभी सन्तानहीन या दरिद्र नहीं होता । ४७ "जा पुरुष भगवान की आराधना का इच्छुक होकर पचमी, षष्ठी अष्टमी तथा कृष्णपक्ष की चतुर्त्थी को अपने घर पर ब्राह्मणो को भोजन कराना है और स्वय उपवास करता है, वह रोगरहित और बलवान् होता है । मागशीप मास को एक समय भोजन करके विताता है वह रोग और पापो मे मुक्त हो जाता है । जो पौष मास मे एक वक्त भोजन करके विताता है वह सौभाग्यशाली, दशनीय और यग का भागी होता है । जो माघमास को निमयपूर्वक एक समय के भोजन से व्यतीन करता है, वह धनवान् कुल म जन्म लेकर अपने कुटुम्बीजनो मे महत्त्व को प्राप्त होता है । फाल्गुन का व्रत करने से स्त्रियो का प्रिय होता है और स्त्रिया उसक अधीन रहती हैं । जो चत्र का एक समय का व्रत करता है वह सुवण मणि और मोतियो से सम्पन्न महान कुल म जन्म लेता है । जो स्त्री अथवा पुरुष इन्द्रिय समयपूर्वक

४७-पचम्यां चापि षष्ट्या च पौणमास्या च भारत ।

उपोष्य एकभक्तेन नियतात्मा जितेन्द्रिय ॥

क्षमावान् रूपसम्पन्न धृतवांश्च व जायते ।

नानपत्यो भवेत् प्रश्नो दरिद्रो वा कदाचन ॥

अनुशासन पत्र—अध्याय १०६, श्लोक १४ १५

एक समय भोजन करके बसस्य मास का पार करता है, वह गजानीय बंधुआ म श्रेष्ठता को प्राप्त होता है। एक समय भाजन करके जष्ट मास बिताता है, उस अनुपम श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्राप्त होता है। जो आपाढ मास म आलस्य धार कर एक समय भाजन करके रहता है, वह धन धाय और पुत्रा ग सम्पन्न होता है। जो मन और इन्द्रिय का समय म रखकर श्रावण मास म एक समय भोजन करता है वह विभिन्न तीर्थों म स्नान करन के पुण्य फल का प्राप्त होता है। जो मनुष्य भाद्रपद मास म एक समय भोजन करता है वह गोघन स सम्पन्न समृद्धिशील तथा अविचल ऐश्वर्य का भागी होता है। जो आश्विन मास का एक समय भोजन करके बिताता है, वह पवित्र नाना प्रकार के बाहना ग सम्पन्न तथा अनक पुत्रा से युक्त होता है। जो मनुष्य कार्तिक मास म एक समय भोजन करता है, वह दूरबीर अनक भार्याआ स समुक्त और कीर्तिमान् होता है। ४८ 'जो पूर एक बष तक दो दो दिन पर भोजन करके रहता है तथा साथ ही अहिंसा, सत्य और इन्द्रियसयम का पालन करता है वह राज पय यज्ञ का फल पाता है और दस हजार वर्षों तक स्वगलोक म प्रतिष्ठित होता है। जो एक साल तक छठे समय अर्थात् तीन तीन दिन पर भोजन करता है वह मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है। वह चक्रवाका द्वारा बहन किये हुए विमान स स्वगलाक म जाता है और वहा चालीस हजार वर्षों तक आनन्द भोगता है।' ४९ व्रत की महिमा बताते हुए अगिरा ऋषि न युधिष्ठिर से इस प्रकार कहा कि धम से बढ़कर कोई उत्कृष्ट लाभ नहीं है तथा उपवास से बढ़कर कोई तपस्या नहीं है। जैसे इस लोक और परलोक म ब्रह्मवत्ता ब्राह्मणा स बढ़कर कोई पावन नहीं है, उसी प्रकार

४८—महाभारत में अनुशासन पर्व—अध्याय १०६, श्लोक १६ से ३० तक

४९—महाभारत अनुशासन पर्व—अध्याय १०६, श्लोक ४१ से ४४ तक

उपवास के समान कोई तप नहीं है ।"१० दैवताओं न विधिवत् उपवास करके ही स्वर्ग प्राप्त किया है तथा ऋषियों को भी उपवास में ही सिद्धि प्राप्त हुई है ।

युधिष्ठिर । भीष्मजी से द्वादशी व्रत के फल के विषय में पूछा तब भीष्मजी ने भगवान् विष्णु द्वारा बताया गया द्वादशी के व्रत के फल के विषय में जो बताया है, वह इस प्रकार रहा कि 'माघशुक्ल की द्वादशी तिथि का उपवास करके भगवान् केशव की पूजा-अर्चा करके मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल पाता है । पौष मास की द्वादशी का व्रत करने से वाजपेय यज्ञ का फल प्राप्त होता है । माघ मास की द्वादशी का व्रत करने से राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त होता है । फाल्गुन मास की द्वादशी का व्रत करने से अग्निरात्र यज्ञ का फल प्राप्त होता है और मृत्यु के पश्चात् सोमलोक में जाता है । चैत्रमास की द्वादशी का उपवास करके मनुष्य पौण्डरीक यज्ञ का फल पाता है और देवलोक में जाता है । वसंशुक्ल मास की द्वादशी का व्रत करने से अग्निष्टोम यज्ञ का फल पाता है और सामलोक में जाता है । ज्येष्ठमास की द्वादशी का उपवास करके भगवान् त्रिविक्रम की पूजा करके गोमेधयज्ञ का फल पाता है और अप्सराओं के साथ आनन्द भोगता है । आपाद मास की द्वादशी का उपवास करके वामन नाम से भगवान् की पूजा करके पुत्र्य नरमध यज्ञ का फल पाता है और महान् पुण्य का भागी होता है । श्रावणमास की द्वादशी का उपवास करके भगवान् श्रीधर का आराधना करके पंचमहायज्ञ का फल पाता है और विमान पर बैठ कर सुख भोगता है । भाद्रपद की द्वादशी का व्रत करके

१०—न धर्मात् परमो लाभस्तपो नानशनात् परम् ॥

आहारोभ्य पर नास्ति पावनं दिवि चेह च ।

उपवासस्तथा तुल्यं तप कम न विद्यते ॥

च्यवनो जमदग्निश्च वसिष्ठो गौतमोभगु ।

सर्व एव दिव प्राप्ता क्षमावतो महर्षय ॥

अनुशासन पत्र-अध्याय १०६, श्लोक ६५, ६६, ६८

हृषीकेश नाम से भगवान की पूजा करके मनुष्य सौभाग्यिणी वन का फल पाता है और पवित्रात्मा होता है । आश्विन मास की द्वादशी का व्रत करके पद्मनाभ नाम से भगवान की पूजा करके मनुष्य सहस्रगोदान का पुण्यफल पाता है । कार्तिक मास की द्वादशी का व्रत करके भगवान दामास्त्र की पूजा करके मनुष्य या स्त्री गो-धन का फल पाते हैं ।^{१५१} जो प्रति दिन इसी प्रकार भगवान विष्णु की पूजा करता है वह विष्णु भाव को प्राप्त होता है । यह व्रत समाप्त होने पर ब्राह्मणों को भोजन कराव अथवा उन्हें धनदान कर । इस उपवास से बढ कर दूसरा कोई उपवास नहीं है । 'इस प्रकार जा एव वयं तव कमलनयन भगवान् विष्णु का पूजन करता है वह पूर्वजन्म की पाता का स्मरण करने वाला होता है और उस बहुत सी सुवर्णराशि प्राप्त होती है ।'^{१५२}

रूप-सौन्दर्य और लोकप्रियता की प्राप्ति के लिए मागशीप मास में चन्द्र व्रत करना चाहिए । युधिष्ठिर के पूछने पर भीष्मजी ने चन्द्रव्रत के व्रत का वर्णन इस प्रकार किया कि "मागशीप मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को मूल नक्षत्र से चन्द्रमा का योग हान पर चन्द्र सम्बन्धी व्रत आरम्भ करे । पौर्णमासी को व्रत समाप्त होने पर व्रत के पारगत विद्वान् ब्राह्मण को धत

५१-अनुशासन पर्व-अध्याय १०६, श्लोक ३ से १४ तक

५२-अथयेत् पुण्डरीकाक्षमेव सवत्सर तु य ।

जातिस्मरत्य प्राप्नोति विद्याद् बहु सुवर्णकम् ॥

अनुशासन पर्व-अध्याय १०६, श्लोक १५

दान करे । ऐसा करने से मनुष्य पूर्णिमा के चंद्रमा की भांति परिपूर्ण सौभाग्यवाली, दशनीय तथा ज्ञान का भागी होता है ।' ५३

उपवास की जो विधि लिखी है, उसमें वरुण है कि उपवास एक दिन का, दो दिन का, लगातार तीन दिन का, इस तरह बढात-बढात वष भर करना चाहिए । ब्राह्मण और क्षत्रिय, तीन दिन का उपवास करे और वश्य तथा शूद्र एक दिन से अधिक उपवास न करें । यह एक महत्त्व की आज्ञा है जिस पर ध्यान देना चाहिए कि वश्य और शूद्र तीन दिन का उपवास कभी न करें । क्योंकि उनके पेशे के हिसाब से अधिक उपवास करना उनके लिए सम्भव नहीं । दिन में एक ही बार भोजन करने को एक भक्त कहत हैं और यह भी उपवास मे माना गया है । तीन दिन का उपवास करके भोजन करे यह मुख्य उपवास विधि है । इसके आगे पक्ष भर का उपवास करने का वरुण है । जो पुरुष वष भर, एक पक्ष तक तो उपवास करता है और दूसरे पक्ष मे भोजन करता है, उसका षण्मास अनशन हो जाता है, यह अगिरा ऋषि का मत बतलाया है ।

महाभारत में पचमी, षष्ठी और वृष्ण पक्ष की अष्टमी तथा चतु दशी तिथियां क उपवास का जो वरुण है, वे तिथियां अब उपवास में नहीं मानी जाती हैं । आजकल जो एकादशी, द्वादशी उपवास की तिथियां हैं वे महाभारत मे इस काम के लिए निर्दिष्ट नहीं हैं । ये तिथियां विष्णु और शिव की उपासना की है । एकादशी की व्रत बण्णव लोग करते है और द्वादशी

५३—मागशोषस्य मासस्य च द्रे मूलेन सयुते ।

समाप्ते तु घत दद्याद् ब्राह्मणे वेदपारगे ॥

सुभगो दशनीयश्च ज्ञानभाग्यय जायत ।

जायते परिपूर्णाङ्ग पीणमास्येव चंद्रमा ॥

अनुशासनपत्र—अध्याय ११०, श्लोक २३, ६ १०

का व्रत शिव के भक्त शिव करते हैं द्वादशी का ही प्रदोष का व्रत भी कहा जाता है । इसका प्रयोजन प्रदोष काल में अर्थात् सध्याकाल में शिव की पूजा करके एक समय रात्रि को भोजन करने से है । स्मृतिशास्त्रों में वर्णित चाद्रायण और सातपन आदि के जो व्रत हैं, उनका नाम तो महाभारत में प्रमत्तानुसार आ गया है किन्तु उनका वर्णन नहीं है । तप की विधि में व्रतों के यही भेद पाये जाते हैं । जना में उपवास करने की प्रथा भी बहुत बढी है । उनके यहाँ ४२ दिन तक का व्रत एक साथ किया जाता है । उपवास में हर प्रकार का अन्न वर्ज्य है । पानी पीने तक की मनाही है । व्रत भी एक प्रकार से तप ही है ।

कौरवों से राज्य प्राप्ति करके युधिष्ठिर को बड़ा दुःख हुआ कि अपने सब सम्बन्धी युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हो गये तथा सब की विधवाय, मातायें स्त्रियाँ तथा पुत्रवधुयें अब क्या करती होगी । इस दुःख का विचार करके दुःखी मन युधिष्ठिर ने भीष्म जी से कहा कि मैं अब अपने शरीर को बढी तपस्या के द्वारा सुखाना चाहता हूँ । इसलिए आप मुझे तप के विषय में कुछ उपदेश दें तथा उससे मिलने वाले फल का भी वर्णन करें । तब भीष्मजी ने इस प्रकार कहा कि तपस्या से स्वर्ग मिलता है सुख की प्राप्ति होती है तथा बड़ी आयु, ऊँचा पद और उत्तमोत्तम भोग प्राप्त होते हैं ।^{१४} ज्ञान, विज्ञान, आरोग्य, रूप, सम्पत्ति तथा सौभाग्य भी तपस्या से प्राप्त होते हैं । मनुष्य तप करने से धन पाता है । मीनव्रत के पालन से दूसरा पर हुकम चलाता है । वन में फल मूल खाकर रहने वाले के विषय में भीष्मजी ने इस प्रकार कहा कि 'फल मूल खाकर रहने वाला को राज्य और पत्नी चलाकर तप करने वाला को स्वर्ग लोक की प्राप्ति होती है । दूध पीकर रहने वाला

१४—तपसा प्राप्यने स्वर्गस्तपसा प्राप्यते यथा ।

आयु प्रवर्यो भोगारथ सम्यग् तपसा विभो ॥

अनुशासनपत्र—अध्याय १७, श्लोक ८

मनुष्य भी स्वर्ग को जाता है।" ५५ मिट्टी की वेदी या चबूतरा पर सोने वाला का घर और शय्याएँ प्राप्त होती हैं। चीर और बत्कल व वस्त्र पहनने से उत्तमोत्तम वस्त्र और आभूषण प्राप्त होते हैं। रत्ना का परित्याग करने से मनुष्य यहाँ सौभाग्य का भागी होता है। मांस भक्षण का त्याग करने से दीर्घायु सन्तान उत्पन्न होती है। तृण खाकर रहने वाला व विषय में भीष्मजी ने इस प्रकार कहा कि "जो बकल साग खाकर रहने का नियम लेता है वह गोघन से सम्पन्न होता है। तृण खाकर रहने वाले मनुष्या को स्वर्ग की प्राप्ति होती है। तीना काल में स्नान करने में बहुत-सी स्त्रिया की प्राप्ति होता है और हवा पीकर रहने से मनुष्य को धन का फल प्राप्त होता है। मरु का माघना-जल का परित्याग करने वाल यथा निराहार रहने वाल को स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है।" ५६ जो जन में निवास करता है वह राजा होता है। सत्यवादी मनुष्य स्वर्ग में देवताओं व साथ आनन्द भोगता है। यज्ञ और उपवास करने से मनुष्य स्वर्गलोक में जाता है। योगयुक्त तपोधन को शय्या, आसन और वाहन प्राप्त होते हैं। नियमपूर्वक अग्नि में प्रवेश कर जाने पर जीव को ब्रह्मलोक में सम्मान प्राप्त होता है। श्रेष्ठ गति की प्राप्ति बताते हुए भीष्मजी ने इस प्रकार युधिष्ठिर से कहा कि 'पृथ्वीनाथ ! बारह वर्षों तक सम्पूर्ण भागों का त्याग, दीक्षा (जप आदि नियमों का ग्रहण) तथा तीनों

५५ फलमूलाशिना राज्य स्वर्ग पर्याशिना भवेत् ॥ ११

पयोभक्षो दिव याति ॥ १२

५६-गवाण्य काकदोक्षाभि स्वर्गमाहुस्तृणाशिनाम्

स्त्रियस्त्रिपवण स्नात्वा वायु पीत्वा फलु लभेत् ॥ १३

मरु साधयतो राजन् नाकपृष्ठमनाङ्के ॥ १४

अनुशासनपत्र—अध्याय ५७, श्लोक ११, १२ १३, १४

समय स्नान करने से वीर पुण्या की अपेक्षा भी श्रेष्ठ गति प्राप्त होती
 १ १५०

तप का एक प्रधान अङ्ग अथवा स्वरूप जप है। किसी वामना से जप करने वाला उस लोक या वामना को प्राप्त होता है, परन्तु जो पत्र की रतीभर भी इच्छा न करके जप करता है, वह सब फला से श्रेष्ठ ब्रह्मलोक को जाता है। जप के सम्बन्ध में दो तीन अध्याय शास्त्रिण्य में भी हैं। उनका तात्पर्य यह ध्वनित करता है कि जप है तो महापत्र का दोराला, परन्तु पानमाग से घटकर है। जप करना योग का भाग है। इसमें भी किसी पत्र की इच्छा न करके जप करना सब में श्रेष्ठ है। किसी वामना से जप करना निवृष्ट कहा जाता है। गायत्री के जप से घटे-बटे साधक अपना जीवन सपन बनाते हैं तथा अतकाल में मोक्ष के अधिकारी होते हैं। तपस्या मनुष्य की आत्मा की शुद्धि का लक्षण है। शुद्ध आत्मा वाला मनुष्य ही इस ससार सागर से सरलता से पार हो जाता है। तपस्या अनेक प्रकार की होती हैं। जिसका जो तप उचित जचे या जिससे जो तप करना सम्भव हो सके वही उसके लिए श्रेष्ठ है तथा अतकाल में मुक्तिदायक होता है।

व्रत और तप धर्म साधना के आंतरिक और आध्यात्मिक पक्ष हैं। तीर्थों के सामाजिक पक्ष की तुलना में व्रत और तप को धर्म साधना का व्यक्तिगत पक्ष कहा जा सकता है। भारतीय धर्म अपने स्वरूप में सांस्कृतिक, व्यवहार में सामाजिक और साधना में व्यक्तिगत है। धर्म की सांस्कृतिकता और सामाजिकता उसे जीवन से सगत बनाती है। धर्मशास्त्रों के अनुरूप धर्म के जिन सामाजिक रूपों का विवरण प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के पिछले बारह अध्यायों में किया गया है, उसके अनेक कर्त्तव्यों और आचारों में सांस्कृतिक

५७—उपवास च दीक्षा च अभियेक च पार्थिव ।

कृत्वा द्वादशवर्षाणि वीरस्थानाद् विशिष्यते ॥

अनुशासनपत्र—अध्याय ५७, श्लोक २४

सौन्दर्य का समावेश है। गृहस्थ के कर्म सामाजिक सस्कृति के मुख्य अंग हैं। अनेक अवतारा और देवताओं का दिव्य धम भी अवतारा के चरित तथा तीर्थों के योग से सामाजिक बन गया है। इस प्रकार सामाजिक और दिव्य दोनों रूपों में धम की परस्पर संगति है। पिछले अध्यायों में अनेक बार कहा जा चुका है कि भारतीय धम की भावना स्वतंत्र, मानवीय और उदार है। दोनों ही रूपों में धम की सामाजिकता, संगठन, प्रचार आदि का साधन नहीं बनी है, जसी कि वह पश्चिम के एकेडरवादी धर्मों में बनी है। व्रत और तप की व्यक्तिगत साधना एक ओर धम को आध्यात्मिक आधार प्रदान करती है तथा दूसरी ओर धम की उदारता एवं स्वतंत्रता का संरक्षण करती है। व्रत और तप का इतना महत्त्व तथा स्वतंत्रता एवं उदारता के साथ धम की इतनी सफल संगति कदाचिन्ना कि किसी अन्य धम परम्परा में मिल सकेगी।

उपसंहार

१—अध्ययन के निष्कर्ष—

पिछले उनीस अध्यायों में महाभारत और महाभारत में धर्म में सम्बन्ध रखने वाले मुख्य विषयों का क्रम क्रम से विवेचना किया गया है। आरम्भ के अध्यायों में महाभारत की महिमा और महाभारत की आधुनिक आलोचना का संक्षिप्त परिचय देना के बाद महाभारत में धर्म के स्थान धर्म के रूप धर्म के स्वरूप आदि का विवेचन किया गया है। उगलवान् चारह अध्यायों में वर्णों और आश्रमों के विभाजन के अनुसार धर्म के विभिन्न रूपों का विवरण एवं विवेचन है। धर्म का यह रूप सामाजिक और मानवार्थ है। अन्त में एक अध्याय में धर्म के ईश्वरीय और दिव्य रूप का विवेचन किया गया है। महाभारत और महाभारत में धर्म से सम्बन्ध रखने वाले विविध विषयों का विवेचन करने के बाद उपसंहार में इन विवेचन के निष्कर्षों का आकलन अपेक्षित है। पिछले अध्यायों का यह विवेचन अध्ययन और तरक के आधार पर किया गया है। महाभारत के ग्रन्थ तथा महाभारत सम्बन्धी आलोचना के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के आवश्यक उद्धरणों से युक्त किया गया है। इससे साथ-साथ विचार और तर्क के द्वारा महाभारत सम्बन्धी तथ्यों और अभिमतों की मीमांसा की गई है। इस मीमांसा के निष्कर्ष भी पिछले अध्यायों और प्रकरणों में यथास्थान दिये गये हैं। फिर भी अनेक अध्यायों और प्रकरणों में बिखरे होने के कारण कदाचित् इन निष्कर्षों में एकसूत्रता न दिखाई दे। अतः इस उपसंहार में इन निष्कर्षों का एकत्र आकलन किया गया है।

२—महाभारत एक अनुपम ग्रन्थ है—

पिछले अध्यायो व अध्ययन और विवेचन का सबसे पहला निष्कर्ष यह है कि महाभारत एक अनुपम ग्रन्थ है। महाभारत के समान विशाल महत्त्वपूर्ण और लोकप्रिय ग्रन्थ सत्सारा में दूसरा नहीं है। एक लाख श्लोको की महाभारत संहिता सत्सारा के अन्य महाकाव्यों से कई गुनी बड़ी है। आकार की विशालता की दृष्टि से तो महाभारत सत्सारा के साहित्य में अतुलनीय है ही किन्तु इसके साथ साथ विषय की दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। एक ओर उसके विषय व्यापक और दूरगामी ओर वे विषय महत्त्वपूर्ण भी हैं। विषयों की व्यापकता के कारण यद्यत् न भारते तद्यत् न भारते' तथा व्यासोच्छिद्रष्ट-जगतसवम्' की उत्तियाँ प्रसिद्ध हुई। व्यापक होने के साथ ये विषय जीवन की गहराइयों में प्रवेश करते हैं। जीवन के अनेक विषय सम्बन्धों, संघर्षों, संकटों और कर्त्तव्या का गम्भीर अवगाहन करके मनुष्य की समुचित गति का मार्ग प्रकाशित करते हैं। महाभारत की विशाल कथा में ही इन विषयों के प्रतिपादन के अनेक अवसर आ गये हैं। वनपर्व, शांतिपर्व आदि के अवकाशों में चर्चा और उपदेश के द्वारा अन्य अनेक विषयों की मीमांसा की गई है। इस प्रकार महाभारत जीवन के अखिल विषयों का विशाल महासागर बन गया है। इसीलिए वह पंचमवेद माना जाता है। कथा के महत्त्व और काव्य के सौन्दर्य ने महाभारत की महिमा को और बढ़ा दिया है। हजारों वर्षों से महाभारत जनना में लोकप्रिय रहा है महाभारत की लोकप्रियता की तुलना केवल गीता भागवत तथा अयम्प्रेदायों के धर्मग्रन्थों से की जा सकती है। किन्तु अयम्प्रेदायों के धर्मग्रन्थ संगठित प्रचार के द्वारा लोकप्रिय बनाये गये हैं। स्वतन्त्ररूप में लोकप्रिय बनने वाले गीता, भागवत, महाभारत आदि ग्रन्थ ही हैं। द्रुम आकार की विशालता को देखते हुए महाभारत की लोकप्रियता आश्चर्यजनक है। इतना विशाल इतना महत्त्वपूर्ण और इतना लोकप्रिय ग्रन्थ सत्सारा में दूसरा नहीं है।

३—महाभारत की ऐतिहासिक आलोचना निष्प्रयोजन है—

भारतीय परम्परा में महाभारत एक धर्मग्रन्थ माना जाता है। विषय की दृष्टि से भी वह धर्मग्रन्थ ही है। उसका धार्मिक अर्थात् उमक कथा भाग से

कई गुना अधिक है। किन्तु पश्चिमी आलोचका ने महाभारत को मूल रूप में वीरव पाण्डवों के युद्ध की कथा का काव्य माना है। वे सूतो और चारणा के प्राचीन आख्यानो और वीर काव्या में इसका मूल खोजते रहे हैं तथा महाभारत के धार्मिक अंश को निकालकर उसके मूलकाव्य का रूप निर्धारित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। उनकी आलोचना का दृष्टिकोण ऐतिहासिक और विकासवादी है। वे महाभारत को कई सखको की प्रति मानते हैं। उनके अनुसार जय, भारत महाभारत के तीन संस्करणों में महाभारत का वर्तमान रूप विवसित हुआ है। कई विद्वानों ने महाभारत के धार्मिक अंश को निकालकर उसके मूल काव्य का उद्धार करने का भी प्रयत्न किया है। किन्तु ये प्रयत्न सफल और माय नहीं हो सके। महाभारत के वर्तमान रूप में धार्मिक अंग ऐसे घुलमिल गये हैं कि उनको अलग करना कठिन है। महाभारत की ऐतिहासिक आलोचना निष्प्रयोजन जान पड़ती है। इस आलोचना की उहायें अनेक प्रकार की हैं। इनमें बहुत सी अनगल और परस्पर विरोधी भी हैं। इस ऐतिहासिक आलोचना के अधिकार निष्पक्ष निष्पात्मक हैं। वे काल आदि की अर्वाचान अवधि निर्धारित करते हैं। इसके अतिरिक्त यह आलोचना महाभारत की रचना, उसके काल आदि के सम्बन्ध में कोई भावात्मक निष्णय नहीं कर पाती।

भारतवर्ष के प्राचीन साहित्य के सम्बन्ध में अनगल और परस्पर विरोधी कल्पनाओं के अतिरिक्त ऐतिहासिक आलोचना कोई आदरणीय निष्णय कर भी नहीं सकती। इतने प्राचीन साहित्य के सम्बन्ध में निष्णय प्रमाण मिलना कठिन है। अब महाभारत तथा अजय प्राचीन भारतीय साहित्य के सम्बन्ध में ऐतिहासिक आलोचना निष्प्रयोजन है। यह आलोचना अपने प्राचीन साहित्य के सम्बन्ध में भारतीयों की आस्था का उच्छेद करने में अवश्य सफल हुई। गरल भारतीय मृग के समान इस आलोचना के जाल में पग गये हैं।

४--महाभारत का वर्तमान रूप ही 'मान्य है--

ऐतिहासिक आलोचना महाभारत की रचना में कई तगका का हाथ दगनी है और उगत निष्णय को निर्धारित करने का प्रयत्न करती है।

आवश्यक प्रमाणों के अभाव में वह अपन इस प्रयास में सफल नहीं हो सकी । पर्याप्त प्रमाण न होते हुए भी पश्चिमी आलोचक महाभारत के सम्बन्ध में मनमानी कल्पनाएँ करते रहे हैं । यह आलोचनाएँ निश्चित प्रमाणा के अभाव में महाभारत की रचना, और उसके विकास का माननीय मत स्थापित नहीं कर सकी है । किंतु महाभारत के वर्तमान रूप के प्रति भारतीयों की श्रद्धा का उन्मूलन अवश्य करती रही हैं । यह उन्मूलन किसी अंग तक पश्चिमी विद्वानों की साम्राज्यवादी प्रेरणाओं और ईसाई मत के अनुरोध से प्रेरित हो सकता है । किंतु निश्चित प्रमाणों के अभाव में अनगल आलोचनाओं का कोई मूल्य नहीं है । डॉ० मुकयनकर ने अपने भाषणों में पश्चिमी विद्वानों का महाभारत सम्बन्धी आलोचना का खण्डन किया है तथा उनके दुराग्रहों और उनकी असमर्थताओं का उद्घाटन किया है । उन्होंने यह मत प्रकट किया है कि ऐतिहासिक आलोचना लक्ष्य में दूर चली जाती है । हम महाभारत के वर्तमान रूप को स्वीकार कर इसी रूप में उसका अध्ययन भारतीय दृष्टिकोण से करना चाहिए । पश्चिमी आलोचकों ने भी यह स्वीकार किया है कि महाभारत का वर्तमान रूप २००० वर्ष से भारतवर्ष में मान्य है । यह निश्चित नहीं कहा जा सकता कि ईसा के पहले कितनी गतादियों से महाभारत इसी रूप में चला आ रहा है । ईसवी सदी के आरम्भ से पहले महाभारत का जो वर्तमान रूप स्थिर हो चुका था, उसे आलोचना के द्वारा खण्डित करना उचित नहीं है । डॉ० मुकयनकर के अनुसार महाभारत के वर्तमान रूप में कोई विशेष अमंगल नहीं है । महाभारत का यही रूप दो हजार वर्ष से भारतीय साहित्य और परम्परा में मान्य रहा है । हम महाभारत के इसी रूप को मानकर इसी के आधार पर महाभारत के सम्बन्ध में अपने मत स्थिर करने चाहिए ।

५—धर्म ही महाभारत का मर्म है—

महाभारत के वर्तमान रूप में लगभग एक लाख श्लोक हैं । इसीलिये उसे शतसहस्री संहिता कहते हैं । इसी रूप में यह दो हजार से अधिक वर्षों से प्रतिष्ठित है । महाभारत के इस रूप में धार्मिक अंग अधिक हैं । यह धार्मिक अंग क्या भाग से कई गुना है । कथाप्रसंग में छात्रों और बड़े उपदेशों के रूप में यह मिलता है । धार्मिक अंग की अधिकता के कारण ही महाभारत का धर्मग्रन्थ माना जाता है । पश्चिमी विद्वानों ने अपनी ऐतिहासिक आलोचना के

धर्म का मूल मानने पर स्वतंत्रता धर्म का स्तम्भ बन जाती है। स्वतंत्रता को मानने पर हम किसी पर किसी प्रकार का आरोपण नहीं कर सकते। धार्मिक आग्रह, आरोपण, प्रचार आदि को मानने वाले इस स्वतंत्रता के सिद्धान्त का खण्डन करते हैं, यद्यपि यह करते हुये भी वे अपने धर्मों की श्रेष्ठता का ढोल पीटते रहे हैं। ज्ञान, विज्ञान आदि की तात्त्विक परख के अभिमानी आधुनिक युग में भी धर्म की इस विडम्बना को अनावृत करने का साहस अथवा सत्य प्रेम नहीं दिखाई दे रहा है। किन्तु कुछ धर्म-सम्प्रदायों के द्वारा खण्डित किये जाने पर भी यह सत्य खण्डित नहीं होता कि स्वतंत्रता मनुष्य जीवन और मनुष्य धर्म की सबसे बड़ी विभूति है। समानता उसका आधार है। धर्म-शास्त्रों और महाभारत के सामाजिक एवं मानवीय धर्म में समानता और स्वतंत्रता का आधार सर्वत्र माना गया है। उदार परोपकार की भावना से ओत प्रीत धर्म-संस्थाओं में इनके खण्डन का स्थान नहीं है। भारतीय धर्म सम्प्रदायों में भी धर्म शास्त्रों की इस आस्था के कारण समानता और स्वतंत्रता का आदर रहा है। इन सम्प्रदायों में कहीं भी आरोपण और प्रचार का लेश नहीं है। धार्मिक सहिष्णुता इन सम्प्रदायों का एक विशेष गुण है। श्रेष्ठता के अभिमानी पश्चिमी धर्म-सम्प्रदायों को भी इस सहिष्णुता उदारता, समानता और स्वतंत्रता की दृष्टि से परखना चाहिये।

८-धर्म का आधार आध्यात्मिक है—

भारतीय परम्परा में धर्म का सभी रूपों का आधार आध्यात्मिक है। आत्मा ही इस धर्म का आधार है। आत्मा सभी जीवों में समान है। गीता में भगवान् ने कहा है कि 'सर्वे भूता मत्मानः' (समस्त सब भूतों में मैं ही आत्मा हूँ)। 'गरीर इन्द्रियां मनः, बुद्धि सम्यक् चित्तं आदि अनेक दृष्टियाँ सब मनुष्यों में भिन्नता हो सकती हैं। किन्तु आत्मा की दृष्टि सब समान हैं। आत्मा ही चेतना का स्थान है। सुख-दुःख आदि की चेतना सब में समान होती है और इन्द्रिय सब में सुख-दुःख का महत्व बराबर है। इसी आधार पर समानता का सब धर्म का मूल सत्य बन गया है। 'आत्मोपशान्तं चोत्तमं धर्मं' और 'आत्मनः प्रतिपन्नानि' में इसका समानता का भाव की अभिव्यक्ति हुई है। आत्मा ही समानता का आधार है। उसका तात्त्विक अन्वय ही चेतना ही

कठिन हा किन्तु आत्मा के समान और उदार भाव के अनुकूल व्यवहार से सभी को आनन्द मिलता है। यही आत्मा का भाव भारतीय धर्म के सभी रूपों में ओत प्रोत है। धर्म शास्त्रों में धर्म के जो लक्षण बताये हैं वे सब इसी आत्मभाव पर आश्रित हैं। मानवन्वय ने तो 'आत्म दर्शन को 'परम धर्म' कहा है। भारतीय दर्शनों में भी आत्मा का अनुसंधान बहुत हुआ है। ईश्वरीय धर्म सम्प्रदाय भी ईश्वर को परमात्मा के रूप में मानते हैं। आत्मा को ईश्वर और मनुष्य की एकता का आधार भी माना जाता है। यह एकता पश्चिम के एकेश्वरवादी धर्मों में पाप समझी जाती है। आरम्भिक भाव से आत प्राप्त होने के कारण ही भारतीय धर्म सम्प्रदाय तथा धर्मशास्त्रों और महाभारत का धर्म उदार मानवीय भावना से ओत प्रोत है।

६—धर्म और रिलीजन में अन्तर है—

हिन्दी के वर्तमान व्यवहार में धर्म' शब्द का प्रयोग अंगरेजी के 'रिलीजन' के अर्थ में ही होता है। वास्तव में अंगरेजी का 'रिलीजन' ईश्वरीय आस्था के एक विशेष रूप का वाचक है। ईश्वर सम्बन्धी धारणाएँ होत हुये भी भारतीय परम्परा में उनकी विशेषता का आग्रह नहीं है। जिस विशेष रूप में ईश्वर को हम मानते हैं वही ईश्वर का एक मात्र सही रूप है तथा अन्य ईश्वर सम्बन्धी धारणाएँ गलत हैं, ऐसा आग्रह भारतीय परम्परा में नहीं रहा। किन्तु पश्चिमी परम्परा में ऐसा आग्रह प्रबल रहा है। पश्चिमी धर्म सम्प्रदायों के प्रचार और विस्तार का इतिहास इसी अनुसार आग्रह से प्रेरित है। ईश्वर के एक विशेष रूप में विश्वास तथा एक विशेष परम्परा एक विशेष धर्म ग्रन्थ तथा अन्य विशेष विधियाँ का कठोर आग्रह इन धर्मों की विशेषता है जिन्हें अंगरेजी में 'रिलीजन' कहा जाता है। यहुदी ईसाई और इस्लामी सम्प्रदाय इनमें मुख्य हैं। इन सभी में अपनी विशेष मायताओं का आग्रह तथा अपन से भिन्न मायताओं का विरोध है। इस दृष्टि से ये सभी सक्लित और सहिष्णुता से रहित हैं। इस बात इनके सम्प्रदाय कहता अधिक उचित है, यद्यपि सम्प्रदाय में भी सक्लितता और असहिष्णुता होना आवश्यक नहीं है। भारतीय सम्प्रदाय भी उत्तम और सहिष्णु हैं। अन्य धर्म शास्त्रों की धर्म सम्बन्धी उदार एवं मानवीय धारणा से इन भारतीय सम्प्रदायों

की समुचित सगति है। किन्तु पश्चिमी सम्प्रदाया म जिह रिलीजन कहा जाता है, ऐसी उदारता नहीं है। उनम कुछ नतिक गुण अवश्य मान जात हैं, किन्तु ईश्वर सम्बन्धी धारणाओं का आग्रह इन गुणा को खण्डित कर प्रचार, आरोपण आदि क अमानवीय और अधार्मिक कर्मों म प्रवृत्त हाता है। ध्युत्पत्ति की दृष्टि से 'रिलीजन' सगठन का वाचक है तथा धर्म मनुष्य की मनुष्यता क रक्षण का वाचक है। जत 'धर्म' को 'रिलीजन' से भिन्न मानना ही उचित है। धर्म शास्त्रों और महाभारत का धर्म तो ईश्वर सम्बन्धी मायताओं स मुक्त तथा मुख्य रूप से सामाजिक एव मानवीय होन के कारण 'रिलीजन' स और भी अधिक भिन्न है।

१०-धर्म और सम्प्रदाय मे विरोध आवश्यक नहीं है-

जिस रूप म धर्म-सम्प्रदाय पश्चिमी परम्परा म प्रवर्तित और प्रतिष्ठित हुय है, उस रूप म सम्प्रदाय धर्म की उस धारणा से दूर रह जाते हैं जिस धारणा की भावना धर्म शास्त्रों क 'धर्म' म तथा भारतीय सम्प्रदाया म 'यात' है। ऊपर क प्रकरण म सकेत किया जा चुका है तथा प्रस्तुत शोध प्रबंध के आरम्भिक अध्यायो म उसका विवरण किया गया है कि धर्म शास्त्रों और महाभारत का धर्म उदार और मानवीय धर्म है। इसक विपरीत पश्चिम क धर्म सम्प्रदाय समुचित और असहिष्णु है। इनका आग्रह, आरोपण और प्रचार उदारता एव स्वतंत्रता का खण्डन करता है। इसी कारण ऊपर के प्रकरण म धर्म और रिलीजन मे अंतर करने की चेष्टा की गई हैं। किन्तु धर्म और रिलीजन अथवा धार्मिक सम्प्रदाय म कोई विरोध होना आवश्यक नहीं है। धर्म शास्त्रों और महाभारत का धर्म मुख्यतः सामाजिक एव मानवीय अवश्य है तथा ईश्वर आस्था के किसी विशेष रूप से उसका आवश्यक सम्बन्ध नहीं है। फिर भी ईश्वर की आस्था का कोई विशेष रूप अपन स्वरूप म इस मानवीय धर्म का विरोध नहीं करता। ईश्वर की आस्था के विशेष रूप का आग्रह आरोपण और प्रचार उस मानवीय धर्म का विरोधी बनाता है। ईश्वर सम्बन्धी अथ आस्थाओं का अपमान इस विरोध को और बढ़ाता है। ईश्वर-सम्बन्धी आस्था क विनाश रूप के आग्रह आरोपण और प्रचार क कारण तथा अथ आस्थाओं का अपमान करन के कारण पश्चिमी धर्म-

सम्प्रदाय महाभारत के मानवीय धर्म के विपरीत जान पड़ते हैं। किन्तु यह विरोध अथवा वपरीत्य आवश्यक नहीं है। ईश्वर सम्बन्धी किसी विशेष आस्था का अनुदार, सकीर्ण, अमहिष्यु, आगेपवादी आदि होना आवश्यक नहीं है। वह उदार, सहिष्यु और स्वतंत्र भी हो सकती हैं। भारतीय परम्परा के धर्म सम्प्रदाय उदार और सहिष्यु हैं। अतः धर्म और सम्प्रदाय का विरोध आवश्यक नहीं है। किन्तु अनेक सम्प्रदायों को उदारता पूर्वक तथा आदर पूर्वक स्वीकार करने पर ही यह विरोध दूर हो सकता है। मानवीय धर्म तो सिद्धांत और मार के रूप में सदा एक और सावभौम हो सकता है। किन्तु ईश्वर सम्बन्धी आस्थायें अनेक होंगी। उदारता और सहिष्युता ही इस अनेकता का मानवीय धर्म में सामंजस्य कर सकती है। सम्प्रदायों की अनुदारता और असहिष्युता का दोष ईश्वर अथवा ईश्वर सम्बन्धी आस्था को नहीं दिया जा सकता। यह उन सम्प्रदायों के प्रवक्तव्यों और अनुयायियों की मनाकृति का दोष है।

११—धर्म शास्त्रों और महाभारत का धर्म मुख्यतः मानवीय और सामाजिक है—

धर्म शास्त्रों और महाभारत में धर्म के जिस रूप की प्रधानता है वह मुख्यतः मानवीय और सामाजिक है। धर्म के धर्म के रूप में मानवीयता का संकेत अभी ऊपर किया जा चुका है। यह मानवीयता मनुष्यता की भावना है, जो अहिंसा, दया आदि के उदार गुणों में व्यक्त होती है। यह भावना मनुष्य के प्रति भावपूर्ण आदर से प्रेरित होती है तथा ओत प्रोत रहती है। आध्यात्मिकता इस धर्म का आधार है। आत्मा सभी मनुष्यों में समान है। अथवा बातों में मनुष्यों में भेद हो सकता है, किन्तु आत्मा की समानता का अनुभव होने पर ये अथवा बातें अज्ञान और अतिचार का आधार नहीं बन सकती। इसी कारण भारतीय इतिहास में भारतवर्ष के द्वारा अथवा पर आक्रमण के उदाहरण नहीं मिलते। इसी कारण भारतवर्ष में विकसित होने वाले उच्चरीय धर्म सम्प्रदाय पश्चिमी धर्म-सम्प्रदायों की भांति धर्म प्रचार और धर्म-परिवर्तन में विश्वास नहीं करते। स्वतंत्रता और समानता मानवीयता का मूल सिद्धान्त हैं। धर्म प्रचार और धर्म परिवर्तन इनसे स्पष्ट बनते हैं।

ईश्वर को मानते हुए भी भारतीय धम सम्प्रदाय मानवीय भावना से ओतप्रोत है। इसका कारण धम शास्त्रा व सामाजिक धम की मौलिक मानवीयता की प्रेरणा है। धमशास्त्रो और महाभारत का धम भावना की दृष्टि से ही मानवीय नहीं है, वरन् क्षेत्र और सम्बन्ध की दृष्टि से भी मानवीय और सामाजिक है। उसमें ईश्वर का प्रसंग आवश्यक नहीं है। धम के लक्षणों में उदार मानवीय गुणों का ही गणना की गई है उसमें ईश्वर को पूजा का नाम नहीं है। अध्यात्म का आधार इस धम को दिव्यता का कुछ प्रकाश अस्य दता है फिर भी यह धम मुख्यतः लौकिक और सामाजिक है। यह मनुष्य व साथ मनुष्य के सम्बन्धों में ही सम्पन्न होता है। इस दृष्टि से धम का यह रूप ईश्वर की अलौकिकता में केन्द्रित धम सम्प्रदायों से भिन्न है।

१२-महाभारत के अनुसार अविरोध इस धम की कसौटी है—

ईश्वर अलौकिक और अनात है। ईश्वर को जानने का अभिमान पशुपति और भक्तों का अभिमान है। एक अध्यात्म का ही रूप होता है जिसमें कि ईश्वर का कुछ आभास मनुष्य को हो सकता है। यह अध्यात्म मनुष्य और ईश्वर की मौलिक एकता की ओर ले जाता है। किन्तु मनुष्य और ईश्वर को इस एकता को पश्चिम के ईश्वरवादी धम सम्प्रदाय पाप मानते हैं। मनुष्य और ईश्वर की एकता का आध्यात्मिक आधार न मानने पर ईश्वर अलौकिक बन जाता है। अलौकिक होने व कारण वह अनेक भा हो जाता है। आध्यात्मिक आधार के बिना अनेक ईश्वर के बारे में मनुष्य की कल्पनायें अनधिकार हैं। इस ईश्वर व सदेश और आदेश ही सदिग्ध है। ईश्वर व अलौकिक होने व कारण उन सदेशों की यथायथा की परीक्षा नहीं की जा सकती। इसीलिए उनमें मतभेद होता है, जसा कि आध्यात्मिक धम में सम्भव नहीं है। ईश्वरीय धम सम्प्रदायों में अनेक मानवीय गुणों का मान है फिर भी ये सम्प्रदाय धम प्रचार, धम-परिवर्तन आदि के द्वारा स्वतन्त्रता, समानता उदारता सद्भावना आदि मानवीय गुणों का खण्डन करते रहे हैं। यह इन धम सम्प्रदायों का एक अद्भुत आत्मविरोध है जिसकी आरंभ विद्वानों ने उचित ध्यान नहीं दिया है। इस विपरीत धम शास्त्रों और महाभारत का मानवीय और सामाजिक धम अपना आध्यात्मिकता व कारण अत्यन्त

उदार और सगत है। अध्यात्म में विरोध संभव नहीं है, क्योंकि अध्यात्म के भाव मनुष्य के अनुभव के अंतर्गत हैं। वे अलौकिक ईश्वर के आदेशों की भांति मनुष्य से अतीत नहीं हैं। अविरोध बुद्धि की मांग और बुद्धि का लक्षण है किंतु भाव में भी इसका विस्तार होता है। मानवीयता, समानता, स्वतंत्रता उदारता आदि के खण्डन में भाव के विरोध की परख हो जाती है। महाभारत में भाव और व्यवहार के अविरोध को धर्म की कसौटी माना गया है। 'आत्मनः प्रतिबुद्धानि और आत्मोपम्यन' में भी भाव के अविरोध की धारणा अतिनिहित है। धर्म के लक्षण के रूप में इस अविरोध का विवेचन पाचवें अध्याय के पहले प्रकरण में (पृष्ठ ११७) किया गया है। इस अविरोध की कसौटी पर खरा उतरने पर ही कोई भी धर्म मानव-समाज का कल्याण कर सकता है।

१३—धर्म की आध्यात्मिकता और मानवीयता उदार नैतिक गुणों में व्यक्त होती है—

धर्म शास्त्रों और महाभारत में धर्म का स्वरूप मुख्यतः मानवीय और सामाजिक माना गया है। उसके आध्यात्मिक आधार के संकेत यानवल्क्य के 'आत्मदर्शन', महाभारत के 'आत्मोपम्यन' और द्रव्य के आत्मनः प्रतिबुद्धानि में मिलते हैं। धर्म के इन आध्यात्मिक आधारों का अधिक विस्तार और विवेचन धर्म शास्त्रों में नहीं किया गया है। किंतु जिन उदार नैतिक गुणों में धर्म का आध्यात्मिक स्वरूप व्यक्त होता है, ये गुणशील की दृष्टि से व्यक्तिगत हैं अर्थात् वे मनुष्य के व्यक्तित्व को सम्पन्न बनाते हैं। किन्तु इन गुणों की अभिव्यक्ति सामाजिक है। सामाजिक व्यवहार में इन गुणों का सौरेम फलता है और ये फलित होने हैं। धर्म शास्त्रों में और महाभारत में ऐसे अनन्य मुख्य गुणों की गणना की गई है। इन गुणों का धर्म का लक्षण बताया गया है। ये गुण धर्म के आध्यात्मिक आधार और व्यवहार के सेतु हैं। ये उनका सम्बन्ध बनाते हैं। इन गुणों के द्वारा व्यवहार में व्यक्त होकर धर्म साधक और सफल होता है। मनुस्मृति और यानवल्क्य स्मृति में अहिंसा, मर्यादा, दया आदि गुणों का धर्म का लक्षण बताया गया है। महाभारत में भी अहिंसा, दया, शौच, दम आदि को धर्म के लक्षणों में गणना की गई है। धर्म

के इन गुणा का विवरण पाँचवें अध्याय के तीसरे प्रकरण में तथा छठे अध्याय में किया गया है। ये गुण अनेक हो सकने हैं और इनकी गणना पूरा नहीं की जा सकती। अतः महाभारत में अहिंसा, सत्य, क्षमा, दया आदि गुणा में प्रत्येक को वहीं परमधर्म और वहीं सनातन धर्म बताया गया है। आध्यात्मिक आधार की समता, स्वतंत्रता और उदारता, अहिंसा, सत्य, दया आदि में व्यक्त होती है। अतः एक मुख्य गुण से अनेक गुण घटित हो सकते हैं। अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, दया आदि में भी अहिंसा का भाव अंतर्निहित रहता है। सामान्य और विशेष के भेद से धर्म के ये लक्षण और गुण सभी आध्यात्मिक और मानवीय हैं। सामान्य गुण अधिक व्यापक हैं। विशेष गुण अस्तेय ब्रह्मचर्य आदि की भाँति कुछ विशेष विषयों में अथवा दया, क्षमा अत्याच आदि की भाँति कुछ विशेष परिस्थितियों में सीमित हो जाते हैं। किन्तु सभी रूपों में ये गुण समाज में धर्म का सौरभ फैलाते हैं। इन गुणों में धर्म की आध्यात्मिकता और मानवीयता के सिद्धांत सामाजिक जीवन में चरितार्थ होने हैं।

१४—वर्ण और आश्रम धर्म के विधान के भारतीय अवलम्ब हैं—

धर्मशास्त्रों और महाभारत में धर्म की प्रतिष्ठा चार अथवा पाँच भूमियों में की गई है। धर्म की सबसे पहली भूमि आध्यात्मिक है जिसका संकेत यानबल्क्य के 'आत्मदर्शन तथा गीता के 'आत्मोपमन में मिलता है। धर्म की दूसरी भूमि अहिंसा सत्य आदि के सामान्य गुण हैं तथा तीसरी भूमि अस्तेय, अक्रोध आदि के विशेष गुण हैं। इन सामान्य और विशेष गुणों के द्वारा धर्म की आध्यात्मिक विभूति का विस्तार समाज में होता है। ये दोनों ही प्रकार के गुण मनुष्यमान के लिए वाञ्छनीय हैं। अतः धर्म का यह रूप सामान्य और व्यापक अर्थ में मानवीय है। किन्तु मनुष्य का सामाजिक और यक्तिगत जीवन जटिल और अनेक रूप है। केवल सामान्य गुणों के द्वारा धर्म का पूरा व्यवहार सम्भव नहीं हो सकता। सामाजिक जीवन की जटिलताओं में विशेष परिस्थितियों में सबके कर्तव्य एकसे नहीं हो सकते। ऐसी एकसूत्रता में समाज और व्यक्ति दोनों का जीवन सुंदर नहीं बन

सकता। धर्म की सफलता और जीवन की सुन्दरता के लिए धर्मशास्त्रों और महाभारत में समाज का विभाजन चार वर्णों में और जीवन का विभाजन चार आश्रमों में किया गया है तथा इसके अनुसार धर्म का विधान किया गया है। यह धर्म मनुष्य के कर्तव्य के रूप में है। विद्या, रक्षा, व्यवसाय और सेवा के अनुरूप चार वर्ण बनाये गये हैं और उनके अलग-अलग कर्तव्य बताये गये हैं। इसी प्रकार चार आश्रम माने गये हैं और उनके अलग-अलग कर्तव्य बताये गये हैं। वर्णों और आश्रमों के अनुसार धर्म की जो व्यवस्था की गई है उन्हे धर्म की प्रतिष्ठा की चौथी और पाँचवीं भूमि कह सकते हैं। इन भूमियों में धर्म का मूल आध्यात्मिक आधार और धर्म के सामान्य लक्षण विनाय सामाजिक परिस्थितियों तथा आयु की विशेष व्यवस्थाओं के साथ सगत होता है। वर्णों और आश्रमों की यह व्यवस्था भारतवर्ष की एक निराली विशेषता है। यह अन्य देशों में नहीं पाई जाती। अन्य देशों में भी समाज में वर्ग मिलते हैं, किन्तु भारतवर्ष का जसा व्यवस्थित विधान नहीं मिलता। आश्रम-व्यवस्था की कल्पना तो कहा नहीं मिलती। वर्ण-व्यवस्था में कुछ दोष भी उत्पन्न हो गये यद्यपि उसका मूल उद्देश्य समाज में धर्म का विभाजन था। आश्रम-व्यवस्था जीवन का ऐसा विभाजन है जो सबकाल में उपयोगी हो सकता है। आश्रमों के विभाजन में भारतीय ऋषियों ने जीवन की एक बड़ी सुन्दर और सफल योजना प्रस्तुत की है। हजारों वर्षों तक वर्णों और आश्रमों की व्यवस्था भारतीय धर्म और संस्कृति का आधार बनी रही। महाभारत में वर्ण और आश्रमों के कर्तव्यों के रूप में धर्म का विधान विस्तार के साथ किया गया है। धर्म के इसी रूप का विवेचन प्रस्तुत गोप प्रबन्ध का विषय है। यह विवेचन सातवें अध्याय से लेकर १८वें अध्याय तक है।

१५—वर्णों की व्यवस्था में कुछ सामाजिक विषमता अवश्य उत्पन्न हुई किन्तु उसका मूल उद्देश्य विषमता नहीं बरन् समाज का सामंजस्य तथा कर्तव्य विभाजन है—

आधुनिक विचारकों ने वर्ण-व्यवस्था की बहुत कुछ आलोचना की है तथा उसमें सामाजिक विषमता के बीज बताये हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से यह सत्य

है कि वण विभाजन के कारण भारतीय समाज में कुछ विपमतायें उत्पन्न हुईं । किन्तु यह विपमता वण व्यवस्था का मूल उद्देश्य नहीं थी । ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में विराट पुरुष के मुख, बाहु, उरु और चरण से चारों वर्णों की उत्पत्ति बताई गई है । इससे विदित होता है कि चारों वण समाज पुरुष के अंग हैं । शरीर के अंगों में विरोध नहीं, वरन् सामजस्य अभीष्ट होता है । ऐसा ही सामजस्य वणव्यवस्था का सामाजिक उद्देश्य है । वण-व्यवस्था के कारण जो विपमतायें उत्पन्न हुईं, उनका दोष इस व्यवस्था को नहीं, वरन् मनुष्य स्वभाव को देना चाहिए । वह विपमतायें अन्य देशों के समाज में भी मिल सकती हैं जहाँ वण-व्यवस्था नहीं है । भारत के इतिहास में वर्णों के आधार पर ऐसे विरोध के उदाहरण नहीं मिलते, जैसे विरोध पश्चिम के ईश्वरी धर्मों में पदा किये हैं । वण-व्यवस्था के सम्बन्ध में एक जमाधिकार की बात ही आपत्तिजनक है । यह जमाधिकार वैदिककाल में नहीं था । जमाधिकार के अतिरिक्त वण-व्यवस्था आधुनिक समाज में भी श्रम विभाजन और सामजस्य का आधार बन सकती है । विद्या रक्षा, व्यवसाय और सेवा के कम आधुनिक समाज में भी बहुत कुछ विभाजित है । इनमें श्रम और सामजस्य अपेक्षित है । इनका उल्लंघन वण व्यवस्था के विधायक का भी उद्देश्य नहीं था ।

१६—द्विजों की श्रेष्ठता और शूद्रों की हीनता सामाजिक परिस्थिति के परिणाम है —

वण-व्यवस्था के सम्बन्ध में द्विजों की श्रेष्ठता और शूद्रों की हीनता सबसे अधिक आपत्तिजनक मानी जाती है । द्विजों का ब्राह्मण के अर्थ में भी स्मृति हो गया है । किन्तु सामान्य रूप से वह तीन उच्च वर्णों का वाचक है । सत्कारों के द्वारा तीनों वर्णों का दूरतया जन्म होता है । अतः उन्हें द्विज कहते हैं । श्रम श्रेष्ठता में उपनयन का विशेष महत्त्व है । उपनयन विद्या का द्वार है । विद्या में विशेष रूप से रत रहने के कारण द्विजों का ब्राह्मण के अर्थ में स्मृति हो गया । किन्तु सामान्य अर्थ में तीनों ही उच्च वण द्विज कहलाते हैं तथा वे शूद्रों से श्रेष्ठ माने जाते हैं । श्रम और सेवा की तुलना में विद्या, रक्षा और व्यवसाय की श्रेष्ठता इसका कारण है । इसमें सन्देह नहीं कि शूद्रों के साथ कुछ अधिक अन्याय हुआ है किन्तु श्रमिकों और सेवकों की हीनता दूरतया

म भी रही है और वर्तमान समाज म भी है। प्राचीन भारतीय समाज म भी थी। प्राचीन भारतीय समाज म सामाजिक परिस्थितियाँ और कमभेद संवर्णों का विभाजन हुआ। महाभारत मे तो यह कहा गया है कि प्राचीनकाल म वर्णों का भेद नहीं था और सभी ब्राह्मण थे। कालान्तर म स्वभाव और कम मे वे क्षत्रिय बन्ध और गूढ़ बन गये (गातिपत्र—अध्या० १८८, श्लो० १० (३, देखिए पीछे पृष्ठ—१६८)। विद्या की श्रेष्ठता भारतीय समाज का एक अनुपम विशेषता थी। प्राचीन समाज की अरक्षित स्थिति म ब्राह्मणों स्त्रियाँ तथा अन्य प्रजा की रक्षा के लिए क्षत्रियों को विशेष मान दिया गया। धर्म और मस्वृति की परम्परा म आचार की स्वच्छता और पवित्रता का विशेष महत्व दिया गया। मलिन कम के कारण गूढ़ा को हीन समझा गया। यह परिस्थितियाँ समाज की परम्परा म रुद्ध हो गईं। इतना मानना होगा कि गूढ़ो व प्रति अघाय का निराकरण धर्मशास्त्रों म नहीं किया गया।

१७—ब्राह्मणों की श्रेष्ठता का कारण प्राचीन समाज मे विद्या, यज्ञ आदि के महत्व तथा तप, त्याग, पवित्रता, सरलता आदि का आदर था—

वर्ण-व्यवस्था मे द्विजों को श्रेष्ठ और द्विजा म ब्राह्मणों का सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। कुछ आधुनिक विचारक इसे ब्राह्मणों का अपने प्रति पक्षपात भी मानते हैं। धर्मशास्त्रों की रचना ब्राह्मणों ने ही की है। उन्होंने धर्मविधान म अपने लिए गौरव और सुविधा दी है। किन्तु अपने विधान व द्वारा कोई श्रेष्ठ नहीं बन सकता। भारतीय समाज म विद्या यज्ञ तप त्याग आदि का विशेष आदर होने के कारण ही ब्राह्मणों का विशेष आदर हुआ। उनके अध्यापन क द्वारा विद्या की परम्परा बनी रही तथा उनके यज्ञ के द्वारा मास्वृतिक यज्ञ कम आदि चलते रहे। स्वतंत्र भारत म इन दोनों का तीव्रता से ह्रास हो रहा है यह वर्ण-व्यवस्था व आलोचना व निराल विचारणीय है। धर्मशास्त्रों म भी विद्याहीन ब्राह्मणों की निंदा की गई है। विद्या तप मस्वृति आदि की श्रेष्ठता विद्या भी सम्य समाज व लिए आदरणीय हो सकती है। धर्मशास्त्रों म ब्राह्मणों के लिए जिनकर्मियों का विधान किया गया है, उन कर्तव्यों का पालन करने वाला वर्ग किसी भी समाज व लिए गौरव का कारण हो सकता है।

१८—क्षत्रियो की श्रेष्ठता का कारण रक्षा का महत्व है—

वण-व्यवस्था म क्षत्रिया को भी घटुत मान लिया गया है । वहां-वहां क्षात्रधम का सर्वश्रेष्ठ भी माना गया है । रक्षा हान क कारण वह अय धर्मों का धारक है । प्राचीन अरक्षित समाज म रक्षा का बड़ा महत्त्व था । दुबलो की रक्षा म तत्पर क्षत्रिय समाज विद्यारत ब्राह्मणा क समान ही विसी भी समाज क लिए गौरवपूर्ण हो सकता है । आग भी एसे रक्षाना की आव श्यकता है ।

१९—प्रजापालन और प्रजा की रक्षा राजा के मुख्य-धर्म है—

क्षत्रिय धम के उक्त दृष्टिकोण ने ही धमशास्त्रा के राजधम को निर्धारित किया है । पुरपसूक्त म क्षत्रिया को 'राजय' कहा है । प्राय क्षत्रिय ही राजा होते थे । वे शक्ति बल से राज्य का शासन करते थे । धमशास्त्रा म प्रजा की रक्षा प्रजा का पालन विगेष रूप स राजा का धम बताया है । महाभारत मे विशेषत शांतिपव म राजधम का विगेष बणन हैं । शक्ति बल नीति, बिडा धम आदि से युक्त लोक'रजक' और लोक'रक्षा' राजा की कल्याणा धमशास्त्रा की एक विशेषता है । अनेक राजाआ न इस कल्याणा को इतिहास मे सत्य बनाया है ।

२०—वैश्यो के आर्थिक व्यवसाय मे भी दान आदि के द्वारा श्रेय का सामजस्य किया गया है—

आर्थिक दृष्टि स वश्यधम जय वर्णों के धम की अपेक्षा लाभप्रद है । एकमयाग क भीतर आर्थिक व्यवसाय भी समाज की सेवा है । अधिक धन संग्रह अवश्य अनथवारी हो जाता है । इसी के सन्तुला के लिए महाभारत म अनेक स्थाना पर वैश्यो क लिए 'व्यायपूवक' धन सचय तथा दान का विधान किया गया है । कृषि और गोरगा को भी वश्य का कर्तव्य माना

गया है। यद्यपि वस्या ने इन कर्तव्या को त्याग दिया। ये कर्तव्य ध्यसतचय के प्रतिबन्धक और समाज के रक्षक हैं। अथसग्रह करत हुए भी वस्यवग धम, कम, दान आदि को बहुत कुछ ध्यान देना रहा है।

२१—शूद्रों के साथ वर्णव्यवस्था में निश्चित रूप से अन्याय हुआ है और उसका सशोधन आवश्यक है—

शूद्रों के प्रति अन्याय के कारण वर्णव्यवस्था की बहुत आलोचना की जाती है चाहे इसका कारण सामाजिक परिस्थिति और स्वच्छता का उच्चादाग हो फिर भी यह सत्य है कि शूद्रों की दशा भारतीय समाज में शोचनीय रही है। धर्मशास्त्रों में इसका कोई प्रतिकार नहीं किया गया है। बृद्ध से लेकर बकीर नानक दादू जादि सन्तों ने इसके समाधान का कुछ प्रयत्न किया, किन्तु ये प्रयत्न धार्मिक क्षेत्र में ही सीमित रहे। गांधी जी के प्रयत्न कुछ सामाजिक क्षेत्र में भी सफल हुए हैं। किन्तु इन क्षेत्रों में और अधिक सक्रिय सशोधन की आवश्यकता है।

२२—आश्रम-व्यवस्था जीवन की एक अत्यन्त सुन्दर योजना है—

वर्णव्यवस्था के सम्बन्ध में कुछ आपत्तियाँ भी हो सकती हैं किन्तु आश्रम व्यवस्था भारतीय प्रतिभा की एक अद्भुत कल्पना है। आश्रम-व्यवस्था के पीछे काल का गतिमान मत्स्य है। सफल और सुन्दर जीवन के लिए काल एक अथु की गति के साथ जीवन के उदय और कर्तव्य भी बदलन चाहिए। आश्रम व्यवस्था में यही योजना की गई है। ब्रह्मचर्य आश्रम में गति और विद्या का सचय जीवन के निर्माण की नींव बनाना है। गृहस्थाश्रम में जीवन के प्राकृतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक धर्म मफल होते हैं। वानप्रस्थ स्वतन्त्र और आनन्दमय जीवन का सत्तु है, जिस सन्यास का नाम दिया गया है। निवास साधना कम, जीवनचया आदि की दृष्टि से विविधता से पूरा आश्रम-व्यवस्था जीवन की एक अत्यन्त सुन्दर और परिपूर्ण योजना है।

२३—ब्रह्मचर्य सफल और पूण जीवन की सुदृढ नींव है—

आश्रम-यवस्था म ब्रह्मचर्य की कल्पना सबसे अधिका महत्वपूर्ण है । जिवित्त जीवन और इन्द्रिय संयम की कल्पना अथ धर्मग्रन्थाया म ना की गई है, किन्तु सम्पूर्ण समाज क नामाय अनुगमन क रूप म ब्रह्मचर्य की यवस्था अथ किसी ती परम्परा म नहीं मिलती । ब्रह्मचर्य का श्रम मान भी कहा नहीं है । हनुमान भीष्म आदि क गमान ब्रह्मचारिया क आदर भी अथ कही पूजित नहीं हैं । भारतीय परम्परा म विद्या और अध्यात्म का अत्यधिक मान ही ब्रह्मचर्य के महत्व का मुख्य कारण है । आधुनिक सभ्यता की गति और मनाविज्ञान की मापनायें ब्रह्मचर्य क अनुकूल नहीं हैं । किन्तु विद्या और स्वास्थ्य क हित क लिए ब्रह्मचर्य का महत्व सदा मानना होगा । आश्रमों की यवस्था के सिद्धान्त ही अधिक महत्वपूर्ण हैं । इन सिद्धान्तों के पालन के यावहारिक रूप समयानुसार बदल सकते हैं । धर्मशास्त्री और महाभारत म भी इन्द्रियसंयम स्वाध्याय जादि को ब्रह्मचारी के कर्तव्यो म अधिक महत्व दिया गया है ।

२४—गृहस्थाश्रम सब धर्मों का पोषक है तथा जीवन की प्राकृतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक सफलता के द्वारा मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है—

गृहस्थ आश्रम का भवन ब्रह्मचर्य की नींव पर बनता है । महाभारत म गृहस्थाश्रम को समस्त धर्मों का मूल माना है । गृहस्थ जीवन का निर्वाह तो समार म सभी समाज करते रहे हैं किन्तु धर्म सत्कृति आचार आदि क मेरुदण्ड क रूप म गृहस्थाश्रम की कल्पना भारतीय धर्मशास्त्र म ही की गई । धर्मशास्त्रा क अनुरूप महाभारत म भी अतिथि सत्कार यज्ञ दान, अध्ययन आदि का गृहस्थ का कर्तव्य माना गया है । स्त्री पुत्र, पुत्री सम्बन्धी आदि क प्रति अपन कर्त्तव्य का पालन करके संयमी और सदाचारी गृहस्थ अपन जीवन का संपन्न बनाता है तथा वानप्रस्थ एव संन्यास क माग प्रशस्त करता है । गृहस्थ का संयम और सदाचार प्राकृतिक जीवन एव आध्यात्मिक लक्ष्य का सामंजस्य बनाता है ।

२५— स्त्री की रक्षा और स्त्री का आदर समाज का गौरव है, सेवा और पातिव्रत गृहस्थ जीवन को सुखी और शान्तिपूर्ण बनाते हैं -

धर्मशास्त्रा और भारतीय समाज में स्त्री के स्थान की प्रायः आलाचना की जाती है। मनु न स्त्रियाँ को स्वतन्त्रता की अधिकारिणी नहीं माना है किन्तु उद्देश्य स्त्री को अतिचारियाँ में सुश्रित बनाता रहा है। महाभारत में भार्या के रूप में स्त्री को बड़ा महत्व दिया गया है। उसे पुण्य का सर्वोत्तम बन्धु और सहायक बताया गया है। स्त्रियाँ का अवध्य भी माना है। गृह और पति की सेवा पातिव्रत स्त्री के मुख्य धर्म माने गये हैं। अतिथि सेवा और पातिव्रत स्त्री के अत्यन्त मांगलिक गीत हैं। इनमें गृह और समाज दोनों में शांति और सुख का विस्तार होता है। जिस प्रकार अथ किसी समाज में ब्रह्मचर्य का इतना ध्यापक महत्त्व नहीं है, उसी प्रकार पातिव्रत को भी भारतवर्ष के समान महत्त्व नहीं दिया गया है। ब्रह्मचारियाँ के समान पतिव्रताओं के ऐसे उदाहरण अत्यन्त नहीं मिलते। आधुनिक सभ्यता ब्रह्मचर्य के समान पातिव्रत की भी उपेक्षा कर रही है। किन्तु ब्रह्मचर्य के बिना स्वस्थ जीवन सम्भव नहीं है और पातिव्रत के बिना स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध शांतपूण और आनन्ददायक नहीं हो सकता।

२६— वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम-व्यवस्था को तथा जीवन को पूण बनाते हैं—

इन्द्रिय मयम और पातिव्रत का महत्त्व कुछ सीमा तक अथ समाज में भी माना गया है किन्तु वानप्रस्थ और सन्यास की एसी परिपूर्ण बनना अत्यन्त नहीं की गयी है। कुछ साधु सन्यासी दूसरे देश में भी हो रहे हैं, किन्तु वानप्रस्थ और सन्यास का इतना ध्यापन विधान कहीं नहीं मिलता। भारतवर्ष में वानप्रस्थ और सन्यास का बहुत कुछ पतन भी किया गया। राजा भी पुत्र के सुख होन पर पुत्र का अभिषेक करके वन चले जाते हैं। एम उदाहरण अथ किसी देश में नहीं मिलते। इसी कारण राजाजी के लिए

है। महाभारत भारतीय धम नीति सस्कृति आदि का विपुल भाण्डार है। इसीलिए उसे पंचम वेद का पद मिला। श्रीकृष्ण के आध्यात्मिक प्रसंग तथा युधिष्ठिर आदि के धार्मिक प्रतीका के कारण यह गाइवन जावन का प्रतीक भी बन गया है। इतिहास, काव्य और धमशास्त्र आदि ताना ही दृष्टियाँ से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। युगों के प्रभाव से उसका महत्त्व कम गरी हुआ है। महाभारत का महान् श्रेय महान् भारत का गाइवन गौरव रहगा तथा भारतीय जनता के लिए वह सदा श्रद्धा के साथ पठनीय है।

३०—महाभारत का साहित्यिक स्रोत काव्य के अनेक भगीरथों का आमन्त्रण करता है

महाभारत भारतीय इतिहास, परम्परा और सस्कृति का विश्वनाथ है। कौरव-पाण्डवों के युद्ध की कथा के अतिरिक्त उसमें अनेक अतकथायें समाहित हो गई हैं। कौरव-पाण्डवों के चरित की कथायें भी अनर एव रोमाचकारी हैं। इन कथाओं तथा अतकथाओं के आधार पर सस्कृत साहित्य में अनेक काव्य एव नाटक रचे गये हैं। इन रचनाओं की सूची परिशिष्ट—ख में दी गई है। इनमें कुछ श्रेय उत्तम भी हैं। अथ अनेक साधारण कृतियाँ का कथानक महाभारत से ही लिया है। किंतु हिंदी साहित्य में रामकथा तथा कृष्ण भक्ति का ही काव्य अधिक मिलता है। महाभारत की मूल कथा तथा अतकथाओं के आधार पर बहुत कम रचनायें हुई हैं।

सस्कृत में महाभारत के आधार पर जो काव्य अथवा नाटक रचे गये हैं, उनमें अतिरिक्त अथ अनेक रचनायें सस्कृत हिंदी में महाभारत के आधार पर रची जा सकती हैं। महाभारत का यह अक्षय साहित्यिक स्रोत काव्य के अनेक भगीरथों का आमन्त्रण करता है जो महाभारत की मूल कथा एव अतकथाओं के आधार पर उत्तम काव्यों की रचना कर अपनी साधना का मफल बनायें तथा साहित्य का भाण्डार सम्पन्न बनायें।

३१—महाभारत हमारी धार्मिक एव सास्कृतिक आस्था का सुदृढ अवलम्ब बन सकता है।

नवीन साहित्यिक रचनाओं की विषय वस्तु और श्रमण का मोन बनन के अतिरिक्त महाभारत हमारी धार्मिक एव सास्कृतिक आस्था का

सुदृढ अवलम्ब भी बन सकता है। हमारा धर्म सांस्कृतिक है तथा हमारी संस्कृति धार्मिक पवित्रता से ओत प्रोत है। महाभारत में धर्म और संस्कृति के तत्त्व विपुल परिमाण में मिलते हैं। धर्म शास्त्रों के धर्म के सिद्धान्त महाभारत में प्रतिपादित एवं पल्लवित हुये हैं। अनेक अन्तकथायें आदमों को धरिताय करती हैं। व्रत तीर्थ आदि धार्मिक विषयों का विवरण भी महाभारत में बहुत मिलता है। संस्कृति की अनेक परम्पराओं के प्रसंग महाभारत में आदर का स्थान मिला है। धर्म और संस्कृति के विषय में सम्पूर्ण महाभारत भारतीय जीवन और परम्परा का प्रतिनिधि बन गया है। धार्मिक पाठ एवं साहित्यिक उपयोग के अतिरिक्त महाभारत का अनुशीलन हमारी धार्मिक एवं साहित्यिक आस्था को सुदृढ बनाने में सहायक हो सकता है। कौरव-पाण्डवों का गृह-युद्ध अनुत्तरणीय नहीं है। किन्तु उसके दुष्परिणामों से भी हम बहुत कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। मूल कथा के सूत्र पर गुम्फित अथ धार्मिक प्रसंगों एवं कथाओं तथा सांस्कृतिक विषयों को लोक-मानस में पुनः पुनः प्रकाशित कर समाज की धार्मिक और सांस्कृतिक आस्था को सुदृढ बनाया जा सकता है।

धर्म, संस्कृति, साहित्य आदि की अपार निधि से सम्पन्न महाभारत का पञ्चम वेद हमारी वर्तमान एवं भावी आस्था का गारंटी बना रह सकता है। यह इस प्राचीन काव्य की सनातन महिमा का प्रमाण है।



दो परिशिष्ट

परिशिष्ट-१—सहायक पुस्तको की सूची ।

परिशिष्ट-२—महाभारत मे प्राप्त कथानको पर आश्रित
काव्य, नाटक और चम्पू ग्रन्थो की सूची ।

परिशिष्ट—क

सहायक पुस्तकों की सूची

- 1—महाभारत—गीता प्रेस का संस्करण
- 2—मनुस्मृति
- 3—याज्ञवल्क्य स्मृति
- 4—चिन्तामणि विनायक वद्य महाभारत मीमांसा
- 5—डा० फतहसिंह भारतीय समाज शास्त्र
- 6—डा० फतहसिंह वैदिक दर्शन
- 7—डा० राधाकृष्णन् हिन्दुओं का जीवन दर्शन
- 8—आनन्दबद्वे न घन्यालोक
- 9—नलिन विलोचन शर्मा साहित्य का इतिहास-दर्शन
- 10—प्रोफेसर गिबदत्त ज्ञानो भारतीय संस्कृति
- 11—R C Dutt Mahabharata
- 12—Channing Arnold The Mahabharata
- 13—P V Kane History of Dharmasastra
Vol II, Part I, II
- 14—Thadani : Mysteries of Mahabharata
- 15—V S Sukthankar : On the Meaning of the
Mahabharata
- 16—S K Maitra The Ethics of the Hindus
- 17—Sir P S Sivaswamy Aiyer Evolution of The
Hindu Moral Ideals
- 18—Radhakrishnan Religion and Society
- 19—Arthur A Macdonell History of Sanskrit
Literature
- 20—V Varadachari A History of the Sanskrit
Literature
- 21—Prof V V Dixit Relation of the Epics to the
Brahmana Literature
- 22—Krishna Chaitanya A New History of Sanskrit
Literature

परिशिष्ट--ख

महाभारत में प्राप्त कथानकों पर आश्रित
काव्य, नाटक और चम्पू ग्रन्थों की सूची

ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम
१ पचरात्र	भास
२ दूतवाक्य	भास
३ मध्यम व्यायोग	भास
४ दूतघटोत्कच	भास
५ ऋण भार	भास
६ उरुभग	भास
७ अभिज्ञान शाकुन्तल	कालिदास
८ किराताजुनीय	भारवि
९ वेणीसंहार	भट्ट नारायण
१० शिशुपाल वध	माघ
११ सुभद्रा-धनञ्जय	कुलशेखर वर्मन
१२ कीचक-वध	नीति वर्मन
१३ बाल भारत	राजशेखर
१४ नैषधानन्द	क्षेमीश्वर
१५ नल चम्पू	त्रिविक्रम भट्ट
१६ भारत मजरी	क्षेमेन्द्र

ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम
१७ धनञ्जय व्यायोग	कचन पडित
१८ किराताजुनीय व्यायोग	वत्सराज
१९ नैपथीय चरित	श्रीहर्ष
२० नल प्रिलाम	रामचन्द्र
२१ निर्भयमीम	रामचन्द्र
२२. गाल भारत	अमरचन्द्र
२३ पाण्डव चरित	देव प्रभा सूरि
२४ महदयानन्द	कृष्णानन्द
२५ गाल भारत	अगस्त्य
२६ पाथ पराक्रम	प्रह्लादनदेव
२७. भीम विक्रम	मोक्षादित्य
२८ सीगन्धि आहरणम्	विश्वनाथ
२९ युविष्ठिर विजय	वासुदेव
३० नलोदय	वासुदेव
३१ नलाम्युदय	वामन भट्टवाण
३२ भारत चम्पू	अनन्त भट्ट
३३ भैभीपरिणय	श्रीनिवास दीक्षित
३४ भारत चम्पू	राजचूडामणि दीक्षित
३५ सुमद्राधनजय	गुरुराम
३६ द्रोपदी परिणय चम्पू	चक्रकवि
३७ नल चरित	नीलकण्ठ दीक्षित
३८ सुमद्रा परिणय	नल्ला कवि
३९ सुमद्रा हरण	मधव

परिशिष्ट--ख

महाभारत में प्राप्त कथानकों पर आश्रित
काव्य, नाटक और चम्पू ग्रन्थों की सूची

ग्रन्थ का नाम	लेखक का नाम
१ पचरात्र	भास
२ दूतवाक्य	भास
३ मध्यम व्यायोग	भास
४ दूतघटोत्कच	भास
५ कर्ण भार	भास
६ उरुभग	भास
७ अभिज्ञान शाकुन्तल	कालिदास
८ किराताजुर्नीय	भारवि
९ वेणीसहार	भट्ट नारायण
१० शिशुपाल वध	माघ
११ सुभद्रा-धनञ्जय	कुलशेखर वर्मन
१२ कीचक-वध	नीति वर्मन
१३ बाल भारत	राजशेखर
१४ नैषवानन्द	क्षेमीश्वर
१५ नल चम्पू	त्रिविक्रम भट्ट
१६ भारत मजरी	क्षेमेन्द्र

ग्रन्थ का नाम

लेखक का नाम

१७	धनञ्जय व्यायोग	कचन पंडित
१८	किराताजुनीय व्यायोग	वत्सराज
१९	नैपथीय चरित	श्रीहर्ष
२०	नल विलास	रामचन्द्र
२१	निर्भयमीम	रामचन्द्र
२२	राल भारत	अमरचन्द्र
२३	पाण्डय चरित	देव प्रभा सूरि
२४	सहृदयानन्द	कृष्णानन्द
२५	बाल भारत	अगस्त्य
२६	पाथ पराक्रम	प्रह्लादनदेव
२७	भीम विक्रम	मोक्षादित्य
२८	सौगन्धि आह्वणम्	विश्वनाथ
२९	धुधिष्ठिर विजय	वासुदेव
३०	नलोदय	वासुदेव
३१	नलाम्युदय	वामन भट्टवाण
३२	भारत चम्पू	अनन्त भट्ट
३३	मैमीपरिणय	श्रीनिवास दीक्षित
३४	भारत चम्पू	राजचूडामणि दीक्षित
३५	सुभद्राधनजय	गुरुराम
३६	द्रोपदी परिणय चम्पू	धक्रकवि
३७	नल चरित	नीलकण्ठ दीक्षित
३८	सुभद्रा परिणय	नल्ला कवि
३९	सुभद्रा हरण	मध्व

